

तुलसी की काव्य-कला

(उसकी रचनाओं में)

[अखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

भेजिका—

डॉ० भाग्यवती सिंह

एम० ए०, पी एच० डी० (डॉ० सिद् रिचर्ड स्कालर)

१९६२

प्रकाशक—

सरस्वती पुस्तक सदन आगरा

प्रकाशक
प्रतापशंकर अशवाल
संभासक
सरस्वती पुस्तक भवन धारा

प्रथम संस्करण सन् १०१६

मई १९६२

मुख्य कार्यालय
मुम्बई नगर पंचायत नये वीथे

मुद्रक
हिन्दुस्तान प्रिंटर्स
सोहार्मडी धारा

भूमिका

घपने जीवन के चारों ओर विज्ञान की विजय दुम्बनि क स्वर यह स्वर घरनी समग्रता में इतने सीकण व स्वरितगामी हो मये हैं की वाद में पनी हुई भारतीय सन्कृति घीर कसा घब घबाक अरकृती है ।

- ५१ प्रभाव घात्र हमारी मानसिक विचारणा के क्षेत्र में थी है ।
 १२ समीक्षा के प्रारंभ में भी वह परिव्याप्त है । नये काव्य-प्रतीक नए प्रयासों में इनकी चन्तस्फेजना की नया उन्मेष प्रदान किया
 २० ६ एक्सर घादि का स्वप्न भिषूक मनोविश्लेषण श्राण्ट दुषा पावर्तबाबी वर्ग संघर्ष की टोस मान्यतायें थी उसके निकट घाई बना मूल्या में भी इनकी मीर्य बेतना को कम प्रभावित नहीं

नर हृष्टिकोण न सिखी जाने वाली नवीन प्रयोगा की रचनाओं की का महत्व है । वहीं प्राचीन महाकवियों की कृतियों का भी विचार पर मुक्याहन प्रपेक्षित है । मोन्बामी तुलसीदास की कृतियों के घाघा पर तो थोड़ा बहुत प्रम्यम हुआ है । पर उनकी अज्ञा ७ रूप में होना रोप था । उमी को पुरा करने का प्रयत्न बना है ।

की नवीनताघा की घोर संकेत करने के पूर्व में यह बात स्वीकार नहीं हिचकती कि मोन्बामी तुलसीदास की काव्य बना का पारक घीर घम्भोर है कि उनके नर्म में न जाने किने देते
 ७ उद्घाटन के हेतु घभी जितने ही बिबेनघीस अनुलग्नाभका रवा होगी । ऐसी स्थिति में तुलसी जैसे महाकवि की कमा में भी हूँ मिनामी हैं ऐसा बहुना साहम मान है ।

- १३ प्रयास का लक्ष्य घपने पूर्ववर्ती घबबा वर्तमान घासीषकों को नहीं है । घभी तक मोन्बामी का पर जितने प्रकी की रचना की महाकवि की बना सम्बन्धी सभी बिरोपताघा का सर्वाङ्गीण । इस न्यूनता की बना संभव पूर्ति करते हुए कवि को कसा के कगना हा एमारे प्रबन्ध की नवीनता है । कृतक प्रत्यासी

प्रकाशक
प्रताप
संवादात्मक
सरस्वती

के भासोचनात्मक दृष्टिकोण से भी कवि की कला के महत्त्व का प्रयास किया गया है।

वर्तमान काल की नवीनता और मौलिकता को स्वयं अपने कवि तुलसी पर उनकी काव्य कला के सम्बन्ध में कितनी प्राचीनता सन्धिष्ठ परिष्कृत बना मानकर प्रतीत होता है।

इस चेष्टी में विषयार्थ, विषयार्थमय सहाय प्राचार्य एवम् पुनरुदात्त पीठाम्बररत्न बहुमन्त्र मन्त्रपुराण प्रवन्धी राम नरे मता प्रसाद गुण की वाचन का कला धादि पर की प्राचीनता का नाम एक प्रथम सावित्राय रक्ता गया है। सन् १९५५ एल के प्रकाशन काल के पूर्व तुलसी की साहित्यिक विवेचना के और लोका का ध्यान नहीं गया। गरीबी और रचनाओं की विचार में पड़े थे। मिया बाबूसा ने एक प्रकार से तुलसी को साहित्य की नींव डाली। हिन्दी नवरत्न में योस्वामी जी की कुछ विवेचना बतलाई गई है। और कुछ नाम मात्र की कृतियों का भी उल्लेख है। 'उत्तरी के मठ' शीर्षक में उनके मठों का लिखे हैं। तदन्तर भावन स्वला को शारीर्यता स्फुट गुण के रूप में बतलाई गई है। प्रत्य सांख्यिक तुलना करके गुणा का प्राचिन विचाराकर कवि को। सर्वोच्च स्थिति पर प्रतिष्ठित किया गया है।

यही विषयार्थमय सहाय ने कला मौलिक विवेक को नहीं। नोस्वामी तुलसीदास की के द्वितीय चरण में है। सर्व प्रथम लेखक हुए हैं स्वला में प्राय विद्वानों द्वारा रिल्लामी गई कृतियों का विषय तुलसीदास रामायण के नवरत्न रामायण में कुछ रामायण में के प्राय कथ बरिष्ठ से बना खिला मिलती है यदि ऐसीका में प्रतिपादन किया है। फिर कुछ प्रभावा में अन्य कृतियों की कथ कवि की संस्कृतमता उसके साहित्यिक विचारों का परिष्कृत पर प्रभावात् रामायण से भागत की कथावस्तु की तुलना करके हीन के संक के प्रतिपादों की बहिरंग परीक्षा विनाय कथ से हुई है। इन्हीं गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है और तुलसी के मन्त्र तथा संस्कृत संघों की भी प्रतिष्ठा मिलती है उन्हीं दोर लख पद्येदार्थों का ध्यान हमी ने साक्षात् किया गया है।

प्राचार्य राजेश्वर शुक्ल ने योस्वामी जी की कला का महत्त्व तुलसीदास में उद्घाटित किया है। पहले उनकी बड़ी प्राचीनता द्वितीय चरण में संवृष्ट की। किन्तु सन् १९३२ में जो संतो संस्करण निकला है उसमें जीवक लख निराल विना गया है।

प्रथम संस

मह १९६५

गुण वाच

गुण
विष्णुस्तानु
१५५

विषय से प्रथम होना है कि इसमें काव्य शीष्ट्य को ही व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। तुलसी की काव्य पद्धति से यद्यपि अन्तिम शीर्षक हिन्दी साहित्य में 'गोस्वामी जी का स्वान' पर्यन्त प्रायः सर्वत्र काव्य की ही चर्चा है। इसके अनिश्चित पुस्तक में कुछ अन्य ऐसी धारणाएँ भी हैं जिनका कला विषय से सम्बन्ध नहीं है।

दुसरे जी ने 'गोस्वामी जी की कला कला का जो मर्म अभिव्यक्त किया है उसमें नामने अन्य समीक्षकों की कलानिरक धारणाएँ हल्की प्रतीत होती हैं। तथापि अन्य धारणाओं का प्रयास स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

श्री रामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बङ्गवासी के गोस्वामी तुलसीदास के कला का मर्म विरोध रूप में उद्धृष्ट नहीं किया गया। फिर भी प्रथम में एकावस्था प्रथम 'गोस्वामी जी की कला शीर्षक में सामान्यतया प्रतिपादित है कि कल्पीनता उद्भवपट्टों रचना आत्म्य आदि सभी दृष्टियाँ से गोस्वामी जी की रचना पूर्ण है यह स्पष्ट किया गया है।

श्री सरसुब चरण धरणी ने गोस्वामी जी की कला का जो शीष्ट्य व्यक्त किया है वह उनकी सम १९३५ में प्रकाशित 'तुलसी के चार रस' पहली पुस्तिका में है। 'काव्य कला और गोस्वामी जी की मिथी प्रेरणा शीर्षक के अधिकांश पृष्ठों में साहित्यिक सिद्धांता का विवेचन किया गया है। इस संक्षिप्त चर्चा में समीक्षा का दृष्टिकोण नहीं है। इसमें दुसरे जी के सोरभम बास मिश्रण पर धारणा है। मेसक का दृष्टिकोण यही है।

पं० राममोहन त्रिपाठी ने गोस्वामी जी की जिन कलात्मक विरोधताओं को धारणा किया है वे भी प्रथम ही हैं। त्रिपाठी जी के ग्रन्थ तुलसीदास और उनकी कविता के प्रथम दो भागों में लगभग १०० पृष्ठ हो गए हैं। हजार पन्ना के विस्तृत क्षेत्र में एक ही बात का वर्णन किया है यद्यपि करने और किसी उदाहरण के सिधे प्रवृत्त पर प्रवृत्त उद्धृष्ट करने के अनिश्चित कुछे प्रथम का प्रभाव है। कदाचित् यही दृष्टि त्रिपाठी जी ने विरोध रूप में लक्ष्य की है। जो कुछ भी हो त्रिपाठी जी ने तुलसी की भाषा उनकी महाकविता के अन्तर्गत काव्य मन्दा पर काफ़ी प्रकाश डाला है।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की कला के सम्बन्ध में संक्षेप रूप से अपने ग्रन्थ 'तुलसीदास' में विचार किया है। गोस्वामी जी ने अरिच विषय का विचार वस्तु विषय का विचार आदि शीर्षक में उनकी भाषा में लिखी है। इस ग्रन्थ में गुप्त जी ने बड़ी तबीयत से तुलसी की कला पर प्रकाश डाला है। अरिच विषय में गुप्त जी के पूर्ववर्ती कथा आदि से तुलना करने हुए तुलसी का अरिच विषय सम्बन्धी कला पर विचार प्रकट किया है। अन्य स्वयं भाव वलुन नय विचार आदि जो गुप्त जी ने लिखे हैं। उनमें संक्षेप रूप से ही गोस्वामी जी का कला पर प्रकाश डाला गया है।

नाम्बामा जी के कसा पारंप्रिया में राज बह्मपुर लममोड़ा भी प्रसंगमीय है । तुमसी धम्मावसी के तुवीय ग्रंथ में संशुद्धीत अपने निबन्ध हिन्दी भाषा' और तुमसी कृत नामावली के परिचित लेखक ने स्वतन्त्र रूप में विश्व साहित्य में राम भरित मानस ग्रंथ को भागों में लिखा है । इसमें लेखक ने विरल साहित्य में खेच्यतम समझे जाने वाले दासपियर के कुछ नाटकों से तुमसी के मानस की विषय रूप में तुसता करके उसकी खेच्यता का प्रतिपादन किया है ।

इन ग्रंथों में किसी भी ग्रन्थ की एक योरवामी की की कसा के प्रत्येक ग्रंथ पर पूर्ण रूप से व्यवस्थित चीज बैंगानिक में विवेचना प्रस्तुत नहीं की गई । जिन ग्रंथों में की भी गई है उनमें विवेचन का एक ग्रंथ मात्र है । कसा का प्रत्येक पर स्वतन्त्र रूप से नहीं था सका । इसी हेतु प्रस्तुत धम्मयन की धावस्यकता प्रतीत हुई । अतः उपर्युक्त सामग्री के इस संक्षिप्त विवेचन एवं वरीशाल से इतना तो स्पष्ट ही गया कि पोस्वामी की की काव्य कला के सर्वांगीण धम्मयन का प्रयास धनी तक नहीं हो सका बोड़ा बहुत यदि हुआ भी है तो वह पूर्ण नहीं । वह मात्र धम्मयन प्रसंगा के बीच एक ग्रंथ मात्र है । जहाँ तक उक्त सामग्री के ऐतिहासिक महत्व एवं सामयिक उपयोगिता का प्रश्न है । इतने इनकार नहीं किया जा सकता ।

प्रस्तु प्रबन्ध की रूप रेखा निर्धारित करने में कोई एक ग्रन्थ निरिचत रूप से एक प्रवर्तन नहीं कर सका । कुछ स्पष्ट रूपों को छोड़कर सारे प्रबन्ध के विषय विभाजन विवेचन सीसी तथा विश्लेषण पद्यति में तैलिका का निजी प्रयास है । प्रस्तुत हम प्रस्तुत धम्मयन के विषय मौलिक प्रयोग को धीरे तर्क करते हुए उसकी रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं ।

प्रस्तुत प्रबन्ध १२ धम्मावली में विभक्त है । पहले धम्माय में 'कविता धीर कसा धीरक में पूर्ण पीठिका है । इसके अन्तर्गत कविता क रचकर धीर कसा के विभिन्न ग्रंथ राम्ब कर्षे उन धर्मकार स्वर धारि पर बिहारी के मठों का धाधार भेते हुए नये निष्कर्ष दिखे गए हैं ।

दूसरे धम्माय में 'तुसमी का काव्य धीर कसा सम्बन्धी हृष्टिकोण' धीरक में बोस्वामी की के रस मात्र ध्वनि बन्धोक्ति धीर माया धारि के विषय में उनके हृष्टिकोण की विवेचना की गई है । मोम्बामी की के काव्य धीर कसा सम्बन्धी हृष्टिकोण पर धनी तब मनीषकों की हृष्टि पूर्ण कोण नहीं गई । इस हृष्टि में इस धम्माय का धयता विषय महत्व है ।

तीसरा धम्माय तुमसी की कसा में धर्मशा धीर धीरचित्य विषय से सम्बन्धित है । इनमें धर्मशा धीर धीरचित्य पर धनय-धनय नवीनता में प्रकाश जाला गया है । इस दिशा में नवीनता यह है कि धर्मशा धीर धीरचित्य को मोस्वामी जी के काव्य की नूतन उल्लेखों द्वारा धनय धनय व्यक्त किया गया है ऐसी विवेचना प्रायः धम्मय नहीं मिलती ।

बोधा अध्याय तुलसी का शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला से सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत काव्य शास्त्रीय एवं धार्मिक दृष्टियों से तुलसी के शब्दों की कलात्मकता की छानबीन की गई है। इस अध्याय में मेनिफा ने केवल चुनी हुई कुछ बातों को अन्तर्गत कृत्य मौलिक निष्कर्ष निकालने के विस्तार से लिये हैं। गेय बातों को अन्तर्गत कर दिया है। इसमें लैटिनका भी विवेचन दीर्घा अध्याय है।

पाँचवाँ अध्याय तुलसी की संघीत और चित्रात्मकता परक कला से सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न पदों की राग रागिणी की लेकर गोस्वामी जी की संघीत निपुणता और चित्रों को अन्तर्गत करने की कला पर मौलिक दृष्टि से विचार किया गया है।

छठा अध्याय तुलसी की अर्थकार प्रयोग सम्बन्धी कला पर है। इसमें विभिन्न रूपों के अर्थकारों की लेकर अन्तर्गत गोस्वामी जी की कला को अन्तर्गत करने का जो प्रयत्न हुआ है वह पूर्ण रूप से अध्याय है।

सातवाँ अध्याय गोस्वामी जी के प्रबन्ध शीघ्र और अर्थ-व्यक्ति-विषय से सम्बन्धित है। इसमें बड़े सुवाद रूप से इसके प्रथम भाग प्रबन्ध शीघ्र के अन्तर्गत गोस्वामी जी के प्रबन्ध मास की कथा वस्तु में विभिन्न राम काव्यों की अर्थ-व्यक्ति-विषय शीघ्र का अन्तर्गत हो गया है। इस अर्थ की लेकर अन्तर्गत गोस्वामी जी की कला का अर्थ-व्यक्ति-विषय का प्रयास किया गया है। इस अध्याय के दूसरे अर्थ अर्थ-व्यक्ति-विषय में गोस्वामी जी के विभिन्न अर्थ-व्यक्ति-विषय पर विचार किया गया है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अर्थ-व्यक्ति-विषय में अर्थ-व्यक्ति-विषय का अर्थ-व्यक्ति-विषय प्रकृत चित्रण प्रकृत मास में नहीं पाया जाता। फिर भी अर्थ-व्यक्ति-विषय का अर्थ-व्यक्ति-विषय के अर्थ-व्यक्ति-विषय से अर्थ-व्यक्ति-विषय की नहीं अर्थ-व्यक्ति-विषय के अर्थ-व्यक्ति-विषय एवं अर्थ-व्यक्ति-विषय तथा अर्थ-व्यक्ति-विषय के अर्थ-व्यक्ति-विषय अर्थ-व्यक्ति-विषय अर्थ-व्यक्ति-विषय करने की अर्थ-व्यक्ति-विषय की थी।

आठवाँ अध्याय तुलसी की अर्थ-विषय की कला से सम्बन्धित है। इसमें गोस्वामी जी के अर्थ-विषय में अर्थ-विषय की कला अर्थ-विषय है। इसकी अर्थ-विषय की अर्थ-विषय है।

नवाँ अध्याय अर्थ-विषय और अर्थ-विषय कला पर है। इसके अन्तर्गत गोस्वामी जी की अर्थ-विषय और अर्थ-विषय अर्थ-विषय की अर्थ-विषय है।

दसवाँ अध्याय तुलसी के भाव अर्थ-विषय और अर्थ-विषय पर है। इसमें गोस्वामी जी की भाव अर्थ-विषय और अर्थ-विषय कला पर अर्थ-विषय अर्थ-विषय है।

एकादशवाँ अध्याय में तुलसी की अर्थ-विषय और अर्थ-विषय में अर्थ-विषय अर्थ-विषय है। इसमें अर्थ-विषय अर्थ-विषय है।

बारहवाँ अध्याय अर्थ-विषय के अर्थ-विषय में है। इसमें गोस्वामी जी की अर्थ-विषय और अर्थ-विषय अर्थ-विषय के अर्थ-विषय अर्थ-विषय है। इसमें अर्थ-विषय अर्थ-विषय है।

कवियों का जो संक्षिप्त तुलनात्मक विचार किया गया है इससे यह धम्मिय पूर्णत मूलिक है।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी की कव्य कला का सर्वांगीण धम्मियन अल १२ धम्मियो के सहारे संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता नवीनता के सम्बन्ध में तथा जगकी रूप रेखा और धामार भूत सामग्री के विषय में लेखिका की योग से इतना निष्पेक्ष पर्याप्त होना।

यहाँ तक तो साहित्यिक सामग्री के इतिहास और उसके प्रयोग एवं पाठनत की बात हुई। अब जो शब्द हमकी सामग्री के अंत के सम्बन्ध में भी कहना आवश्यक है।

विशेष रूप से इस विषय में तापरी प्रचारिणी तथा मातस संघ धामवन प्रादि। कलकत्ता विश्वविद्यालय का पुस्तकालय मखनल विश्वविद्यालय में टीपोर पुस्तकालय तथा काशी के तुलसी सम्बन्धी स्थानों का नाम उल्लेखनीय है जहाँ की उपयोधी सामग्री के निरीक्षण का लेखिका को सुभवसर मिला है। उपर्युक्त सभी क्षेत्रों के अधिकारियों विशेषतः टीपोर पुस्तकालय के रूप पुस्तकालयक भारर सीय ताराचिह्न की धोर धाम्य अधिकारियों के प्रति लेखिका धामापी है। जिन्होंने उसे अपने विश्वासार्थत सामग्री के धवसोहन और निरीक्षण करने का पूर्ण धवसर प्रदान किया।

इस धन्व के लेखन काल में जिन महानुभावों से लेखिका को सहायता मिली है। जगमें सर्व प्रथम लेखिका अपने पूज्य सुधर तथा प्रबन्ध निष्पेक्ष सखनल विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर लेखिका के मिसे प्रेरणा के स्रोत पांडित्य सीय्य धोर धरलता की मधमिधत मूर्ति अध्येष डा धरीरय मिष के प्रति धपनी धारिक इच्छता प्रकट करती है जिनके धमवरत पत्र प्रदर्शन स्नेह प्रोत्साहन तथा धनुकम्पा से ही यह कार्य धपने इस रूप में धोर दूने धीध पूर्ण हो सका है। साथ ही अध्येष डा धीनध्यासु पुठ धध्मस हिन्दी विभाग का लेखिका हृदय में धामार मानती है जिनके स्नेह परामर्श धोर प्रोत्साहन से लेखिका को जठय बस मिला है।

हिन्दी विभाग के धय्य सुधर्य धोर विशेषतः धाधरणीन डा० धिपिन विद्वापी विवेदी के प्रति भी लेखिका धपनी मम्मान भावना धमिध्याल करती है जिनकी सहाय्य भूति इन प्रवास में सहायक रही है।

इसके धधिरिक्त धन्व के लेखन काल में धय्य धनैक महानुभावों से धमय-धमव पर बहुमूल्य सुध्मय प्राण होते रहे हैं उन सभी के प्रति लेखिका हृदय से कृतज्ञ है। काशी विश्वविद्यालय के धध्येष डा० इवारीप्रसाध विवेदी धोर धाधरणीय पांडित्य विश्वनाथ प्रसाध मिष में भी लेखिका को प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय में जो बहुमूल्य सुध्मय प्राण हुए हैं दसक हेतु यह उनके प्रति हृदय में धामार मानती है। इसके धधिरिक्त भारत के राष्ट्रपति देशरत्न डा० राधैगप्रसाध का लेखिका

हृदय से धामार स्वाकार करती है जिन्होंने स्महपूर्वक प्राप्ताहुत प्रदान कर इस कार्य को शीघ्र समाप्त करने की प्रेरणा दी है ।

जिन पुस्तकों लिखकों तथा लेखों से इस प्रबन्ध के सिगने में महाप्रता ली गई है उनके लेखकों क प्रति भी नम्रिका धामार व्यक्त करती है ।

मानस मर्मज्ञ पं० शीम शण्डा रं ध्याम क ध्याम्पान भी प्रस्तुत प्रबन्ध में सहायक रहे हैं । मत्र टनक प्रति भी कृतप्रता का धाय प्रकट करना लेखिका का कर्तव्य है । मन्त में मैं धपन पूर्य विता श्री शीमाराम सिंह 'धामन्द' बैद्यराज क प्रति कृतप्रता प्रकट लही कर मन्ता कनाकि मन्ता कटरहरत तो सर्वैव ही मरे मिर पर रहेगा । सुकसी की कला के विषय में मुझे धपने पूर्य विता श्री मे जो बहुदूर्य सुभ्यद प्रात ह्य है उनके डारा प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में मुझे कृत बही महाप्रता मिली है ।

इस स्थल पर लेखिका धपनी परम प्रिय मह्योपिनी कुमारी कमला रामी शिक्षारी रिमर्श स्वाभार सगमक बिद्विद्यालय का नी धप्यकार केना नहीं सुस सरती जिन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध के सब धपेक धपनी कनात्मकता मेधनी में लिखकर धपनी कना-विद्यता का परिचय दिया है ।

मन्त में बैबस एक कात्र धोर विषय इतना धप्यध धोर बिस्तृत है कि यदि मह प्रयास अनुगन्धाम की भाषी मन्माबनापा की धोर इ वित्र करके दोधापियों में म्प सिधिरि खोचन को काइ उहाण्ट करने बासा तथा सामान्य पाठकों में विषय के प्रति धमिरिधि आप्रत करने बासा मित्र हुपा लो मलिधा धपना मम मफस मयभेगी ।

टाइप सम्बन्धी धपुदियों को सुपारने का प्रयत्न किया गया है । दिन्पु नद्योपन के उपरान्त भी यदि कोई कृदिया मन्गेव रह गई हों तो लेखिका उनके लिए धमा बाहरी है ।

अनुक्रम

विषय

पृ.

सूचिका—

१—काव्य घोर कला

१ से ३२ तक

कविता का स्वल्प सस्कृत में काव्य का स्वल्प निरूपण—हिन्दी विद्वानों के काव्य सम्बन्धी विचार—काव्य के सम्बन्ध में पारंपार्य विद्वानों के मत—उपसंहार

कला का स्वल्प

भारतीय विद्वानों का कला परक दृष्टिकोण कला के सम्बन्ध में कुछ पारंपार्य विद्वानों के विचार

परतपु—हीपस—प्रोथि—टास्तटाय—बेइसे—काइवेस—रिचर्डस—कला का वर्गीकरण—कविता घोर कला का सम्बन्ध—काव्य कला के विविध भंग

सर्लकार—रीति—बहोक्ति—एवमि—रस—दृष्ट—संकीर्ण—काव्य कला घोर विषयसा—प्रबन्ध

१—सर्लकार

—सर्लकार का महत्व घोर उसके विविध भंगे साम्यमूलक—विरोध मूलक—शृंखला मूलक—कारण कार्य मूलक—नियेध मूलक—गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक—उपसंहार

रीति—काव्य घोर शैली—शैली के तरह—भारतीय दृष्टिकोण—शैली सम्बन्धी गुण

धोज—प्रमा—माधुर्य—पारंपार्य दृष्टिकोण—पारंपार्य कारण के प्रमुक्त शैली के कुछ सरसता—स्वच्छता—स्पष्टता—प्रभावोत्पन्नता—सिद्धता—लय—शैली के प्रकार—सरस शैली—बहुर शैली—सतिन शैली—विन्दु शैली—उदात्त शैली—स्यम्य शैली—उपसंहार—बहोक्ति—एवमि—एवमि क्या है घोर उसका कला में स्थान—उपसंहार—रस घोर भाव—दृष्ट घोर संकीर्ण (क) दृष्ट-दृष्ट का महत्व घोर उसका काव्य में स्थान—उपसंहार

(क) संज्ञीत काव्य और कब्रों का सम्बन्ध तथा काव्य में संज्ञीत की वाचस्पदता—निष्कर्ष—काव्य कला और विषयकला—प्रबन्ध सम्बन्धी कला—सम्बन्ध—चरित्र-विभाग उपसंहार

तुलसी का काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण

४० से १० तक

काव्य का स्वभाव—काव्य की उत्पत्ति—काव्य का प्रयोजन—काव्य का विषय—काव्य का प्रभाव—काव्य और यति—काव्य—नायक है काव्य नहीं—काव्य कला और उसके भंग भाषा भाव—रस—रस—काव्य तथा विभिन्न मिश्रण—कल्पित—ध्वनि—धर्मकार—रीति उपसंहार

तुलसी की कला में मर्यादा और श्रीचित्त

११ से २३ तक

मर्यादा और श्रीचित्त का अर्थ—मर्यादा—वर्णन में मर्यादा—चरित्र विभाग में मर्यादा—संस्कृति एवं धर्म निरूपण में मर्यादा—(क) संस्कृति—वैदिक मर्यादा—सौंदर्य विरचन—सामान्य विचार—प्रसन्न विचार—नायकत्व—सोक मर्यादा—विचाराधीन के सोक संस्कृति (ख) धर्म की मर्यादा—वर्णन में धर्म—रस और भाव वर्णन में मर्यादा—संस्कृत प्रयोग में मर्यादा—नामाधिक और धारिणीक मर्यादा ।

नामाधिक परिवार—साम्प्रदायिक प्रेम—प्राण स्नेह—माता पिता का प्रेम—पिता पुत्र—प्राण प्रेम—साम और बहू का प्रेम—बुद्धि चरित्र श्रीचित्त—विभिन्न प्रयोगों का श्रीचित्त—कथा क्रम का श्रीचित्त—वर्णन का श्रीचित्त—सर्ग की सुमिरा—नायक बन्धना—दुष्ट मिथ्या—प्रकृति विषय—विभिन्न संवाद—नारी विद्या—सम्बन्ध प्रयोग का श्रीचित्त—विभिन्न संवादों और उनका समाधान—नरकस्य और परसुराम की बातों में—धर्म और रावण संवाद में—वाचिक रूप—रावण संदेशों की बातों में उपसंहार

तुलसी की सत्य प्रयोग सम्बन्धी कला

२४ से १११

विषय प्रवेश—बाधा में निश्चय का कारण—सत्य कोष—मर्यादा का सम्बन्ध—बाधासूक्त का सम्बन्ध—धार्मिक भावों की धर्मव्यक्ति में प्रयुक्त सम्बन्ध—संवादा में भाषासूक्त सम्बन्धी—सर्वसूक्त का सम्बन्ध—सर्वों के सुख—प्रकार—सौंदर्य—माधुर्य का व्यक्तित्व—सत्य, बहू—वीर्य—संपन्न सत्त्व—कवि सत्त्व—

विषय

५४

प्रयोजनबद्धों पौली लक्षणा—प्रयोजनबद्धी मुद्रा लक्षणा—उपादन
संज्ञा

व्यंजना

पमिमा मूमा साष्णे व्यंजना

प्रकृतापवाची—संयोग—विषय, माहृचय—विराव—दधं—
सिय—स्य मसिधि—सामर्थ्य—दौचित्य—देश—काल—व्यक्ति
संज्ञा मुता शाब्दी व्यंजना—प्राची व्यंजना—बन्तुर्वैशिष्ट्योत्पन्न
वाच्य संज्ञा—बन्तुर्वैशिष्ट्योत्पन्नमात्र संज्ञावाच्य वैशिष्ट्योत्पन्न
वाच्य संज्ञा—बन्तुर्वैशिष्ट्यात्पन्न वाच्य संज्ञा—वेष्टा वैशिष्ट्या
त्पन्न वाच्य संज्ञा

तुलसी की रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के उच्च प्रयोग

मन्त्री—प्ररबी फारसी का शब्द समूह—भोजपुरी—दुःसङ्गणी
—द्वन्द्वमाया चक्रव्यती—दुःसङ्गती—वगमा—मगडी—मरुङ्ग
—नई सिमायें—मुहावरे घोर सत्कृतियाँ वाच्य रचना—समुक्त
वाच्य तथा सहकारो वाच्य—मिथित वाच्य तथा प्राचिन वाच्य
—संज्ञा वाच्यपद—विषयण वाच्यपद—क्रिया विगणण वाच्य पद
तुलसी के उच्च प्रयोग कला की विरूपतायें
निश्चय

१—तुलसी के वाच्य में संघोत तथा घोर विचारमयता

[१३४ से १४२ तक]

(क) संघोत—संघोत की व्यापकता—संघोत का महत्त्व—वाच्य
घोर संघोत—मनीष के शब्द—वाच्यमा जो के वाच्य में संघोत तथा
—तुलसी की रचना में पति का मीठवै—बाइ—बाइ घोर बरों के
शब्द—प्रवाह—राम

(ख) तुलसी की कला के विचारमयता—पन्ताप में विचारमयता
—पुठमुनि में विचारमयता—चरित्र विचित्र में विचारमयता—मात्र
बर्णन में विचारमयता । उपसंहार

१—असंज्ञार घोर चरित्र सम्बन्धी विरोधतायें

[१४३ से १८३ तक]

(क) असंज्ञार प्रयोग की विरूपतायें—माय्यमूलक असंज्ञार—
विरोध मूलक—जम या श्रुतता मूलक—माय्य मूलक—वारण
वायें सम्बन्ध मूलक—निषेध मूलक—भूषणयें प्रतीत मूलक—परि
त्विति के प्रत्यक्ष असंज्ञार का प्रयोग—वाच्य के प्रत्यक्ष घोर
संज्ञा उक्त्य वृत्ति के ही असंज्ञार प्रयोग—सांख्य मूलक असंज्ञार

विषय

सर्तकारो वा प्रयोग—कार्य कारण सम्बन्ध वाले सर्तकारो के प्रयोग
 —न्याय मुसक बर्ग की सर्तकार योजना—नियम सूत्रक सर्तकारो के
 प्रयोग—दनेक सर्तकारो के बहुर्वी प्रयोग—तुलसी के सर्तकार
 प्रयोग की विमपता—सर्तकार का स्वाभाविक प्रयोग—सोक जीवन
 और प्रकृति के दैव मुने उपमान—रूप और निम्ना के सजीव विषय
 —रूप—विषया—भाव की तीबानुभूति ।

(अ) ध्वनि ध्वनित तिरस्कृत बाष्प ध्वनि—धार्मी ध्वजना—बाष्पाय
 काकु की विरोपता ने ध्वनितर मरुमित बाष्प ध्वनि—ध्वनित
 तिरस्कृत बाष्प ध्वनि—धनुस्छान ध्वनि—धर्ष ध्वनि उद्भव
 धनुस्छान ध्वनि स्वतः समी—रवि प्रीकोलित मात्र सिद्ध बस्तु ध्वनि
 मुलीपूत ध्वन्य—कावलाशिक्षित ध्वन्य—धनुस् ध्वन्य
 धर्षसक्य क्रम ध्वन्य ध्वनि—रस ध्वनि—भाव ध्वनि—रताभास—
 माकाभास—भावाद्य—भाव मन्त्रि—भाव ध्वनि—भाव सवसता
 उपसंहार

३—तुलसी का प्रथम सोपेक और बर्लन पद्धति १८५ से २१४ तक
 (क) प्रथम सोपेक—नवावस्तु और उसका संकठन और उसने
 सोपेक का संपादन

बर्लन पद्धति—बर्लन और काव्य—मीमर्ष बर्लन—प्रकृति बर्लन
 गोस्वामी जो की रचनाधर्म म प्रकृति बर्लन के विविध का
 गुरु उद्दीपन कोटि में धाने वासा प्रकृति विषय—उपरेण एवं तत्र
 दर्शन से मुक्त प्रकृति बर्लन—प्रकृति म परम तत्र का समास—
 धाम्यानुस्वन की भावना से मुक्त प्रकृति बर्लन—धाव्योस्तास से मुक्त
 प्रकृति बर्लन—मानवीकरण—सध्या—सुमंदिप—रात्रि—धंधकार—
 प्रातःवास—सुपया—सरोवर—ब्रह्मभय—मनु—समुद्र—नदी—
 सरोवर—उपसंहार—बस्तु बर्लन—प्रयोग्या—मनकपुत्रो—सका—
 —रथा बर्लन

निष्कर्ष
 ४—तुलसी के चरित्र विषय की गता
 मुस्यजी के प्रभुमार चरित्र विषय का विभाजन—मादय—सामान्य
 चरित्र विषय का विभाजन—मादय—चारित्र्य
 राम—श्रीता—धरत—इनुपात—शोचिस्वा—सुपिवा—सधमाय—
 कट्या—धरमं ।

२११ से २३५ तक

तामस प्रपन्ना कमलकारी चरित्र—रावण—मेघनाद—कुम्भकर्ण ।

सामान्य चरित्र चित्रण की कला

गोस्वामी ओ की धार्मिक चरित्र चित्रण की कला

साहित्य—राम—सीता—मरुत—हनुमान—होशियार—सुमित्रा

सम्भरण

तामसी प्रपन्ना कमलकारी चरित्र—रावण

सामान्य चरित्र चित्रण—दशरथ—कैकेयी—मंधरा—केचल उपसंहार

६—सूक्त योजना और संवाद कला

२७६ से ३१३ तक

(क) गोस्वामी ओ की सूक्त योजना

बर्ण कृत—अनुष्टुप—छात्रु सविप्रीहित—बसंत तिलका—इन्द्रवज्रा

—मासितो—बंशस्प—रयोद्धता—नगस्वरुपिणी—सकम्बरा—

सूक्तप्रपाठ—शेटक

मात्रिक सूक्त—चौराई—बोहा—छोरठ—चौरिया—द्विस्ता—तोमर

—हरिपीठिका—विभयो

बर्णकृत सबैया—महिरा—किरीटी—मासतो—मस्सिका—विजयदा

—माधवी—दुर्मिका—कमला—मजरी—समिता—मुषा—मसला

सूक्त मात्रिक सूक्त—बनासरी मात्रिक सूक्त—भूमना मात्रिक सूक्त

उपसंहार

संवाद कला—सम्भरण परचुराम संवाद—संगद रावण संवाद—

सीता और राम संवाद—नारद और राम संवाद—सजमण और

राम संवाद—कैकेयी दशरथ संवाद—मरुत राम संवाद—हनुमान

रावण संवाद,

उपसंहार

१०—सुसती के काव्य में भाव वर्णन तथा रस निरूपण

११४—१७२

(क) भाव वर्णन—राम का बनकपुर इशान—सीता और राम का

प्रथम वर्णन—अनुप यज्ञ—राम विवाह—राम का प्रथम श्रावण और

बन भ्रमण—चित्रकूट में राम मरुत निवृत्त—राजा और प्रजा—

भाई भाई का—पुत्र पिप्य का—पुत्र और माता का—पिता और

पुत्री का—बामाद और समुर के प्रति—पत्नी और पति के प्रति—

बहू का साम के प्रति—सजमण के प्रति समने पर राम का अनुताप

सबरी प्रातिप्य—राम रावण युद्ध—मरुत प्रतीक्षा—विभिन्न

११ संवादे भाव विचार विवेचन

उपसंहार,

विषय

पृष्ठ

रस निरूपण—शृङ्गार रस—बीर रस—बन्धु रस—मदसुग रस
—हास्य रस—भयात्मक रस—बीमत्स रस—रीड रस—घाण्ट रस
उपसंहार

११—दौली और उक्ति वैचित्र्य

दौली

३७१—३८२

विषय प्रवेश—मपूर दौली—सलित दौली—सरस दौली—मग्य दौली
—मिस्रट दौली—सदास दौली

सुसधी की दौली के प्रकार—रसागुण्य दौली—पात्रागुण्य दौली—
स्मित परक दौली—स्थान परक दौली—प्रकसरो पर प्रकृत—

दौली—रसुति दौली—हास्यमिक दौली—उपदेहात्मक दौली—संवाद
दौली—उपसंहार—उक्ति वैचित्र्य—मिप्यर्ष

१२—सुसधी की कला से प्रभावात्मकता

मिप्यर्ष

३८६—४००

सहायक ग्रन्थ सूची

१—संस्कृत ग्रंथ

२—हिन्दी ग्रंथ

३—अंग्रेजी ग्रंथ

पहला अध्याय



काव्य और कला

कविता का स्वरूप—

काव्य शब्द कब' शब्द से बना है। संस्कृत के विभिन्न विद्याओं के इसकी उत्पत्ति विषय विभिन्न प्रकार से बतलाई है। किन्ती मे इसका व्याख्या —

कवलीमम् काव्यम् ।^१

लिखकर की है। दूसरे स्थान पर इसकी ध्युत्पत्ति —

कवेरिबम् काव्यं भाषोबा इति काव्यम् ।^२

बहुकर बतलाई गई है।

इससे साय ही साय यहाँ कवि शब्द की उत्पत्ति भी जान लेनी चाहिये क्योंकि काव्य जिसका कर्म है उसके स्वरूप को समझे बिना उसके कर्म को समझना सम्भव नहीं। संस्कृत के कुछ ग्रंथों में कवि शब्द की उत्पत्ति दी गई है जिनमें से कुछ पर हम विचार करते हैं।

संस्कृत के अमर कोष में कवि शब्द की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सर्वज्ञ और सब विषयों के वर्णन करने वाले को कवि' कहते हैं।^३ वेद में कवि शब्द का प्रयोग परमेश्वर के चर्च में किया गया है।^४ इसी प्रकार भाववत् में कवि शब्द शब्दा के हृदय के हेतु प्रयुक्त हुआ है।^५

कुछ प्रायः स्थानों पर इसका प्रयोग व्यास और वात्सीकि के लिए भी हुआ

1 The Dwanjaloka of Anandvardhanacharya edited with the Duhiti commentary Introduction Index etc. By Ravisekhara Pandit Nath Sharma—काव्य उभयानुष्ठास्यानम् प्रकरण पृ० १२

2 वैदिकी कोष or A Dictionary of Homonymous Words by Medicar Page 80.

३ अमर कोष-महायहोपाध्याय भी सलोश बरद सम्पादित पृ० ६०

४ शुक्ल-मनु० ४०/८

५ तैत्ति ब्रह्मसूत्रम् भाषि कथये-श्रीब्रह्मसूत्र १।१।१

विलसा है। लोक ने कवि का यह साधारणतया प्रतिभा सम्पन्न लम्बाई वाग के लिए प्रशंसित किया है। ऐसे काव्य का मानव जीवन में बड़ा महत्व है।”

कविता का स्वयं बड़ा व्यापक है। जितना ही व्यापक है उतना ही सूक्ष्म भी। यह इसे समझने की परिधि में बाँधना असम्भव कठिन कार्य है। काव्य की व्यापकता का प्रयास बड़ी है कि संसार के सभी देवों और जातियों में प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में यह पाया जाता है।

कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा भारतीय और पाश्चात्य दोनों काटि के भाषाओं में की है। पहले हम भारतीय भाषाओं के मूल का अन्वेषण करेंगे। बाद में पाश्चात्य विज्ञान के विचारों की विश्लेषणा की जायेगी।

संस्कृत में काव्य का स्वरूप निम्नलिखित—

बीजभूभागवत नीला में बाह्यमय को तप उल्लेख प्रिय और हृदय कर काव्य रूप कहा गया है। काव्य इसी तप का परिणाम है। उनके इस काव्य सम्बन्धी स्वरूप निम्नलिखित के आधार पर हम उसी को काव्य कहेंगे जो किसी के लिए सर्वत्र कर न हो। तब ही जिसमें सर्वत्र सर्व और सुरात्म्य तीनों को ही प्रतिष्ठा की गई हो। संस्कृत के काव्याचार्यों ने काव्य के स्वरूप के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम भरत मुनि की परिभाषा विचारणीय है। उनके आधार पर काव्य की परिभाषा

१ मनुष्य मानव जीवन विज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारे बड़े बुद्धि है। वह पदियों की शक्ति काकाश में उड़ सकता है। पृथ्वी के ऊपर का क्षेत्र अपने नाम सिद्ध है। उस पर हमका धारिण्य हो चुका है। तन्मों के विस्तारण के अपने विस्तृत शक्तिओं काधि का धारिण्यार विद्या है। परन्तु क्या इनके साम्प्रम से वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान सका है? क्या वह उसके अक्षर सर्वप्रथम होने वाली प्रेम और करुणा को मनुष्यता को समझ सका है? यदि कुछ भी अर्थों में हम ही कह सकते हैं तो हमें मालमा पड़ेगा कि उसका अर्थ काव्य को है। जिसके बिना हम एक कवि के साथ कह सकते हैं।

‘भावों को भी सुस्तार नहीं इनका होना’। विज्ञान ने ‘द्वितीय रूप सरवा भास के मंडलित शैलों को सम्माल और प्रेम मानना के अर्थों से उड़ा सकने की उत्तमर्त काव्य और साहित्य में ही है। जो मानवता की बहुचाल के लिए हृदय का विस्तार है।

—डा० मयोरम विप-काव्यशास्त्र-पृ० २

२ मनुष्यकर्तृ काव्य सर्वत्र प्रिबद्धित च मत् ।
स्वाध्यायाम्यसर्वं शैव वाग् मयै तप उच्यते ॥

—मौमदमानवद शैला १७/१२

इस प्रकार की जा सकती है।^१ जो कोमल पदों से युक्त धीरे-धीरे अल्प-एव धर्म से निर्दिष्ट वर्णों से प्राप्त अल्प ही वर्णों के समूह में जा जाने वाला सामान्य रूप में प्रयोज्य रूप वाले के अत्युत्कृष्ट रूप की विविध वारंवारों को प्रकाशित करने वाला जो वर्णों के संघान से युक्त हो नहीं घेठ काव्य है।

'सम्मि पुराण'^२ में शास्त्रादि धीरे-धीरे इतिहासादि के काव्य को प्रिय बतलाया है। 'सामह' के काव्य में धीरे-धीरे धर्म की स्थिति को भी महत्व दिया है।^३ शास्त्रार्थ कुलक में काव्य को बलौकिक रीति से वर्णित कहा है। इसके बरतान जो संस्कृत की सबसे प्रमुख परिभाषा जाती है वह है शास्त्रार्थ 'सम्मि' को। उनका काव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है कि धर्म धीरे-धीरे का वह समन्वित रूप जो शोध-रहित हो तथा कहीं-कहीं धर्मकार युक्त भी हो काव्य है। धर्मकार परवर्ती शास्त्रार्थों में इसका ही अनुसरण किया है। ईश्वरदत्त विद्यानाथ धारि की काव्य-परिभाषा में सम्मि से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

संस्कृत में 'विरचनाय' की भी काव्य-परिभाषा बहुत प्रसिद्ध है। वे रचनाओं के इस प्रकार उद्भूति रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।^४ 'पठित राज बभ्रवा' में रमणीय धर्म के प्रतिपादक धर्म को काव्य कहा है।^५ अथर्ववेद में भी धर्म के उत्तर

- १ मृदु ललित परादर्श युक्त धर्मार्थ हीन ।
जनपर मुक्त बोध्यं युक्ति बन्धुन्य योग्यम् ।
बहुकृत रम भार्य-सम्मि संघान युक्त ।
स प्रवृत्ति गुण काव्यं नाटक प्रेक्षकाख्यम् ।

धर्मपुराण-अथर्ववेद पृ० १६।११०

- २ संघेपाद-वाक्य-निष्ठा र्थं व्यवधिना-वशावती ।
काव्यं प्रकृतकारं सुकृतस्योप विवृतम् ॥

—धर्मपुराण ११।११।७

- ३ धर्मार्थं विवृतीकाव्यं नामह काव्यान्कार १।१६

- ४ धर्मार्थं विवृती बलकविद्या-नाथ धारिनि ।

वर्णने व्यवधिती काव्यं विवृतिना-वशावती ॥

—कुलक-बलौकिक विवृतम् १।७

- ५ उद्देश्यी धर्मार्थं सुकृतवर्णकती पुन कवाऽपि ।

—सम्मि-काव्य प्रथम (धर्म-हरिश्चन्द्र विद्य-पृ० १६ वि० अ०)

- ६ वाच्यं रसात्मकं काव्यम् विवृतिना-वशावती १।१३

- ७ रमणीयार्थं प्रतिपादकं धर्मः काव्यम् ।

—विवृतिना-वशावती-पृ० १ (अ० १०।११)

मिसता है। लोक में कवि सम्म साधारणतया प्रतिभा सम्पन्न सम्बन्ध कार के लिए प्रकृत हुआ है। ऐसे काव्य का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व है।^१

कविता का स्वरूप बड़ा व्यापक है। जितना ही व्यापक है उतना ही सूक्ष्म भी। घट इते अक्षरों की परिधि में बौध्ना प्रत्यक्ष कठिन कार्य है। काव्य की व्यापकता का प्रमाण यही है कि संसार के सभी देशों और जातियों में प्रारम्भ से ही किसी में किसी रूप में यह पाया जाता है।

कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा भारतीय और पारश्चात्य दोनों कोटि के प्राचार्यों ने की है। पहले हम भारतीय प्राचार्यों के मत का उल्लेख करेंगे। बाद में पारश्चात्य विद्वानों के विचारों की विवेचना की जायेगी।

संस्कृत में काव्य का स्वरूप निम्नलिखित—

वीमद्भाववत् मीठा में बाह्यत्व को तप सत्य प्रिय और हित कर वाक्य रूप कहा गया है।^२ काव्य इती तप का परिणाम है। उसके इस काव्य सम्बन्धी स्वरूप निम्नलिखित के आधार पर हम उसी को काव्य कहने को किसी के लिए सर्व्वेय कर न हों। साथ ही जिनमें सर्व्व शिर्ष और सुखम् चीजों को ही परित्यक्त की गई है। संस्कृत के व्याख्याचार्यों ने काव्य के स्वरूप के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम भारत मुनि की परिभाषा विचारणीय है। उनके आधार पर काव्य की परिभाषा

१ यद्यपि मानव जीवन विज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्राये बड़े चुका है। यह पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ सकता है। बुद्धि के ऊपर का मेघ उससे जान लिया है। जब पर उनका आधिपत्य हो चुका है। तत्त्वों के विस्फेपल से उसने विज्ञान शैक्षियों प्रादि का आधिपत्य किया है। परन्तु क्या इनके माध्यम से वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान सका है? क्या वह उसके भीतर सर्पित होने वाली प्रेम और करुणा की मनुष्यता को समझ सका है? यदि कुछ भी शर्षों में हम हों कह सकते हैं तो हमें मानना पड़ेगा कि उसका धर्म काव्य को है। जिसके बिना हम एक कवि के साथ कह सकते हैं।

‘प्रादयो को भी सुखसंसार नहीं इनका होता’। विज्ञान के सर्व्वोपेय रूप सत्या माय के संश्लेष में ही काव्य और प्रेम-मानवता के अर्थों से उड़ा सकने की साधन काव्य और साहित्य में ही है। जो मानवता की बहुचाल के लिए हृदय का विस्तार है।

—डा० भूपेन्द्र मिश्र-काम्यशास्त्र—पृ० २

२ मनुईकरं वाक्यं सर्व्वं त्रिबिधं च क्व ।

स्वाध्यायाम्महर्षं वैव वाह मयं तप उच्यते ॥

इस प्रकार की जा सकती है।^१ जो कोमल पदा से युक्त और एक शब्द एक अर्थ से विरहित पदान्त् सर्व प्राण्य सहज ही सबका समझ में आ जाने वाला शब्द में प्रयोग किए जाने के अनुसृत रस की विधिप चारापा को प्रभावित करने वाला जो शब्दों के संघाम से कुछ हो रही शैल काव्य है।

धम्मि पुण्यल^२ में दाह्यादि और इतिहासादि से काव्य को मिला बतसाया है। 'मामह' ने काव्य में शब्द और अर्थ की स्थिति को भी महत्व दिया है।^३ धार्यायं कृतक ने काव्य का बहोक्ति समित शब्दाव कता है। इसक परवान जो संस्कृत की सबसे प्रमुख विभाषा धाती है वह है धार्यायं मम्मट^४ की। उद्धान काव्य की परिम या हम प्रकार प्रस्तुत की है कि शब्द और अर्थ का बहु सम्बन्ध रूप जो शेष रहित है। तथा कहीं-कहीं अर्थकार युक्त भी है काव्य है। धर्मिनाथ परवर्ती धार्यायों में इसका ही समुद्रस किमा है। हेमचन्द्र विद्यानाथ धादि की काव्य-परिभाषायें मम्मट से बहुत कुछ मिलती जुमती हैं।

संस्कृत में विरचनाय की भी काव्य-विभाषा बहुत प्रसिद्ध है। व रसवादी के इस कारण समूहोंने रसात्मक काव्य को काव्य कहा है।^५ 'विरित राज जयप्राय में रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।^६ नबनृति ने भी अने उतर

- १ मुहु समित पराद्यं युक्त शब्दाय होयं ।
अनपर मुक्त बोध्यं भुक्तिः मन्मथ्य पात्रयम् ।
बहुवचन रम मार्ग-मधिप संधान युक्तं ।
स भवति युक्त काव्यं शब्दक प्रकाशनाम् ।

भरतभूति-मातृवशात् ५० १६।११०

- २ पराद्य-वानर निष्ठाये व्यवहित-प्रा-परावयो ।
काव्यं सप्रवर्तकारं युक्त-वशाय विहितम् ॥

—धम्मिपुण्य ३३०।११।३

- ३ धार्यायं संहितीकाव्यम् मामह काव्यालंकार १।१६
- ४ धार्यायं संहिती वक्र-वचिन्मा-वार धामिनि ।
वाये अन्तरिपती काव्यं संहितीकाव्य-वशात् ॥

—कृतक-वशात् शोभितम् १।७

- ५ तत्रोच्यते धार्यायं सप्रवर्तकारकता युक्त वशात् ॥

—मम्मट-काव्य प्रथम (अनु० हरिसंगता विप्र)-१० ११ दि० सं०

- ६ धार्यायं रसात्मकं काव्यम् विरचनाय-साहित्य दर्पण १।११

- ७ रमणीयाय प्रतिपादक शब्द काव्यम् ।

—विरितपत्र जयप्राय रसदा-पर-५० ६ (अ० २०११)

राम चरित के प्रारम्भ में बाह्य मय को आत्मा प्रविणह्वर कला कह कर उसकी प्राप्ति के हेतु प्रार्थना की है ।^१

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में काव्य के स्वरूप के संबंध में विस्तृत विवेचन होता रहा है । संस्कृत साहित्यकारों की परिभाषाओं पर यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें तो स्पष्ट हो जावेगा कि उन्होंने काव्य पर जो दृष्टियों से विचार किया है । एक काव्य के घोर की दृष्टि से घोर ब्रह्म काव्य की आत्मा की दृष्टि से । काव्य घोर से सम्बन्धित मठ जो भाषों में विभाजित किये जा सकते हैं । एक सम्बन्धित घोर ब्रह्म घोर घोर धर्म उभयनिष्ठ ।

हिन्दी विद्वानों के काव्य-सम्बन्धी विचार—

हिन्दी के विद्वानों ने भी काव्य के स्वरूप को समझने का प्रयास किया है । प्राचार्य सुकन रस की महत्त्व देते हैं ।^२ इस प्रकार वह प्राचीन रसवादी प्राचार्यों के अनुयायी प्रतीत होते हैं । अपनी पुस्तक काव्य कला तथा धर्म निबन्ध में भी बय बंकर प्रसाद काव्य की आत्मा की संकल्पनात्मक अनुसूति मानते हैं । ऐसी संकल्पनात्मक अनुसूति जिसका सम्बन्ध विस्मयण से विज्ञान या चिकित्सा से नहीं होता ।^३ प्राचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी ने भी काव्य के स्वरूप पर अपने विचार प्रकट किए हैं ।^४

इस प्रकार देखा जाता है कि हिन्दी-विद्वानों में प्रधान रूप से जो वर्ग विद्यार्थी पढ़ते हैं । एक तो वह जिस पर पाठ्यकार्य काव्य स्वरूप-निरूपण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और दूसरा वह जो भारतीय काव्य सम्बन्धी मठ का अनुयायी है । महावीर

१ भवभूति-उत्तर रामचरित-१।१

२ जिस प्रकार आत्मा की मुक्त्यवस्था ज्ञानरक्षा कहलाती है वही प्रकार हृदय की मुक्त्यवस्था रस रक्षा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की राहना के हेतु मनुष्य की बाह्य को धर्म-विज्ञान करती पाई है उसे ही कविता कहते हैं ।

—रामचन्द्र सुकन—चिन्तामणि—कविता क्या है शीर्षक लेख पृ० १८१

३ आत्मा की मग्न शक्ति को वह अज्ञानारण्य अवस्था को धीमं सत्य को उसके मूल रूप में ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पनात्मक मूल अनुसूति कही जा सकती है ।

—जबर्दस्त प्रसाद—काव्य घोर कला तथा धर्म निबन्ध—पृ० ११

४ (१) कविता प्रभाववादी रचना है जो पाठक अथवा श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है ।

(२) मनोमग्न धर्म का रूप बरण करते हैं वही कविता है चाहे वह पद्य रूपक हो अथवा अद्यात्मक हो ।

(३) अन्त-करस की वृत्तियों के प्रकाशन का नाम कविता है ।

महावीरप्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ रंजन—पृ० ५०

प्रसार द्वितीय प्रथम वर्ग के प्रतिनिधि विभाग माने जाते हैं। युवाव भी और प्रसार यादि द्वितीय वर्ग के पोषक प्रतीत होते हैं। काव्य के वास्तविक स्वरूप को समझने के हेतु हमें पारंपारिक काव्य-तत्त्वों और भारतीय काव्य तत्त्वों दोनों से ही परिचित होना आवश्यक है। अतएव यहाँ पारंपारिक विद्वानों के काव्य-सम्बन्धी मतों पर एक बिलसृत दृष्टि डालकर काव्य के स्वरूप का निर्णय किया जा सकेगा।

काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में पारंपारिक विद्वानों का मत—

पारंपारिक विद्वानों ने काव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

बर्डसवर्थ ने काव्य में कल्पना के स्थान पर भावना को महत्व दिया है।¹

उनका कथन है कि कविता अत्यंत भावनाओं का सहस्रसंगीत है। उसकी उत्पत्ति घांति की सखी अनुभूतियों में होती है। मिस्टव' के काव्य में राग और अत्यंत वास्तविक प्रवेश को महत्व दिया है। वह उनकी प्रकाशमयता और सरलता में ही विरवात रखते हैं।² कालरिज् काव्य में भावनाओं की कथिक अभिव्यक्ति को पार्श्व द्वारा उभारने के पक्ष में है। उनकी दृष्टि में सर्वोत्तम कवि अपने सर्वोत्तम रूप में कविता है।³ धर्ले ने सरस काव्य में कल्पना को आवश्यक माना है।⁴ वह अपने काव्य को विषय के क्षणों की अभिव्यक्ति कहता है। उनका विचार है कि वह हमारे सबसे बचुर गान हैं जिनमें विषयपूर्ण विचार व्यक्त किये जाते हैं।

मैथु घार्नेर ने काव्य में कल्पना के स्थान पर जीवन और विभाषात्मक व्याख्या को महत्व देते हुए लिखा है कविता—जीवन की प्राप्ति है।⁵

डा० बालरन ने कहा है कि कविता सरल और घामर के मिश्रण की कला है। जिसमें बुद्धि की सहायता के हेतु कल्पना का प्रयोग किया जाता है।⁶

अतएव—

वास्तव में कथिक विद्वानों ने काव्य को कला के रूप में देखा है। यद्यपि कला केवल कल्पना के घर्ष में ब होकर व्यापक घर्ष में भी देखी गई है।

1 Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings

It takes its origin from emotions recollected in tranquillity

Wordsworth.

2 "Poetry should be simple, sensuous and passionate."

—Milton—Essay on Education.

3 Poetry is the best words in their best order

—Colridge

4 "Our Sweetest songs are those that tell of saddest thought.

—Shelley

5 "Poetry is at bottom a criticism of life."

—Matthew Arnold.

6 "Poetry is an art of uniting pleasure with truth by calling

imagination to the help of reason

—Dr Johnson.

कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों की मधुर शब्दा में अभिव्यक्त करने की कला कविता है ।^१

इस परिभाषा में वाक्य के समस्त अर्थों का ध्यान रखा जा गया है । काव्य के भीतर अभिव्यक्ति का अर्थ ही रहता है । वाक्य ही कल्पना अनुभूति तथा विचार उत्पन्न भी वाक्य में महत्व रखते हैं । इस परिभाषा में केवल एक दोष है वह यह कि काव्य के हेतु यह आवश्यक नहीं कि वह सर्वत्र संगीतमय मधुर शब्दों का ही हो । कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचार काव्य के भीतर कवि की मौलिकता का स्वल्प इस प्रकार छड़ा किया जा सकता है । वाक्य कल्पना और अनुभूति से इहीत शब्दों की समझीक शब्दों में अभिव्यक्ति है ।^२

अपने काव्यशास्त्र में डा० मदीरब मिश्र ने काव्य के गुण में १ शब्दों :—

(१) शब्द

(२) अर्थ

(३) भाव

(४) कल्पना और

(५) बुद्धि या विचार

की उदा स्वीकार की है ।^३ जो हमारे विचार में भाग्य है । तथा इन्हीं के आधार पर उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि भी की जा सकती है ।

कविता में इन्हीं शब्दों की आवश्यकता है और इनके आधार पर ही काव्य का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है । कविता में भावात्मकता की प्रधानता है । जीवन की प्रत्येक वस्तु को चित्तार्थक बनाकर कवि अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा अस्तित्व भूय पदार्थों को भी मूर्त बनाकर नाम और रूप प्रदान करता है । अर्थ में कवि अनुभूति तथा कल्पना द्वारा ही जीवन को व्याख्या करता है । इस प्रकार कविता

^१ 1 "Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts which are the creation of imaginations and feeling."

—Chambers Dictionary

२ डा० मदीरब मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १८ ११ ।

३ वैज्ञानिक के द्वारा बलिष्ठ पुस्तक नहीं बरन् अपने ह्रम की दृष्टि में ही कटावदार सजीव पक्षियों के बीच मुकुमार, सुन्दर मनोहारी रूप में मलमलित की अक्षर पर भूमता और इत्साता हुआ प्राणियों के नेत्रों को आकर्षित करते हुए प्राण बिलकर संघ्या को जून में मुरझाने वाला फूल है । जिसके इन प्रकार के कल्पना भाव और अनुभूति रूप को कवि हमारे सामने प्रस्तुत करता है । अर्थ का यह वास्तविक रूप काव्य की आत्मा है । इस आत्मा को शरीर का रूप देने वाले पाँच शब्द यही हैं । शब्द अर्थ भाव कल्पना और विचार ।

डा० मदीरब मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १८ ११ ।

के बरूपता तथा भाव प्रयुक्त तत्त्व कह जा सकत हूँ। और उनके अभाव में कोई भी कविता कविता नहीं कहसा सकती। किन्तु कबस इन्हीं दो तत्त्वों के आधार पर किसी साहित्यिक रचना को कविता की संज्ञा प्रदान नहीं की जायेगी। जिस रचना में उपर्युक्त सभी तत्त्वों का समावेश होता है। वही रचना कविता की कोटि में आ सकती है। कविता में कल्पना तथा भाव के साथ साथ संशोधात्मकता भी होनी चाहिये। अतः भाव तथा कल्पना का समन्वय बरण ही दूसरे अर्थों में कविता कहसा सकती है। कविता में उपर्युक्त तत्त्वों का समावेश कलात्मक विषयता का देण है। आगे हम कविता और कला के सम्बन्ध का विस्तारण करेंगे।

कला का स्वरूप—

कला के स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों और पारश्चात्य विद्वानों में थोड़ा मतभेद है। दोनों के कला सम्बन्धी दृष्टिकोणों को समझने के हेतु यह आवश्यक है कि हम उनके मतों की यहाँ अलग-अलग समीक्षा करें।

भारतीय विद्वानों का कला-परक दृष्टिकोण—

संस्कृत साहित्य में कला का विभाजन दो भागों में किया गया है।^१

१—विद्या : तथा

२—अविद्या

विद्या के अन्तर्गत काव्य को रक्सा गया है। कलायें अविद्या के अन्तर्गत रक्सी गई हैं। संस्कृत के विद्वान साहित्य अथवा काव्य को कला से मिन समझते थे।^२

यहाँ पर विचारणीय यह है कि प्राचीन विद्वानों ने काव्य और कला के बीच यह विभाजन रेखा क्यों खींची। वास्तव में दोनों में क्या अंतर है इस बात का स्पष्ट करने के हेतु हमें बन्धी के कला सम्बन्धी मत पर विचार करना होगा।^३ उनका मतानुसार भ्रम, पीठ, कला काम और अर्थ के आधारित है। इस प्रकार उन्होंने कला से साहित्य का स्पष्ट भेद स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में कला कामार्थ संशय [काम में सहायक] होती है। किन्तु साहित्य कोरा कामार्थ संशयवा- किसी भी प्रकार नहीं माना जा सकता। साहित्य या काव्य के सम्बन्ध में हमारे यहाँ बहुत जैसी धारणाएँ थीं। उसे हमारे यहाँ के मनीषी धारणा की कला मानते थे। अतः राज ने कला को कला को संभारने वाली कहा है।^४ भारतीय विद्वान कला को केवल साहित्य से ही

१ पं० राजशेखर-काव्यमीमांसा-पृ ७०

२ साहित्य सदीत कला विहीन छाजान् पशु पुच्छ विपाय हीन ।

—मनुस्मृति

३ मुख्यतः प्रभृतय- कला कामार्थ संशयः

—बन्धी काव्यादर्श पृ० १७

४ कलायति स्वरूपं भावैशयति वस्तुनिवा ।

मित्र नहीं समझते वे उनकी दृष्टि में वह ज्ञान विषय और विद्या से भी मित्र बरतु है। भरत मुनि ने भी यही बात स्वीकार की है।^१ अमिनब कुण्ड में कला को और भी संकुचित रूप दे दिया है। मातृसंस्था की संपूर्ण पंक्ति का विवेचन करते समय उन्होंने कला का स्पष्टीकरण कला वाग बजाने आदि को कहते हैं^२ मित्र कर दिया है।^३

इससे प्रकट होता है कि भारत में कला राज्य का प्रयोग फ़ार्मिग घाट (सहित कला) के लिए भी होता था। भामह ने कला को बर्मे घर्ष काम मोग का साधन माना है।^४

कामशास्त्र के ज्ञानों में वात्सायन का 'कामसूत्र' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी रचना ११२ ई० पू में हुई थी। इस ग्रंथ में १४ कलाओं का उल्लेख है।^५ इसी आधार पर भारत में १४ कलाओं को मान्यता दी गई है।

भारत में कला वास्तव में एक लोकरंजन की वस्तु मात्र समझी जाती थी उसके विपरीत साहित्य आत्मा की अभिव्यक्ति होने के कारण प्रसौकिक समझ जाता था।

कला के स्वल्प को बलवैधप्रसाद उपाम्याम को ने अपने ग्रन्थ साहित्य में बड़ी सुन्दरता से इस प्रकार स्पष्ट किया है।^६

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला कि भारत में कला काव्य से मित्र समझी जाती थी।

कला के स्वल्प के सम्बन्ध में हिन्दी विद्वानों के विचार धाने कविता और कला के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए बतवामे जाँसे।

१ न तत् ज्ञान न तच्छिष्यं न सा विद्या न सा कला ।
भरत मुनि-मातृसंस्था-पृ० ४६

२ कला कीत वाद्यादिभिः ।
—अमिनबकुण्ड आधार्य धर्मशास्त्र-पृ० ७०

३ बर्मेर्षं काम-मोक्षायां वैचल्यं कला-मुच्यते ।
प्रीतिम् करोति कीर्तिं च साधुकाव्य-विबन्धनम् ।
—भामह—काम्यार्पण-पृ० १७

४ श्री वात्सायन महर्षि-कामसूत्र प्रथम पाठ पृ० ८७-८८

५. कला को उन वृत्तों के साथ भी मिश्रित नहीं करना चाहिये जो किसी विधिपूर्वक फल के उत्पादन में लिखा हीन रहती है। चाहे वह फल कुछ भ्राम्य उपभोग तथा उपयोग हो या वस्त्राण तथा पुष्प हो। 'साधारणतः' समझ जाता है कि कला की वस्तु भ्राम्य उत्पन्न करती है वह स्वतः वस्त्राणवादी हीन है या पुष्प उत्पादन में मूल्य होती है। परन्तु जोसे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं।

कला के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों के विचार—

कला के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वाना ने भी बड़े ही विस्तार से विचार किया है। यहाँ पर हम कुछ प्रसिद्ध विद्वानों को काव्य सम्मतियों पर संक्षेप से विचार करेंगे।

अरस्तू—अरस्तू की 'पोइटिक्स' में कला का प्रत्यक्ष नाम तो नहीं भी नहीं दिया गया किन्तु काव्य नाटक बेलुबादन तन्त्री नाच आदि को समुहकरा कहा गया है।¹

हीगल—हीगल ने भी अपनी पुस्तक 'The philosophy of fine Art' में कला पर अनेक विवेचन प्रस्तुत किया है। वह कला और सौन्दर्य में पारस्परिक नहीं समझते।² दूसरे शब्दों में सौन्दर्य को ही कला मानते हैं। कहने का अर्थप्राम यही है कि सौन्दर्य की कला के हेतु इतनी अधिक आवश्यकता है कि हम सौन्दर्य उत्पन्न का कला की परम आवश्यकता मानकर उस संक्षेप नहीं कर सकते।

कोले—कला के सम्बन्ध में कोले का विचार भी बड़ा महत्व रखता है। उनके अधिष्ठातावादी विचार थे। उनका कला सम्बन्धी सिद्धान्त इस पर आधारित है। वह अधिष्ठातावादी को ही सौन्दर्य मानता था। सौन्दर्य कला का प्राण है। उसके मता अनुसार मूर्त तथा अमूर्त अधिष्ठाता ही कला है।³

टास्तटाप—टास्तटाप ने 'What is Art' नामक एक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने कला सम्बन्धी विविध प्रश्नोत्तरों को समीक्षा की है। पुनरावृत्ति

कला का मुख्य अर्थके के हेतु हमें अत्यन्त जाने की आवश्यकता नहीं होती। कला का उद्देश्य कला ही है। श्रोता के हृदय में आनन्द उत्पन्न करना न तो कवि को इष्ट है और न चित्रकार के चित्र को किसी चित्र के द्वारा आनन्द का उद्देश्य कराना किसी चित्रकार को पसन्द है। संगीत एक कला है। संगीत के द्वारा कलाकार का उद्देश्य किसी श्रोता के हृदय को आनन्द में तन्मय बनाकर नहीं होता। वह तो श्रोता के कानों के ऊपर संवर्तितों बुलाता है। और एक विशिष्ट स्वर मणी उत्पन्न करता है। कला का वह उद्देश्य नहीं जो आलोचक मानते प्रायः हैं।

बनदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य शास्त्र-टीर्पक 'कला का स्वरूप'—पृ० ४२०

1 Epic poetry comedy as for the most part the music of the flute and of the lyre all these are in the most general view of them imitation"

—Aristotle Poetics—Page 37

2 If we are to propound the necessity of our subject matter in other words the beauty of art or the beautiful is a result of antecedents such as when regarded relatively to their true notional concept conduct us with scientific necessity to the similar notion of fine art it-self

—The philosophy of fine Art by G W E. Hegel—Page 31 Part I

3 Benedetto Croce—Aesthetic—page 38

घपना मत प्रतिपादन किया है।¹ उनके मतानुसार कला की प्रक्रिया अपने हृदय में उठी हुई भावनाओं की अनुभूति को किया, ऐसा बर्तन ध्वनि प्रायः शब्द के सहारे प्रायः धीरे स्पष्ट करने की चेष्टा है। यहाँ पर उस पद की बहुत कर देना अनुचित न होगा। कला जैसा कि प्राध्यात्मवादी कहते हैं ईश्वर या सौम्य के किसी रहस्य पूर्ण भाव को अभिव्यक्ति नहीं है। वह एक वैसावा के कल्पनात्मक अपने एकत्रीयत प्रोब क वाक्य का उपयोग करने वाली चीज़ा भी नहीं है। तथा हम उसे ध्यान व भी नहीं कह सकते। वास्तव में उनका कार्य मनुष्य का एक ही भाव में परस्पर बाँपना है। तथा व्यक्ति धीरे मानव की हित कामना करता है।²

इंइले—इंइले ने Oxford lecture on poetry के अपने कविता विषयक व्याख्यान में तर्कों के बिनाट आयोजन के साथ कला-कला क सिधे ही भागी है। उन्होंने कला का बाह्य संसर्ग से विस्तृत मुक्त रख कर उसकी प्रथम ही अपने में स्वतन्त्रपूर्ण धीरे स्वातुप्राप्तित संसार माना है।³ इंइले की प्रथम बातों को हम महत्व नहीं देते किन्तु कला का प्रथम स्वयं कला ही है। ऐसा कह कर उन्होंने बड़ी मार्मिकता का परिचय दिया है।

काइबेल—इन्होंने अपनी पुस्तक 'Illusion and Reality' में कला पर प्रथम बर्तनों के साथ कला का विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होंने जीवन से तिरपेस रह कर ही कला की सार्थकता पानी है।⁴ किन्तु जीवन पथ को छोड़ देने से कला में कुछ तत्व ही नहीं रह सकता।

1 To evoke in our self a feeling one has once experienced and having looked it in one self thereby means of movement like colours, sounds or forms expressed in worlds so to transmit that feeling, that is the activity of Art

—Tolstoy—What is Art—Page 38

2. Art is not, as the metaphysicians say the manifestation of some mysterious idea of beauty or God it is not as the aesthetical physiologists say a game in which man lets off his excess of stored-up energy It is not the expression of man's emotions by external signs. It is not the pleasure but it is a means of union among men Joining them together in the same feelings, and is dispensable for the life and progress towards well-being of individuals and of humanity

—Tolstoy—What is Art—Page 33

3. Its nature is to be not apart nor yet a copy of the real world (as we commonly understand that phrase) but a world in itself independent, complete autonomous.

A. C. Bradley—Oxford Lectures on Poetry Page 5

4 To appreciate a work of art We need bring with us nothing from life no knowledge of its ideas and affairs, no familiarity with its emotions.

Candwell—Illusion and reality—Page 25

रिचर्ड्स—रिचर्ड्स महोदय ने नाटिक कृत्तिया से कसाबाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर प्रणवा कुठावभाव किया है। उनके मतानुसार कविता बिना दोष सृष्टि से निम्न कोई अपार्यता ही नहीं रहती। इसके न खास नियम हैं और न खास निश्चिततायें। प्रत्येक कविता हमारी अनुभूति का एक सख्त मान होती है।^१ इन सभी बातों से यह निश्चित होता है कि कसा किमी गई और अपरिचित दुनिया की चीज नहीं है। वह इसी संसार की वस्तु है और उससे हमारा अनिष्ट सम्बन्ध है।

गाववालय विद्यालयों के कसा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने पर निम्न सिद्धित बातें दिखलाई पड़ती हैं—

- (१) कसा अभिव्यक्तता का ही मूल रूप है।
- (२) कसा में दिव्यता भी रहनी चाहिये।
- (३) कसा सत्य की सजीव और स्वामाबिक अभिव्यक्ति है।

यह अभिव्यक्ति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव की होकर प्रभाव प्रदान होती है। प्रत्येक कसा में ये बातें भी व्यंजित का जाती हैं जो उसकी सत्य प्रकृति से स्वतः स्पष्ट नहीं होती। किन्तु फिर भी उनमें उनकी व्यञ्जना होती है। कसाकार इस व्यञ्जना को अपनी इति में मूर्त रूप बना चाहता है। शुक्ल जी के मतानुसार एक ही अनुभूति को दूसरे तक पहुँचाना कसा का रहस्य होता है।^२

हमारे सम्म में कसा अनुभूति है। किन्तु यह अनुभूति न तो प्रतिकृति ही नहीं आ सकती है और न प्रविबिम्ब ही। वह प्रतिकृति और अनुभूति होते हुए भी अभिन्न होती है। यह न्यूनता कवि की प्रतिभा द्वारा लाई जाती है। इसी को कवि कसाकार की मौलिकता कहेंगे। कोई भी प्रतिकृति कसा तभी नहीं आ सकती जब उसमें एक अनिर्वर्णनीय मौलिकता होगी।

इस अनिर्वर्णनीय मौलिकता से ही वह कसा का रूप नवीन प्रतीत होता है। वह नवीनता ही पाठकों में आनन्द का संचार करती है। इस दृष्टि से हम कसा को अनुभूति मान सकते हैं। कसा को प्रकृति की बड़ अनुभूति मानने कासा क हम पक्षपाती नहीं हैं; क्योंकि कसा में जब तक नवीनता न होगी तब तक उसमें सौन्दर्य नहीं पायेगा। वह तब ही बनो रहेगी। सजीव कसा तो वास्तव में अनुभूत सौन्दर्य की अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति होती है। अतः दोनों ही दृष्टियों में कसा के अन्तर्गत अर्थ वार रोति बर्णित स्थिति, रम्य दृश्य और संवातात्मकता विधात्मकता एवं प्रकृत सम्बन्धी वस्तुएँ जाती हैं।

कसा का बर्णन—

मातृवर्ष में वाच्य का कसा में निम्न समझा जाता था। जिसे शीघ्र स्पष्ट

1 I A Richards—Principle of Literary Criticism.

२ रामचन्द्र शुक्ल—वाच्य में रङ्गमन्त्र १० १०४

विद्या का बुद्धि है। पाश्चात्य विद्वानों का मत भारतीय विद्वानों से भिन्न है वे काव्य कला को एक प्रमुख कला मानते हैं। काव्य कला का आधार भाषा है। काव्य कला की सहायक संगीत कला भी है। चित्रकला ने भी इसको अनुस्यूहीत किया है। चित्र काव्य बहुत कुछ चित्र कला से ही सम्बन्धित रहता है। मूर्ति कला का भी प्रभाव इस पर दृष्टिगोचर होता है। मूर्ति विमान करना अथवा बिम्ब ग्रहण करना भी काव्य कला की एक प्रमुख विषयता है। अतः काव्य कला काव्य कलाओं को अनेकानेक महत्त्वपूर्ण है। व्यवहारिक दृष्टि से कलाओं को इन दो विधाओं में बाँटा जा सकता है।

१—उपयोगी कला

२—समित कला।^१

उपयोगी कला में सोहार, बर्बर, सुमार आदि के व्यापार आते हैं। समितकला के भी मेव निम्नलिखित हैं।

१—वास्तु कला

२—मूर्ति कला

३—चित्र कला

४—संगीत कला

५—काव्य कला।^२

यह समित कलाएँ भी मुख्य दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। एक तो वे जो अक्षरलिपि के समिकर्ष से मालिखित कृति प्रदान करती हैं। और दूसरी वे जो उस अक्षरलिपि के समिकर्ष से अक्षर कृति का साधन बनती हैं। पहले प्रकार की कला में किसी मूर्त आकार की आवश्यकता होती है। पर दूसरी में इतनी आवश्यकता नहीं होती। इस मूर्त आकार की मात्तानुसार समित कलाओं की श्रेणियाँ उत्तम और मध्यम निर्धारित की जा सकती हैं। जिस कला में मूर्त आकार कितना ही कम होता है वह उतनी ही उच्च कोटि की समन्वये जा सकती है। इतनी मात्र के आकार पर काव्य कला को इतना उच्च स्थान प्रदान किया गया है। क्योंकि इसमें मूर्त आकार का पूर्ण अभाव रहता है। जैसे शिल्पियों के तब सम्येस विना मस्तिष्क की सहायता और सहयोग के अस्पष्ट और निरर्थक प्रतीत होते हैं। जैसे ही काव्य के बिना पूर्व संचित ज्ञान अन्वय के बिना मानव भीमन पशु के समान होगा। उससे वह विवेकता न रह जायेगी जिनके कारण मानव मानव कहलाने का अधिकारी है।

५. कविता और कला का सम्बन्ध—

कविता और कला का क्या सम्बन्ध है यह भी विचारणीय है। इस विषय में

१ डॉ. स्वामिन्धर दास—साहित्यशास्त्र—पृ० १८

२ डॉ. स्वामिन्धर दास—साहित्यशास्त्र—पृ० १८

दो चार प्रमुख सम्मतियाँ उठत कर देता आवश्यक प्रतीत होता है। प्रसाव या कविता को कला के अन्तर्गत मानते हैं।^१

श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी कला पर अथवा विचार प्रकट किया है। यह विशेषतः बहुत कुछ पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित है। उन्होंने ज्ञान के दो पक्ष माने हैं।

१—कला

२—विज्ञान^२

इन्हें स्पष्ट करते हुए ध्याने कला पर अब ही सुन्दर विचार प्रकट किये हैं। प्रायः के मठानुसार कला में मनुष्य बाह्य वस्तुओं की नहीं स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करता है। इससे स्पष्ट है कि रवीन्द्र कला में धार्यानुभूति की अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व देते थे। इसीलिए इन्होंने कला में व्यक्तित्व पर बहुत अधिक बल दिया है। वे लिखते हैं कि कला का प्रधान सत्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना है न कि सूक्ष्म और विविधप्रण प्रधान वस्तुओं की विवेचना करना है।^३

ध्याने 'कला क्या है' निबन्ध में कला सम्बन्धी एक प्रचलित बात का भी उल्लेख किया है। कुछ लोग कला का सत्य केवल सौन्दर्य प्रधान समझते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में सौन्दर्य विधान कला का एक साधन मात्र है साध्य नहीं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस बात में कि कला का सत्य केवल सौन्दर्य विधान मात्र है बड़ा भ्रम पैदा कर दिया है। वास्तव में कला सौन्दर्य विधान मात्र है। इस विचार ने बड़ा भ्रम पैदा कर दिया है।^४ किन्तु उनके इस विवेचन से यह नहीं समझना चाहिये कि वे कला में विशेष सौन्दर्य को महत्त्व नहीं देते। उनका दृष्टि में सत्य और सौन्दर्य दोनों की ही प्रतिष्ठा कला में आवश्यक होती है। इसी निबन्ध में उन्होंने लिखा है 'कला का कार्य मानव के लिए' सत्य और सौन्दर्य की एक सजीव सृष्टि प्रदान करना होता है।^५

१ कविता विद्या है जबकि कला उपविद्या है। कला का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से रहता है। कविता का अभिव्यक्त सम्बन्धी स्वल्प उल्लेख बाह्य रूप है।

असंस्कार प्रसाह—कविता और कला तथा अन्य निबन्ध—पृ० २५

2. Therefore in Art man reveals himself and not his objects his objects have their place in the books of information and Science.
Ravindra Nath Tagore—Personality—Page 12—What is Art.

3 The principle object of art, also being the expression of personality and not of that which is abstract and analytical.
Ravindra Nath Tagore—Personality Page 19

4 This has lead to a confusion in our thought that the object of art is the production of beauty where as beauty in art has been more instrument and not a complete and ultimate significance
Ravindra Nath Tagore—Personality—Page 19

5 This building of man's true world the living world of truth and beauty is the function of art
Ravindra Nath Tagore—Personality—Page 31

कला अपने व्यापक सर्व में बहुत विस्तृत है। और इस दृष्टि से कविता भी कसा हो सकती है। पर क्या सम्पूर्ण कविता कसा के हो अन्तर्गत प्रहीत की जा सकती है। इस विषय में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकालों में मतभेद है। पाश्चात्य मत से सजित कलाओं में काव्य का स्थान है। वह सर्वोपलब्ध सजित कसा है पर कविता केवल कला नहीं है वह कसा के प्रतिरिक्त और भी कुछ है क्योंकि कविता कसा मात्र से अमिच्छ्य व्यक्ति निवर्गता- श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकता। उसका कसा पक्ष प्रबन्ध है। पर वह एक पक्ष मात्र है।^१ इसके बाद महादेवी बर्मा का कला सम्बन्धी दृष्टिकोण विचारणीय है। उन्होंने काव्य में कला की उत्कृष्टता को स्वीकार किया है।^२ हम प्रचार हम देखते हैं कि भीमती महादेवी बर्मा का भी यही विचार है कि काव्य कसा ही नहीं बिना भी है। निरासा भी के मत में कसा में जो सौन्दर्य है वह काव्य के अनेक गुणों से उत्पन्न होता है। अपने काव्य सौन्दर्य को कसा के अन्तर्गत प्रहीत किया है। उनका मत है कि कला केवल बर्तन छन्द अनुप्रास रस या ध्वनि की सुन्दरता नहीं है। किन्तु इन सभी से सम्बन्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है। पूरे घंटों की १७ घास की सुन्दरी का अंकों की पहलाम की तरह देह को धीरुता दीनता में तरंग ही उतरती बढ़ती हुई भिन्न बर्णों की बनी बाणी में लुमकर क्रमता मन्त्र मन्त्र उस्मीन होती हुई जैसे बीज से पुष्प की पूरी कसा विकसित नहीं होती न अंकुर से न बाल से न पीपे से न जड़ से तना बाल पम्बक और फूल के रेणु मन्त्र तक फूल की पूरी कसा के हेतु प्रावश्यक है वैसे ही काव्य की कसा के लिए काव्य के सभी मण्डल।^३

अपतंहार—

अमर के बचन पर विचार करते पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निरासा की कसा विषयक धारणा प्रसाद और महादेवी की धारणा से भिन्न है। वे काव्य सौन्दर्य को कसा मानते हैं। सौन्दर्य जाने की कुशलता को कसा नहीं। यहाँ पर हम यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो बोना में भेद है क्योंकि कसा साधन और सौन्दर्य साध्य है अतः जाना में अन्तर प्रबन्ध है किन्तु बाह्य रूप से यह भेद उतना नहीं जान पड़ता। काव्य का सौन्दर्य काव्य कसा ही जान पड़ता है। पर वह इस का परिणाम है। पूर्व बखित उदाहरण में निरासा भी ने और जो बातें स्वीकार की हैं

१ डा० मधीरब मिश्र—काव्य धारण—पृ ३८०

२ काव्य में कला-उत्कर्ष एक ऐसे विद्युत्क पहुँच गया है जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सता।

महादेवी बर्मा—दीपशिखा—चिन्तन के धारण पृ० ३

३ सूर्य वात बिनाडी निरासा-प्रकाश प्रतिभा-मेरे पीठ और कसा धीरक मन्त्र—पृ० २७२

बहु ठीक है। पर रस को भी काव्य कसा कहना यदिक समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि घोर भी बाते, साधन घोर रम माध्य है। ही निरुत्सा भी वा यह विचार किसी भी उपकरण को मिसकर कसा वा पूर्ण ब्रमाण है प्रबन्ध समीचीन है।

राष्ट्र घोर धर्म काव्य क साबरस्यक धय है। प्रत्येक राष्ट्र किसी न किसी धर्म का वाचक होता है। प्राय एक ही धर्म के वाचक धनक राष्ट्र होते हैं। इन्हीं में मावीपयुक्त राष्ट्र का प्रभाव करने की विशेषता से ही काव्य में कसा घाटी है।

काव्य कसा के विविध धंग—

इतने विवेचन क उपरान्त अब हम काव्य कसा के विविध निम्नलिखित धंगों पर एक-एक करके विचार कर रहे हैं।

१—घसकार

२—रीति

३—वक्रोक्ति

४—ध्वनि

५—रम

६—द्वन्द्व

७—समांत कसा

८—काव्य घोर चित्र कसा

९—प्रबन्ध

घसकार—

भारतीय दृष्टिकोण से कसा काव्य वा वाह्य पक्ष है। इसलिये कसा के घसकार काव्य वा सर्वस्व नहा घा जाता। काव्य के अभिव्यक्ति सौष्ठव के विविध धंग कसा क घसकार्यत देल जा सकने हैं। इन धंगों में घसकार काव्य कसा का सबसे व्यापक घोर सहज धंग है। घसकार काव्य वा एक उक्ति विशेष है। घोर उक्ति विषय क विविध रूप घसकारा के विभिन्न मर प्रमेर है। न कबल भारतीय साहित्य में बरन् पारश्चात्य साहित्य में भी घसकार का काव्य कसा क घसकार प्रमुख स्थान है घोर उसके बहुत संस्कार मेर प्रचलित हैं। भारतीय साहित्य में विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में तो घसकार वा काव्य की गोमा माना गया है। घोर कमक घनेकालेक भेद निय मय है। जिसका विचारण मन्वृन घोर हिन्दु क घनन घन्नों में मिसता है।

घसकार का महत्त्व काव्य क र्क्ष में इनका दहा कि किमी समय हिन्दी घोर संस्कृत दोनों ही साहित्य में घसकार का दृष्टि में रकबन हू। काव्य तिसा जान सगा। यह घसकार घसकारता काव्य वा घसकार्य मजाबन से पुन म्पिठ बरने वासी हुई घोर ठिर घसकारों की स्वाभाविक घोर संघन योजना पर ही बधिया मे ध्यान दिया।

घसकार क सम्बन्ध में यह बातों ही बाते ध्यान देन की हैं। पहली बात तो यह है कि घसकार वा घसकार्य प्रयोग काव्य कसा की बोधिय बना देना है। दूसरी

बात यह है कि घसकार को काव्य के क्षेत्र में नितांत बहिष्कृत भी नहीं किया जा सकता। संसार की कोई भी कविता ऐसी नहीं जिसमें कि घसकार का प्रयोग न हुआ हो। अतएव घसकार काव्य सौन्दर्य का एक अनिवार्य अंग है। केवल उसके स्वाभाविक और संयत प्रयोग ही ही भावश्यकता है। यहाँ यह भी कह देना भावश्यक है कि गोस्वामी तुमसीदास जी ने घसकार का प्रयोग नहीं ही स्वाभाविक और संयत रीति से किया है। वास्तव में उनके घसकार घसकरण की सामग्री नहीं बरन् घातक सौन्दर्य और बिद्येपताओं की अभिव्यक्ति के साधन हैं। जैसा कि हम उनके काव्य में घसकार सम्बन्धी प्रथम प्रथम के प्रथम में देखेंगे। यहाँ पर हम काव्य कला में घसकार के महत्व और उसके विविध बर्णों का संक्षेप मात्र कर देना ही पर्याप्त समझते हैं।

घसकार का महत्व और उनके विविध बर्ण —

काव्य की परिभाषा करते हुए प्राचार्य भाग्य कहते हैं। कि सम्बन्धों सहित काव्य^१ अर्थात् सम्बन्धों से युक्त पर काव्य है। इसलिये काव्य और घस में अमिश्रित रोचकता माना ही कवि के लिये सर्वथा अनिवार्य है। किसी प्रकार के अमिश्रित के बिना काव्य नहीं कहा जा सकता। यह अवश्य है कि बिना आतुर्य के भी काव्य को उदात्त समझा है। किन्तु जैसा काव्य सत काव्य नहीं हो सकता। भाग्य शब्द आदि को घसकार सिद्धान्त के मुख्याचार्य है। घसकारों को इसीलिये काव्य में प्रदानता देते हैं। क्योंकि उनके काव्य में आनन्ददायक तथा अमिश्रित रोचकता का प्रादुर्भाव होता है।

वास्तव में यदि विचार पूर्वक देखा जाये तो काव्य में आनन्ददायक शक्ति घसकारों के द्वारा भी पायी है। काव्य वास्तव का कोई भी अल्प अक्षरों की आवश्यकता नहीं अतएव अमिश्रित रोचकता और इसी महत्ता उदात्त से नितांतमेव पूर्य नहीं। सभी में घसकार का विशेष महत्व दिया गया है।^२ पुस्तकाली और रीतिकाली आचार्य जो जैसे मर्मज्ञ दण्डो आनन्ददायक नामन आदि सभी घसकारों को काव्य की आवश्यकता समझकर छोड़ नहीं सके। सारांश यह है कि घसकारों का स्थान काव्य में यदि सर्वोच्च नहीं तो काव्य के किसी भी मुख्यतः मुख्य तत्व से किसी भी प्रकार कम नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाये तो बड़ी मात्रा में है कि घसकार परिपाटी बहुत प्राचीन है। यहाँ तक कि इस सिद्धान्त के अन्वयात् तथा काव्य वास्तव के सर्व प्रथम आचार्य मरुत मुनि ने भी अपने नाट्यवास्तव में घसकारों का बर्णन किया है। प्रायः काव्य के साध्यमिक काल में ही सम्पूर्ण काव्य कौमुदिक इन्हीं के आचार पर हुआ है और इन्हीं की तृती कोसती रही। देव बिहारी सैनापति पद्याकर मुखर और मतिराम आदि समा प्रथम कविता ने इन्हीं के आचार पर अपनी-अपनी

१ भाग्य शब्द काव्यार्थकार १।१९

२ घसकार पीपुप-रत्न पृ ३६ प्रथमावृत्ति

काव्य घट्टासिकार्ये बनाई। इस प्रकार घसंकारों का पट भरते भरते धीरे धीरे उसका रस पीठे पीठे लोगों को प्रकीर्ण सा हो गया। यहाँ तक प्राधुनिक समय के लोगों ने उनका बहिष्कार ही कर दिया। तो भी बन्दबाव है उन प्राचीन प्राचार्यों को जिन्होंने काव्य कला की दृश्यता में भी एक घसंकार की सत्ता निर्धारित कर ली है और घसंकारों के इतने मेघ प्रसेद कर दिये हैं कि उन से बच कर निकल जाना कवि और कविता की शक्ति में परे है।

इस प्रकार हम हठना में कह सकते हैं कि घसंकारों की महत्ता उनके विरोधियों के कठिन कुठाराघातों से भी बिनष्ट नहीं हो सकी और घपना स्वतन्त्र प्रतिरत्न काव्य के क्षेत्र में बहाय हुए हैं। घसंकारों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं।

- १—भाष को उद्दीप्त करना।
- २—बहना को प्रेरित करना।
- ३—बलु का स्वामाबिक चित्रण करना।
- ४—उक्ति को स्मरणीय बनाना।
- ५—नाद शीर्ष्य की सृष्टि करना। अस घसंकार

घसंकार किसी प्रकार के अमरकार पर आधारित रहते हैं। यह अमरकार जिन प्राचार्यों पर आधारित है। वे साम्य विरोध अथवा ग्याय कारण कार्य सम्बन्ध निषेध सूचार्थ प्रतीति धारि हैं। इन्हीं आधारों पर घसंकारों के विभिन्न रूप बनाये जा सकते हैं। और इन रंगों में विभिन्न घसंकार प्राप्त हैं। जने —

साम्य मूलक घसंकार—साम्य रूप गुण में सम्बन्धित होते हैं। जैसे उपमा उत्प्रेक्षा रूपक अथवा संदेह धारि।

बदव्य या विरोध मूलक—विषमता या विरोध का अमरकार पूर्ण प्रकाशन इन घसंकारों में रहता है। जैसे घसंघति विषम विरोधानास धारि।

रूप या श्रुंभला मूलक—कारण भासा एकावसी सार धारि।

कारण काव्य सम्बन्ध मूलक—विभाषना हनुष्येसा प्रतिघयोक्ति धारि।

विषय मूलक—घपनकृति बिनोक्ति व्यतिरेक धारि।

गुणार्थ प्रतीति मूलक—पर्यायोक्ति ममायोक्ति मृदा व्याज निम्ना व्याज स्तुति सूक्त धारि इन सभी घसंकारों का कृत् विवेचन तुलसी की घसंकारिक विरोध धारों के अन्तर्गत किया जावेगा।

रौति अथवा शैली

काव्य और शैली —

काव्य रचनाया की शक्ति शैली भी सतत ही एक विशेष प्रकार की असाध्यक वेष्टा है। जो कवि की स्वानुभूतियों को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य में अमरकार रूप में रूपमा कली है। जब कोई वैयक अथवा कवि सामाजिक परिस्थितियों को अनुभूति

मुहुता एवं स्तिम्बता से शुभ्य प्रकृति मूल्य होता है तब उन परिस्थितियों के अन्तर्गत प्रपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के हेतु उदाहरण हो जाता है। वह तो सिद्धता है यही विचार कर कि उसकी भाषा का प्रत्येक शब्द प्रत्येक वाक्य उसकी विचारबारा कल्पना एवं अनुभूति का सच्चा प्रतिनिधि है। कवि अपने इस प्रबल को अपनेको विविधों एक प्रकारों से वर्णन करता है। वह इन्हीं प्रकारों और प्रकारों में सीली के अन्तर्गत आत्म कहानी लिखी हुई है।

सीली शब्द का मूल अर्थ है अंग प्रकृति प्रणामी। साहित्यिक भाषा में सीली वह अभिव्यक्ति प्रणामी है जिसके द्वारा कोई भी रचना रमणीय मोहक एक प्रभावोत्पादक बनकर पाठक के मनोभावों को उग्र नित करे। इस परिभाषा के अनुसार अन्तर्गत रीति ध्वनि शब्द सति धारि सब सीली के अन्तर्गत श्रेष्ठ निते जाते हैं। हममें से कुछ शब्द सम्बन्धी है और कुछ अर्थ सम्बन्धी।

कव्य का सम्बन्ध मन की रागात्मक प्रवृत्ति से है। इनीसिय उसकी अभिव्यक्ति सबैष एते रूप में होगी चाहिये जिसमें मानव का उसके प्रति उच्च आकर्षण हो सके। उसके साथ ही साथ यह भी विचारणीय है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्गत सीली उसकी अन्तर्गत निजी विशेषता है। जो उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोणों से अनुभावित होती है। ऐसी स्थिति में जब साहित्य की अभिव्यक्ति होती है तब वो बातों का अन्तर्गत रचना अन्तर्गत हो जाता है। पहली बात तो यह है कि जीवन अन्तर्गत सीली को इस प्रकार उन्मत्त किया जाये कि वह अधिकारिक भाषा में भाषा की रागात्मक वृत्ति को व्यक्त कर सके और दूसरी बात यह है कि व्यक्तिगत दृष्टिकोण में अधिक से अधिक मौलिकता हो। वास्तव में इन्हीं दो दृष्टिकोणों में सीली की कल्पना हो सकती है। मनोभाषा को व्यक्त करने का अन्तर्गत प्रयोग अन्तर्गत का आधार है।

सीली के अन्तर्गत--

सीली के अन्तर्गत भी विज्ञान के द्वारा निर्धारित निते यथै हैं। जो दो भागों में विभाजित हैं।

१—बाह्य

२—आन्तरिक^१

बाह्य उदाहरण अन्तर्गत की उदाहरण ६ है। ध्वनि अन्तर्गत मोक्षता अन्तर्गत अनुभूति प्रकृत्य और अन्तर्गत। अन्तर्गत अन्तर्गत के कारण अन्तर्गत का नाम निर्देश ही किया गया है।^२

बाह्य उदाहरण अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत हम अन्तर्गत अन्तर्गत उदाहरण अन्तर्गत पर

१ अनुभाव प्रभाव अन्तर्गत-समालोचना अन्तर्गत-पृ० ११७

२ अनुभाव प्रभाव अन्तर्गत-समालोचना अन्तर्गत-पृ० ११७

विचार करते हैं। यह धार्तरिक गुण सीमा के गुण कहाते हैं। इन पर दो दृष्टियों से विचार किया जाता है।

१—भारतीय दृष्टिकोण

२—पारंपार्य दृष्टिकोण

इन उभय दृष्टिकोणों पर संक्षेप में विचार कर लेता इस प्रसंग में प्रासंगिक प्रतीत होता है।

भारतीय दृष्टिकोण—

द्विज गुणों के आधार पर भारत के रीतिबारी प्राचार्यों ने रीति की विवेचना की है। वे गुण सीमा की रम्यता के बड़क हैं। अतः यहाँ प्रमुख प्राचार्यों के मत का स्थूल दिग्दर्शन मात्र पर्याप्त होगा।

रीति को काव्य की धारणा मानने वाले^१ रीतिवाद के सर्वप्रमुख प्राचार्य बामन ने पदों की विशिष्ट रचना को रीति माना है।^२

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र मुख्यतः नाट्य विषयक ग्रन्थ होते हुए भी काव्य शास्त्र का महाकोष है। काव्य के धर्मों की सुस्पष्ट विवेचना इसमें दिखलाई पड़ती है। इसके १७ वें अध्याय में काव्य के सप्तशतों गुणों दोषों एवं अलंकारों का विस्तृत निरूपण मिलता है। एवं प्राग के अलंकारियों की भाँति भरत के नाट्य शास्त्र में रीतियों का विवेचन नहीं मिलता है पर द्विज गुणों की आधार भीति पर रीति का विकास सीधे निमित्त हुआ है उन गुणों की विवेचना भरत मुनि ने की है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में एक जगह नाट्य कृत्तियों का उल्लेख मिलता है।^३ इनके अनुसार नाटकीय काव्य की इस पुष्टि के हेतु उचित गुणों तथा अलंकारों प्रादि की सहायता आवश्यक है। अपने नाट्य शास्त्र के १७ वें अध्याय में उन्होंने काव्य के ३९ सप्तशतों का उल्लेख किया है। इन सप्तशतों के अन्तर १० काव्य दोषों और १० काव्य गुणों का विवरण मिलता है। भरत मुनि के द्वारा उल्लिखित इन १० गुणों की व्याख्या न करके इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इनके परवर्ती प्राचार्यों ने यद्यपि गुण दोषों की व्याख्या निम्न रीति से की है पर तात्पर्य भेद होने पर भी गुणों की संख्या अथवा १० ही मिलती है।

भरत के अन्तर सर्वश्रेष्ठ प्रमुख अलंकारिक भाग्य माने जाते हैं। उन्होंने

१ बामन काव्यालंकार—मूत्र कृति अधि० २ अध्याय २ सूत्र ६

२ बामन काव्यालंकार—मूत्र कृति अधि० १ अध्याय २ सूत्र ७

३ अश्वमेधी वाङ्मयशास्त्र तथा श्रीरामायण भागपति ।

पञ्चांगी अभ्यासा श्रीरामायण नाट्य प्रकृतयः ॥

यद्यपि रीतियों और प्रकृतियों का निर्बंध नहीं किया है तथापि द्वितीय परिच्छेद के आरम्भ में उन्होंने मातुर्व्यवस्था और धर्म का संकेत किया है।

धामह के पश्चात् दम्भी आते हैं, दम्भी के काम्यार्थ में भरत द्वारा बण्डित १० ब्रह्मों का उल्लेख मिलता है। दम्भी के अनुसार वैद्यों और पौत्रीय दो ही रीतियाँ मिलती हैं। पर वैद्यों मार्ग या वैद्यों रीति के प्रथमः १० ब्रह्म हैं और प्रथमः इन्हीं ब्रह्मों के विपर्यय मोक्ष में पौत्रीय रीति में देखे जाते हैं। अर्थात् इन्हीं प्रथम समस्त मातुर्व्यवस्था सुकुमारता धर्म व्यक्ति, उच्चारण कान्ति धर्म और समाधि इन १० ब्रह्मों का वैद्यों रीति में होना आवश्यक है।

दम्भी के अनन्तर प्रमुख साहित्य शास्त्रियों में धरत का नाम लिया जाता है। इनका धर्म मुख्यतः धर्मकार धर्म है। पर इनके धर्म में वृत्तियों के अनुसार अनुपात के तीन भेद किये गये हैं। वे वृत्तियों परया उपनामिका एवं धाम्या रीतियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। य प संयुक्त बर्ण धारि की जब अनुप्रासात्मक योजना होती है तब उसे पश्या वृत्ति कहते हैं। द्विक्त बर्णों का प्रयोग बर्णों के धर्मों का धर्म पशम के समीपादि की योजना द्वारा उपनामिका वृत्ति की उद्भावना होती है। पश्या और उपनामिका वृत्ति के उपयुक्त बर्णों से धारितिक धर्मों का जिस बोधे से संघटन होता है। उसे धाम्या धर्मों की योजना कहते हैं। अर्थात् प्रथम दो वृत्तियों में क्रमशः ममुर और क्रमशः बर्णों की प्रावृत्ति होती है और दुर्नीय में कठोर बर्णों की। संयुक्तधर का भी प्रयोग दुर्नीय में होता है। इतना होने पर भी रीति का समुचित विकास नामन के काल में हुआ।

नामन के अनुसार रीति के वैद्यों पौत्रीय और पौषाली तीन भेद हैं। नामन की रीति के उक्त तीनों भेद इन्हीं १० ब्रह्मों के आधार पर हुए हैं जिनका निर्बंध भरत मुनि के नाट्यशास्त्र और दम्भी के काम्यार्थ में मिलता है। पर नामन के यह १० ब्रह्म और धर्म के ही १० ब्रह्म हैं। इन धर्मार्थ ब्रह्मों में प्रथम मातुर्व्यवस्था और धर्म १० ब्रह्म हैं। इन्हीं के आधार पर नामन ने रीति की सत्ता भी मानी है। जिस रीति में यह समस्त धर्मार्थ ब्रह्म रहते हैं तब पौत्रीय और जिसमें मातुर्व्यवस्था और धर्म ही रहता है उसे पौषाली कहते हैं। यह नामन की रीतियाँ हैं। इन समस्त धर्मार्थों की धारणाओं को लेकर रीतियों की विशेषतायें ४ भागों में विभाजित की जाती हैं। वैद्यों पौषाली पौत्रीय और लाटी जिसका उल्लेख धरत ने किया। उपयुक्त धरत विशेषताओं में से तीन का विवेचन हो चुका है। क्रमशः चर्चों वाली रीति समाप्त से कुछ विशेषण प्रयोग बर्णों की लाटी रीति है।

१—इन्हीं प्रथम समस्त मातुर्व्यवस्था सुकुमारता।
धर्मव्यवस्थाधारकमौज कान्तिधर्मार्थः ॥

शैली सम्बन्धी गुण—

रीति के विवेचन में गुणों का विवेचन भी अनिवार्य है। मम्मट और बिरबनाय दोनों ही प्राचार्यों ने बोधला की कि प्रसाद माधुर्य और श्लोक यह ही तीन शैली के गुण हैं।^१ परन्तु मम्मट ने अन्य प्राचार्यों की भाँति १० नहीं ३ ही गुण माने हैं। माधुर्य श्लोक और प्रसाद। जगन्मय यही बात प्राचार्य बिरबनाय ने भी स्वीकार की है।^२ अठ- निष्कर्ष रूप में श्लोक प्रसाद और माधुर्य यह तीन ही गुण शैली के गुण हैं।

श्लोक—श्लोक की उद्भावना के हेतु रचना में प्रौढ़ता एवं उग्रता की भी आवश्यकता है। श्लोक की परिपुष्टि के लिये ऐसा व्यक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है जो श्लोकोप्यङ्क और परव्य हों। किन्तु यह श्लोक गुण मधुर भावनाओं की प्रति व्यञ्जना में अधिक उपयोगी नहीं होता। जैसे—

श्री तुम्हारे समुदासन पावों। कंठुक इव द्रव्याह उठावी ॥

काचे घट त्रिमि करी फीरी। सकठ मेरु मूसक त्रिमि तोरी

तीरी छत्रक दण्ड त्रिमि तब प्रताप बस नाथ ।

श्री न करी प्रभु पर उपप करम करी मनु माय ॥^३

यह श्लोक पूर्ण सम्भावना एक प्रपूर्व कीरात्मक शौन्दर्य की सृष्टि कर देती है।

प्रसाद—शैली का दूसरा गुण प्रसाद है। प्रसाद का तात्पर्य है कि रचनाकार की उक्ति इस भाँति प्रामाण्यपूर्ण होनी चाहिये कि उसे सुनते ही उसका धर्म बोध हो जाये। बला की भाव स्पष्टता उक्त शब्दों में मस्तकनी चाहिये। कामाक्षी में हमका सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होता है।^४ इसी प्रसादात्मक शब्द योजना में सहज सरलता है। जिससे धर्म में स्वत ही कला का सन्निवेश हो जाता है।

माधुर्य—माधुर्य शब्द के अर्थित करने कासे गुण में युक्त है। संयोग कस्य

१ धि रसस्माङ्गिनी बर्मा शौर्याय इकारमन

उत्कर्ष-हेतुवस्ते स्फुरन्तस्त्वितयो गुणा ॥

मम्मट—काव्य प्रकाश—८१७

२ बिरबनाय—साहित्यदर्पण ८१

३ मा० बा० पृ० १७७। इस प्रबन्ध में मामय के सभी उद्धरण धीमद्

गोस्वामी तुलसीदासजी बिरचित श्रीरामचरितमानस टीकाकार—इन्द्रमानप्रसाद पोद्दार द्वितीय संस्करण सं २००२ से छपत किय गये हैं।

४ जैबस किसोर सुन्दरता की

में करती रहती रसवासी।

में वह हस्ती सो मससन हैं

जो बनने कागों की धासी ॥

प्रसादप्रकाश—कामाक्षी—पृष्ठ १०३-अष्टम संस्करण

विप्लवमयी और घात में यह कमरा अधिक प्रदर्शित होता है। यह मधुर रचना है। इसका उदाहरण मात्रम में बड़ा सुन्दर है।

कैम किचित् सुपुर धुनि सुनि। कृत ललन छनछन हृदय धुनि ॥

मानुष मदन दुग्धनी बीन्ही। मनका विषय विषय यह कीन्ही ॥^१

मधुर बसों के कारण यह पौष्टिक धृति मधुर हो उठी है।

पाठशास्त्र हृष्टिकोश—

उपरोक्त विवेचन में भारतीय हृष्टिकोश के प्रभाव पर टीति की विवेचना प्रस्तुत की गई है। अब पाठशास्त्र हृष्टिकोश से भी टीती के गुणों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

पाठशास्त्र शास्त्रिय में टीती शब्द का प्रयोग साधारणतः निम्नलिखित तीन स्थानों में होता है। मरे से इन तीनों स्थानों पर सम्मीरता से विचार किया है।^२

१—प्रतिष्ठा की स्थापित विवेचनार्थ जिनमें किसी लेखक विशेष की उपाय से बहुराजा का उक्त।

२—प्रतिष्ठा के विचार।

३—शास्त्रिय की सम्पन्नति निधि।

किन्तु टीती के उपरोक्त तीनों स्थानों एकान्ती प्रतीत होते हैं। वास्तव में इन तीनों स्थानों से सम्बन्धित परिभाषा ही इलाक़ीय टीती की ओर संकेत कर सकती है। क्योंकि टीती टीती में उपरोक्त तीनों गुण विद्यमान रहते हैं। काव्य साहित्यिक भावों की प्रतिष्ठा होने से कारण लेखक के व्यक्तित्व में भी प्रत्यक्ष प्रभावित रहता है। टीती में लेखक की वैयक्तिक विषयता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबन्धित रहती है। टीती का वैयक्तिक परा भी उपेक्षणीय नहीं है। प्रतिष्ठा टीती पर ही काव्य की उत्कृष्टता पर निर्भर है। प्रतिष्ठा को विविध प्रस्तावितों और टीतियों प्रकृत है। टीती का तीव्र पर भी शास्त्रिय में टीती के महत्त्व की ओर संकेत कर रहा है। उचित गुणों से युक्त टीती की रचना को साहित्यिक रूप प्रदान करती है।

पाठशास्त्र पारला के अनुसार टीती के गुण

इस प्रकार योरप के विद्वानों ने टीती के गुणों पर टीतीय विस्तृत रूप से विचार किया है। पर के सभी तक किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। सभी पाठशास्त्रों ने अपने-अपने विचार के अनुसार इन गुणों को मापने का यत्न किया है। किन्तु इनमें धार तक एक मत नहीं स्थापित हो सका। इन सभी मतों का निष्कर्ष नहीं प्राप्त तक और सम्भव न होने के कारण इनके बीच-बिचारा या निर्णय मात्र वर्तमान तक कर किया जा रहा है। निष्कर्ष से प्रतिष्ठा टीती सम्बन्धी मत मतान्तरों

१ भा० भा० पृ० १६१

२ The problem of style by Murry—Page 30

३ Manual of English Prose by Minto—Page 45

पर विचार करके जो सारांश निकाला है उनके अनुसार दीची के निम्नलिखित गुण हैं।

- १—सरलता
- २—स्वच्छता
- ३—समसर्पता
- ४—प्रभावोत्पादकता
- ५—शिष्टता
- ६—सय

इन गुणों पर एक-एक करके संक्षेप में नीचे विस्तरेण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सरलता—पाठ्यालय दृष्टिकोण से यह दीची का प्रथम गुण है। इसमें कवि शोक प्रियता की भावना में प्रेरित होकर इस प्रकार के शब्द वाक्य और मुहावरों का प्रयोग अपनी रचना में करता है। जो सरल है। गार्खामो जो म मा काव्य के हेतु इस विशेषता को स्वीकार है।^१

स्वच्छता—दीची या वृत्तय गुण स्वच्छता है। इसका वाक्य की सजीवता से समिप्राय है। बहुरूप इतना सजीव हो कि पढ़ते ही वह पाठक के समक्ष सजीव हो उठे। यह सजीवता शब्द द्वारा पायी है। अतः यह दीची का अर्थवत् गुण है।

स्पष्टता—दीची का तीसरा गुण स्पष्टता है। इस गुण के आकार पर कवि की भाषा में शब्द और मुहावरों के प्रयोग व्याकरण के अनुसार होने चाहिये। ऐसा करने से शर्ष में स्पष्टता आ जाती है। अतएव यह दीची का अर्थवत् गुण है।

प्रभावोत्पादकता—इस गुण क द्वारा रचयिता पाठक का अपनी रचना द्वारा अभिहित करके उसे अपने में लय कर लेता है। शब्द और शर्ष दोनों क द्वारा प्रभाव उत्पन्न होता है। अतः इसमें शब्दार्थ दोनों ही गुणों का समावेश है।

शिष्टता—इस गुण से प्रेरित होकर कवि अपनी रचना में प्रस्तोत भाषा का परिष्कार करके शिष्ट एवं मार्मिक भाषा का व्यवहार करता है। चूँकि इस दीची सम्बन्धी गुण का समिप्राय भाषा की शिष्टता से है। अतः यह दीची का शब्दवत् गुण है।

सय—दीची का अन्तिम गुण सय है। यह गुण किमा भी रचना में पाठकों को लगम कर देना है। सममें संशय की प्रभावना रहनी है तथा तात एवं सय के द्वारा रचना में शीतलमक स्वर का संचार होता है। सदारमकता शब्दों में होती है। अतः यह दीची का शब्दवत् गुण है।

१ सरल कविता कीरति विमल मुनि आन्तरि मुजान ।

सहज बर विमगई ग्यु जो मुनि करे ब्यान ॥

घंसी के प्रकार—

घंसी का रूप निश्चित करने में भाव उद्भव पात्र बर्ध्न विषय परिचिति धारि घंसी के स्वरूप निर्धारण में योग देने हैं। इन उरवा का ध्यान रखते हुए डा० मगीरज मिश्र अपने 'काव्यपात्र' में निम्नलिखित काव्य रीतियाँ मानते हैं।^१

- १—उरस घंसी
- २—मधुर घंसी
- ३—समित घंसी
- ४—विलप्ट या विहास घंसी
- ५—उदात्त घंसी
- ६—ध्वंय्य घंसी

घंसी के घनेक प्रचलित प्रकारों के ऊपर म म पक यह विभाजन सुन्दर धीर माय्य प्रतीत होता है। यह घंसी के सभी प्रकार काव्य में पूर्ण योग देते हैं। जैसे उरस घंसी द्वारा काव्य में रमणीयता घाती है। ऐसे ही काव्य में मधुरता लाने में मधुर घंसी का योग रहता है। इसमें मधुर धीर संगीतात्मक धब्बों के हाथ काव्य में घटीक सुन्दर मधुरिया के बर्धन होते हैं। साहित्य भी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। जो धम्मवत् सखित घंसी के द्वारा उत्पन्न होती है। विलप्टना भी घंसी का एक प्रकार माना गया है। धोब गुण भी काव्य के हेतु धनिकार्य स्वीकार किया गया है। सम्भवत ह्यो गुण के बर्धन हमें उदात्त घंसी में होते हैं। ध्वंय्य प्रभाव होने के कारण ध्वंय्यता का काव्य में प्रमुख स्थान है। इन गुण की परब ध्वंय्य घंसी में होती है। इस प्रकार उपर्युक्त सभी प्रकार काव्य की कसा में उद्घोषी मिष्ट हो चुके हैं।

घटा घंसी किसी भी बरतु को हमारे सामने जमत्कारिक रूप से उपस्थित करती है। यही बात कला में भी हस्ती है। घटा घंसी का कसा से सीधा सम्बन्ध है। घंसी की सभी विशेषताओं गोस्वामी जी की कृतियों में मिलती हैं जो पाठक पर तुरन्त प्रभाव डालती हैं। प्रभाव की व्यापकता धीर यह तुमसी की घंसी की सरलता कसा के रूप में उनके काव्य में धार्ई हुई है।

साहित्य में ध्वनि सिद्धान्त के यह स्थापन काल में ही बङ्गोत्ति सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक धाचार्य कुन्तक हैं। कुन्तक के समय में धामन्द-बर्ननाचार्य के ध्वनि सिद्धान्त की महत्ता प्रायः सभी धाचार्यों ने स्वीकार करली थी। किन्तु धाचार्य कुन्तक ने ध्वनि के इस व्यापक सिद्धान्त का विरोध कर बङ्गोत्ति काव्यजीवितम् की उद्घोषणा की। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही बङ्गोत्ति किसी न किसी रूप में प्रसृत थी। कुन्तक ने इसे सम्प्रदाय विरोध रूप में प्रतिष्ठित

१ डा० मगीरज मिश्र—काव्यपात्र—पृ० ९०४।

किया। भामहू के मतानुसार यह बाम्बैरग्य का एक रूप है और ममी प्रसकारों का मूल भी यही है।

वीया सर्वत्र ब्रह्माक्षिरगयार्थो विभाम्यसे ।

यत्नेऽस्यां कविना कार्यं काऽनकारोऽनया विभा ॥^१

उम्हो ने ब्रह्माक्षि का विशेषण कृष्ण अक्षिष्ठ स्पष्ट रूप में किया है। उम्होने बाम्बैरग्य को दो भागों में विभक्त किया है। स्वभावोक्ति और ब्रह्मोक्ति। जहाँ प्रसकार विशेष नहीं है वस्तु स्वभावोक्ति क अतिरिक्त प्रसक्तिकारा में श्याप्त अमत्कार क रूप में है। स्तेप के द्वारा ब्रह्माक्षि में सौन्दर्य की वृद्धि होती है।^२ अर्थात् स्तेप प्रायः सर्वत्र ब्रह्मोक्ति में सौन्दर्य को पुष्ट करता है। इस प्रकार स्वभावोक्ति और ब्रह्मोक्ति दोनों प्रलय-असय प्रकार का सौन्दर्य सञ्चित करती हैं।

कुन्तक ने 'ब्रह्मोक्ति जीविन' नामक ग्रन्थ में ब्रह्मोक्ति के महत्त्व और स्वस्व की विपदा व्याख्या की है। ब्रह्मोक्ति को उम्होने काव्य का प्राण माना है।^३ ब्रह्मोक्ति का महत्त्व ने इस प्रकार देने हैं कि बाम्बैरग्यपूर्ण विविध उक्ति ही ब्रह्मोक्ति है।^४ इस 'बैरग्यमयोमण्डिति' को अमत्कार मूलक भी माना है।^५ यमामाम्य अमत्कार पूर्ण पाङ्गाह के उत्पन्न करने वाले बैरग्य वर्णन के लिए अपनी ब्रह्मोक्ति की परिभाषा में स्वयं कुन्तक ने ब्रह्मोक्ति में तीन बातें आवश्यक मानी हैं। कवि शीघ्र या कवि का प्राथम व्यापार अमत्कार और उक्ति।^६ इस प्रकार कुन्तक दम्भ अर्थ को अलक्ष्य और ब्रह्माक्षि को उत्तम प्रसकरण का माधन मानते हैं। वीया कि उनकी इस उक्ति में स्पष्ट है।

१ भामहू-काव्यालंकार २। ८२

२ स्तेप- सर्वानु पुष्पाति प्राया ब्रह्माक्षिषु विषयम् ।

द्विवा मित्र स्वभावोक्तिर्ब्रह्मोक्तिश्चेति काव्यमयम् ॥

—बम्हो काव्यादर्न (२। ३६२)

३ ब्रह्माक्षि काव्य जीवितम् ।

ब० जी० पृ० २२ ।

४ ब्रह्मोक्तिरेव बैरग्यममण्डिति रभ्यते ।

—ब्रह्मोक्ति जीवितम् पृ० २२

५ सोकात्तर अमत्कारकारि बैरग्यमण्डित्ये ।

काव्यम्यायमसङ्कारा कोऽन्यपूर्वा विधीयत ॥

—ब्रह्माक्षि जीवितम् पृ० २२ (१।२)

६ बैरग्यं विरग्यभाव कवि वर्म कोणम् ।

उत्सविष्णिति तथा अणिति विविधैव अमिषा ब्रह्मोक्तिः ।

—ब्रह्मोक्ति जीवितम् १।२ (पृ० २२)

अथावेतदसंज्ञायां तपोऽनुत्तरलक्षणे
 ब्रह्मोक्तिरेव वैदिकप्रमाणं मल्लिनिम्बतः ।^१

घञित्तबहुवचने मी इसी प्रकार दण्ड पीर धर्म की ब्रह्मता उनके लौकीयत्व में प्रतिष्ठित होने पर सम्भव मानी है ।^२

आचार्य ब्रह्मण्डल ने ब्रह्मोक्ति के ६ भेद माने हैं—

- १—बलं विद्यास ब्रह्मता
- २—एव पूर्वार्थब्रह्मता
- ३—एव परार्थब्रह्मता
- ४—वाच्य ब्रह्मता
- ५—प्रकरण ब्रह्मता पीर
- ६—प्रत्यक्ष ब्रह्मता ।^३

दण्ड से सम्बन्ध रखने वाले बलं विद्यास ब्रह्मता एव पूर्वार्थ ब्रह्मता के भेद पर्याप्त ब्रह्मता विद्यास ब्रह्मता प्रत्यक्ष ब्रह्मता कृति ब्रह्मता क्रिया ब्रह्मता एव परार्थ ब्रह्मता कारण ब्रह्मता, संज्ञा ब्रह्मता आदि हैं । पीर धर्म से सम्बन्धित कर्मा क परार्थत दण्ड भेद आते हैं । जैसे कृति वैविध्य ब्रह्मता भाव वैविध्य ब्रह्मता प्रकरण ब्रह्मता प्रत्यक्ष ब्रह्मता आदि । वाच्य ब्रह्मता का सम्बन्ध दण्ड पीर धर्म दोनों में है ।

ध्वनि—

ध्वनि मत्त एव मत्त का विसृष्ट रूप है । इन सिद्धान्त का ध्वनित्व मुख्यतः भाषकों के सम्बन्ध में ही रहते हैं तथा यथा है । यह एक बड़ी वाच्य नहीं होता । प्रकृत ध्वनि ही दृष्टा करता है । इस विद्याद्वारा को ध्वनित्व कर ध्वनित्वध्वनि में ध्वनि को ही वाच्य में प्रधान माना है । ध्वनि दण्ड के लिये प्रसंगिक वैधाकरणा का श्रेणी है । वैधाकरणा स्फोट रूप ध्वनि को ध्वनित्व करने वाले ध्वनि के लिये ध्वनि का प्रयोग करता है । इस मत्त के ध्वनित्व ध्वनि ध्वनि ध्वनि के सहार

१ ब्रह्मोक्ति लौकिकम् १।१
 २ धर्मस्वप्ति ब्रह्मता घञित्तबहुवचनं च ब्रह्मता लौकीयत्वम् ।
 क्वेत्तुमस्तान्तमिति ध्वनित्वध्वनि मत्तकारणस्य लौकिकत्वम् भाव ।
 घञित्तबहुवचन—ध्वनित्वध्वनि लौकिकम् १० २००
 ३ बलं विद्यास ब्रह्मता एव पूर्वार्थ ब्रह्मता ।
 ब्रह्मतायाः करोत्यन्ति प्रकारः प्रत्यक्षत्वम् ॥ १६ ॥
 वाच्यत्व ब्रह्मता लौकिकत्वम् मत्तब्रह्मता ।
 मत्तकारणं ब्रह्मता लौकिकत्वम् विध्यति ॥ २० ॥
 ब्रह्मतायाः प्रकरणं प्रत्यक्षं ब्रह्मता ।
 प्रत्यक्षं ब्रह्मतायाः लौकिकत्वम् मत्तब्रह्मता ॥ २१ ॥
 —दण्ड—ब्रह्मोक्ति लौकिकम्

व्यय की सत्ता वाच्य से पृथक् करदी है। आनन्दवदम क पहले ध्वनि के विषय में तीन मन्त्र थे।

१—ममाववादी

२—मल्लिवादी

३—धनिवर्धनीयवादी।^१

इनका समुचित लक्षण आनन्द की बुद्धि का जन्मकार है। ध्वनि के मुख्य तीन मन्त्र हैं।

१—रस

२—वस्तु

३—मलकार

मलकार के इतिहास में ध्वनि की जन्मना बड़ी ही सूक्ष्म बुद्धि की परिचायिका है। ध्वनि के जन्मकार को पादशात्य धमकारिक भी मानते हैं। महाकवि कादम्बर की मुक्ति *More is meant than meets the ear* में ध्वनि की ही प्रकाशान्तर से सूचना है।^२

ध्वनि क्या है और वहका जन्म में स्थान—

वाच्य से अधिक उत्कर्षक व्यंग्य ही ध्वनि है^३। व्यंग्य ही ध्वनि का प्राण है। वाच्य से व्यंग्य की प्रधानता का अभिप्राय है वाच्यार्थ से अधिक जन्मकार होना। जन्मकार के शारदस्य पर ही वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का प्रधान होना निर्भर है। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ शब्द का अर्थ स्वयं साधन होकर साध्य विनोप विनी जन्मकार अर्थ को अभिव्यक्त करे वह ध्वनि वाच्य है।

ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करने हुए ध्वनिकार लिखते हैं—

यत्रार्थ शब्दो वा तामर्थमुपलभनो वृत्तस्वार्थी।

व्यथा वाच्य विनोप सध्वनिरिति मूरिभिः कथितः ॥^४

अर्थात् जिसमें शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को छिपाये हुए उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं वो वाच्य का परम रहस्य है। यतः यहाँ विधिष्ट प्रकार का उत्तम वाच्य है।

रस यदि वाच्य की आत्मा है तो ध्वनि वाच्य शरीर को जन्म देने वाली प्राण शक्ति प्रवरय है। ध्वन्यालोचकार ने ध्वनि को वाच्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है।

१ बलदेव उपाध्याय—साहित्य शास्त्र पृ० २३

२ बलदेव उपाध्याय—साहित्य शास्त्र पृ० २३

३ रामानुज मिश्र—वाच्य दर्शन—पृ० १२७

४ *Daanjaloka of Anandvardahanacharya—Third Revised*

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति दुर्धर्यं समाप्तावपूर्वं ।
स्तरयामार्थं जयपुरपरं मत्सिमाहुस्तमये ॥^१

ध्वनि सञ्च का तात्पर्यं अनुरागम या वष्टे की सी टन की डेर तक होने वाली
झङ्कार से है। ध्वनिवा घोर लसणा के उपरांत व्यंजना में ध्वनिज होने कासा जय
स्तरक धर्ष ही ध्वनि है। ध्वनि में सञ्च घोर धर्ष ध्वनि स्वयं को क्षिपाये हुए
काव्य के परम रहस्य सम्बन्धी धर्ष की ध्वनिध्वनि करती है। अतः यह उत्तम काव्य
है। मम्मट ने तो स्पष्ट ही लिखा है।

इदमुत्तममतिरध्वनि ध्वन्ये वाच्यार्धध्वनितुं वै कवित् ॥^२

ध्वनि वाच्यार्थ से ध्वनिक उत्कृष्ट ध्वन्य ही निहाली के द्वारा ध्वनि कही गई
है। नाहित्यवर्णनकार का भी यही मत है।

वाच्यार्धध्वनिति ध्वन्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम् ॥^३

इस प्रकार वाच्यार्थ से ध्वनिक जमरकारक ध्वन्यार्थ ध्वनि है। ध्वनि में सञ्च
घोर धर्ष ध्वनी का ही जमरकार निहित रहता है। वाच्यी ध्वन्यार्थ के ध्वन्यवत् सञ्चयव
कसा की विशेषता ध्वन्य है। पर ध्वन्य में अधिकांशतः धर्षयत् कसा से ही सम्बन्ध
रखते हैं प्रधानतया ध्वनि का सम्बन्ध काव्य का कसा पक्ष ही है। यह काव्य कसा के
विशेषण का उत्तम सिद्धांत है।

इसीसिधे इस ध्वनि का काव्य कसा में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि में
ध्वन्यार्थ प्रधान होत है इनमें कसा स्वतः आ जाती है। ध्वनि सञ्च की सबसे महत्व
पूर्ण ध्वनिक ध्वन्यार्थ से प्राप्त ध्वनिक प्रयाग करता है। ध्वन्यार्थ सामान्य धर्ष न होकर
विशिष्ट धर्ष होती है। इसी में जमरकार आ जाता है। घोर रहने की आवश्यकता
नहीं कि इसमें कसा स्वयंमेव आ जाती है। घुंघरी एक घोर भी बात है जिसके
वाच्य पर हम ध्वनि को कसा कह सकते हैं। यह यह कि हम पीछे धर्षकार को
कसा सिद्ध कर पाये हैं घोर धर्षकार के बहुत से मेव ध्वनि में पाये हैं इसलिये भी
ध्वनि कसा है। ध्वनि का विशेषण ही काव्य का विशेषण है। इसको भी पूर्ण ध्वनि
ध्वनिक सम्बन्धी विशेषताओं के ध्वन्यवत् स्पष्ट करते हैं।

रत घोर माव—

माव घोर रत में जो सम्बन्धक गुण हैं—प्रसाद मावुर्ष घोर धोज के
ही काव्य कसा के झङ्कार या माव ध्वनिक रत के कलापक हैं। पूरा रत वर्णन नहीं।

१ Dwaayaloka of Anandvardhanaacharya—Thlrd Revised
Edition 1928 × Page 2

२ मम्मट-काव्य प्रकाश ११४

३ निरवकाश-नाहित्य वर्णन-वर्णन परिच्छेद-पृ० १२६

भाब और रस क बलुन में जो एक प्रकार का चातुर्य होता है वह भी रस और भाब के कसापस के अन्तर्वत ग्रहीत किया जा सकता है ।

भाबों क बलुन में जो धीभित्य होता है वह भी कसा के एक अङ्ग रूप में स्वीकार किया जा सकता है ।

असंख्यक्रम व्यय्य अति रस है । इसमें जा अमस्कार लाने का प्रयास है वह बसा हा कहा जावेगा । गोस्वामीजी की कृतियों में भी भाब और रस निरूपण की कसा अयन पूर्ण रूप में प्रस्तुटित हुई है जिसका हम तुलसी के भाब बलुन और रस निरूपण के अन्तर्वत देखेंगे ।

छन्द और संगीत

छन्द—

छन्द का महत्त्व और उतका वाच्य में स्थान— बहिक युग में छन्द देवताप्रा के प्रसन्न करने के साधन थे । अथ उनकी महत्ता भी देवी और अलौकिक माम सी गई ।^१ छन्द द्वारा संसार की सभी मनोकामनायें पूर्ण की जा सकती हैं । छन्द बिद्वन् की समस्त म तियों से मुक्त करन वाला है । एक बार मृत्यु न देवताप्रा पर आक्रमण किया । देवताओं न मृत्यु के भय से बचने के हेतु वेद बिद्या में प्रवेश कर उन्होंने अयन की मंजा से ङंक लिया । अत आष्यदायन का हेतु ज्ञान के कारण मन्त्रों का नाम छन्द पड़ गया ।^२

अन्त्रों का आधम लकर स्वय देवताओं न रत्न लोक की प्राप्ति किया था ।^३

स्वर बलु और अर्थ संयुक्त ज्ञान करके जो वेद का अध्ययन करता है वह बह्य लोक का भापी होता था ।^४ इसके विपरीत जो अण्वावधानी से छन्द का प्रयोग करता है वह पाप का भापी होता था ।^५

अन्त्रों के अशुभ प्रयोग से पाप की धारणा न बहिक छन्द के स्वरूप की अशुभ और अशोच रूप में संचित रखन में बड़ी सहायता पहुँचाई है ।

इस प्रकार के बिधान का चाहे कोई आध्यात्मिक मूष्य हा या न हा पर इतना तो स्वीकार हो करमा होया कि भाषा की स्थिरता छन्द पाठ की निरवधारण कता और अकारण की बिगुडि में यह बिचार सहायक रहूँ है ।

१ डा० पुनू सात सुबन—आधुनिक वाच्य में छन्द योजना—पृ० ३१—
प्रथमावृत्ति ११००

२ देवा न मृत्याविभ्यतरकपी बिद्या प्राविशायसत ।

छंदोभिरष्टादशयम् वेदे धिरष्टादश स्तष्टन्दसा छन्दस्त्वम् ।

प्रवाक २ चौका लख प्रपाठक १ छन्दोभ्योरनिपद

३ छन्दोमिहि देवा स्वय साक समारुपते

छठपय बाह्यण २।३।४।२

४ पालिनीय पिप्सा ११

५ पालिनीय पिप्सा ५ ११

सध्यकाल में छन्दों का ऐहिक महत्त्व बढ़ता ही गया। काव्य शास्त्र के छन्दों में घादि से छन्द की व्यवहारिक उपयोगिता का पता चलता है।

प्रणव या उद्गोत ही छन्द सृष्टि का घादि रूप है।^{१)} यही छन्द विश्व कमल पर मृग की मति पुंजार कर रहा है। इसी से नयी बिद्या की छन्दोमयी विचार-प्रणैक कवि कण्ठो से फूट कर समाज को घाप्साहित करती रही है। मायावेय से छन्द के जन्म का विज्ञान्त प्रतीक रूप से रामायण कार की कौन कथा से व्यक्त होता है। कौन वन से ऋषि को रामपूति पर घावात हुआ और तन्वन्तित कदसा संस्कृत काली में स्लोक के रूप में फूट पड़ी।

मा निपाद प्रतिप्यंत्वमपमः घास्वतीस्वमा ।
यश्चैव-निष्ठुनादि कमवपी काम मोहितम् ॥^{२)}

भी रवीन्द्र माय ठक्कर का बिस्वास है कि यही कवि का माप छन्द को बाह्य बनाकर घन तक चल रहा है। और घास्वत रूप से कास कालांतर से प्रणैक कण्ठो से व्यनित हो रहा है। इस घास्वत कथा को प्रकाशित करने के हेतु छन्द हैं।^{४)} जार्ज रोड्सवरी प्राचीन छन्दों का विकास प्रकृति की व्यनितता से मानते हैं।^{५)} जो भी हो यह

- १ प्रणवस्तन्वसामिवा रघुबंध प्रथम सर्ग ११--कालिदास
- २ उदसीक-ठेनीक नयी बिद्या बचते।

ऋतु यत्तु और घाम।

छांदोग्य उपनिषद् अण्ड १ प्रकाक ६

- ३ निपाद विज्ञान्द्रवर्जतात्वं-इसोकरत्व-मापपठ यस्य पाकः रघुबंध १४ सर्ग ७० कालिदास।
- ४ सेइ जगम कविर घाप घास्वत कालैर कण्ठे व्यनित होय रहत। पर

पूटिते बाह्यो।

क्रिन्तु सेई घादि कविर घाप घास्वत कालैर कण्ठे व्यनित होय रहत। पर घापवत कालैर कथा के प्रकाश करवार जगहती छन्द।

रवीन्द्र प्रणवसमी माय २१ व २६१

5 Its origin is quite unknown but presence of closely allied forms in the different scandinavian and tentonic languages assures beyond doubt a natural rise from some speech rhythm and time rythum proper to the race and tongue. It is also possible that the remarkable differenc of length-short normal and extended with is observable in O F poetry is of the highest antiquity It has at any rate preserved to the present day in the metrical successor of the line and there is probably no other poetry which has at a majority of its periods if not through out indulged such a variety of fine length as English. Nor perhaps, is there any which contains ever in its oldest

निश्चित है कि मनुष्य को प्रकृति से ही छन्द का दान मिला है। निर्धरा का निनाह पत्तों का मर्मर समीत पवन का समसन नदियों का कल-कल बादलों की रिमझिम पक्षियों का कल गायन वृक्षों का सवेग कम्पन मानव के छव संस्कार बनाने में सहायक व्यवस्थ हुआ है। प्रकृति के गायन और नर्तन से मानव ने बहुत कुछ सीखा है। सर्वप्रथम भाषावैग न भविकसिद्ध मानव को समष्ट्य प्रदान किया हुआ। जिसे मानव ने प्रागे बसकर साहित्यिक छन्द का रूप प्रदान किया।

कविता में भी छन्द याचना का बड़ा योग है। पद्य और छन्द का सम्बन्ध बहुत पुराना है। भारतविषया तो यह है कि छन्द को कवि के अन्तर्गत की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। जिस पर नियम का बन्धन आरोपित कर दिया है। अन्धा भी सहायता से ही कविता गद्य की अपेक्षा मानव के हृदय के अधिक निकट है और वह रसात्मकता करने में समर्थ भी हो सकती है। अतः कविता में उसका स्वाभाविक गुण की साधना के हेतु छन्द या लय का बन्धन आवश्यक नहीं। अतिसु अनिवार्य भी है।

छन्द कविता में बचन को गति प्रदान करता है। जैसे नृत्य। इस गति में आकर्षण होता है और इससे विषय-विषय भाव जागृत होते हैं और उनको अभिव्यक्ति होती है। समीप को भी इस छन्द विधान से सहारा मिलता है कविता में अन्ध याचना में बलि का ध्यान रखते हुए जो शब्दावली बाली जाती है उसमें कला के दर्शन होते हैं। छन्द में इस कला को कई प्रकारों से देख सकते हैं जैसे :-

- १—छन्द में प्राये हुए सभी शब्द सार्थक और द्विचिह्न अर्थ की धामा से युक्त हैं। भरती के नहीं।
- २—इन शब्दों से छन्द में एक स्वाभाविक प्रवाह और जो रमणीयता पाती है इसमें कला क दर्शन होते हैं।
- ३—छन्द बचन में जहाँ बर्णन की अनुकूलता पाई जाती है।
- ४—छन्द जहाँ पाठ और भाव के अनुकूल हैं।
- ५—छन्द जहाँ प्रबन्ध को प्राये बढ़ाने में सहायोगी होकर पाते हैं।

यह बातें हैं कि कला के अन्तगत पाता है और वह छन्द में भी पाई जाती है अतः छन्द में भी कला हमें विभिन्न रूपों में मिलती है। पोस्वामी जी तो अपनी कलात्मक छन्द याचना के हेतु प्रसिद्ध हैं। जिसकी विवेचना हम उनके 'छन्द और सम्बन्ध कला' प्रकरण के अन्तर्गत कृपया रूप से प्रस्तुत करेंगे।

and roughest form of a metrical and a quasisymmetrical arrangement more closed to the naturally increased but no deratutalized emphasis of impassioned utterance more through-ly born the primeval oak and rock.

संगीत

काव्य और संगीत का सम्बन्ध और काव्य में संगीत की आवश्यकता—बस सम्पूर्ण सृष्टि और मानव के कण-कण में संगीत व्याप्त है तो साहित्य में भी संगीत का होना अनिवार्य है। काव्य या साहित्य का निर्माण भी तो संगीत प्रिय मानकों में ही किया है। काव्य के समस्त धर्मों में संगीत का किसी न किसी रूप में थोड़ा बहुत योग्य प्रवेश रहता है।

कविता को सुन्दर बनाने के लिए उसके सुन्दर पाठ तथा रसास्वादन के हेतु संगीत अपेक्षित है। Shenstone ने कहा है कि कविता तथा पद्य की वे ही पंक्तियाँ सबसे अधिक स्मरणीय तथा उद्धृत की जाती हैं जो सर्वोत्तम होती हैं।¹ A J Ragon ने संगीतमय शीतो की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है :—

When falls the soldier brave
Dead at the feet of wrong
The poet sings a guards his grave
With sentinels of song.²

संगीत पूर्व काव्य में प्रतिष्ठित सम्बन्ध है। एडगर एलेन पी कविता को शीतल्व की संगीतमय सृष्टि कहते हैं।³ कारबायन ने संगीतमय विचारों को ही काव्य कहा है। उसके शब्दों में कविता मनोबोधमय और संगीतमय भाषा में मानव पद्य करण की पूर्ण और कामायक व्यञ्जना करती है।⁴ थामसॉड आस्टिन का कहना है कि कविता में और क्लियर ही कुछ नया न हो पर यदि वह संगीत विहीन और धर्म की रमणीयता से विहीन है तो फिर वह कविता नहीं है।⁵ सार्टे नायरन का कथन है कि जब मनुष्य के माद और इच्छाएँ प्रतिम सीमा पर पहुँच जाती हैं तब वे कविता का रूप धारण कर लेती हैं।⁶ भारत में कविता पद्य के सिवा कुछ भी नहीं। फुलर के अनुसार कविता पद्यों के रूप में संगीत और संगीत के ध्वनि के रूप में कविता है।⁷ जो नामक धमरोकन साहित्यकार ने संगीतमय सम्बन्धों को ही कविता कहा

1 The lines of poetry the periods of prose and even the text of scripture most frequently recollected and quoted are those which are felt to be preeminently musical

The New Dictionary of Thoughts—Page 414

—Page 27

3. Baet Lates Camellar —Quotations Page 196 (J)

4 Best quotations for all Occasion—Page 125

५—प्रधान संगीत समिति प्रधान साहित्य संस्करण १९२६ पृ० ११।

६—माधुरी। पीप ११० पु० सं १११० सन् १९१३ भाग १ पृ ७३५।

7 The New Dictionary of thoughts—Page 470.

है।^१ काव्य और संगीत के स्वामाबिक सामंभत्य को श्री मैथिलीशरण गुप्त ने क्लिती सुरवर रूप में प्रकट किया है।

केवल मात्र मयी कसा, ध्वनिमय है संगीत
मात्र और ध्वनिमय समय, वय कवित्व वय नीति ॥

कविता और संगीत का समन्वय ही काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। श्रेष्ठ काव्य में संगीत का स्वात प्रत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत है।^२ संगीत प्रस्फुट और वेदना सामित्य शब्द, धर्म मात्र सत्य, कल्पना, माधुर्य प्रवाह, कसा एहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति चमत्कार प्राकृतिक समाह हृदय का भासना एवं सस्सास पूर्ववसी स्मृतियों से बिलसित अचानक प्रस्फुटित होने वाली रचना कविता के नाम से पुकारी जाती है।^३

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में संगीत का योग प्रावश्यक माना है, काव्य एक बहुत ही व्यापक कसा है। बिच प्रकार भूत विधान के हेतु कविता बिच विधा की प्रयासी का अनुसरण करती है। उसे प्रकार मात्र सौन्दर्य क हेतु वह कुछ-कुछ संगीत का सहारा लेती है। मात्र सौन्दर्य से कविता की धानु बड़ती है। मत्र मात्र सौन्दर्य का योग ही कविता का पूर्ण स्वरूप लड़ा करने के हेतु प्रावश्यक होता है।^४

कसाओं में काव्य कसा संगीत कसा की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए प्राचार्य ललिता प्रसाद भी शुक्ल ने काव्य तथा संगीत को एक दूसरे का पर्याय माना है। कहते हैं काव्य और संगीत कसा की अख्य सीमा है। शब्दावसी और भावनाओं के सजीव बिचण जब तात और स्वर में बँबकर क्लिती ऐसे हो प्राग्य बिधान में सजकर व्यक्त होते हैं बिचके द्वारा समन्वय की प्रतिष्ठापना हो जाती है और रच का प्रभाव समझने लपटा है ती उसे ही काव्य या संगीत कहते हैं।^५

इसी प्रकार संगीतकों का कहना है कि संगीत को कविता से अलग करवा उसके प्रभाव तथा महत्व को बहुत न्यून कर देना है। प्रायनाचार्य पं० बिष्णु बिगम्बर भी का मत है।^६ संगीत और काव्य का जब मेस होता है तब सोने में सुगन्ध धा जाती है। सरस्वती की बाणी पुस्तक का मेस इसी का दिग्दर्शन है।

१ बिद्याभ भारत नवम्बर १९४९ पृ० ३२७।

२ गुलाब राय—सिद्धान्त और अध्वयन—पृ० १११

३ भावरा कुमार—समाज और साहित्य—पृ० २३।

४ रामचन्द्र शुक्ल—बिन्तामणि प्रथम मात्र—पृ० १७९-८०।

५ ललिता प्रसाद शुक्ल—साहित्य विज्ञान—द्विती और त्रितीय का साहित्यिक आदान प्रदान शीर्षक लेख—पृ० १३।

६ प्राधुरी—दिसम्बर १९२७ प्रायनाचार्य पं० बिष्णु विगम्बर जी से आधाव—मुद्रक वर प्राग्देव पृ० ७०२।

यद्यपि साहित्य धीरे संकीर्ण पुस्तक-पुस्तक भी सच्चे मानव को प्रदान करते
 वाले हैं। बिना संकीर्ण के काव्य के लक्ष्य नोटि के संकीर्ण का सूत्रन हो सकता है।
 जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते हैं तो उस समय हमारा हृदय मानव
 विभोर हो जाता है। उसी प्रकार सुमनुर संकीर्ण की प्थि काग में पढ़ने से प्रसन्नता
 का पाठ्यकार नहीं रहता। तथापि दोनों का सहयोग होने में सुव्यक्त उत्पन्न कर देता है।
 काव्य तथा संकीर्ण कला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी दोनों अर्थों में काव्यो
 काव्य तथा संकीर्ण का पारस्परिक विरोध सर्वथा असांख्यनीय है। सहयोग तथा एकता
 में ही दोनों की उन्नति धीरे प्रगति उत्कर्ष प्रतिष्ठित है।

अब हम विभिन्न कला वृत्तियों पर विचार करते हैं धीरे कलाओं के मूर्त रूप
 पर दृष्टि डालते हैं तब हमें कला की विभ्रता के दर्शन होते हैं अस्तु कला का बाह्य
 व्योकरण करना अनिवार्य हो जाता है।

साहित्यकारों ने कला का विभाजन करते हुए उसके दो रूप ठहराये हैं एक
 तो उपबोनी कला धीरे ब्रह्म ललित कला। उपबोनी कला में बहुरी सुधार लोहार,
 राज धारि पाठे हैं धीरे ललित कला के अन्तर्गत अस्तु कला। सभी कलायें उन्नति
 एवं विकास की ओतक हैं अन्तर केवस इतना ही है कि एक का सम्बन्ध मनुष्य को
 धारीरिक धीरे धारिक उन्नति से है धीरे ब्रह्मरी का उसके मानविक एवं धारीरिक
 विकास से।

प्रत्येक पंक्ति के साथ कविता का धीरे प्रत्येक धारोह तथा धबरोह के साथ
 संकीर्ण का प्रभाव धाये बढ़ता है। जिस का हम एक धोर से ब्रह्मरी धीरे धवि से धारों
 जिस प्रकार बाहें देल कर समान धान्य प्राप्त कर सकते हैं। पर कविता धीरे
 संकीर्ण में नति धाये की धीरे बढ़ती है।^१

गायक धीरे कवि दोनों ही सत्वा का एक धर्म है। गायक धाने धाने को
 बढ़ते हैं कवि धर्म का भी उत्पत्य धाने ही धाना होता है।

संकीर्ण कला का संवाहक नाद है। काव्य धर्मों का एक विशेष धारोह, धबरोह
 संकीर्ण या तारतम्य है। धर्म एक धीरे जहाँ धर्म की भावधूमि पर पाठक को से जाते
 हैं। जहाँ नाद के द्वारा धामय विधान भी करते हैं। काव्य कला का धाधार भाषा
 है। जो नाद का भी विद्युतित रूप है। अस्तु काव्य धीरे संकीर्ण दोनों के धास्वादन
 का माध्यम एक ही है। केवस अन्तर इतना है कि एक का धाधार नाद का धर
 ध्यनधारक स्वधर है। ब्रह्मरी का धाधार नाद का स्वधरक धारोह धीरे धव
 रोह है।^२

काव्य धीरे संकीर्ण दोनों ही समय पर धवलम्बित हैं। काव्य की रचना धर्मों
 में होती धारि है। धीरे धर्म ही के धाधार पर कवि धपने धानों की काव्य कला का
 रूप देता है।

१ हमारी प्रताप टिबेरी — साहित्य का मर्म — पृ० ११।
 २ हमारी प्रताप टिबेरी — साहित्य का मर्म — पृ० ११।

छन्द सय १ के ही माधार पर टिका हुआ नाच बिधान है। छन्द में प्राण प्रतिष्ठा करने वाला यही तत्व है। छन्द धीरे सय एक दूसरे के प्रेरक हैं। बिना एक के दूसरे की गति सम्भव नहीं। छन्द का माधार भी तब है।

प्राचीन युग में छपाई की सुविधा तो थी नहीं फलस्वरूप संघोतस स्वरों को सय में बाँध कर पामा करते थे। कबिता भी कबि सय के सहयोग से स्मारक रखत थे। निरुक्त की प्रवृत्ति न होने क कारण उन्हें यही प्रणामी सरल प्रतीत हुई। सय की समानता के कारण ही छन्दों में बन्नी हुई कबिता में जो माधुर्य तथा मीत्र मयी मनुमूर्ति होती है। वही रसानुमूर्ति संघीत में भी प्रस्फुटित होती है।

भारतीय संघीत तथा काव्य दोनों का बिकास प्रकृति के कोङ में हुआ है। कबि वहीं से संघीत के हेतु प्रणया पाठा है। धीरे संगीतज्ञ वही से कबिता के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रकृति क प्रणु-अणु में सजीव संगीत व्याप्त है। अतः प्रकृति संघीतज्ञ को संगीत की प्रेरणा देती है। अमरों की गुजार पक्षियों का कसरत करने की कस-बल संघीतज्ञ के संगीत को माधार बिसाये है।

प्राकृतिक सौन्दर्य का रहस्योद्घाटन कर उसके रस में डुबो देना ही साहित्य की सर्वोपरि बिलोपता है। काव्य मनुष्य धीरे प्रकृति की छबि है। वह कबि (मनुष्य) धीरे प्रकृति को मूलतः परस्पर समीक्षस्य करत हुए मानता है। धीरे मानता है मनुष्य क संगीत को। स्वभावतः प्रकृति के अत्यन्त सुकुमार तथा रोचक तत्वों का वर्णन है।^१ प्रकृति अमृगुष्टन बती है। कबि कौतूहल पूर्ण है। इसी कौतूहल वृत्ति के कारण कबि उसके धीरे आकर्षित होता है। धीरे उसके सौन्दर्य पर रक्त कर धारम विमोह हो जाता है। कबि सुय-बुध मुनाकर उसी के गीत गाने सगता है। सत्य तो यह है कि प्रकृति से पाये आनन्द को तथा कौतूहल को प्रकट करन के हेतु कबि ने काव्य की धीरे संघोतस से संघीत की रचना की।

संघीत धीरे साहित्य बोना ही हृदय से उत्पन्न होते हैं। किसी बिलेय मनोवृत्ति की मनुमूर्ति में हृदय के अन्तरतम से निकली हुई भाषा की तीव्र धारा की उत्पत्ति का

१ समय की आज का नाम सय है। दास्य कारणों से संघीत को सय ही प्रकार की मानी है यानी सय क हीन मय है। द्रुत मध्य तथा बिसम्बिध। बिसम्बिध गति की सय अत्यन्त मन्द होती है। बिसम्बिध सय की गति मध्य सय की होती है तथा द्रुत गति की सय मध्य गति से बुझी होती है। —संगीत सीकर—पृ० ११४

2. Poetry is the image of man and nature — "He (Poet) considers man and nature as essential by adopted to each other and the mind of man as a naturally the mirror of the finest and most interesting properties of nature

Loel—Critic by George Saintsbury—Wordsworth on Poetry and Poetic Diction preface to Second Edition of Lyrical Ballads

काव्य होती है। हृदय के भावुक सुकुमार प्रातिरिक समझे हुए कव्यार संगीत और काव्य की इन प्रथा में बिलर पड़ते हैं और भावों के सहयोग से संगीत क्लित उठता है, और संगीत के लीनर्ब से भाव। वही दूसरी ओर भावों को काव्य से अनुपम संगीत मिलता है और भावों के सुन्दर समन्वय से संगीत व्यक्तता उठता है।

जब इन काव्य और संगीत के रसियों की ओर दृष्टि जासते हैं तो हमें दोनों का एक ही ध्येय प्राप्त होता है। अनुपम जीवन का महत्तम ध्येय प्राप्त करना है। यह ध्यानसे उच्च साहित्य तथा संगीत दोनों ही कलाओं के द्वारा प्राप्त होता है। काव्य और संगीत का सम्बन्ध केवल-कोक से होने के कारण उसका मूल रूप की क्लृप्त की भाँति धन्य और प्रकाशमय है।

साहित्य और संगीत दोनों में ही हमें रसानुभूति प्राप्त होती है। दोनों में ही हमारे और कलाके की सक्ति है और दोनों का ही अद्वैत ध्यात्मा को प्रभावित करता है।

इन्हीं सब धारों पर बहना या लफटा है कि संगीत काव्य कला का प्रमुख सहयोगी उपकरण है। जो काव्य में लयव्यक्तता और सृष्टि संपूर्णता की सक्ति करता है। जो हमारी तुलसीदास की संगीत के बड़े पंडित के जिते हम उनकी संगीत और विद्यात्मक विशेषताओं में देखेंगे।

काव्य कला और विषयता—

कला के कुछ विवेचन करने वाली में कविता और विषय कला की वृत्त कुछ एक सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने विषय को देखा जब कविता और कविता को हमें हाथ विषय बतलाया है स्पष्ट पूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जावेगा कि कविता और विषय कला में अन्तर है। पर इसके होते हुए भी इसमें वृत्त कुछ मिश्रता है।

काव्य कला यदि कील कला है किन्तु विषय कला स्वामी कला है। काव्य में शब्दों की सहायता से क्रियाओं और घटनाओं का वर्णन किया जाता है। कविता का प्रवाह समय हाथ कला हुआ नहीं है। समय और कविता दोनों ही प्रगतिशील हैं। इसलिये कविता समय के साथ परिवर्तित होती जाती क्रियाओं घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन सर्वाधिक रूप से कर सकती है। विषय कला स्वामी होने के कारण समय के एक पल को कलाओं के बल एक रूप को प्रतिष्ठित कर सकती है। विषय कला में केवल पदार्थों का विषय ही उठता है। कविता में परिवर्तनशील परिस्थितियों में घटनाओं और क्रियाओं का वर्णन ही उठता है। इसलिये बहना या लफटा है कि कविता का क्षेत्र विषय कला से विस्तृत है। कविता हाथ स्पष्ट क्रिये हुए एक एक भाव और कभी-कभी कविता के एक-एक शब्द लिये प्रलय प्रलय विषय उपस्थित किये जाते हैं। किसी पल में कविता पदार्थों का सहायता लेती है और विषय कला समय के द्वारा प्रभावित होती है। किन्तु विषय और कवि दोनों ही वस्तुता के क्षेत्र से व्यपने

निम्न का संकलन करते हैं। यही है काव्य कला और चित्रण कला की समानता और अंतरात्म्यता। पर काव्य में चित्र कला का भी योग उन्मै सुन्दर बनाता है।

प्रबन्ध साधना की कला —

सभी एक काव्य कला के जिन अंगों पर विचार किया गया है वे काव्य के सभी प्रकारों से सम्बन्ध रखते हैं। पर काव्य का महत्वपूर्ण भेद प्रबन्ध है। जिनमें कि कला साहित्य और नाटक की विशेषताओं का बहुत कुछ समावेश हो जाता है। महान् काव्य की प्रबन्ध साधना कला कथामय से सम्बन्धित है। जिसमें विभिन्न कथा पात्रों को विशेषता सम्मिलित होती है। अतएव प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत कला क प्रबंध में कला संघटन अर्थात् चित्रण और सम्बन्ध योग्यता सम्बन्धी कला पर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

कथासंघटन — प्रबन्ध के हेतु कथासंघटन का यही महत्त्व है। क्योंकि इसी पर सारा प्रबन्ध आधारित होता है। कथासंघटन में प्रवाह और घटनाओं का यथास्थान संघटन होने से ही कला आती है। जिसका पूर्ण विवेचन तुलसी का प्रबन्ध शौच्य और अर्थन बद्धि' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा।

संवाद — संवादों का वास्तविक ज्ञान नाटक है। नाटक में ही संवादों का महत्त्व होता है। संवादों के ही कारण नाटक बनते और बियड़ने हैं। काव्य या कहानी में कथोपकथन या संवाद का महत्त्व सामान्य होता है। फिर भी उनकी उपयोगिता नहीं की जा सकती। यदि किसी-किसी कथा काव्य में बीच-बीच में संवादों की योग्यता से आये तो उससे जीवन का जाता है।

संवादों से यही हमारा समिन्धन पात्रों द्वारा कथा की धारा में जोड़ छोड़ के उत्तर से है। इस प्रकार का अति सुन्दर संवाद कालिदास के 'कुमार सम्भव' में पाया जाता है। वही बहुतकर दिग्ग ने संकर के रूप, गुरु और स्वभाव क सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दरता से उत्तर प्रति उत्तर दिये हैं।

प्रबन्ध कला में संवाद का होता निदान्त आवश्यक है। इस नाटकीय बद्धि से पात्रों के अन्तर्गत चित्रण का विकास स्वयं ही कुशलता से हो जाता है। जिस काव्य में यह संवादात्मकता का गुण शेषता और असाध्यता के अथ प्रबन्धित किया जाता है। अमरं मनोरंजकता स्वाभाविकता और रसायनता का जानी है। इस प्रकार के पात्रों द्वारा वार्तालाप में पात्रों का उत्कर्ष प्रपञ्च अथवा प्रपञ्च तथा पात्रों का स्वभाव और अर्थ विचार आदि सभी कुछ वाठरों या घोटारों के समक्ष मजबूत रूप से चित्रित हो जाता है। इन कसौटी पर कथने से भाग्य के मन्त्र बड़े ही मजबूत और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र में कवि की कला पूर्ण रूप से निरख आती है।

संवाद किसी विषय को लोभ कर वही अर्थिक सुबोध बनाने में ही सहायक नहीं होने अतः विषय प्रपञ्च कवि को अपना गन्तव्य बनाता और अर्थ व्यक्त

दृष्टता के भी स्रोतक होते हैं। सोक भाषा में प्रचलित मुहावरों बहामती धीर तथा नकी का बड़ा हो हृष्यहायी समास होता है। अलम कोटि का संवाद रखने भासा कवि किसी भी भाषा धीर साहित्य में प्राणित उत्पन्न कर सकता है।

वरिष्ठ चित्रण—

यद्वाक्यम् में लक्ष्य सिद्धि का सबसे बड़ा सामान्य पात्रों के वरिष्ठ चित्रण की कला ही है।

वरिष्ठ चित्रण का अन्वय नहीं है कि उसमें पात्रों के आरम्भिक स्वभाव का परिचय हो सके। वरिष्ठ चित्रण महाकाव्य का प्रभाव रच्य है।

काव्य में लोच्य के साथ वरिष्ठ चित्रण का भी प्रश्न उपस्थित हो जाता है। आत्मन्य के प्रथम भाग में अलक्ष्य रूप धीर वरिष्ठ चित्रण कुछ था जाता है। यद्यपि हमारे बहो नायक धीर विवेककर प्रायिकार्यों का बर्तन हास्यास्पद कोटि तक पहुँच गया है। तथापि हमारे बहो व्यक्तित्व की प्रबलता नहीं की गई। नायकों में ही व्यक्तित्व काशी रहना है। बीरोहात नायक राम धीर युधिष्ठिर का व्यक्तित्व निम्न है। इनी प्रकार दुष्मन्त अजयन धारि धीर समित हैं।

सामान्य धीर विधिष्ठ का सम्बन्ध ही वरिष्ठ चित्रण की मूल समस्या है। यदि पात्र अधिक सामान्य की ओर जाता है तो उसका अस्तित्व नहीं रहता। यदि वह सामान्य से बहुत दूर जाता है तो पात्रक अथवा विधिष्ठ बहलाने सम्यता है इसलिये सफल पात्र के ही हैं जो सामान्य से दूर न होते हुए भी अपनी विशेषता बनावे रखते हैं ऐसे पात्रों को जो कुछ सामान्य से मिलता है वह उसका सामान्य संघ होता है धीर जो व्यक्ति स्वयं अपनी पाँठ का लाठा है वह उसका वैयक्तिक भाव होता है। फिर भी कुछ पात्र सामान्य की ओर अधिक मुके हुए मरत होते हैं धीर व्यक्तित्व की ओर मुके हुए पात्र अपेक्षाकृत पेशीदा। किन्तु वह बात निरन्तर रूप से स्वीकृत नहीं हो सकती। मानस की संघटन सामान्य पात्र है अपनी आन्तरिक की द्विष्ट कामना इधर उधर लवाने की प्रकृति उसमें प्रायः शीकरानियों की ही है। किन्तु वह दो प्रकृतियाँ सबमें एक रूप से नहीं हो सकती। इसी में व्यक्ति की विशेषता था जाती है।

यदा वरिष्ठ चित्रण महाकाव्य, अथवा काव्य मुक्तक नाटक, उपन्यास कहानी प्रायः सभी में कोई बहुत मात्रा में होता है। किन्तु सबसे विविध प्रकार से।

वरिष्ठ चित्रण के अन्वयत कला का अन्वेषण हीन पत्रों के द्वारा होता है।

१—प्राचीनक व्यक्तित्व जैसे माकस में परचुराम के रूप का चित्रण किया गया है।

२—बौद्धिक कुछ इतने पात्र के अन्वयपूर्ण कार्य करते हैं।

३—हासिक कुछ जैसे बीरवा।

उपसंहार—

सत सत्य धोर धर्म हींसी कसकार स्वनि ह्यर रस संमीत प्रबन्ध यादि काव्य कसा के प्रमुख धर्म हैं जिनके बिना काव्य कसा की कल्पना भी नहीं की जा सकती । यह काव्य कसा के सभी उत्क कवि कुल मुहुट मणि गोस्वामी तुससी दास जी की कविता में बड़ी ही प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं जिसका विवेचन एक-एक करके प्रस्तुत प्रबन्ध में यथास्वात धामे क्रिया आयमा ।



तुलसी का काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण

महाकवि तुलसीदास हिन्दी काव्य यम के सबसे दीप्तिमान गद्यन हैं। उनकी काव्य प्रतिभा और पंक्ति का प्रभाव दस काल की सीमा का अतिरमण कर मात्र सर्व कालिक और सार्वभौम हो रहा है। उनकी समेक काव्य कृतिमां अग्रणी प्रसूत मात्र सामग्री अनुपम अविष्कृत कौशल के कारण हिन्दी काव्य क्षेत्र में सर्व स्रेष्ठ सम्बन्धी जाती है।

योस्वामी तुलसीदास की कविता का आदर्श लोक-जीवन का कल्याण का धीर स्वान्तः सुखाय का अर्ह्य रखते हुए भी उनकी कविता परमन्तः सुखान की बतनी ही थी।^१

योस्वामी तुलसीदास जी के काव्य सिद्धान्तों पर विशेष प्रकाश नहीं वाला है। किन्तु उन्होंने संक्षेप में मूल रूप में जो मानस में निरख दिया है। वह उनके कवि भार काव्य के रचन बानने के हेतु पर्याप्त है। नीचे विभिन्न धीर्वकों के अन्तर्गत इन यास्वामी जी के कवि और काव्य सम्बन्धी विचारों की विशेषता कर रहे हैं।

काव्य का स्वकथ—

योस्वामी जी का कवि शब्द से क्या तात्पर्य है इस अकरण में यह भी जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। मानस के आरम्भ में योस्वामी जी ने लिखा है :—

कवि न होत नहिं शत्रु प्रवीण । सकल कथा सब विद्या हीन ॥

एतन् कर्हो जित्ति कायब कोरे।^२

इस का अर्थप्राय यह नहीं कि वे कथारमक जान से मूर्ख थे। तुलसी की एत उक्ति का यही अर्थिपाय हो सकता है कि कवि शब्द के विषय में उनका यह दृष्टिकोण है कि कवि वह अत्यन्त प्रतिष्ठित है और ऐसी शैल के बिना उसे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। योस्वामी जी तक दिन पूर्ववर्ती कवियों की रचनायें वही सुनी थीं। निस्संदेह वे विषय प्रतिभा सम्पन्न थे। तभी धार्मिक युग के अग्रस्त साधनों के अभाव में उनकी कृतिवां इतने काम तक पीवित रह सहीं और धाम भी बनका माल है। अतएव यदि तुलसीदास कवि शब्द का प्रयोग वास्तविक अर्थ का लिराम जैसे साहित्य-कारों के हेतु ही करना चाहते हों तो कोई धारणयों की बात नहीं और इस दृष्टि में

१ काव्यसागर का दृष्टिकोण—डा अयोधम निध—पृ० १४३

२ मा० बा० १५

कोई भी व्यक्ति अपने लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग करने की धृष्टता नहीं कर सकता। कारण ऐसा करने पर वह समझा जायेगा कि वह अपने को उन देवी शक्ति से सम्पन्न समझता है। तात्पर्य यह है कि कविता के स्वरूप के सम्बन्ध में वह अपना स्पष्ट मत प्रामाण्यपूर्वक करते हुए कहते हैं कि कविता उस महत्त्व पर की प्रतिकारिणी है जिसकी समता कोई भी लौकिक विभूति नहीं कर सकती जिसकी प्रामाण्यपूर्ण निम्न पंक्तियों में हाथी है —

भगति हेतु विधि भवन बिहाई । सुमिरत सारब भावति बाई ॥
 राम चरित सर विभु प्रह्वबाये । सी भम जाहि न कोटि उपाय ॥
 वेहि पर कृपा करहि जन जानी । कवि सर प्रमिर नबाबहि बानी ॥^१

स्पष्ट हो है कि जब सरस्वती उस भौतिक शक्ति के वशीभूत होकर बीड़वी जमी धारी है तब यही सिद्ध होता है कि कविता वास्तव में महत्त्व पर की प्रतिकारिणी है।

काव्य की उत्पत्ति —

गोस्वामी जी ने काव्य की वस्तु पर विद्यमान ध्यात विधा है और यह माना है कि काव्य एक पवित्र वस्तु है क्योंकि इसमें राम नाम बीसी पवित्र वस्तु का मान किया गया है। लिखा भी है।

एहि मङ्ग रघुपति नाम उपास । प्रति पान्न पुरान् भुति सारा ॥^२
 उन्हुनि एक प्रम्य रचान पर लिखा है ।
 भाखर परब प्रसङ्गति माना । रघु प्रबध प्रनेक विधाना ॥
 मान मेर रस मेर उपास । कवि रघु प्रुन विविध प्रकारा ॥^३

यस्य विज्ञान प्रमिधा लक्षणा रीर व्यजना शब्द शक्तियों के द्वारा विभिन्न वर्णों का प्रतिपादन, प्रसकार शब्दों की विविधता रसों का वर्गीकरण कविता में प्रथम प्रसाद धारि गुण तथा सदसीलता धारि दोष इन बातों का पूर्ण प्राणित्य गोस्वामी जी में विद्यमान था। रस विषयक इनकी एक उक्ति धर्म्य भी मिलती है।
 यद्यपि कवि रस एकत नाही ॥^४

यह एक महत्ता सूचक वाक्य प्रत्यक्ष है। किन्तु इतसे यह सात होता है कि काव्य की सुन्दरता के हेतु गोस्वामी जी राम की भी प्रतिभार्यता स्वीकार करते थे।
 गोस्वामी जी ने शक्ति धर्मनि वसा की भी मराहना की है किन्तु काव्य की भूत प्रेरणा की कवि इत नहीं प्रभु इन माना है।

- १ मा० बा० पृ० १३
- २ मा० बा० पृ० १०
- ३ मा० बा० पृ० ११
- ४ मा० बा० पृ० ११

धारवा शक्ये नारि सम स्वामी । राम मुख पर धरारवामी ।।

वेदि पर कृपा करेहि जन जानो । कवि सर धरि नचानेहि जानो ॥११

भाव है राम कठमुठमी सरस्वती को नचाने वाले हैं । श्रीर जिस पर भी उगरी कृपा होती है । वह उच सरस्वती का उची के मानन में नचाने हैं । इससे स्पष्ट है कि काव्य की उत्पत्ति जीव कृत नहीं अपितु प्रभु कृत है । यहाँ पर योस्वामी जी का ईश्वर प्रदत्त या जगन्नाथ प्रतिमा पर विश्वास प्रकट होता है ।

सत्य है राम की कृपा से ही कवि को बाली प्रसाद प्राप्त होता है । इस धरि का अनुभव कवि के अपने ही हाथ में होता है —

प्रथमानुस जामस नच बाही । यह कवि बुद्धि विमल सबबाही ॥

मनक हृदय धामन्य जगह । समवेद प्रेम प्रमोद प्रकाह ॥

बनी सुमम कविता सरिता थी । राम विमल नच जन भरिता थी ॥१२

सुमती ने यहाँ भी अपनी कविता की उत्पत्ति सम्मन्धी विचार पाठ प्रस्तुत की है और यह बतलाया है कि वह किस प्रकार मन बुद्धि और हृदय धरि से सम्पन्न रहती है और यही कविता किस पुरुष श्रेय से सम्पन्न होती है और सर्व सुखद बन जाती है । योस्वामी जी ने संसु प्रसार और 'हरि प्रेरणा को ही काव्य की उत्पत्ति के हेतु सब कुछ नहीं मान लिया है उन्होंने संयम मिष्टा और श्रेय पर भी ध्यान दिया है । योस्वामी जी ने एक श्लोक के द्वारा काव्य की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं ।

हृदय सिन्धु मति शीप समाना । स्वाति धारवा कर्हहि मुजाना ।

यो नरये नर नारि विचार । होहि कविता मुक्तामणि नार ॥१३

स्वाति नद्यन माने पर जब सिन्धु स्थित शीप में बर्षा होती है तब उसमें मोती उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार हृदय स्थित मति में धारवा की प्रेरणा से जब सुन्दर विचारों की बर्षा होती है तब उसमें कविता उत्पन्न होती है । भाव है यहाँ सिन्धु हृदय है और मति शीप और स्वाति सरस्वती है । ऐसी अवस्था में जब हृदय कपी समुद्र में जो बुद्धि मति कपी शीप है उसमें स्वाति कपी नारवा की बर्षा का जन जाये तभी काव्य की उत्पत्ति सम्भव है । निष्कर्ष यह निकला कि धारवा काव्य की उत्पत्ति में प्रमुख स्थान रहती है उची के प्रसाद से कविता करने की धरि उत्पन्न होती है और वह धारवा (सरस्वती) राम के द्वारे नच नाकती है ऐसी अवस्था में योस्वामी जी के इस कविता के उत्पत्ति सम्मन्धी सिद्धान्त में भी भक्ति भावना काम कर रही है । बिने सम्भव भाव राम की नाचा में संवचित करके अनुभव से हृदय में धारवा करती है । —

१ मा० बा० पृ० १३

२ मा० बा० पृ० १३

३ मा० बा० पृ० १२-१३

काव्य का प्रयोजन—

गोस्वामी जी के काव्य के उद्देश्य परक दृष्टिकोण की प्रतिबन्धित करने के हेतु उनकी एक निम्नलिखित उक्ति से काम चल सकता है।

कीर्ति अनिधि भूति भक्ति छोई । मुरसरि सम सब कह हित होई ॥^१

मानसकार गोस्वामी जी का यह मत कीर्ति कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो। काव्य सम्बन्धी उनका शैक्षिक और साहित्यिक दृष्टिकोण का परिचायक है। मानव की चरम प्राकांक्षा होती है शौकिक विभूति प्राप्त करने की। तुलसी इसे बुरा नहीं समझते। सांसारिक सम्पत्ति या वैभव प्राप्त करने की वे अनुमति देते हैं। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि वह गंगा के तुल्य सबका हित करने वाली हो। इसी प्रकार वह कीर्ति प्राप्त करने की प्राकांक्षा को भी बुरा नहीं समझते परन्तु उसका उद्देश्य भी गंगा के समान सबका हित करने वाला होना चाहिये। कीर्ति और विभूति वाला दृष्टिकोण कविता के सम्बन्ध में भी गोस्वामी जी स्वीकार करते हैं। पर्याप्त कविता भी मुरसरि के समान सबका हित करने वाली हो। तभी उसकी सार्थकता है।

गोस्वामी जी की उक्त शीर्षाई में भी काव्य को सप्रयोजन मानते हैं। वे उसमें उपयोगिता का रहना आवश्यक समझते हैं। उनकी दृष्टि में यह उपयोगिता मानवता और स्वस्थता का संचार करने वाली हो विषागो को उन्नत और सुन्दर बनाने वाली हो एक क्षति को परिच्छेद और सुसंस्त करने वाली हो। इस भाँति उनकी रचना का उद्देश्य बहुत ही व्यापक और उबार है। तुलसी जी उक्त उक्ति में सब कर हित होई कह कर शत्रु और सुन्दर की अपेक्षा शिर्ष को अधिक महत्व दिया गया है। और वह हम काव्य कि बीभन की मूल भावना सत्य और सुन्दर की अपेक्षा शिर्ष से अधिक अनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। यह उद्देश्य सम्बन्धी उनका सामाजिक दृष्टिकोण है।

गोस्वामी जी की उक्त उक्ति का एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह भी है कि वे समाज को अपेक्षा करने में काव्य की मार्गदर्शकता नहीं मानते।

यहाँ एक बात ही उभरती है कि गंगा तो केवल उत्तर भारत के निवासियों का ही हित करती है समस्त भारत का नहीं। जब समस्त संसार की बात तो बुर रही। यद्यपि क्या गोस्वामी जी का उक्त मत संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है तथा वे गंगा तटवासियों का ही कल्याण चाहते थे। इसका समाधान यह है कि गोस्वामी जी का दृष्टिकोण संकुचित नहीं परन्तु व्यापक और उबार है। उनके उपरुक्त कथन का प्रतिश्रय केवल यही है कि गंगा अपने तटवासियों और अपने ऊपर भ्रष्टा रचने वाला का जिस प्रकार शौचिक और पारसीतिक हित करती है उसी प्रकार मानव मान के हित का व्यापक कीर्ति और काव्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति में होना

जाहिये । दूसरे शब्दों में लोक नश्वाला और लोक सेवा का भाव बहि उक्त तीनों गुणों से सम्पन्न व्यक्ति में है तो समाज में उसके विशद बन्नी जी ईर्षा ईप की भावना उत्पन्न न होनी । अतः एते व्यक्तिवा के प्रति लोगों का धारण भाव रहेगा ।

सारांश यह है कि मोस्वामी जी का उपर्युक्त काव्य का प्रयोग सम्बन्धी दृष्टिकोण एक ओर तो भारतीय दृष्टिकोण से मानव भाव के लौकिक धार्मिक की प्रतिष्ठा करता है और दूसरी ओर ईश्वर प्रदत्त काव्य प्रतिभा के चरम उद्देश्य की भी ध्याना करा देता है । महाकवि सभ्राट ने कभी भी लौकिक विभूति प्राप्त करने की कामना नहीं की । किन्तु अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग उन्होंने अपने उक्त दृष्टिकोण के अनुसार ही किया है । जिससे उनकी अमर कृति मानव संपन्न १३० वर्षों के इत लोक में सुख और शान्ति के साथ परसाक की शान्ति के हेतु भी मानव समाज को धारण करती रही है ।

काव्य का विषय —

काव्य प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त विसिद्ध गुण है । भारतीय अधिकांश कवियों ने देव गुण याव में ही इसकी शार्थकता मानी है । परन्तु इस प्रकार का चरितगान स्वार्थ भाव से प्राप्त होम से नहीं बन करमाणार्थ करवा ही हमारे कवियों को धर्मोप्य रखा है । मोस्वामी जी भी काव्य का विषय प्राकृत जन गुण बान नहीं अपितु अलौकिक चरित्र के गुणवाच को ही स्वीकार करते हैं । उनके इत ही टिकोण की अधिष्ठाति इस रीति में हुई है ।

कीर्त्तुं प्राइत बबहुन याता । बिर भुनिमिउ नामि बद्धिवाता ॥^१

तात्पर्य यह है कि लौकिक प्रतिष्ठा के मान से काव्य का सर्वथा तुल्ययोग होता है । यहाँ प्राकृत जन का कुसुमान न करने की बात जब मोस्वामी जी कहते हैं तो समझना चाहिये कि वह पूर्ववर्ती वीरवाका कासीन कवियों वा स्पष्ट विरोध करते हुए दृष्टिकोण को ही है । और उनके आभयशाठाधी के गुणमान के भी वह अत्यन्त ही दृष्टि से देखते थे । काव्य के विषय के सम्बन्ध में मोस्वामी जी वा दृष्टिकोण अपनी अर्वाङ्गीण पूर्णता के हेतु भी बड़े महत्व का है । ईश्वर को ही अत्यन्त मानयोग गुणों वा मूम मानने के कारण उनके प्रति पाठक में सहज ही भया भाव जागृत हो जाता है ।

विदेशियों के हेतु भी मोस्वामी जी का विषय परक दृष्टिकोण महत्वहीन नहीं कहा जा सकता है । अर्थात्तों से बर्मे की रक्षा के लिए अखतार देने की बात यदि छोड़ दी जाने तो भी आन्वीय समस्याओं और उनका सामना करने वाली अलियों के परिषय के दृष्टिकोण से राम कथा किनी भी अन्वीय पाठक के लिए अत्यन्त रोचक धारणा है । राम कथा से सम्बन्धित प्राय तुलसी के सभी पात्र अन्वीय माहित्य में प्राप्त किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं और अपने चरित्रों में वे जो परिवर्तन हैं वह भी मोस्वामी जी के दृष्टिकोण से अलग नहीं है ।

काव्य की प्रभाव—

उत्कृष्ट काव्य के प्रभाव के भी सम्बन्ध में गोस्वामी जी का ध्येय अत्यन्त दृष्टिकोण है। उनके मतानुसार उत्तम काव्य वही है जिसको विद्वानों द्वारा प्रशंसित प्राप्त हो। नहीं तो वह बाल प्रयास ही कहा जावेगा।

जो प्रभाव कुछ नहीं पाकरहीं। तो भय वाकि बाल कवि करहो।^१

यहाँ गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त शब्द कवि शब्द भी ध्यान देने योग्य है। बाल प्रकृति में गम्भीरता का अभाव रहता है। उसकी रचना भी परिष्कृत नहीं होती है और न उसके विचारों में स्थायित्व ही होता है। जब तक कवि का स्वभाव इस प्रकार का रहेगा तब तक उसकी रचना का प्रभाव पश्चित समाज पर पड़ ही नहीं सकता। पश्चितों में सम्मान जिस कविता का होता है इस विषय में तो गोस्वामी जी ने बड़ा ही सुन्दर दृष्टिकोण रक्खा है।

सरल कविता की रति जिसस सुनि प्रशंसहि सुमान।

सहज बयर बिसराह रिपु जो सुनि करै बसान ॥^२

तात्पर्य यह है कि कविता में तीन गुण होने चाहिये पहली बात है सरलता अर्थात् जिस कविता में अटिक्तता अथवा क्लिष्टता होती वह शोक प्रिय नहीं हो सकती। दूसरे रचना में बलिष्ठ चरित्र निर्मल होना चाहिये। तीसरे गुण का सम्बन्ध कथा रूप से है। कविता का अन्तिम गुण इस बात में है कि उसको सुनकर शत्रु तक अपना धैर्य भाव भूल जावे और मुक्ति कण्ठ से उसकी सराहना करने लगे। कविता के प्रभाव के साक्षात् न एक और महत्वपूर्ण दृष्टिकोण गोस्वामी जी ने अल्प स्थित किया है।

मनि मानिक मुसा छवि जैसी। यहि विरि गज छिर सोह न तैसी।

गुण किरिटी टकनी ठगु पाई। नहंहि सकल सोमा प्रबिकारि ॥

तैहि सुकवि कवित बुझ नहंहीं। उपजहि मनत मनत छवि सहंहीं ॥^३

मनि मानिक और मोती में जो सुन्दर छवि होती है वह अपने उत्पत्ति स्वयं यहि विरि और गज मत्तक पर सोमा नहीं पाती। इन पदार्थों की सोमा का निवारण तो तब बेजाने में आता है जब वे मुकुट अथवा आभूषणों में अड़ जाकर राजा के मण्डक अथवा पुबती के शरीर पर पारण किये जाते हैं। इसी प्रकार कवि की रचना को भी सृष्टि एक स्वान पर होती है पर उसको सम्मान अथवा मिसता है और इस अर्थक से गोस्वामी जी का संकेत उस रूप से है जहाँ कविता के पारसी सहस्रम विद्वान् हों। काव्य और अर्थ—

तुमसीबास मूलत मत्त और सप्त कोटि के सायक थ। उनकी काव्य रचना

१ मा० बा० पृ० १३

२ मा० बा० पृ० १३

३ मा० बा० पृ० १२

के सामाजिक और वैयक्तिक दृष्टिकोण में भी भक्ति और आत्मोद्योग की भावना प्रधान थी। अन्वया के अपने काव्य को स्वान्ता मुखाय क्यों कहते। मानस जैसे विद्यास ग्रन्थ की रचना करते समय भी तुमसी की एक कवि की अपेक्षा भक्ति की ही भावना प्रबल रही है। मानस को वे राम भक्ति मुरछरि कह कर राम भक्ति के अभाव विष्णु में प्रवेश करते हैं। उनके विचार में कविता साधन है और साध्य है राम भक्ति। तभी तो वह अपने काव्य में राम नाम की प्रधानता भक्ति भावना के ही कारण देते हुए कहते हैं।

एहि महँ रूपति नाम उदारा । भतिपावन पुरान भूति सारा ॥

× × ×

कवि न होई नहि बनुर कहावई । भति प्रभुरूप राम गुन पावई ॥^१

भक्ति प्रभुरूप राम गुन पाता ही उनको भक्ति भावना का बोध कराता है। अतः उनकी दृष्टि में काव्य की रचना के सामाजिक एवं वैयक्तिक दृष्टिकोण में भक्ति एवं आत्मोद्योग की ही भावना प्रधान थी।

काव्य साधन है साध्य नहीं—

यह अन्तर ही कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी की दृष्टि में कला साधन है साध्य नहीं। उनकी साध्य तो राम भक्ति है। जिसे व्यक्त करने के हेतु वह साधन काय में कला का आश्रय लेते हैं। यही उनका कला सम्बन्धी दृष्टिकोण है। अपने कला सम्बन्धी इस विचार के आधार पर ही वे कलात्मक प्रदर्शन को प्रमुखाता नहीं देते। कला उनके वास्तविक विचार विमर्श अथवा सामाजिक दर्शन के स्पष्टीकरण का साधन मात्र है। साध्य नहीं। जहाँ तक कलात्मक अर्थ का प्रश्न है गोस्वामी जी उससे बिलकुल ही दूर रहना चाहते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं।

कवि न होई नहि बनुर कहावई । भति प्रभुरूप राम गुन पावई ॥

कवित्त विवेक एक नहि मोरे । छत्य जहाँ सिद्धि कायब कोरे ॥^२

इस कथन का अभिप्राय यह नहीं कि वे कलात्मक ज्ञान से दूर थे। पर इसका प्रमुख कारण यह है कि उनका काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण जो है वह सम्भवतः उस युग की तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों को भाव्य नहीं। गोस्वामी जी ऐसे उच्च वैयक्तिक को कभी भी महत्व नहीं दे सकते जिसके भीतर छत्य का समावेश न हो और जिसका भीतर जीवन का मार्ग प्रदर्शन करने वाले उपाय विधियों का प्रक्रम न हो। इस हेतु वह कोरे कायब में मत्य का उत्पादन ही कला का प्रमुख उद्देश्य समझते हैं। साध ही काव्य कला का व्यापक आदर्श उपस्थित करते हुए वे कहते हैं।

कीरति भक्ति भूति भति साई । मुरछरि सम सब कहँ हित होई ॥^३

१ मा० बा० पृ० १

२ मा० बा० पृ० ११

३ मा० बा० १५

जो समाज के प्रत्येक षण का कस्याण कर सके वही कला है । वृ कि गोस्वामी जो की कला साम्य नहीं साधन है इसीलिए वह व्यापक धारण करके वसे हैं और इसीलिए उन्होंने काव्य को सर्व जन मंयनकारो बनाया है ।

बालकाण्ड के मंयसाधरण में गोस्वामी जी ने मानस की रचना का उद्देश्य स्पष्ट बणन किया है ।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ पापा ।^१

स्वान्तः सुखाय सिद्धने का उद्देश्य गोस्वामी जी को कबल धन ही सुख देने मात्र से नहीं वा वास्तव में उन्होंने धनमा प्रण सभी को सुख देने के धमिप्राय से सिद्धा वा ।

इससे स्पष्ट हो गया कि उन्होंने 'सब कर हित' क लिए सबको कसि भल रहित करन क लिए, भव धम का धोपण करने बास वुरित धोय और दुख का समन करने बासे काम छोड भय लोभ को बिगट करने बास तथा बिमम बिबेक और बिद्यम बहाने बासे मानस बल को कृष्टि की त्रिसमें साडर स्नान करने से हृदय का पाप और परिठाप मिट जावे यही तुलसी के कला सम्बन्धी 'कविता माधम है साम्य नहीं' का कबलत प्रमाण है ।

काव्य कला और उसके धङ्ग —

हम नहीं चाहते कि गोस्वामी जी के बोरे बापक के सत्य जो धसत्य कर हितसायें । पर हम यह जानते हैं कि काव्य बिबेक इस धभाव में तुलसीराम की को रचना में काव्य के सभी धंय भाषा भाष रस धन्द धादि धा मए हैं । तुलसी ने इन सभी धयों का बिबेकन सष्ट प्रबन्ध सुमग धोपाना ।^२ बासे प्रकरण में किया है । त्रिनकी बिबेचना नीचे का जा रही है ।

भाषा और भाष—गोस्वामी जी भाषा की उतना महत्त्व नहीं देते जितना कि भाष बिचार और करण को । उनकी पबकी धारणा यह है कि काव्य की बस्तु और उसका उद्देश्य वा उत्तम होना चाहिए फिर भाषा वाहे गबाध हो षयों न हो । इसी के धाधार पर गोस्वामी जी कहते हैं ।

भमिति भवेन बस्तुभसि बरनी । राम कथा जय मगस करनी ॥^३

इसस उनको ध्रुव बिश्वास भी है —

— प्रिय साभिहि धतिउबहि मय भमिति राम जस मंग ।

बाड बिचार कि करद कोड बदिम मलय प्रसम ॥^४

१ मा० बा० पृ० २

२ मा० बा० पृ० १४

३ मा० बा० पृ० ११

४ मा० बा० पृ० १२

स्वामि सुरभि पति बिचर प्रति मुनर करहि सबपान ।
विपु ग्राम्य शिव राम बस बाबहि मुनहि मुनान ॥^१

भापा और भाब पर गोस्वामी जी ने अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण भी रखा है । उनके बिचार से भापा और भाब में बड़ी सम्बन्ध है जो सीता और राम में उन्हीने अपनी इससे सम्बन्धित समस्त भावना को इस दृष्टि में समेट कर रखा दिया है ।

विपु धरप बस बोधि सम कहिषत भिन्न न भिन्न ।
बहर्ष संता राम पर जिगृहि परम प्रिय विध ॥^२

इन दोहों में गोस्वामी जी ने भापा और भाब का पूर्ण स्पष्टीकरण किया है । उनके अनुसार भापा बल है और भाब बल की बीधि । यहाँ पर गोस्वामी जी ने बल की गहृ न लिख कर भाब के हेतु जो बीधि लिखा है । इसमें भी भाब 'बीधि' बल का बहुत सूक्ष्म रूप है । इसका अभिप्राय यही है कि भापा के माध्यम से भाबों के सूक्ष्म और प्रजाबपुर्ण अंग स्पष्ट होते हैं । अतः भापा और भाब अभिन्न हैं जैसे 'बल' और 'बीधि' ।

रस—इसको गोस्वामी जी ने उद्भाग में बलचर के रूप में स्वीकार किया है ।

नवरस अपठप जोष विरागा । मो सब बस चर पाठ उद्भाग ॥^३

इसका अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार से जलचरों से सरोवर में एक हीभवं या जाता है उसी प्रकार से काव्य में रस से भी एक अपूर्व हीभवं की वृद्धि होती है ।

सुन्द—गोस्वामी जी को यह सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट करने के हेतु हमें गोस्वामी जी की निम्न पंक्तियों की ओर दृष्टि डालनी होगी ।

अब छोटा सुन्दर बोहा । सोई बहुरंग कमल कुल सोहा ॥

धरम अनुप सुभाष सुभासा सोई पराय मकरन्द सुभासा ॥^४

धर्म पराय है और भाब मकरन्द है तथा सुगन्ध है भापा । सुगन्ध से हम पुष्प की ओर आकर्षित होते हैं । इसी प्रकार भापा से काव्य की ओर । धर्म पराय के रूप में प्रस्तुत होता है । किन्तु कवि का भाब तो मकरन्द में ही रमा होता है । वही तो इसका रस का है । भापा रस को पाकर और भी बिस उठता है । जो बीपाई अब प्रादि पुर, इन और रंग रंग के कथन हैं ।^५

१. मा० बा० पृ० १२

२. मा० बा० पृ० १२

३. मा० बा० पृ० १४

४. मा० बा० पृ० १४

५. मा० बा० पृ० १३

काव्य तथा विभिन्न सिद्धांत—

बक्रोक्ति घोर ध्वनि—ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'मानस' में गोस्वामी जी कहते हैं ।

धुनि धबरेब कथित पुन जाती । मीन मनोहर ते वदु भक्ति ॥^१

यहाँ ध्वनि घोर बक्रोक्ति को मी मीन कहा गया है । घोर 'नवरत्न' को बलचर' बतलाया जा चुका है तो क्या हमने ध्वनि घोर रस का सम्बन्ध ध्वनित नहीं होता । इसके द्वारा कविता में बक्रोक्ति का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है । काव्य में ध्वनि का भी बड़ी स्थान है जो मान का बल में होता है ।

घसंकार—रहो घसंकार की बात सो गोस्वामी जी न 'उपमा बीचि बिजास मनोरम'^२ के रूप में व्यक्त की है । गोस्वामी जी ही हम घसंकार सम्बन्धी उक्ति से प्रेरित होता है कि वे सभी घसंकारों को उपमा मूलक रूप में स्वीकार करते थे । घसंकार का कार्य है घसंकरुण करना और काव्य को गोमा की उमार कण प्रस्तुत करना । यही हमारे महाकवि का घसंकार के सम्बन्ध में दृष्टिकोण प्रतीत होता है ।

रीति—'घासर धरम घसंकरुण नागा'^३ नामा जो प्रकरण पद्य प्रस्तुत किया है उसमें स्पष्ट है कि उन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था । घोर उनके काव्य में माया छन्द और घसंकार क जो विद्यपति-युक्त प्रयोग मिलते हैं वे उनके तत्सम्बन्धी घसंकार के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं । सभी प्रकार क मनोविकारा को व्यंजना द्वारा भाषा को समर्थ बनाकर उसे काव्य भाषा का प्रतिष्ठित पद प्रदान करना गोस्वामी जी का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण में प्रकट होता है ।

गोस्वामी जी का छन्द चयन भी मोहक प्रकट होता है । जोषाई में सामान्य वर्णन दाह में क्या का मुख्य भाग । दोहा उनके कबालक क बटना बरुा को जोड़ने वाला एक बिन्दु है । इसके साथ ही साथ उन्होंने छन्द सारठा और बोहा को काव्य सरोवर नाम रूपक में बतलाना माना है ।

छन्द सारठा मुग्धर दाहा । साह बहुरंग बमल कुम सोहा ॥^४

प्रथिप्राय है कि त्रिप प्रकार बमल सरोवर का मोन्दर्य कई सी गुना बढ़ा बन में समर्थ होता है उसी प्रकार से छन्द भी काव्य के नीन्दर्य को कई गुना घबिल बढ़ा देते हैं । सोरठे में शारीर और सर्वथा में कवि का प्रिय लगने वाले रोचक स्थल उनके छन्द सम्बन्धी निरिचय और सुख्यवस्थित दृष्टिकोण का परिचायक हैं ।

उन्होंने घसंकार योजना को कभी भी माध्य नहीं माना । घसंकारों को उन्होंने सर्वत्र काव्यगत व्यापार को हीव करने में एवं गुणों के उन्नयन में सहायक

१ मा० बा० पृ० ३५

२ मा० बा० पृ० ३३

३ मा० बा० पृ० ३१

४ मा० बा० पृ० ३५

माना । यही कारण है कि उनकी धर्मकार योजना सर्वत्र भावाभिप्यक्ति को स्पष्टता एवं बोध गम्यता प्रदान करने में सहायक हुई है । धीरे-धीरे दृष्टिकोण का निर्वाह करने से ही उनकी काव्य की रमणीयता कई ही गुणा धार्मिक बढ़ गई है ।

तुलसी का शब्द प्रयोग सम्बन्धी धारण भी प्रकट है । यह यह है कि गोस्वामी जी धार्मिक शब्द योजना को ही काव्य के हेतु धारणक समझते हैं । यही कारण है कि उनका एक-एक शब्द सामिप्रायक धीरे-धीरे धार्मिक है । इन सभी बातों से उनकी रचना में यही ही रोचकता पा गई है ।

उपसंहार—

अतः गोस्वामी जी के काव्य धीरे-धीरे समाज की दृष्टिकोण में इसी व्यापकता है कि न तो वे किसी क्षेत्र में संकोच की प्रवृत्ति को ही धर्मीकरण करते हैं धीरे-धीरे धार्मिक विधायक के प्रति इतना दुराग्रह ही करते हैं । जो उनके मत से भ्रम न जाने क कारण उत्पन्न जाये । इस प्रकार गोस्वामी जी के काव्य का सामाजिक महत्त्व यही है कि उसमें जन-जन्याण की भावना कूट-कूट कर भरी है । जो पीछे उनके सहेल्य के अन्तर्गत स्पष्ट की जा चुकी है ।

तीसरा अध्याय



मुससी की कला में मर्यादा और शौचित्य

मर्यादा और शौचित्य का भेद—

गोस्वामी जी का प्राणमन जन सम्राज ५ बीस उस समय हुआ जब भारतीय संस्कृति का व्यापक स्वका लोको के नेत्रों से एकदम धाँस हो गया था। धरत कमला को अपने साथ निकाने के अधिप्राय से लोका ने नवीन पया का भी निर्माण कर लिया था। उस समय लोक को व्यवस्थित करने वाली शौचित्य युक्त मर्यादा न थी। धर्म धर्म की मर्यादा से बिहीन लोको में वर्णधर्म के प्रति भ्रष्टा का नाच भी प्राय बिलुप्त हो गया था।

ठीक इसी समय गोस्वामी जी का प्राणमन हिन्दी साहित्य में हुआ। जिन्होंने बहू व्यवस्था धर्म धर्म कुलाचार इत्यादि सभी के साथ सक्ति का धर्मव्यवस्था स्थापित करके भारतीय संस्कृति को दिग्गमिन्त हाने से बचाया। ऐसे सर्वाङ्गदर्शी महात्मा के हेतु मर्यादा पुरपोलतम राम के चरित्र से बहकर और प्रबलम्ब हो क्या मिल सकता था। राम के चरित्र में धार्मिकपूर्ण धर्मों की प्रतिष्ठा करके गाँवामो जी ने तत्कालीन सामाजिक स्तर में नव चेतना आधत की।

मर्यादा और शौचित्य दोनों का साथ एक दूसरे से निम्न है। जहाँ एक ओर मर्यादा धार्मिकों का धामन है वहाँ दूसरी ओर शौचित्य धार्मिकों के पर धामनित है। मर्यादा परिवार समाज राज्य या धर्म के प्रसंग में निर्धारित नियमों का धामन है। किसी धर्म को इस धर्म से करना कि धर्मको प्रत्येक "कार से ठीक और उचित बहू आदि शौचित्य बहू जायेगा। उचित में मर्यादा के नियम हो सँभ नसीटी नहीं होते शौचित्य स्वयं कभी-कभी मर्यादा के नियम बनाता है। संक्षेप में मर्यादा और शौचित्य में यही विनिमयता है।

यैसै नाच एक रस, धर्मकार आदि नाच के धार्मिक उपकरण स्वीकार किम बये है, जसी प्रकार से मर्यादा और शौचित्य दोनों का समान धर्म काध्य में धार्मिक धर्मोचित है। गोस्वामी जी की रचना में मर्यादा और शौचित्य दोनों ही विशेषताएँ हैं। या सक्ती है किन्तु हम धर्म-धर्म विवेचना लीये प्रस्तुत कर रहे हैं।

मर्यादा—

गोस्वामी जी के प्रबन्ध नाच 'माधव' में धर्म-धर्म पर मर्यादा धर्म का विवेको

है। बर्लिन बरिच विभक्त संस्कृति रस भाव, धर्म प्रयोग पारम्परिक व्यवहार बर्लिन धर्म धारि क्षेत्रों में मोस्वामी जो ने मर्वादा का वाक्य किया है जिस पर एक एक कर्म नीचे विचार किया जा रहा है।

बर्लिन में मर्वादा—मोस्वामी जी के बर्लिन में सर्वत्र मर्वादा की योजना देखने को मिलती है। मोस्वामी जी बहुत मर्वादावादी थे। मर्वादा का उद्देश्य उनके लिए एक ही मध्यमोचक था। सौन्दर्य बर्लिन में मोस्वामी जी ने जैसी अनुराधा से मर्वादा का निर्वास किया है। वह दसठे ही बनता है। पावती घोर संकर के जिस श्रु गार बर्लिन म कालिदास ने कुमार संभव म कोई कसर नहीं उठा रखी उसी को मोस्वामी जी ने इसमें मर्वादा रूप म लिखा है जिसकी सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। संकर घोर पार्षतो की प्रेम केलि के प्रसंग में मोस्वामी जी ने कहा :—

अथ मातु पितु संतु भवामी । तैहि मृ गार न कहीं बखामी ॥ १

इसी प्रकार सीता के भी सौन्दर्य बर्लिन में मोस्वामी जी ने कहा दिया :—

सिध बरनिध कैहि अपमा बेई । कुकवि कहहि पबध को लेई ॥ २

मोस्वामी जी की दृष्टि में अमृतमयी जानकी के सौन्दर्य का प्रकृत कुकवि की बेली में घाता है। इसका परिणाम यह नहीं कि मोस्वामी जी ने जानकी के सौन्दर्य का प्रकृत नहीं किया उन्होंने जानकी के सौन्दर्य का बर्लिन प्रतीक लक्ष्मी की उद्भावना कर कहा ही मुग्ध दिया है। किन्तु बाद में अपूर्णता को नहीं सिद्ध कर उन्होंने मर्वादा की हृद कर दो।

उसी प्रकार मोस्वामी जी ने प्रकृति बर्लिन भी एक पारदर्शक रूप में किया है। प्रकृति से उनके उपदेश बर्लिन की प्रकृति प्रकृति में एक पारदर्शक रूप स्थापना की चोख है। इसी प्रकार सर्वत्र मर्वादा का वाक्य किया है। जिसका कृष्ण विवेचन धार्य 'तुलसी का प्रकृत सीध घोर बर्लिन पद्यति' के प्रत्यक्ष किया जायेगा। प्रत्यक्ष यहाँ इतना संक्षेप कर ही पर्याप्त होगा।

बरिच विभक्त में मर्वादा—तुलसी ने सभी पात्र अपनी-अपनी संस्कृति की मर्वादा के अनुकूल महाकाव्य म उन्मिक्त हुए हैं। जिसकी विवचना बरिच विभक्त नामे प्रकरण में प्रागे विचार में की जायेगी। अतः यहाँ इसका विवेचन पुनः प्रकृति मात्र ही होगा।

संस्कृति एक धर्म निष्पन्न में मर्वादा

संस्कृति—मोस्वामी जी की संस्कृति गण मर्वादा को हम दो मार्गों में विभक्त कर सकते हैं :—

१ — वैदिक धर्म की मर्वादा

२ — लोक मर्वादा

नोचे इन दोनों का ही क्रमानुसार बहान किया जा रहा है।

बेदशास्त्र की मर्यादा—तुमसीदास जी के प्रारम्भिक काल में भारतीय संस्कृति के घरीर में रोप प्रविष्ट हो चुके थे। मत्प्राचार का स्थान कदाचार ने सत्य का प्रसव न उबारता का अनुवारता न संयम खोलता का पक्ष ने ले लिया था। सर्वत्र मर्यादा हीनता व्याप्त हो रहा था। गोस्वामी जी ने इन परिस्थित का निवारण करते हुए कहा —

सब तर कल्पित करहि प्रचार ।
बाह न बरनि प्रतीति प्रचार ।
मद बरन संकर कसि मिन सेनु सब लोग ।
करहि पाप पाबहि हुष भय तज सोक विपोग ॥^१

गोस्वामी जी ने राम के आदर्श सोक नामक परित्र में आर्य संस्कृति वेद घोर शास्त्र की मर्यादा का विकथित साध पाया। जिसे मकर बहु द्रव गति से पगे बड़े। राम के राज्य में सभी अपने अपने धर्म में रत थे। प्रात उठकर ईदरोपासना संध्योपासना यज्ञ हवन करना ध्यक्तिया का परम कर्त्तव्य था। स्वयं महाराजा राम की भी यही दिनचर्या है —

बैठेहि समा संघ शिख सज्जन । वद पुरान बसिष्ठ बखानहि ।
सुनहि राम अर्घनि सब जानहि । सबके ग्रह ग्रह हाहि पुराना ।
राम भरित पावन विधि जाना ॥^२

इस प्रकार गोस्वामी जी ने मर्यादा पासन की सीमा को निर्धारित करते हुए राम के आदर्श जीवन में संस्कृति का समग्रत दिसमाकर जनता के सामने सांस्कृतिक आदर्श रक्का घोर साध ही जनता के प्यबहारिक जीवन को मोचा-ऊँचा कर देने का भी प्रयास किया।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तुमसी ने राम के जीवन में संस्कारों का बर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है।^३

जातकर्म—जातकर्म संस्कार भारतीय रीति रस्मों के आचार पर बासक का

१ मा० उत्तर पृ ७६३

२ मा० उत्तर पृ० ७१० ४११, ७१४।

३ उन्हीने राम के १६ संस्कारों का बहान मही किया जिनका वेदों घोर स्मृतिमें में बस्नेक है। तथा जिनकी घोर हम ने गजाज का स्थान बिदेव रूप में आर्य समाज के आन्वोसन के बाद प्राकृष्ट हुआ है। परन्तु उन्हीने जातकर्म मुहन कर्णबेय उपनयन घोर विवाह संस्कारों का बिदेव बहान किया है। उनका प्राय मो हमारे समाज में बड़ा महत्व है। इस प्रकार इन संस्कारों का धीमा देना बर्णन करके उन्हीने हमारे जाऊ जीवन का बड़ा हो सखीब बिबलन किया है।

—डा० भगीरथ मिश्र—गोस्वामी तुमसीदास घोर मोक जीवन

प्रथम संस्कार होता है। राम के जन्म मंत्र के उपरान्त जब सभ्राट ने हम संस्कार का विवेचन किया है।

भात करम करि पूजि पिठर
मुर बिये महि बेरम्ह दाम ।^१

छटी— जागिय राम छटी रजनि बचिर निहार ॥^२

मुडन— करन बीन बुझाकरम लोकिङ्ग बैदिक काम ।
गुह भ्रायसु भूपति करत संगस साज समाज ॥^३

विवाह—इन्हीं संस्कारों की भाँति विवाह संस्कार का भी बड़ा महत्त्व है। इसमें जोस्वामी की नै जो राम और सीता का विवाह स्वयंवर की रीति से कराया है वह वेद शास्त्र की मर्यादा के समुच्चय ही है। कहा गया है—राम और सीता का विवाह स्वयंवर की रीति से हुआ। स्वयंवर का आचार कन्या का स्वैच्छापूर्वक करण था। रामायण तथा महाभारत में स्वयंवर माता पिता की इच्छा से होता था। किन्तु सामाजिक शास्त्र के नियमों में यह विवाह माता पिता की इच्छा को प्रधानता नहीं देता। यह माता पिता के लिए एक प्रकार से दण्ड स्वकर्म था कि शास्त्र द्वारा निर्धारित नियम का पालन करते हुए कन्या का विवाह क्यों नहीं कर दिया। पिता का धर्म था कि वह अपनी कन्या का विवाह मुखावस्था प्रारम्भ होने के तीन वर्ष के अन्दर कर दे। यदि पिता इस अवस्था के अन्दर विवाह न करे तो स्वयंवर हो सकता था जो कि प्रबंधों के आचार पर स्थित है।^४

इन संस्कारों में मुख्य भारतीय संस्कृति का यह प्रतिबिम्ब प्ररक्षित है जिसकी सम्मीर छाया भारतीय संस्कृति का प्राण है। तुलसी दास जी सबसे ही सदावृत्ता के पक्षपाती रहे। उन्होंने सांस्कृतिक सङ्क्षिप्ता की ओर भी ध्यान दिया। स्वयं वरा रत्न सङ्क्षिप्ता पारस्परिक मित्रता में भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व सङ्ग्रहित हैं। वे इन्हीं की रसा के हेतु प्रयत्नशील थे। उन्होंने लिखा है —

- १ तुलसी संवावसी बूसरा लख—गीतावली—पृ० २२।
- २ तुलसी संवावसी बूसरा लख—गीतावली—पृ० २२५ ६।
- ३ तुलसी संवावसी बूसरा लख—रामायणप्रसन्न—पृ० ६२।
- ४ मनुस्मृति १ ६० ६३
याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र १।२४
दिव्यसु स्मृति २५।४ तथा १७।६१।६६
विशिष्ट धर्म सूत्र १७।६०।७।९५
नारद सूत्र १५ २
दीपम धर्मसूत्र १५ २०

मैंटिड ललकि ललकन महु माई । बहुरि निपाइ बीगु उर माई ।
पुनि मुनिपम हुहु भाइगइ बंदे । अमिनठ पाठिप पाइ पागन् ॥^१

+ + +

कोल किरण धिन्न बलबासी । मधु बधि मुन्दर स्वाद मुघामी ।
भरि भरि परम कुटी रुचि हरी । कौं मूल कम संकुर चूरी ॥^२

भारतीय संस्कृति की उदारता है कि उसमें मधु से सधु और महान् से महान् भी समान देखे जा सकते हैं । अरण्य में घामा हुआ क्रिया भी बछे का शक्ति रक्षासीय है । घमू का भाई बिभीषण राम की अरण्य में आकर कहता है ।

‘श्वसन सुजत सुनि शर्मन्त प्रभु मज्जम भयभीरा ।

भाहि भाहि भारति हरम हरम सुजब रघुबीरा ।^३

राम तो इस धारणावत की रक्षा के हेतु यहीं तक रहते हैं ।

‘जी लभीत प्राणा सरना’ । रवि हों ताहि राम की माई ।^४

राम के कहे नाम की शार्ङ्गता का परिणय मिला लक्ष्मण के शक्ति समये के समय । लक्ष्मण को मन्त्राह की शक्ति से ग्राह्य देखकर राम राजे समे । राम का यह रोना बिभीषण के हेतु का लक्ष्मण के लिए नहीं । क्योंकि लक्ष्मण के हेतु तो राम ने स्पष्ट ही कह दिया कि मैं माई के साथ जमा जाऊँगा । फिर उनके हेतु रक्त कैंटा । रक्त तो वास्तव में बिभीषण के हेतु है जिसकी शक्तिव्यक्ति वीतावसी के इस पद में हुई है ।

मेरी सब पुश्तकारन बाकी ।

विपति मदावन बँधु बाहु विम करेउ भरोखो बाकी ।

मधु सुधीव साबैह मो पर करेउ बन्ध विधाता ।

ऐसे समय समर संकट ही तम्हों लखव ली धाता ।

गिरि कात्म जई साखा मून ही पुनि धनुज लवाही ।

होइ है कहा बिभीषण की मति यहै मोन भरि छातो ॥^५

यह तो हुई भारतीय संस्कृति की एक विषयता जिसमें धारणावत सहोदर भाई ने भी शक्ति रक्षण ही है । लंका राज्य में राम अर्थात् का हुन बनारस मेजने मलय मत्र की द्वित नाममा ही करते हैं ।

काहु इमार तासु द्विउ होई । रिणु सन करेहु बजकही छोई ॥^६

१ मा० अयो० पृ ४०८

२ मा० अयो० पृ ४१३

३ मा० सु० पृ ३७१

४ मा० सु० पृ ३७०

५ वीतावसी गं० पृ० ३३१ अं० पं० ७

६ मा० अं० पृ० ३३९

शायद ही बिना ही ऐसा कोई देस हो जिसकी संस्कृति में ऐसी बिभेपताई पाई जातो हई। गोस्वामी जी ने लोक-धर्म में सर्वांगी को ऐसी स्थापना की जिससे समाज की ऊँच-नीच सभी बातियाँ एक में मिल गई।^१

गोस्वामी जी ने परम्परागत विद्याओं का परिचय देने के लिए संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को ध्यानमाया है। जैसे :—

लोक विद्या—

अक्षुण्ण विचार गोस्वामी जी की रचनाओं में अक्षुण्ण पर भी विचार दिया गया है। राम की बारात आते समय शत्रुओं का जो विवेचन गोस्वामी जी ने किया है, यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

बनइ न बरनत बनी बरतत । इहि सगुन सु बर सुबदाता ॥
 बारा बापु बाम बिसि लेई । मगहूँ सबस मँबस कहि पैई ॥
 वाग्नि काग सुखेत सुहावा । नकुस बरमु सब काहूँ पावा ॥
 सानुकूल बहु बिबिध ब्यापी । सभट पबस धाव बर नापी ॥
 लोबा किं पिदि बरमु देखावा । गुरभी सतमुख मिमुहि पिधावा ॥
 भृगुमाता फिरि बाहिनि पाई । मंगल नग जमु बीगि देखाई ॥
 श्रेयकारी कह सैम बिनेपी । स्वामा बाम गुनक पर देखी ।
 सतमुख धायत बधि भव नीला । कर पुरतक दुइ बिम प्रबीला ॥^२

१ गोस्वामी जी ने शूद्रों को भी मन्दिर प्रवेश का अधिकार दिया है। 'जलमत भयते पूज शत्रु पाई' इस प्रकार घाने पूर्व जन्म की कथा कहते हुए काक मनुष्य कि यहक ही कहल है—एक बार हर मन्दिर जपत रहेत शिव नाम। इसका अनिप्राय यह है कि गोस्वामी जी समाज में शुद्धात्मा के भाव को पनपने देना नहीं चाहते थे। गोस्वामी जी धर्म संस्कृति के परम मन्त्र थे। उसकी रक्षा उनके जीवन का सर्वोच्च ध्येय था। मनुष्य-मनुष्य का ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जिसमें गोस्वामी जी ने धारणा की स्थापना न की हो। हमारी संस्कृति की बिभेपता उत्सर्ग है। मानस में इत उत्सर्ग के उत्सर्ग का रूप ब्रह्म पहलवित हुआ है। उत्सर्ग के परिवार का प्रत्येक व्यक्ति को परिवार की मुख धामि के हेतु भयने-दपने शूद्रों का स्थाप करने को प्रस्तुत है और सारे परिवार का स्थाप बिलकर राज्य की समाज का कल्याण करता है। यह उत्सर्ग भारतीय संस्कृति की प्राणायामिका का छोटक है। भारतीय समाज व्यवस्था के आधार स्तम्भ बनें व्यवस्था धर्म और प्राथम धर्म द्वारा संस्कृति के प्राणायामिक तन्त्र की ओर संकेत करते हैं।

—डा० स्वामिन्दर बापु पीठवर बत बहर्षबाल—गोस्वामी तुलसी बापु—व्यवहार धर्म धीर्ष लेख—पृ० १२ १२३ १२४ ।

घराकुन बिचार—गोस्वामी जी ने घराकुनों की भाँति घराकुनों पर भी बिचार किया है। जैसे —

घराकुन होहि नगर पैठारा । छटहि कुमाँति कुखेत करारा ॥

खर सिघार बालहि प्रतिबुला । सुनि सुनि होई भरत मन सुला ॥^१

माय्यबाह—गोस्वामी जी बट्टर माय्यबाही के । माय्यबाह के संकड़ों उदाहरण उनकी रचनाया में बिना प्रयास के ही मिल जाते हैं। जैसे :—

कह मुनीस ह्विमबँठ सुनु जो बिधि लिखा सिनार ।

बेब वनुज नर नाम मुनि कोठ न मेटन हार ॥^२

तुलसी जनि भवतभ्यता संखी मिसर चहाह ।

घापुन घाबर ताहि पहि ताहि तहाँ नै बाह ॥^३

इस प्रकार गोस्वामी जी ने यत्र तत्र सभी जगह संस्कृति में मर्यादा का निर्वाह किया है।

लोक मर्यादा—

तुलसीबास ने मानस में लोक संस्कृति की बिबिध प्रणालियों को घन नाया है।

घनेक बन्ध बाँटिया का प्रयोग मानस में मिलता है। इन बाँटिया में निपाह बानर, भील बाँटि पाते हैं। यह बाँटिया नायगिक जीवन से दूर समय बनों में निबा सित है। राम से इनका सम्पर्क होता है। राम की संस्कृति का प्रभाव भी उन पर पड़ता है। इस प्रकार तुलसी ने लोक संस्कृति की मर्यादा के बिच प्रकित किए हैं जिनका उद्देश्य लोक प्रिय संस्कृति का सम्य रूप लड़ा करना है।

तुलसीबास ने बिचकूट के पक्ष पर बरसर राम को घनेक घाम निबासी नर नारिया में मिलाया है। तदा घनक घामा में होकर उनके मार्ग का निर्मास किया। इस बर्णन में लोक संस्कृति के बिचों की अनुपम सजाबट है। बिनाय रूप से नर नारियों की बिबिध मानसिक स्थितियाँ का बर्णन किया गया है। राजा बसरय की बचन प्रियता तथा उभुकी घटसता घानि बौद्धिक घादतों के घाधार पर टिकी हुई राजा बसरय की निर्दोषता पर घाम बासिया की हरिष्ट नहीं जाती। उन्हें राजा बसरय घीर नैबेघी समान रूप से बोधी प्रतीत होते हैं।

मुनि लबिपाव मकस पद्यताही । राजा राय बंगू घस नाही ॥^४

कितना घादत बिचल है। लोकापबाह का यह रूप लोक संस्कृति की मनोभूमि का घमान र्वक है। इससे यह सिद्ध है कि नागरिक समाज की घवेसा लोक समाज

१ मा० घयो० पृ० ३२४

२ मा० बा० पृ० २२

३ मा० बा० पृ० ११४

४ मा० घयो० पृ० ३२३

मे सहानुभूति के भाव की प्रधानता होती है। राम लक्ष्मण और सीता के प्रति भी राम वासियों की सहानुभूति के भाव की प्रधानता है। राम लक्ष्मण और सीता के प्रति राम वासियों की सहानुभूति और उनका स्नेह उमड़ पड़ता है।

राम लक्ष्मण सिय रूप निहारी । होहि सनेह बिकस गर नारी ॥^१

इसी राम संस्कृति के ऊपर अनेक नागरिक संस्कृतिवाँ म्योछावर की जा सकती है। इसी रूप पर भगवान बुद्ध की कथणा तुमसीवास जी का लोक संग्रह तथा बाँबीजी की सेवा भावना प्रभावित है। नागरिक संस्कृति में यह सहानुभूति और करुणा केवल सिद्धांत मात्र की वस्तु हो गई है। सम्य भावक ने इन सुलों के साथ अनेक अन्न क्यट पूर्ण व्यवहारों का भी प्राविष्कार किया है। किन्तु ग्राम्य संस्कृति में इन अन्न पूर्ण व्यवहारों का प्राविष्कार नहीं हुआ। देखिए एक शिख ।

एहि बिधि पूछहि प्रेम भय पुलक गाठ बनू नैन ।

कृपासिधु करहि तिम्हहि कहि बिभोत मुहु बैन ॥^२

यह है अन्न विहीन सहानुभूति का प्रकथन। उसकी सहानुभूति की कृच्छ्रानुभूति पर अतिबि लत्कार का सांस्कृतिक भय प्रकट है। राम वासियों की प्रातिप्य भावना की एक झाँकी इस प्रकार मिलती है।

एक देखि बट छाँह मति वासि मुहुन तुम पाव ।

बहुहि गवाँधम छिमुकु धनु लखनव प्रबाहि कि प्राव ॥

एक कमल मरि घामाँह पानी । अन्नदध नाथ कहहि मुहु नानी ॥^३

इस प्रकार अतिबि लत्कार में नागरिक व्यवसायिक बुद्धि की प्रधानता नहीं। सभी अनुभूति की संबन्धना है। राम दुःखियों राम के विषय में सीता से पूछती है —

कोटि मनाज सजाबनिहार । सुमुखि बहुहु को पाहि तुम्हारे ॥^४

किन्तु पति का नाम जैसे पर लोक संस्कृति में न मान्य इसके विपरीत अतिने उपवास पड़ रखते हैं। पति की प्राप्ति बट जाती है। प्रावि प्रावि। अत पति के परिषय की स्त्री द्वारा व्यक्त करने की एक शैली बनी जिनका रूप भोस्वामी जी ने इस प्रकार कहा किया —

तिम्हहि बिभोकि बिलोकति घग्गी । दुहु सकोष सकुषति बरबानी ॥^५

घग्गी इस परिषय का लोक सांस्कृतिक रूप इस भाँति कहा हुआ है —

बहुदि बरनु बिधु रंवल नकी । विय लन बितह बाँह करि बाँकी ॥

लंवल मंडु तिरीछे गदगनि । निज पति बहेउ तिम्हहि सिबं सयननि ॥^६

१ मा. अयो. पु. ३२४

२ मा. अयो. पु. ३२५

३ मा. अयो. पु. ३२६

४ मा. अयो. पु. ३२७

५ मा. अयो. पु. ३२८

इस प्रकार केवल समयों से ही पति का परिचय देना लोक संस्कृति की मर्यादा के आधार पर समझा गया है ।

लोक जीवन का सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण संस्कार विवाह है । इस पर लोक संस्कृति के अनेक विश्वास विद्रिष्ट हैं । इनका भी बृहत् वर्णन मानस में उपलब्ध होता है । राम जन्म मानस में प्रधान संस्कार है । राम के जन्म होते ही चौड़े दाढ़्या में ही सही बानाबरण में लोक सांस्कृतिक कृत्यों की सूचना देना तुलसी नहीं मूम ।

मंथीमुख सराफ करि आठकरम सब कीन्ह ।

हाटक बेनु बसन मनि भूप बिग्रह नहुह दीन्ह ॥^१

धाय बल कर कवि नगर के निवासिया के समारोह का वर्णन करते लयटा है । उस समारोह में मंगल नमरा धायि का वर्णन लोक सांस्कृतिक बरातस पर ही है । जैसे —

कृ ब कृ ब मिति बनी लागई । सहज सिंगार किए उठि धाई ॥

कनक कसक मंगल मरि वारा । पावत पैठहि भूप कुमार ॥^२

धामे नामकरण का संस्कार है यह जन्म क संस्कार का महत्वपूर्ण अंग है ।

विवाहों में लोक संस्कृति—

दूसरा प्रधान संस्कार जिसकी वृष्टमूमि लोक संस्कृति से अधिक पुष्ट है वह विवाह संस्कार है । मानस में दो विवाह प्रमुख हैं एक सिद्ध पावनी और दूसरा राम और सीता का । इन दोनों ही संस्कारों में लोक संस्कृति के तत्त्व जन्म संस्कार से अधिक उमरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं । बारात की धपवानी लेना भी एक लोक सांस्कृतिक कृत्य है । उस समय का एक विश्व मौस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है वह देखिये कितना सुन्दर है ।

मैना मूम धारती संबाटे । संग सुमंगल बाबहि नारी ॥

कंबल बार सोह बर पामो । परिछल बनी हरहि हरपानी ॥^३

इस परिछल के जितने भी उपकरण ह उन सबका सांस्कृतिक महत्व है । जिनमें द्वारा गुम मंगल पाम मंगल धरमर पर गाना प्राय सभी बधा की संस्कृतियों में मिलता है । इस मंगल गान का जिनमा लोक साहित्य उपलब्ध होता है उतना और किमी भी कृत्य का नहा । मंगल गान क धायन व्यवहार के समय गारी माया भी लोक संस्कृति का ही कृत्य है । इसका उल्लेख भी सिद्ध पार्वती विवाह में हुआ है ।

गारि कृष्ण सुर जेबतजाणी । सभी देल गारी मुहु बानी ॥^४

१ मा० बा० पृ० १३७

२ मा० बा० पृ० १३७

३ मा० बा० पृ० ७२

४ मा० बा० पृ० ५२

इस प्रकार स्त्री पुण्यो का नाम ले के कर मारी माने की प्रथा अब भी बिबाहों में पाई जाती है ।

दिव्य पार्वती के बिबाह का वर्णन करना मास्वामी जी का प्रमुख लक्ष्य नहीं था । सीता राम बिबाह का वर्णन तो विष्णुस लोक संस्कृतिक धरातल पर ही हुआ है । राम परछान करन जब सीता की माता बनी तो देव की रीति के अनुकूल कुल पाषाण का निवेश किया है । इस प्रकार के लोकाचार का मूल मुख्यतः लोक संस्कृति ही बिबामाई नेती है । मांडूने के निर्माण में हरे बासों के उपयोग की बात कही गई है ।

वेनु हरित मनिमय सब कीर्ण सरल सपरब परहि नहि बीन्हे ॥^१
इस प्रकार के हरे बासा द्वारा मंडूने के बनाये जाने का उल्लेख लोक में प्रचलित वैवाहिक रीति में घनेक स्त्रियों पर मिलता है । सीता द्वारा देवताओं की पूजा करवाई जाती है । यह देव पूजा भी लोक संस्कृति का ही उदाहरण है ।

माषाण करि सुठ गौरि यज्ञपति मुबित बिम पुजाबही ॥^२
इसके साथ ही स्त्रियों की बिबिध प्रकार को मनातिया करने का उल्लेख तुलसी ने किया है —

पूर नाहि सकल पसारि घबल बिबहि बिनब मुमाबही ।
भ्याहेहि चारिउ भाई एहि पुर हम मुर्मंगल पाबहि ॥^३
माबर पढ़ने के पश्चात् एक सांस्कृतिक दृश्य है कि ए ।
राम सीय सिर लेंदुर देही । सोना कहि न बाति बिबि केही ॥^४
कोहुबर इरम के समय तुलसी लोक सांस्कृतिक तरा की ओर भी स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं ।

कोहुबरहि घाम कुपरि कुपरि
सुधानिनिन्दु मुख पाह के ॥
करि प्रीति लौकिक रीति लावा करन मंगल पाह के ।
सहकोरि गौरि मिजाब रामहि सीय नन सारर कहें ॥
रनिबास हाम बिनाम रम बम जगम को फुनु सब नहें ॥^५
जीबनार वा वर्णन भी लोक सांस्कृतिक है । एवं कबल प्रथा का उल्लेख है ।
इस प्रकार के वर्णनों में हम निरक्षरपूर्वक यह सकते हैं कि मानव के वैवाहिक बिबि घाम घपवा लोक संस्कृति की दृष्टि से बनाये गये हैं । इनमें जहाँ वर्णन

- १ मा० बा० पृ० १६८
- २ मा० बा० पृ० २२२
- ३ मा० बा० पृ० २१३
- ४ मा० बा० पृ० २२२
- ५ मा० बा० पृ० २६८
- ६ मा० बा० पृ० २३०

में सबोबता धीर यति पाती है बही मात्स्य लोक संस्कृति के विविध तत्वों का एक कोप सा बन जाता है ।

धर्म की मर्यादा—

गोस्वामी जी का प्राबल्य जिन समय तथा जम समय धर्म का स्थान पाश्चात्त में ले लिया था । सदाचार पर दुराचार को विजय हो गयी थी । जैसे —

धर्म महि कसि धरम सब सस समेत ध्यवहार
स्वारय सहित समेह सब दधि समुहरत प्रचार ॥^१

पाश्चात्तमी जा न समाज धर्म पर भी बहा । जो कुछ भी कहा वह सप्त युग की स्थिति पर विचार करके बहा । मानव का कतिपय बर्तन इनका प्रमाण है । जिनके अध्ययन से धर्म का ठरब मुलम धीर मुगम हो जाता है । सममें गोस्वामी जी ने लोक जीवन की बही ही मुन्दर ध्यास्या की है । तुलसी ने मक्ति को धर्म में लाकर इतना सुसम्भ दिया कि धर्म माधारण भी धर्म न बिभूत नहीं रह सचा । परिवार क जितने भी व्यक्ति हों उनके प्राचरण में उनके व्यक्तित्व में धीर उनके कर्त्तव्य म धर्म की पहली प्राप रहनी चाहिए । पति पत्नी माता पिता भाई भाई स्वामी सेवक सब को पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए इसकी ध्यास्या मानस में धनेव बार भी गई है । जिनको विवेचना हरी अध्याय म धामे को जायमी ।

धर्म पक्ष पर जाने के हेतु जड़ जीव को माया जाल के दूर करने की भी प्रावश्यकता है । धर्म धीर मक्ति जैसी भावना बिना प्रीति क उत्पन्न हा नहीं हो सचता । सम्भवत इसी हेतु गोस्वामी जी ने ऐसे गावन भी बहूँ हैं ।

प्रति बिना महि मनति हढ़ाई । जिमि लगपति जम क बिबनार्ई ॥^२

बिना समता न मक्ति नावना नहीं कपनार्ई जा सचती है । समता मे ही मझा उत्पन्न होती है धीर घडा मे धर्म की भावना हड़ होती है जितके हेतु बहा भी है ।

धडा बिना धरम नहि होई । बिनु महि यष कि प बह कोई ॥^३

धडा की भावना हड़ हा जान पर जब धर्म की भावना परिपक्व होत सगती है तब बिरबाम की भाषा भी बडने लगती है । क्योंकि बिना बिरबाम के मक्ति नहीं होती ।

बिनु बिस्वाम मर्यात महि तहि बिनु उबहि न राम ।

राम हुआ बिनु मरनेह जीव न लह विघाम ॥^४

धर्म की कपनाने कयबा धार्मिक बनन के हेतु नामाजिहों को जिन बन्धुजों

१ मा० उत्तर पृ० ७६२

२ मा० उत्तर पृ० ७६२

३ मा० उत्तर पृ० ७६२

४ मा० उत्तर पृ० ७६२

का त्याग करना चाहिये और किन्हीं अपमानों का हिण्डू इस विषय की भी व्याख्या बोस्वामी जी ने की है। धर्म के क्षेत्र में ज्ञान और भाँति का समन्वय बोस्वामी जी की महती विशेषता है। घट-धर्म भी बोस्वामी जी की मर्यादा और धोखिय सम्बन्धी कसा का एक धर्म है। बर्णाधम धर्म की निरूपण में प्रमुख स्थान रखता है। घटएव इस स्थान पर यह भी विचारणीय है कि बोस्वामी जी ने बर्णाधम धर्म में मर्यादा को व्यवस्था किस प्रकार प्रस्तुत की है। यथागत नीचे बर्णाधम धर्म की मर्यादा का संक्षिप्त मूल्यांकन किया जा रहा है।

बर्णाधम धर्म—

समकालीन रिवाज—बोस्वामी तुमसीबास जी के समय का सामाजिक स्तर बहुत नीचे गिर चुका था। बर्ण व्यवस्था का लोप हो गया था। निम्नलिखित ब्राह्मणों में बोस्वामी जी ने बड़ी ही सुन्दरता से तत्कालीन विध्वंसक बर्ण व्यवस्था का चित्र खींचा है।

बरल धर्म नहिं ध्याधम जारी । द्युति बिराज रत सब तर नारी ॥^१

+ + +

बरल बरल यन्ही ध्याधम निवास तन्वी । बासल बकिठ सी पराबनो परोसो है ॥^२

+ + +

बर्ण विमान न ध्याधम धर्म । दुनी दुल रोप दुल बरिह बली है ॥^३

+ + +

ध्याधम बरल कलि बिबन बिकसमय नित्र नित्र मरजाब मोन्री सी बार बी ॥^४

+ + +

बरल बरल ध्याधमनि के पैठ पोचोनि ह्यो पुरान ॥^५

+ + +

सूत्र अिजन उपरोसहिं ज्ञाना । पैनि बनेठ रोहिं बुधाना ॥

विप्र निरकार कौनुा कामी । निराचार सठ सुपती खामो ॥^६

ऐसे समय में बोस्वामी तुमसी बास जी ने अपनी भाँति धमक लिखा यदि बर्ण व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो गई तो समाज की बढ़ती अप्पु-बसवा की किसी भी प्रकार रोक न जा सकेगा। घट-ध्याधम और जोड़ के हेतु बरल-व्यवस्था के महत्व को यदि बोस्वामी जी न समझते तो वे समाज में श्रिय नीति और मार्ग की स्थापना करना

१ मा० उत्तर पृ० ७२५

० कवितावली उत्तर पृ० १०३

१ कवितावली उत्तर पृ० १०४

४ कवितावली पृ० २०६

५ विजय पत्रिका पृ० ४६३

६ मा० उत्तर पृ० ७६२ ६३

धाहते ने बहु स्थान ही बना रहता। उनका धारण वा कि समाज में ब्राह्मण ब्राह्मणत्व काटि को लेकर अपना कार्य करे। क्योंकि उनका कार्य अध्ययन और अध्यापन है।^१ उन्होंने ऐसे जामी ब्राह्मणों क इनु समाज में उच्च स्थान निर्धारित किया और इर्मासिग सन्तोंने सबसे प्रथम पृथ्वी पर ब्रह्मा रूप ब्राह्मणों की स्तुति की है।

बबद प्रथम महीनुर चरना। मोह उमित मसय मत्र हरना।^२

ब्राह्मणों का कार्य समाज का ज्ञान प्रदान करना है। उन्हें किसी भी प्रकार क बीमब धादि की चिन्ता नहीं होनी चाहिये। गते ब्राह्मणों क द्वारा ही देश उत्पत्ति के चरम चिह्न पर पहुँच सक्ता है। महाकवि गोस्वामी जी न ऐसे ही ब्राह्मण समाज की कल्पना की है। उसक साव ही साध क ऐसे ब्राह्मण वर्ग को कभी भी महत्व प्रदान नहीं कर सकते का जहाँ तहाँ गाम बजाते पुमठ हैं।

पठित साह जो गाम बजाबा।^३

यह कुत्ति गास्वामी जी की मान्य नहीं। मर्यादा का नस्लंधन भी समाज को उच्छुद्धस बना देता है। इसका उद्धारण हमें कानमसुदि के पूर्ववर्ती धृष्ट भीषण क प्रसंग में मिलता है।

एक बार हर मरिच अपत रहेठ सिब नाम।

सुब धापड धमिमान ठे उठि नहि कीन्ह प्रणामा।^४

घोर इसके हेतु नहीं भयानक बीड का विधान भी कर दिया गया कि —

मा दय न नहि नहेउ कसु उर न रोप नबलेम।

धति धप गुर धपमानता छडि नहि सके महेम।^५

मंदिर नाम मर् नभबानी रे हठमाय्य धम्य धमिमानी।

उद्यति तब गुर के नहि कोषा धति हृपास चित्त मम्यक कोषा।

तदपि साप मठ बीहल तोही नीति बिगोष सोहाड न मोहा।

जो नहि दड को जल तोरा धन होइ धुतिमारग मोरा।

बाएँ व्यवस्था में जैब नीच छोटे ब्राह्मण दूर के धति बीषा व्यवहार होना

चाहिए यह त्रिजगूट में निवार घोर बघिष्ट मिलन से पूण स्पष्ट है। त्रिसे हम धामे स्पष्ट करेंगे।

तत्रियों का प्रमुख कर्तव्य प्रचाररण दान यज्ञ अध्ययन और धक्ति एवं

१ अध्यापनमध्यमं यज्ञं भाजनं तथा दानं प्रति ग्रहं चैव ब्राह्मणानाम्

बृहस्पत् मनु स्मृति दशाध ८८ पृ० १७

२ मा० बा० पृ० १

३ मा० उत्तर पृ० ७६१

४ मा० उत्तर पृ० ७६८

५ मा० उत्तर पृ० ७६६

पराक्रम का प्रयोग युद्ध में करना था। राम और पराक्रमी सभी हैं। यहाँ तक कि वे अमूर्खता से भी बर्ण को कुछ करते हैं। इसी प्रकार समाज के अरुण पीपल का मार सब बीव्या पर है। बीव्या के प्रमुख कार्य पशु पासम व्यापार आदि में। गोस्वामी जी ने बर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत बीव्याओं की उत्पत्ति को बहुत भी उचित स्थान रखा है। इसीलिए —

सेती बनि बिधा बनिज सेवा सिन्धिय मुजाज ।

तुसमी कुलक सरिस सब सुपुत्र राम के राज ॥^१

इस प्रकार उन्होंने बर्ण व्यवस्था के पूरे पासम की मर्यादा उत्तम और समुच्च समाज की वस्तुता के हनु निश्चित की। यहाँ राम के राज्य में बर्णांगम वर्ण की मर्यादा का पूर्ण पासम हा रहा है। इन प्रकार —

बरनामम निज निज परम निरत वेदपत्र लोग ।

बर्नाहि सब पाबहि सुख तहि मय लोक न रोष ॥^२

हमारी धारणा में गोस्वामी जी ने संस्कृति और वर्ण नियन्त्रण के धारण का जैसा चित्रण किया है वैसा व्यवस्था के देखने में आता है। मानस सामाजिक धारणों का कृष्ट वर्ण है जो कवि की महती देन है। उन्होंने समाज के धारण और उनके उत्थान के हेतु प्राचीन कास से आती हुई जिस व्यवस्था को परम्परा का निर्वाह किया वह लोक मर्यादा की भावना के पूर्णतः अनुकूल ही है।

रस और भाव वर्णन में मर्यादा—

गोस्वामी जी ने रस और भाव दोनों में ही मर्यादा का पूरक पासम किया है। गुरुवार रस के विवेचन में गोस्वामी जी ने रूप चित्रण में सबैक ही मर्यादा की रक्षा की है। जैसे जागरी के रूप अंजन के रूप गोस्वामी जी का यह चित्रण है। अथवा अन्ति अनुसिद्ध छवि भारी मर्यादा का संरक्षण नहीं तो और क्या है। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने सर्वत्र भावा की मर्यादा का भी पासम किया है। जैसे जिस भाव का वर्णन किया है उसमें किसी भी प्रकार का शोष नहीं पा पाया है। बहुत से कवियों को रस योजना में रस बाध या जाता है। किन्तु गोस्वामी जी के रस वर्णन में यह बात नहीं। यह तो अथवा रस वर्णन में पाठका का रस मन्त्र कर देने हैं। 'भाव और रस निरूपण' नामि अध्याय में इस विवेचन का विस्तार में लिया जायेगा। अतएव यहाँ इनका संक्षेप पर ही पर्याप्त होगा।

अथ प्रयोग में मर्यादा—

गोस्वामी जी की रक्षा का सबसे बड़ी विधायता यह है कि उनकी शब्द योजना सर्वत्र मर्यादानुक्रम है। जो कवि के लिए अत्यन्त दुस्तर कार्य है कि वह शब्दों में भी

मर्यादा का निर्वाह करें। राम विवाह मंडप के भीचे बैठे सीता को माँग में तिरपूर भगा रहूँ कितना सुन्दर दृश्य है।

राम सीय सिर सेंदुर बेहोँ। सोभा कहि न जाति बिधि केहोँ।

धरन पराग जसकु धरि लोकोँ। ससिहि मूप यहि सोम धमी कें ॥^१

यहाँ राम की भुजा को साँप की उपमा दी गई है। इसी ग्रहि में तो मर्यादा है। सीता के बालों को भी महाकवि ने धाये बनकर साँपिनि सिखा है। सरयु कमल सति यहि भामिनी^२ मोस्वामी जी ने यहाँ राम की भुजा को यहि सिखाकर यह सिद्ध किया कि नायिक क समीप यदि कोई जा सकता है तो वह नाग ही है। इसी कारण मोस्वामी जी ने इस ग्रहि में मर्यादा को इति कर ली।

मानस के प्रथमंत सीता जी की सुन्दरता का बखान करते हुए उनकी उपमा शीपशिखा से देते हुए तुलसी कहते हैं —

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि पुइ शीपशिखा अनु बरई ॥

मख उपमा कवि रह कुठारी। केहि पटठरी बिदेह कुमारी ॥^३

किन्तु इसी के कुछ धाये बढ़कर हम कवि के मुख से सुनते हैं—

ठाठ बनक तनया यह मोई। बगुप बम्प केहि नारन हाई ॥

पुवन गौरि सखी लें धाई। करत प्रकामु फिरह फुलबाई।^४

दोनों स्वसों को एक साथ देखने पर हमें पता चलता है कि यहाँ पर सीता को का फुलबाई में प्रकाश करते हुए फिरने का जो बखान कवि ने किया है उसमें पूर्वोक्त शीपशिखा शब्द को मर्यादा निर्माण का स्पष्ट प्रयत्न विद्यमान है क्योंकि पीछे कवि ने सीता जी को छवि पुइ में बरतो हुई शीपशिखा कहा है।

इस प्रकार विनय परिवर्तन की निम्नलिखित पंक्तियों में अपने को मन्मथान प्रतिष्ठ कहकर भयवान की धरण में जाते हुए उनके लिए 'उरग रियु गामी का प्रयोग भी कितना धर्म पूर्ण है।

तुलसीदास भव ब्यास प्रतिष्ठ तब सरल उरग रियु पायो।^५

यह एक तथ्य है कि धरय रियु गरुड़ के समीप जाते ही ब्यास के प्राणा के माल पड़ जायेंगे। इस विषय पद्मावती के भीतर सम्य मर्यादा के निर्वाह का ध्यान न हुआ तो कवि 'उरग रियु' के स्थान में 'गरुड़' का कोई भी पर्यायवाची शब्द रखकर काम चला सकता था।

धामे हम कुछ धीर रोचक उदाहरणों का उल्लेख कर देना उचित समझते

१ मा० बा० पृ० २२३

२ मा० धरम्य पृ० ४१७

३ पृ० १—२१०

४ ग० १—२११

५ विनयपरिवर्तन पर ११७

है। जिनमें अम्ब मर्मादा का बड़ा ही उत्कृष्ट एक कलात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है जिन पर एक भाषा कसा पारखी की दृष्टि बड़े बिना नहीं रह सकती।

कंठ बीस लोचन बिलोकिये कुमठ फस ।

× × ×
 क्यास संका साई कपि रांभ की सी झोपरी ।^१

सीठा हरन ठाठ बनि बहैठ पिठा सन जाइ ।

जो मैं राम त कुस सङ्गि कहिहि बसामन पाइ ॥^२

छाबेऊ मैं लबार भुजबीहा ।

जो न उपारिसेँ ठर बसजीहा ॥^३

यानि पर काम बिधि तहि रामसौं सबत संजाम बहकंज काँच्यो ॥^४

सुन बसमाच माच साय के हमारे कपि ।

हाम संका साइ हीं तो रईनी हयरी सा ॥^५

नाई बस माच महि जोरि बीस हाच ।

पिय मिक्षिए पै नाच रजुनाच पहिचानि कै ॥^६

उपरोक्त उदाहरणों के अन्तर्गत एक रावल के ही सम्बन्ध में जिन अनेक प्रकार के शब्दों का विरोध आदि के रूप में व्यवहार किया गया है उसमें तुलसी की अम्ब मर्मादा को कसा पर अच्युत प्रकाश पड़ता है। बिलोकिये के साथ बीस लोचन का कहिहि के साथ बसामन का बसजीहा उपारिसेँ के प्रसंग में भुजबीहा का बीस भुजाभा के ठारा अचरोच करने में समर्थ रावल की रसा बीभ उदाहरे के लिए अंगद का स्वामिमान पूण कथन किठना अ्यंजक एवं अमरशरक हुआ है। काँच्यो कपि पर भार संभालना के साथ बस कंज का सुनु सुनु से यहाँ पर विचारपूर्वक धुनने में विशेष तात्पर्य है जिसमें मस्तक जो भी उपयोक्ति का संकेत हो जाता है। क्योंकि यह विचार का माध्यम है के साथ बस माच का तथा नाइ भुकर के साथ बस माच और जोरि के साथ बीस हाच का व्यवहार विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इन शब्दों के लोचन में अन्त पर्यायवाची शब्दों के काम चल सकता था परन्तु न तो यह अमरशरक रह जाता न अम्ब मर्मादा का ही निर्वाह हो पाता। इन प्रयोगों की सार्थकता का विचार करें तो रावल सम्बन्धी कुछ विशेषण बड़े ही मार्क के साथ हैं। उदाहरणार्थ कहिहि बसामन साईं में बसों मुक्तों में एक मुक्त से नहीं प्रपनी करतूत और जमके परिणामस्वरूप अपने नाश का समाचार कहने की क्रिया बसकंज काँच्यो

-
- १ कवितावली ६—२०
 - २ पं० १—११
 - ३ रा० ६—१४
 - ४ कवितावली ६—४
 - ५ मीठावली ६ १०
 - ६ कवितावली ६ २०

में राम से कुछ करने का धार बाह्य करने में एक क स्थान में बस कर्म रखते हुये भी रावण की असमर्थता सुनु बस भाव के धन्तर्गत एक के स्थान में दस मस्तक रखते हुये भी रावण की तटकासोन विपारतृणता साधेड में लबार ... बतबोहा में रावण की बौध मुझाएँ होने की घटसुत क्षमता तथा बीप लोचन बिलोचिष्ट में रावण की निरीक्षण शक्ति की अपिष्टता होते हुए भी इस सम्बन्ध में उनकी असामर्थता इत्यादि विविध भावों की जो सकल अभिव्यक्ति हुई है वह देखते ही बनती है। कहना न होगा कि यह सारी मफसता शब्द प्रयोग की मर्यादा पर ही निर्भर है।

शब्द मर्यादा के सम्बन्ध में जिस दूमरे का का निर्देश पीछे किया गया है उसके विषय में बिसेप बात ध्याग वन की यह है कि ऐसे स्थान पर शब्द या वाक्य की मर्यादा इस बात में निहित है कि उनके द्वारा विभिन्न स्वसों पर बिसकुल समान निवृत्ति का व्यंजना होती है। यथा वे शब्द और वाक्य भी पुनरुक्ति के बिचार को महत्त्व न देकर इन स्वभा पर बीसे के बीसे ही दोहरा बिष्ट गए हैं। उदाहरण क सिष्ट विभिन्न प्रसंगों के अन्तर्गत एक ही शब्द बहुमागी के प्रयोग पर ध्याग बोजिये।

प्रतिसय बहु भागो अरन्निह लामो जुपस मयन जलधार बही ।^१

परेड लफुट इन अरन्निह लामो । प्रेग मगन मुनिवर बहुमागी ॥^२

बहुमागी धंगर हनुमाता । अरन कमल आपत बिबिनाता ॥^३

पहुह बन्य लक्ष्मिन बहुमागी । राम पदारविन्दु पशुपती ।^४

उपसुक्त पदिकों के देखने से बिसकुल स्पष्ट है कि जहाँ-जहाँ किसी भी पात्र को ममबान राम के अरणों की सेवा धयवा प्रयस रूप से जगमें गत हाने का सोमास्य प्राप्त हुआ है वहाँ वहाँ बिषयवण के रूप में उस पात्र के सिष्ट इस बहुमागी शब्द का प्रयोग किया गया है।

सामाजिक और पारिवारिक मर्यादा—

सामाजिक—सामाजिक शब्द में हम पास्वामी की के मारी के धारद्व सम्बन्धी बिचारों का बिबचन करेंगे। और साथ ही यह भी स्पष्ट करने कि पास्वामी की नि मारी में धारद्वों की प्रतिष्ठा किस प्रकार में की है।

बिचि काल में श्रिया की श्रिया की भी व्यवस्था थी। वे धारद्विक बचपिकी कलिउत्र बनकर सर्वत्र के हेतु मारतीय समाज एव ससृष्टि में रूपता एक बिचिष्ट धारद्व स्थापित कर अपने को धमर बना गई। धर्यन के क्षेत्र में धारों और मंत्री के नाम स्वर्ण धरती में सिद्ध आयसों। श्रिया क दाम में लोपामुद्रा मबालसाहि के नाम उल्लेखनीय हैं। बीरता के क्षेत्र में मारिया ने सहज सुकुमारता और कामसता की स्थान

१ प० १—२११

२ प० ३—१०

३ प० ६—११

४, प० ७—१

कर बगड़ी का रूप धारण किया। राजा इशारत के साथ कैदगी कुछ खत्म में लगी थी। रथ के पहिने की बीम निरुस जाने पर रानी ने जंनसी लयाकर पति की सहायता की। इसी प्रकार भौसी की रानी सरनी बाई ने प्राथुनिक युग में भी प्रसुत साहस और पराक्रम विभवा कर भारतीय समाज के सम्मुख बहु धारस रखा कि युद्ध क्षेत्र में महिलाओं की विशेष कुशलता से कार्य कर सकती हैं।

पुराण काल में नारियों के सम्मान मर्यादा एवं शक्ति पर कुठराबात-सा ही मया। पुरुष ने नारी पर एकाधिपत्य प्राप्त करना चाहा। नारी पुरुषों के सामान्य प्रभुत्व का साधन ही मात्र बन कर रह गई।

महापारत काल में शोषणी बीसी नारी का भी मरी समा में बल्यकपुण किया गया।

ऐसी विषम परिस्थिति में नाना पुराण विभागम को मानने वाले योस्वामीजी ने विचार किया कि समाज में जो उच्छ्रंसताएँ फैल रही थीं उनका मूल कारण क्या था। उन्हें समझने में जरा भी देर न लगी कि भारतीय समाज में जिवों का समवर्द्धित होना ही इसका मूल कारण है। योस्वामी जी ने इसी हेतु काक नावक श्री राम के पारिवाहिक जीवन की शिक्षा और सुमित्रादि को धारस माता प्रहृणी धर्मात्मा एवं धामना बिहीन कर में विचित्र किया है। ऐसी देवी की बंधना करने में योस्वामी जी ने प्रसु मात्र भी संकोच नहीं किया। इससे और उनके इस कथन से हम तो बारम्ब प्रेम रम पत्नी के उपदेश को छिड़ होता है कि उन्होंने नारियों को कभी भी हेय दृष्टि से नहीं देना। कीधित्या पतिव्रत धर्म में भी रत है जो कि नारी का प्रमुख बल व्य है और साथ ही उनमें धयाव बारम्ब का जोत भी उमक रहा है। ऐसी धारव नारियों के अतिरिक्त हम बात के जोतक हैं कि योस्वामी जी को नारी समाज के प्रति कितनी धया थी और है उन्हें कितने मर्वाहित रूप में देखना चाहते थे।

परिवार—योस्वामी तुममीदास जी के समय परिवार की आ स्थिति को उसका बड़ा ही सफलता पूर्वक विचल योस्वामी जी ने किया है। पारिवारिक जीवन को योस्वामी ने धरम्ब प्रथम दृष्टि से देखा था और मर्यादा पुरतोत्तम राम के धारस परिवार का बनना करके उमका महत्त्व और धारव समाज के सम्मुख रखा। मन्मथ परिवार का विष प्रसिद्ध करने हुए उसमें जो कुठरियाँ था गई थीं उनका सुधार प्रहृने किया। मात्र ही में निम्ब परिवारों के स्तर का भी के विस्तृत नहीं कर सक। राम के परिवार में कीधित्या सीतादि पत्नियाँ गृहस्थ जीवन का पालन बरती हुई सात्विक जीवन व्यतीत करती हैं। परसु दूधरि और सीतिया डाह के भीषण सावक का विचल यो योस्वामी जी ने किया है। कैधवी कहती हैं :—

सैहर उमक मन्मथ का जाई। जियत्रि न करव मरति सेवकाई ॥१

तथा— दुह बरदान भूत सन पाती । मांग्रु बानु बुझाय गृही ॥

सुताहि राम रामहि बतवामू । बेहु मउ सब सचति हुकामू ॥^१

बेद्वी क बिचल म पान्चामी जी मे बहु बिबाह दुईसा की पार मो संदेय किया है । उहूनि बिभव सग्यत्र परिवारा के बिचल ने राम साधारण धौली के परिवार का उल्लेख करके तत्कालीन परिवारा का भी घंघम किया है ।

गोस्वामी जी की दृष्टि में ऐसे भी परिवार आये जिनके पारस्परिक प्रेम पर बे मुख्य हो गये । ऐसे घावधों का समोकरण उहूनि राम क परिवार म किया । बाम्पत्य प्रेम आतु प्रेम मातु प्रेम पुह मरिठि पादि प्रम्य बिषय भारतीय परिवार के सुन्दर धारण हैं । प्रथ ह्यम राम के इन घावधो पत्रिका के इन सभी प्रमों पर एव-एक करके प्रति संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं ।

बाम्पत्य प्रेम—

इत पर वीक्षे बिचार किया जा चुका है । परतएव यहाँ पर इस बिषय की एक कड़ी की ही पर्याप्त होगी । हमारे गोस्वामी जी को ही प्रतिभा थी कि उहूनि बाम्पत्य जीवन के घन्तगंत अक्षरों में मर्यादा का पालन किया । हनुमान राम का कहा संदेया सोडा को सुनाना चाहत हैं । पर बिचारसीय बात यह है कि संदेया कहने वाले हैं पुत्र मात से धीर संदेया कहा किसने पायेगा माता से । संदेया है किसका ? राम का । संदेय मेहा है पति मे अपनी पत्नी क हेतु । पुत्र पिता का प्रेम संदेश माता से स्वर्ण करे । क्या यह मर्यादित है ? धीर पुत्र अपने मुह से मेरे मरिठों में 'तल्ल प्रेम कर मम धन टारा । जानन तिया एकमन मोरा ॥^२ मे प्रिया धरद का उचचारण बिके करे यदि करे तो मर्यादा हीनता । गोस्वामी जी ने सुरम्त बोहर लिख हनुमान को सात करा दिया ।

रहुरति कर संदेय तब मुहु जननी बरि धीर ॥^३

यह धाम बोला कौन ? हनुमान मही । राम के द्वारा ही संदेय प्रारम्भ होता है । 'राम बड़ा बियोग तब सीता'^४ प्रथ करा बाम्पत्य प्रेम के बलुन क घन्तगंत तुमसी की मर्यादा देखिये । जैसे ही यह राम का संदेय समाप्त हुआ जैसे ही हनुमान के मुह से वही जननी बाबक पद्य निकला । 'बह बरि हूडय धीरु पर माता ।' यह है तुमसी की बाम्पत्य जीवन में अनिश्चित मर्यादा । बिजना निर्बाह करना साधारण कौन के हेतु बड़ा हो कठिन कार्य है । इसी प्रकार राम जयल जाते को तैपार हैं । बह माता क बर बिबा रोने जाते हैं । यह समाचार सुन जाननी श्री भ्यानुम डाकर कहो

१ मा० प्रमो० पृ० २६७

२ मा० सुन्दर पृ० ११०

३ मा० सुन्दर पृ० १७०

४ मा० सुन्दर पृ० ११०

५ मा० सुन्दर पृ० १११

मा जानी है। सीता इस स्वप्न पर राम ने एकदम बाठ नहीं करने भगती बल्कि वह पहले राम व जगता को बदमा बरके इस प्रकार अपनी बाती प्रारम्भ करती है —

यामि सामु पम वह कर ओरी । क्षमहि देखि बड़ि अखिनय मोरी ।

बीहि प्रानपति मोहि सिस सोई । बेहि बिगि मोर परम हित होई ॥^१

यह है पति और पत्नी के बात करने की मर्यादा। इसी प्रकार राम भी माता के समझ बात करने में संकोच करते हैं।

मातु समीप बहुत लकुचाहीं ॥^२

इस प्रकार शाश्वत जीवन की कठिना सुखर और मर्यादापूर्ण व्याख्या गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है।

भ्रातृ स्नेह—

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पारिवारिक विषय में राम भरत और लक्ष्मण के घादरई भ्रातृ प्रेम का विशाल निया है। यद्यपि राम लक्ष्मण भरत और लक्ष्मण सम भाई नहीं हैं। पर राम का सभी माइया पर समान स्नेह है। जो राम के चरित्र के उत्कर्ष का चरम घादरई पर पहुँचा देता है। राम का भ्रातृ स्नेह देखिये। अपने घादरई के समय साथ रहे हैं।

बनमें एक रंग सब भाई । मोहन समय केसि सरिकाई ॥^३

करनेयेम जपबीठ बिघाहा । संग सब सब भए लछाहा ।

बिमस बंस यहु अमुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़हि घमियेकू ॥^४

राम के स्नेह और सहामुमुक्ति के फलस्वरूप ही लक्ष्मण अपनी सर्वस्व यही तक कि लक्ष्मण बिबाहिता उदिला तक को त्याग कर भाई के साथ बन जाने को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

पुरु पितु मातु न जानउ काहू । बहउ सुभाउ नाव पतिघाहू ॥

अहू लनि जगत सनेहु सगाई । प्रीति प्रतीति निदम निहु भाई ॥

मोरें सबई एक तुम्हु स्वामी । दीनबंधु उर अन्तरजानी ॥^५

लक्ष्मण के मेघनाथ द्वारा धरति लगने पर राम अपने भ्रातृ स्नेह का महान परिचय देते हुए कहते हैं :—

जी जननेउ बन बंधु बिघोहू । पिता बचन मन्नेउ नहि घाहू ॥

मुउ बित नारि भवन परिचारा । होहि जाहि उब बारहि वारा ॥

घस बिचारि बियं बागहु ताता । मिलाहू न जनत सहोदर भाता ।

१ मा० अयोध्या पु० २१४

२ मा० अयोध्या पु० २११

३ मा० अयोध्या पु० २१६

४ मा० अयोध्या पु० २११

५ मा० अयोध्या पु० २१५

जया पल बिनु क्षय प्रति दीना । मनि बिनु फनि करिबर कर हीना ॥
 धय मम जिवन बहु बिनु तोही । जो उड़ दीव जिपावै माही ॥
 जीहठ पबष कोन मुहु सन् । नारि हेनु प्रिय माई गंवाई ॥
 बरु धपत्रम सहतई जय माहीं । नारि हानि विनेप छति माहीं ॥^१

यह है अष्ट स्नेह की पराकाष्ठा जिसका समझ सीता श्रीमती महान् पति-पिता को भी स्वीकार किया जा रहा है ।

मनुष्य ममी में छूटे थे । उनकी बातें मानस में अन्य लीला से बहुत कम हैं ।

माता पिता का प्रेम—

गोस्वामी जी ने पारिवारिक चित्रण में माता पिता के प्रति बालक के प्रेम का पूर्ण चित्रण किया है । दशरथ जी के प्रतिम प्राण में पुत्र प्राण हुए के क्षिप्त को मोह में लिए अपूर्व ध्यान का अनुभव कर रहे हैं । ममी मातायें दुष्टों की बाल केमि का पक्षपोषण कर ध्यान में प्रावृत्त हो रही हैं । माता और पिता के प्रेम की उत्कर्षता ठर होती है जब चारों भाई विवाहित होकर पक्ष में आ जाते हैं । तुमसी यद्यपि मानु मुक्त से बेचिठ रहे फिर भी माताओं की स्वामादिक भावना का बड़ा ही मनो-वैज्ञानिक चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है ।

पुत्र के सम्बन्ध की मर्यादा—

दशरथ जी यदि एक महान् पुत्र सम्पन्न पिता के धारण हैं तो राम एक धारण पुत्र थे । दशरथ राम की बन की ली मेज देत हैं किन्तु उनके विधोय में बहु धयन प्राणा का जो धन्त बन देने हैं इमीलिए गोस्वामी जी महाराज दशरथ की बंधना करने का सिद्धते हैं ।

बदत पबष सुधास मरुत प्रम बेहि राम पर

बिधुरत हीनव्यास गिय तनु मुन इव परिहृयेज ॥^२

इसी दशरथ व राम के प्रति प्रेम की महामता गोस्वामी जी ने 'गीताबली' के 'सुकु ली यहवर क्षिपे बहु मारा'^३ बान पर म व्यजिन की है । पिता के प्रति एक महान् धारण पुत्र प्रेम भावना के दर्शन हूँ उन समय होते हैं जब राम मरुत से बन में यह कहन हुए दृष्टिपोषण होते हैं —

नित्र वर क्षाम बेचि या तनु त

जा निनु पग पातहा यनाबी ।

होई न मरनि पिता समरुत न ठारु बनन मनि कीमि पति पाबी ।^४

१ मा० सहा पु० ६२८

२ मा० बा० पु० १८

३ गीताबली धयोप्या वृ० २८७ अक्ष मं० ६६

४ गीताबली वृ० २६८ अक्ष मं० ७०

मातृ प्रेम—

मातृ प्रेम को तो योस्वामी जी ने अपनी कृतिया में बड़ी मार्मिक व्यंजना की है।—

बैठी छपुन मलावति माता ।

बन पंखे मेरे झाल कुसल भर कही काग फुरि बाता ॥^१

× × ×

कौसिस्मारि मातु सब बार्द । निरखि बन्धन बनु धेनु मबार्द ॥^२

इस आदर्श प्रेम के साथ कौसिस्मया कथ्य परामणा भी है । देखिये राम को वह कितना कर्तव्य से भरा उपदेश कर रही हैं ।

जो केवल पितु धामसु ठाठा । तो बनि बाहु बानि बड़ि माता ।

जो पितु मातु कहैव बन जाना । ती कामन सत प्रथम समाजा ॥^३

उपर मुमिना भी कौसिस्मया से कम नहीं हैं । उनमें कही अधिक कर्तव्य परामणा है । वह हरमण को अबरवन्ती राम के साथ जंगल में रह रही हैं । विश्व की किसी भी संस्कार में ऐसा पुनीत आदर्श न मिलेगा । यह योस्वामी जी की कला की ही महानता है कि उनमें ऐसे पुनीत आदर्श समाज को भेंट किये । उपर राम अपने जीवन की सार्थकता माता के आदेश पासन में समझने हैं । तभी माता नहीं अपितु बिमाता के मुँह के अपने मन गमन की बात सुनकर वे क्रुपित नहीं होते अपितु बड़ी ही मधुरता धीर स्नेह से भय उत्तर देकर आदर्श के महानकम की प्रतिष्ठा वह इस प्रकार करते हैं ।

सुनु जननी मोह सुनु बड़मामी । जो पितु मस्त बचन धनुयमी ॥

जौ न जाउं बन ऐसेहु काजा । प्रथम पनिप्र मोहि नूक समाजा ॥^४

सास और बहू का प्रेम—

कौसिस्मया अपनी बहू को कितना अधिक प्यार करती थी इसका परिचय देने हुए यह कहती हैं —

मैं पुनि पुनबपू प्रिय पार्द । क्य रासि पुन सीस मुद्गार्द ॥

त्रिघनमूरि त्रिमि जोपवठ रहेऊ । बीप बाति नहि टारन कहैऊ ॥^५

जानकी का भी अपनी सास से कितना प्रेम है यह उनके कवच में स्पष्ट है ।

१ गीतावली लका पृ० ३३४ श्लोक सं० ११

२ मा० उत्तर पृ० ६१४

३ मा० धयो० पृ० २२८

४ मा० धयो० पृ० २७१

५ मा० धयो ५० २१०

तब जानकी सामु पग सागी । सुनिष माय मैं परम प्रभाषी ॥
सेवा समय ईश बनु दीन्हा । मोर मनोरथु सफल न जान्हा ॥११

× × ×

सीय सामु प्रति शेष बनार्ई । सापर करइ सुरिष सेवार्ई ॥१२
बसुरय जी का भी बहुभा क प्रति प्रसीम स्नह था वे कहते हैं ।
बहु सरजनी पर पर ते धार्ई । रासकु मयन पसक को नार्ई ॥१३

गुरु भक्ति—

परिवार में माता पिता से भी ऊँचा स्थान गुरु का है । राम ने धर्मियेक के समय जो द्वार पर धाकर गुरु का स्वागत किया वह प्रादुर्भूत दशमोप है । यह सब परिवार के धावर्त्स थे । महागुरु बसुरय का परिवार प्रादश परिवार था । प्रता-गोरवामी जी के पदचात्र जाहे भारतीय परिवार रत्न न बन सके किन्तु इसकी वस्यता तो भी ही जा सकती है । निस्संदिह यह महाकवि क चित्रण बना की यह धर्मियेक शीय सफलता है ।

धोचित्य

धोचित्य में बहु कार्य प्रायेना कि बिसे इस ह्य से किया जावे कि इसे प्रत्येक प्रचार से ठीक धीर उचित कहा जाय । पोस्वामी जी न अपन काव्य में प्रत्येक स्थल पर इस धोचित्य की प्रतिष्ठा का ध्यान रखता है । गोस्वामी जी के धोचित्य संबंधी बिचारों पर हम निम्नलिखित धीर्यकों के धन्तर्गत एक एक करके बिबेचना करेंगे ।

१—बिभिन्न धर्मों का धोचित्य

२—बया रत्न का धोचित्य

३—बर्तुन का धोचित्य

१—सम्बो भूमिका

२—सामु बगवता

३—कुप्ट मित्रा

४—प्रकृति बर्तुन

४—बिभिन्न संवाद

५—नारी मित्रा

६—राष्ट्र प्रयोग का धोचित्य

७—धनेक धंकारों धीर उतका समाधान

बिभिन्न धर्मों का धोचित्य—

गोस्वामी जी मर्यादावादी के परम्परावादी नहीं । इसी हेतु उन्होंने अपने

१ मा० धयो० पृ० २६६

२ मा० धयो० पृ० ४१४

३ मा० बाल० पृ० २४६

मानस में विभिन्न प्रसंगों में प्रौचित्य को ही प्रपन्नाया है। परम्परा में जमी पानी हुई रहिबा को नहीं।

मानस के बाल काण्ड में गोस्वामी जी ने राम लक्ष्मण को जो जनक के मकर म बुवाया है वह भी प्रौचित्य ही है यथांदा नहीं। इसी प्रकार राम और लक्ष्मण का बाटिका भ्रमण भी एक भावार्थ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बिबाह के पूर्व इन प्रकार बाटिका में राम जानकी प्रेम बर्णन किसी भी प्रकार में भावार्थ नहीं कहा जा सकता। यह भी प्रौचित्य के ही अन्तर्गत आना। बिबाह के पूर्व गोस्वामी जी ने राम और जानकी के पुरीत स्नेह का बर्णन करना उचित समझा। ऐसे ही जनक के दरवार में परशुराम का आगमन महाशिव के हाथ दिखवाया गया है। धामक का पूर्ण अभ्युदय दिखाने के हेतु यह उचित ही जान पड़ता है।

धयोध्या काण्ड में जयल में राम को सब देखने चाये जनक न देखने जाये यह किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता। अतएव गोस्वामी जी ने मानस में जनक का आगमन जंगल में दिखलाकर प्रौचित्य का पूरा पालन किया है। इसी प्रकार से ब्रह्मिष्ठ और केशव के मिलन प्रसंग में गोस्वामी जी हाथ बड़ा ही सुन्दर प्रौचित्य साक्ष्यी उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण नीच गृह केवट को अपन हृदय में लाना से यह किमी प्रकार से मर्त्या के दर्शन में नहीं जा सकता प्रौचित्य में ही आयेगा।

राम सखा श्रुति बग्बल जैटा । जनु महि सुठठ सगैह समैटा ।^१

संज्ञा काण्ड में गोस्वामी जी ने राम रामण पुत्र में विभीषण पर उचल हाथ छोड़ी हुई शक्ति का सहायण में सहन करके नहीं (वास्मीकि की शक्ति) अपितु राम को सहन करन दिखलाकर भी प्रौचित्य का पालन किया है। क्योंकि विभीषण की शक्ति अधिक राम को ही न कि शक्ति सहायण को। अतएव शक्ति सहन करना भी राम को विभीषण के ही हेतु उचित था। ऐसे ही वास्वामी जी ने सीता निर्वासन के प्रसंग को भी अनुचित समझकर ही अपने काव्य में खान नहीं दिया वह जो उनका प्रौचित्य ही कहा जायेगा। अत इन विभिन्न प्रसंगों में गोस्वामी जी ने प्रौचित्य की पूर्णरूपेण रखा की है।

कथा क्रम का प्रौचित्य—

कथा के क्रम में भी गोस्वामी जी ने प्रौचित्य का पूरा ध्यान रक्खा है। उन्होंने राम कथा क्रम में विभिन्न प्रसंग बिभर बर्णन पीछे ही बुका है। कथा क्रम के प्रौचित्य बिचार से जित्त। इनमें स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पूर्णरूपेण प्रौचित्य का बिचार रक्खा है। वास्मीकि रामायण में उन्होंने अपने मात्रम में जो परिचरित बिना है वे कथा क्रम के प्रौचित्य को ध्यान में रखने हुए ही किये बने हैं। जैसे 'वास्मीकीय रामायण' में सीता के द्वारा सहायण के बिना बटु बचनों का प्रयोग

धारण्य काण्ड में मिलता है । किन्तु गोस्वामी जी ने इसे उचित न समझ कि यह छोटा जो मारियों में शिरोमणि है उनके मुह से इतने अघिष्ट वपनों का प्रयोग लक्षण के लिए कराये अतएव उग्र ने इस प्रसंग को इस रूप में लिखा ।

मरम भजन सीता जब बोला ।^१

इसमें भी उनकी श्रीचरित्य भावना काम कर रही है । अतः गोस्वामी जी के क्या क्रम में भी श्रीचरित्य सिद्धान्त का पूर्णतः पालन हुआ है ।

बर्तन का श्रीचरित्य—

गोस्वामी जी के सिम्बलिखित बर्तनों में श्रीचरित्य का पूरा ध्यान रखा गया है ।

१—सम्बी भूमिका

२—साधु बगवता

३—दुष्ट निन्दा

४—प्रकृति विचार

५—विमिल्य संवाद

६—मारी निन्दा

इन पर एक एक करके नीचे विचार किया जा रहा है ।

सम्बी भूमिका—

गोस्वामी जी का मानस में उद्देश्य वा राम को ब्रह्म के रूप में दर्शन करना । अतएव उनको स्वयं धरका भी कि ऐसे चरित्र को संभव है तथा में धरकर लोग ब्रह्म न माने साधारण मानक ही माने । अतएव उन्होंने पार्वती और भरद्वाज को भूमिका के रूप में रखकर यह दिखाया कि इन दोनों को ही राम के ब्रह्म रूप में धरका है । अतएव इनकी धरका समाधान के हेतु उन्होंने सम्बी भूमिका उचित ही समझी ।

साधु बगवता—

एक के आरम्भ में साधुओं की बगवता करना भी मर्यादा नहीं बढ़ा जा सकता श्रीचरित्य ही बढ़ा जायगा । अपने काव्य का अन्त सम्पादक ही बनाने के हेतु ही आरम्भ में साधु बगवता की है ।

दुष्ट निन्दा—

मरम का अष्टा श्री चरित्य का अष्टा तो बहि होता ही है । अतएव जहाँ एक धर उग्राने सत्ता की प्रशंसा की है वहाँ दुष्टों की निन्दा करना भी गोस्वामी जी की दृष्टि में उचित था । अतएव दुष्ट निन्दा श्रीचरित्य में ही आयेगी ।

प्रकृति विचार—

गोस्वामी जी का प्रकृति वर्णन भी श्रीचरित्य पूर्ण है । उनकी प्रकृति एक उपदेशक रूप में आई है जिसमें सर्वत्र श्रीचरित्य का निर्वाह किया गया है । जिसकी

विद्युत् विद्येयता 'गुलसी का प्रथम शीशुन और बर्लिन' पत्रिका के प्रथमपत्र की जायेगी । यहाँ सबेरा भर ही पर्याप्त है ।

विभिन्न संवाद—

विभिन्न संवादों में तो घौचिपय कूट कूट कर बरा है । प्रत्येक संवाद में प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी भाषा में बोलता है । निपाय घामीण भाषा 'तोहार और अंगद भी अपनी संस्कृति ही के अनुकूल व्यवहारों में राबण से बात करते हैं । मोस्वामी जी के संवादों पर धार्येव किया गया है कि वे कुछ संवादों और प्रसंगों जैसे परशुराम और लक्ष्मण तथा अंगद राबण मंडोवरी बाताँ धारिक में मर्वादा का संस्कार कर पये हैं । ऐसी बात नहीं उठाने समुक्त बर्लिन में मर्वादा की व्यवहृतता नहीं अपितु घौचिपय की रक्षा की है । जिसे इसी अध्याय में हम धाये स्पष्ट करेंगे ।

नारी निम्ना—

मोस्वामी जी के मानस में आ कुछ नारी निम्ना की शीतक बीराइयाँ मिलती हैं वे भी उत्कामीन समाज में नारी की स्थिति को देखते हुए उचित ही कही जायेंगी । जिनकी विद्येयता नीच की आ रही है ।

मोस्वामी जी नारी की विध्य विभूति के पारखी के जिनु मोस्वामी जी के मानस के कुछ नारी विरोधी विचारों को लेकर ही विभिन्न विद्वानों में नारी निम्ना का धार्येव मोस्वामी जी पर सजाया है ऐसा मोस्वामी जी के धर्मिप्राव को न समझने के कारण ही हुआ है । साथ ही मोस्वामी जी की नारी विषयक उक्तियों पर विचार करते समय उन विद्वानों में प्रायः विषय के प्रयोग को नहीं देखा जाँडे —

डोस मकार मूड पशु नारा । उकल ताङ्गता के धधिकारी ॥

नारी के स्वभाव में उठाने जिन गुणों का बर्लिन किया है इससे यह कमी भी तिष्ठ नहीं होता कि यह नारी को हीय हृदि में देखते हैं । उनके समस्त नारी विरोधी विचार यहाँ पर संकलित हैं ।

मोस्वामी जी के नारी विरोधी विचार—

नारि सङ्ग जङ्ग मल ।^१

जबनि जापिता नहि धधिकारी ।^२

नारि भरित जस निधि धबनाह ।^३

रबने धबसर का समय नवर्ज नारि विरवासा ।^४

जनि धबसा जिनि कङ्गा करहु ।^५

सत्य नहुँहि कवि नारि स्वमारु ।

१ मा० बा० पृ ४८

२ मा० बा० पृ० ४३

३ मा० धया० पृ २७०

४ मा० धयो० पृ २७२

५ मा० धयो० पृ० २७२

मह बिचि धनहु प्रगाथ वुराठ ।^१

का न करै धबला प्रबल । केहि जग कानु न बाइ ।^२

बिचिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट धन धनगुन जामी ।^३

महा वृष्टि बलि फुटि किपारी । जिन मुनन मए बिगरीहि नारी ॥^४

समय स्वमाउ नारि कर साँचा । संयल महुँ मय मन प्रति कोचा ॥^५

होस गंवार सूत्र पमु नारी । सकल ताड़ना क धनिकारी ॥^६

नारि स्वमाउ सत्य सब कहूँही । धनगुन घाठ सदा उर रहूँही ॥^७

काम क्रोध मापादि मह प्रबल माहुँ के बारि ।

तिन्हुँ मँह प्रति दासुन बुखद माया करो नारि ॥^८

प्राता विडा पुत्र उर पाटी । पुण्य मनाहर निरलति नारी ॥^९

धन. हुम इन बिचिप्र नारी बिरोधी बिचारों का एक एक करके बिबेचना कर

यह प्रमाणित करने का प्रयास करेंगे कि गोस्वामी जी नारी निन्दक नहीं । अपितु उच्च

प्रति श्रद्धा रखने वाले और उच्चैः शारदा रूप के पुजारी भी हैं ।

नारि सहज अङ्ग धन—

यह प्रयोग है पावठा और संकर का । यह कवन सती का है । ने कह रही

हैं— कीन्ह पकट में संभु धन नारि सहज अङ्ग धन । शास्त्र में पति से कपट करना

अङ्गठा नहीं तो धीर क्या है । यही वर गोस्वामी जी ने एना प्रसंग लिया है कि इसमें

उनकी नारी क प्रति कोई निजी विरोध की भावना प्रकट नहीं होती ।

अदरि सहज अङ्ग नारि धयानी

इस वाक्य में नारी को सहज अङ्ग धीर धयानी शब्दा में सम्बोधित किया गया

है यह सम्भवत इतीहित कि गोस्वामी जी के समय की नागिनी में प्रज्ञान धमिक धा

गया था । उनके समय में स्त्री शिक्षा का इनका प्रसार न था । इससे यह नहीं कहा

जा सकता कि गोस्वामी जी नारी निन्दक थे ।

अबने धवसर का भयद पमउ नारि बिबवास

यह महाशय्या दसरप थी का स्व कवन है । यह ता कैंकेयी क बिबवास न था

पुके थे तनी तो उन्होंने कैंकयी से स्पष्ट कहा —

१	मा० धयो०	पृ० २८१
२	मा० धयो०	पृ० २८३
३	मा० धयो०	पृ० ३३६
४	मा० किविग्ना	पृ० २२२—६६८
५	मा० लका	पृ० २६३
६	मा० मुन्दर	पृ० ३८०
७	मा० लका	पृ० २६४
८	मा० धरप्य	पृ० ३०८
९	मा० धरप्य	पृ० ४८२

भामिनि भयत तोर मम भावा । नर नर ध्यान्व प्रबल वधावा ॥^१

दशरथ के इस घट्ट बिश्वास का पत्नी की धार से प्रतिकार मिसा प्राणहानि । प्रतः दशरथजी का यह कथन स्वाभाविक भी है । गोस्वामी जी का नारी के प्रति कोई निजी दृष्टिकोण नहीं प्रामाणिक है ।

नारि चरित्त जलनिधि प्रवपाहू

यह प्रसव राम जन गमन का है इसमें कैकयी जैसा नारिया के प्रति ही संकेत किया गया है । सब ही है जैसे समुद्र का घन्ट कोई नहीं पा सकता जैसे ही दशरथ की कैकयी में वास्तविकता क्या है इनका अनुमान नहीं मचा सके । यह भी प्रामाणिक है । तुमको की निजी धारणा नहीं ।

जनि प्रवला विमि कथला करतू

यह कैकयी का कथन है । प्रामाणिक है । दशरथ जी रोने लगे तभी उक्त कथन कैकयी ने दशरथ से कहे —

सत्य बहहि बनि नारि रत्नमाळ । सब विमि प्रगठ प्रगाव बुराळ ।

मिज प्रतिबिम्ब नरकु महि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ।

यह उदाहरण राम जन गमन के समय का है । प्रसव के अनुकूल ही है । कैकयी जैसी स्त्री वास्तव में उक्त स्वस पर ऐसे ही सख्तों की प्रतिकारिणी थी । उसकी प्रति वास्तव में मजात थी । जिसे घन्ट तक दशरथ न समझ सके ।

काल करैह प्रवला प्रबल कहि जब जानु न जाइ ।

ऐसे भाव्य गोस्वामी जी ने संस्कृत सृष्टियों के आधार पर लिखे हैं इसमें प्रबल प्रबल पर जोर दिया है । पंचतंत्र में लिखा है कि जब स्त्री मर्त्या हीन होने लगती है तब प्रबल प्रवला हो जाता है । ऐसी मर्त्या हीन स्त्री क्या नहीं कर सकती । इससे गोस्वामी जी का संकेत है नारी को मर्त्या हीन नहीं होना चाहिये प्रमथित होने पर उसकी प्रीमा नहीं रहती । इससे यह बात होता है कि गोस्वामी जी ने ऐसी सृष्टियाँ अपने समय के नारी समाज को उत्तम बनाने की दृष्टि में लिखी हैं ।

महा बुद्धि जनि कूटि किधारी । जिमि रत्नतंत्र मय विप्रहृि नारी ॥

रत्नतंत्रता का धर्म यहाँ मर्त्या के उत्सर्जन में है इसी मर्त्या को विप्र रत्न के हेतु नाम्नामी जी ने नारी समाज को बराबर चिन्तायनी बा है । यदि वे सामान्य रूप से नारी के विरोधी होते तो जानकी को नभी भी माता के रूप में न देखते ।

विमिहु न नारि हृवय बति जानी । लकन कणठ मय प्रवपुन जानी ॥

यह भी प्रामाणिक है । राम के जन गमन के समय का है । प्रतः गोस्वामी जी का यह कथन कैकयी जैसी कथन रखने वाली प्रवपुणों की जानि नारिया के प्रति ही है । ममस्त नारी धर्म के हेतु नहीं ।

समय स्वभाव नारि कर साँबा । संयत मनु प्रयत्न प्रति काँबा ॥

यह राबण का कथन है । यहाँदोरे राय की बीरता के मय में प्राप्त किया है । इनके निवारण के हेतु ही राबण ने ऐसे कथन कहे हैं । प्रासंगिक है । योस्वामीजी की निजी चारणा नहीं ।

बोल गवार मूत्र पशु नारि । सकल ताड़ना के प्रधिकारी ॥

इस प्रथम मूर्ति में ताड़ना के अधिकारी प्रथम एसा है कि जो तुलसी की मारी विषयक तिरस्कृत भावना की पूर्ण के हेतु विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । यही ताड़ना राय स्वभाव का मिय है । इनका धर्म प्रमिया द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकता । जिसमें 'ताड़ना का धर्म पीटना होता है 'तड़ि बागु स 'ताड़ना सग्न बना है । किन्तु 'तड़ि' बागु का धर्म ताड़ना ही नहीं होता । 'ताड़ना' का अर्थ संस्कृत विद्वानों में निर्योग भी माना है ।^१ यही पर 'ताड़ना का धर्म यदि यह सिया जाये कि बन्ध का इस धर्म तक पीटना रहे तो कथन स्याय संयत माना जा सकता है । पर 'तड़ि' का व्यम्पार्थ निर्योग हुआ होता है । निर्योग का यह यन्मीर धर्म निर्योगता है कि बोल गवार मूत्र पशु और मारी को प्रत्येक क्षण दब रक्त में रचना चरित्र । यदि योस्वामीजी का अविश्राम निर्योग न हुआ पीटना होता तो इन्होंने अपने समय की सामाजिक स्थिति में बाजार विषयक कथन ही नहीं कहे जहाँ शिष्टों पर डके पड़े हुए दबे जान । यही तो तुलसी ने अपने मानव के पाप बाजी का जो धरती पत्नी पर प्रत्याचार नहीं करने दिया ।

नारि स्वभाव सत्य कवि कर्हि । अरगुन घाट सबा जर रह हीं ।

यह भी राबण के कथन हैं । इन राबण का तो बाय ही मारी जाति का प्रयत्न करना है । जानकी हरण करत उसके मारी प्रयत्न का घातक है । योस्वामीजी की निजी चारणा नहीं है ।

बाम शेष लोमारि मर दहन मोहू क बार ।

सित महु प्रति रावन दुष्टमाया कपी नारि ॥^२

यह राम का कथन है । अन्त काण्ड में नारद ने यह कहा कि जब माने प्रवता माया का प्रेरणा को जो तब में विबाह का अनिष्टायी या तो माने किस कारण मुझे विबाह नहीं करने दिया । तब भगवान ने कहा माया प्रत्यक्ष दुष्ट है इसी कारण मैंने मुम्हारा विबाह नहीं होने दिया । इस प्रयोग का मानव में मुनि राय से ही प्रारंभ और अन्त हुआ है ।

अरगुन मून सुन प्रर प्रमरा सब दुष्ट तारि ।

ताते कीन निवारण मुनि में यह विप्र जाति ॥

१ जालदेने पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयन् प्राप्ते ।

तु योद्धे नये पुत्रं विप्रमवशाचरेत् । मनु० ४।१८

२ मा० अरण्य पृ० १०६

बहु राम की नारी निम्ना सम्बन्धी बात मुनिया के लिये है। बुद्धत्व क हस्त नहीं। यदि राम की ऐसी धारणा नारी के प्रति होती तो वह सत्ताओं धीर कृशो से जानकी के समाचार न पुच्छे भ्रमत्। अतः यह भी गोस्वामी जी की निम्नी धारणा नहीं।

आता पिता पुत्र अरणी। पुत्र्य मनोहर निरक्षति नारी ॥

यह सुपनखा के प्रथम की सति है। सुपनखा जैसी बुद्ध नारियों के प्रति ही यह कथन है। गोस्वामी जी ने ऐसी कृति राक्षस आति की नारी क प्रति की है। प्रमाण है विभीषण जो मन्थरी का पुत्र तुम्ह है अन्त में राक्षस की मृत्यु के बाद यह विभीषण की ही पत्नी हो जाती। अतः ऐसी ही राक्षस नारिया के हेतु गोस्वामीजी की यह सति है। समस्त नारी आति के प्रति नहीं।

सारांस यह है कि गोस्वामी जी ने अपने समय को जैव धीर नीच दोनों ही स्तर की नारियों के स्वभाव को लुप्त परखा था। वे मरुत थे। नैरासी थे एवं भावस प्रिय थे। अतः उनकी सृष्टियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे नारी को समाज से बहिष्कृत या तिरस्कृत करना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन के समय में नारी प्रसाधन धीर अक्षर की सामग्री मानी जाती थी जो मरुत के हेतु अहितकर थी। इस प्रकार मिसता है कि सभी पुत्र्य नारी के बन्धित होकर नट मरुत की भाँति नाचते हैं और नारियाँ भी मुम्बर पतियाँ को छोड़कर पर पुत्र्यों को प्रसन्नी हैं। पुत्र माता पिता को तभी तक मानते हैं जब तक कि पत्नी नहीं जाती। इन सभी बातों का विषय निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है।

नारि विषम नर सख गोसाईं। नार्त्ति नट मरुट की नाई ॥

पुत्र मन्दि सुबर पति त्यागी। भर्त्सि नारि पर पुत्र्य समानी ॥

मृत मानिहि मानु पिता तब सी। प्रसामन बीरु नहीं जब सी ॥^१

इससे सिद्ध होता है कि पुत्र्य समाज की नारा विषयक स सति न बीर्य धीर समाज की मर्वा का उच्छ्रुत करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे तुल्यारास जो को इन बातों पर पूरा प्रकाश डालना था और ऐसी विषय परिस्थिति में तुलसी को मर्वा विहीन स्त्रियों को लक्ष्य करके लोगों को मरुत के हेतु भ्रूकाने के सिद्धे इस पद्धति का अनुसरण करना पड़ा। इससे यह कभी भी सिद्ध नहीं होता कि वे नारी आति के विरोधी थे। अतः सुधार की भावना से ही गोस्वामी जी की कट्ट सत्य का आघव लेकर नारी के स्वभाव का धीरिय पूर्ण विषय करना पड़ा। यह मनोवैज्ञानिक सत्य का विषय है। जो सामाजिक आधार के हेतु अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य रामचन्द्र

सुख्य मोक्षामो जी को नारी निम्बक नहीं स्वीकार करते ।^१ अतः यह कहना कि मोक्षामो जी स्त्रियों के विरोधी ये सर्वत्र निर्मूल और असत्य प्रयोज्य होता है । क्योंकि यदि वे नारी विरोधी होत तो वे राक्षसियों को भय पराजय और विदुषी न चिन्तित करते । वे मंडोदरी से स्पष्ट है । वास्तव में यह सिद्ध होता है कि उनकी रचनामा में जो पत्र-पत्र नारी निम्बक सम्बन्धी विचार मिलते हैं जिसकी विवेचना पीछे की जा चुकी है और साथ ही यह सिद्ध भी किया जा चुका है कि उन्होंने यह नारी निम्बक सम्बन्धी उच्छ्रिया अक्षर का ध्यान रखत हुए उचित रूप से प्रस्तुत की हैं । हमने यह भी ध्यान रखा है कि नारी निम्बक सम्बन्धी उच्छ्रियों में भी मोक्षामो जी की धीचिन्तपरक दृष्टि काम कर रहा है ।

एक प्रयोग का धीचिन्त—

मोक्षामो जी ने शब्दों के प्रयोग में भी सर्वत्र धीचिन्त का ध्यान रक्ता है । स्थानानुसार से यहाँ एक शब्द धीचिन्त का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण मोक्षामो जी के काव्य में प्रस्तुत किया जा रहा है । राम को बलकर अनकर की कियों का कथन है —

नंदु ममुक्ति बिनु साइ चितोरी ।
 राज कुंवर मुक्ति रखिबे को ॥
 रवि मुबिरब भय कियो हो चितोरी ॥
 लख सिख सुन्दरता सबसोकत ।
 कह्यो न परत मुन्य होत जिनीरी ।
 मांवर का मुबा भरिब नहू ।
 नयन कमस कत कतन रितीरी ॥^२

इसमें 'नयन कमस कत कतन रितीरी' में शब्दों का कितना सुन्दर धीचिन्त मन्त्रित है । इसमें सब कमस को सुन्दर शब्दों का उपमा दी गई है । नारिया का इसमें जो संबोध है वह यह है कि अभी तक हमारे नेत्र जो धन्य जायों के मीठ्वर्य वसन में भर हैं उन्हींके खाला करके ही इसमें राम का लीख्वर्य मुबा को भरा जा

१ मीठाबलो ब्राम पृ० ७६

२ उन पर स्त्रियों की निम्बक का महापाठक समाया जाता है । पर यह धपराव उन्हींके धपनी विरति की पुंठ के ही हेतु किया है । इसे उनका बीरागोपन ही समझना चाहिये । सब कियों में उन्हींके नारी निम्बक नहीं की । केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में धपना कामदय रति के धालम्बन रूप में की । माता पुत्र भगिनी धारि के रूप में नहीं । इससे सिद्ध है कि मोक्षामो जी का नारी के प्रति कोई द्वेष नहीं था ।

सकता है। क्योंकि इस ब्रह्म रूप मुखा के समस्त सभी सौख्य धर्म हैं। किन्तु सुन्दर धर्म प्रीति है।

विभिन्न अंशों और अंश समाधान—

गोस्वामी जी कट्टर मर्यादावादी के किन्तु परम्परावादी न थे। उनका परम्परावादी न हुआ हो उन्हें प्रीतिवादी सिद्ध करता है। क्योंकि प्रीति श्री परम्परा पर नहीं धरितु वैसासक तर्क पर चलता है। मासिक के निम्नलिखित प्रकरणों में गोस्वामी जी मर्यादा की रक्षा नहीं कर सके हैं ऐसी अंश विज्ञान द्वारा उठाई गई है।

१—सत्य और परशुराम की बातों में

२—अंगद और राजा संवाद में

३—बालि वध

४—मन्वोदरी राजा बातों में।

अतः हम इनमें से एक-एक पर विचार करेंगे और यह प्रमासित करने की चेष्टा करेंगे कि महास्थान इन सभी स्थानों में गोस्वामी जी ने मर्यादा और प्रीति की रक्षा की है उल्लंघन नहीं।

सत्य और परशुराम बातों में—इस प्रसंग में अंगद की नहीं धरितु प्रीति की रक्षा की गई है। क्योंकि परशुराम का राम और सत्य के प्रति जो व्यवहार हुआ है वह अंगद के स्वयं के अनुकूल नहीं। इस कारण मर्यादा का कोई प्रसंग ही नहीं उठता। सत्य ने परशुराम के उक्त व्यवहार के अनुरूप ही परशुराम से उत्तर प्रति उत्तर किया है वे सभी प्रीतिपूर्ण हैं।

अंगद और राजा संवाद में—अंगद राजा से जा बातों करता है वह एक बूढ़ की मर्यादा के अनुकूल ही है। इनके अंगद स्वयं बालि का है। अतएव वह मर्यादा पूर्ण बातों कर भी नहीं सकता। अतः यहाँ गोस्वामी ने अंगद की बातों में उसकी संस्कृति का प्रीति और एक बूढ़ की मर्यादा दोनों का ही पूर्ण ध्यान रखा है।

बालि वध—बालि के साथ राम का जो व्यवहार का अंगद मर्यादा की तो बात हो न थी क्योंकि हम अंगद और मर्यादा व्यवहार उल्लंघन करेंगे जो अंगद मित्र है। राम की सुधीय से मित्रता थी। सुधीय बालि का राम है। अतएव वह राम का भी धर्म ही ही सकता है। राम के साथ राम मर्यादा अर्थात् महास्थानाधिकारी बात है। अतएव अंगद गोस्वामी जी द्वारा राम के अतिरिक्त प्रीति की रक्षा ही गई है। राम के द्वारा बालि वध सर्वथा प्रीतिपूर्ण है जबकि वह अंगद मित्र सुधीय का अनुयायी।

राजा मन्वोदरी बातों में—मन्वोदरी राजा संवाद में अंगद संस्कृति के प्रीति की रक्षा हुई है।

मोस्वामी जी मर्यादावादी थे। पर उनकी यह मर्यादा और आदर्श सख्त नहीं हैं। बरन् मर्यादा के द्रोणित्य के अनुरूप हैं। जीवन में मर्यादा और आदर्शों में स्थिति के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। इस कारण जीवन-मृत परिस्थिति की मर्यादा के द्रोणित्य का ध्यान रखना मर्यादा की शौक पोखने से अधिक प्रयत्नशील है।

मृत मोस्वामी जी की रचना में सर्वत्र आदर्श और मर्यादा का पालन तथा द्रोणित्य का निर्वाह है। यह उनकी वाच्य कला को यन्मीर महत्व प्रदान करता है।



शैवा धम्म्याय



तुलसी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला

विषय प्रवेष्ट—

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में विक्रम की १७वीं शताब्दी एक पुष्प की शताब्दी हुई। सोलहवीं शताब्दी का धर्मगत ब्रह्मसूत्र के समान था। निशान में ऊंचा की कालिमा छिंटकी घोर धर्ममाय साहित्य गगन मंडल के मार्तण्ड महत्त्वा तुलसीदास जी का उदय हुआ। एक प्रचलित कथन है।

सूर सूर तुलसी सभी उदयन शेषवशात्।

धर्म के कवि अछोत सम जहूँ तहूँ करत प्रकाश ॥

परन्तु मैरी धारणा यह है कि 'सूर' सूर का समक धीर तुलसी सभी का अनुयायि मिलाने की लिप्या से ही ऊपर के दाहे की मुट्टि हो गई है। धर्मका हमकी रचना मैरे विचार में इस प्रकार होनी।

तुलसी रवि मम सूर सवि उदयन शेषवशात्।

धर्म के कवि अछोत सम जहूँ तहूँ करत प्रकाश ॥

जिस प्रकार ब्रह्मा सब धर्मस्वतिया में रस प्रदान करता है धीर उसे सूर्य पलायन हृदिमायी और जीवको शक्ति का संचार करता है इसी प्रकार सूर्य की रमयक प्रेम भावना को तुलसी ने धर्ममे मर्यादाबाह एक आदर्श से परिष्कृत कर हिन्दी काव्य को सुन्दर एवं सत्य दिग्ग मंडित बना दिया।

उन्हासे हिन्दी साहित्य की धर्म प्रयोग सम्बन्धी कला के उदय में असीम कबीर भाव नूतन दिखाये। यहाँ हम ना बायीं ओर की धर्म प्रयोग सम्बन्धी कला प्रतिपाद पर दृष्टिपात कर रहे हैं।

भाषा में लिखने का कारण—

१) बायीं ओर ने स्वीकार किया है कि हम 'स्वाभ्यामुवाय धर्मका 'मोरे द्विध प्रयोग जैह होई' इस कारण भाषा में लिखने हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय संस्कृत भाषा में प्रचार होता कालि है। भाषायी ओ की धर्मनी भावना भाषा में लिखने की यही है कि गुरु जी ने जो राम कथा बार बार मुझसे कही वह संस्कृत में थी। धर्मनी काल बुद्धि के अनुसार मैने उसे बोझा बहुत समझा। प्रयोग तो सभी होना चाह में धर्मनी भाषा में कहीगा। इससे एक लाभ भी होना वह यह कि धर्मका के तुलसी नाम करके में धर्मनी बायीं ओर लिख करेगा।

भाषा में ही रचना करने का एक यह भी कारण है कि वह महत्वपूर्ण युग मानते हैं हेतु साक्षर-क ज्ञान का सर्व-मुपय रचनाता चाहते थे। इसमें भाषा उन्हीं भाषा में लिखा।

जिस निति मौलिक बुद्धि में प्राकृत को अपनाकर अपने मंत्र का प्रचार किया उसी प्रकार गोस्वामी जी ने भाषा में रामचरित का वर्णन करके मानव को धारण कर दिया। यह सब कर्त्तव्य समाप्त करने में पूर्ण रूप समाप्त मानसंग्रह का

• क्यों वे निरन्तर कीर्ति सम्पन्न बने रहना हमें यह सब विचारों दिशाता है कि नवी प्रकार कई भी वर्ष पूर्व भाषा को मन्त्रान भी इस मानव का इसी निति समाप्ता बन करती रहेगी। और इसकी प्रत्येक निति भी इसी प्रकार की बनी रहगी।

शब्द कोष—

गोस्वामी जी का शब्द कोष इतना विद्यालय है जिसका नाम किसी भी कवि का नहीं होता। इन्होंने हजारों संस्कृत प्राकृत तथा विभिन्न भाषाओं के शब्दों का बड़े व्यवहार के साथ प्रयोग किया है। जिस कवि का शब्द कोष जिनका ही विद्यालय होता वह उन्हीं ही शीघ्र-क साधक मान जायेंगे कि मन्त्रान के मन्त्रान किसी व्यवहारों कवि द्वारा "सुन्दर" शब्दों को मन्त्रान के शब्दों को निर्धारित करने कवि के मन्त्रान भाषा का पता लगाना न बड़ा उद्योगी मनुष्यमान कार्य है। तुलसी पर ऐसा कार्य काफी हो चुका है। गोस्वामी जी का शब्द कोष विद्यालय होने के साथ-साथ इनका मन्त्रान भी है कि टीकाकार उनके शब्दों का धर्म करने में व्यवहार करते हैं। गोस्वामी जी की व्यवहारों को लेकर जिनका भी व्यवहार किया जाय उतना ही शब्द-मन्त्रान मन्त्रान है। मन्त्रान हम गोस्वामी जी की मन्त्रानमन्त्रान व्यवहारों को विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

मन्त्रानमन्त्रान व्यवहारों—

तुलसीदास का हम सर्वत्र शब्दों के व्यवहारों का मन्त्रान को रखा करते हुए पाते हैं। शब्द-मन्त्रान में ऐसा व्यवहार कवि हिन्दुओं में कोई भी नहीं मिलता है। जैसे उन्हीं करने करने पायों की मन्त्रान का धारण सर्वत्र रखा है। जैसे ही शब्दों को मन्त्रान भी उन्हीं निभाया है। शब्दों की मन्त्रान को रखा का एक उदाहरण नीचे है। इन्मान में राम को पोषा का सम्पन्न इन शब्दों में मन्त्रान।

बिरह-मन्त्रान तनु मन्त्रान। स्वाम-मन्त्रान धन-मन्त्रान मन्त्रान ॥

मन्त्रान मन्त्रान मन्त्रान मन्त्रान मन्त्रान। मन्त्रान मन्त्रान मन्त्रान मन्त्रान ॥

इसमें 'तनु' 'धर' और 'देह' यह शब्दों ही शब्द एक साथ में धारण है एक ही धर्म के साथ-साथ इन पर भी 'तनु' 'धर' और 'देह' के व्यवहारों मन्त्रान-मन्त्रान है।

'तनु' (तन+तन) शब्द मन्त्रानमन्त्रान का शब्द (विह+धर) मन्त्रानमन्त्रान और पुष्प तथा 'धर' (ध+ईश) मन्त्रान धर धर होने वाले धर्म का व्यवहार है।

सक तीनों प्रकार के सन्तों के प्रयोग की कसा का सीख्यं देखिये । तुम की क्रोमसता के लिये तनु बल के लिए शरीर धीर बल से सीने बाते रहने के कारण उत्पन्न हुई रबरता के हेतु देह सम्प का प्रयोग करके कबि ने रचनाचार्य की परा काष्ठा दिखाता ही है ।

अब एक दूसरा प्रसंग देखिए । महाराज दशरथ राम के विवाह की शारदा समा कर जनकपुर गये । जनक के स्वागत उत्कार पाकर वे जववाठे में बैठे हुए हैं । पर मन में अपने पुत्रों के देखने के हेतु छटपटा रहे हैं एकाएक उनके दोनों पुत्र राम धीर सहस्रमुख विश्वामित्र के साथ आते हुए दिखाताई देते हैं उन्हें हृदय से लगाने के हेतु धातुर होकर महाराज उठे । इस अवसर पर तुमसी ने उन्हें ढीढ़ाया नहीं । क्यों कि वे पुत्र के स्नेह के भार से बने हुये थे । प्रत्यक्ष जनका धीरे-धीरे चलना ही स्वाभाविक था । तुमसी कहते हैं ।

भूप बिसोके जबहि मुनि प्राप्त सुतगुह समेता ।

उठैह हृदि सुख सिन्धु मह जाने बाह-सी मेता ॥^१

सारा रस 'जब बाह सी मेत' में है । कबि मानो पुत्र स्नेही पिता का अनुभव कर रहा है । यहाँ जो महाराज दशरथ ढीढ़ते नहीं हैं प्रस्तुत बाह सी मेते के आधार पर जो धीरे-धीरे चलते हैं इसमें भी भाव है वह यह कि दशरथ जी चूँकि राम को बहुत बिल बाब प्राप्त देख रहे हैं इस कारण उनका आत्मान्य प्रेम उमड़ पड़ा धीर इसी कारण वह प्रेम में धवीर होने से धीरे धीरे चल रहे हैं । पर वे ही तुमसी चित्रकूट में कुछ आग्रहण सुनकर राम को किरने सेन से ढीढ़ाते हैं ।

जने सकेय राम तेहि कासा । धीर चुरन्बर धीन दवासा ॥^२

स्नेह नरे पिता का धीरे चलना उचित था धीर कर्तव्य बुद्धि से प्रेरित राम को नैग से ।

मानस में पोस्वामी जी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कसा एक निश्चित मर्यादा से बंधी हुई है । उदाहरण स्वरूप सुख सङ्ग का प्रयोग मानस में एक निश्चित प्रयोग धीर धरसर की मर्यादा से बंधा मिलता है । जहाँ भी राम के सम्पर्क का बर्तन पोस्वामी तुमसीबास जी ने किया है । वहाँ उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का सुख प्राप्त होता है । यह सर्वत्र दिसलाया गया है । इसके समक्ष में मानस में इन सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

राम गर्भ में था रहे हैं तभी संसार में सुख की चरित्त कर्पा ही रही है ।

जा दिन तै हृदि हृदि कर्महि पाये । सकल लोक सुख मंत्रति पाये ॥^३

१ मा० बा० पृ० १११

२ मा० बा० पृ० ४०८

३ मा० बा० पृ० १३३

धरतार हो गया । चारों भाई बड़ हो गये धरम में बिहार कर रहे हैं तमो
महाकवि न सिखा —

कहुक कस बोले सब भाई । बड़े भये गरिजन सुख भाई ॥^१

राम बास्याबस्या में भी ममी को सुखी बनने हैं —

बेहि बिधि सुखी होहि पुर सोया । करहि कृपानिधि मोर संबोना ॥^२

बैसि ही मिथिलाबासिनों की दृष्टि उन पर पड़ी कवि की लेखनी ने अपने
नियमानुसूल सिख ही दिया ।

निरखि सहज सुखर सोन भाई । हाहि सुखी लोचन फन पाई ॥^३

जब राम धयोप्या में बिबाह कर धाये तब भी ठमक सम्पर्क में ममी मुन्ना
है —

सब बिधि सब पुरसोय सुखारी । रामचन्द्र मुन बग्न निहारी ॥^४

जब रामचन्द्र जयस के निवासियों के सम्पर्क में धाये तब फिर महाकवि ने
यही पद्य लिखा —

सीता सखन सहित रकुटाई । गाँव निकट अब निकसहि जाई ।

मुनि सब बान कृष्ट नर मारी । पाइ नयन फल हाहि सुखारी ॥^५

गोस्वामी जी का यह पद्य उस समय अपनी धराधारण प्रतिभा बिल्लाता
है जब राम मनुष्यों को नहीं धरने सम्पर्क में धाये हुए पशुओं को भी सुखी कर
रहे हैं —

करि बेहरि कपि कोल कुरया । बिपठ बैर बिचरहि सब मंग्य ॥

फिरत घेरे राम धरि बैसी । होहि सुखारी मुन कृन्द बिसेपो ॥^६

इतना ही नहीं जब राम बड़ा न सम्पर्क में धाये तब भी गोस्वामी जी अपने
इस पद्य को नहीं भूले —

परसि चरन रज धरर सुखारी । भय परम पर के धरिबाय ॥^७

धाये राम जब मुनियों के सम्पर्क में जयस में धाये तब भी इसी पद्य का
निर्बाह देखिये —

निसिपर हीन करी महि मुन उठाइ पन कोइ ।

धरत मुनिह के धाममगिह जाइ जाइ सब होइ ॥^८

१ मा० बा० पृ० १४३

२ मा० बा० पृ० १४३

३ मा० बा० पृ० १४३

४ मा० धयो० पृ० २१४

५ मा० धयो० पृ० १२४

६ मा० धयो० पृ० ३४१

७ मा० धयो० पृ० ३४१

८ मा० धयो० पृ० १७८

इसी प्रकार मैं इन राम के विभिन्न नामों की वनों में जो हम सब शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे राम का नाम —

सुमिरत सुमम सुखर सब काहु । लीक लाहु परसोक निबाहु ॥^१

इसी प्रकार मैं राम के रूप^२, लीसा^३, धाम^४ चरित^५ लीड़ा^६ मलि^७ प्रजा^८ बास^९ कीर पासल^{१०} धारि में भी इस शब्द का प्रयोग दृश्य है।

इतना ही नहीं राम के हेतु प्रयुक्त विशेषणों में भी हम शब्द का प्रयोग मिलता है।

जाइ बैलि धानहु नगर कुल निबान सोइ धार ।

करहु सफल सबके मयन सु हर बचन दे-धार ॥^{११}

१ मा० बा० पृ० २०

२—रूप रात्रिबमन बरें अनु सायक । मगत विपति भंजन सुखदायक ॥

—मा० बा० पृ० ११

३—लीला प्रभु बोट बाप नैद मंहि डारे । रेति भाग सब मग सुखारे ॥

—मा० बा० पृ० १८२

४—धाम धति प्रिय मोहि इही के बासो । मय कामबा पुरी सुल रामी ॥

—मा० उत्तर पृ० ६१९

५—चरित राम चरित रासैच कर सरित सुखर मय काहु ।

सखन कुमुब अकोर चित हित विमम बड़ साहु ॥

—मा० बा० पृ० ३०

६—लीड़ा प्रभुहि विमोकिहि टरहि न गारे । गन हगपित गन मग सुखारे ॥

—मा० संका पृ० १८६

७—मलि मर सुख जालि भगति तें भासी ।

महि जन कोउ साहि मम बड़मासी ॥

—मा० उत्तर पृ० ७३१

८—प्रजा धवध पुरी बासिन कर सुख संपदा समान ।

सहस सैल नहि सकहि कहि जह रुपराम विराज ॥

—मा० उत्तर पृ० ७११

९—बास जब तें राम कीन्ह संह बासा । सुखी भये मुनि बीठी बासा ॥

—मा० धरम्य पृ० ४७१

१०—पासल एक बार प्रभु सुख पासीना । लक्षमन बचन कहे छत हीना ॥

—मा० धरम्य पृ० ४८०

११ मा० बा० पृ० १२४

इसी प्रकार अग्य जगह भी इस अर्थ का प्रयोग बराबर मिलता है ।^१ इसी प्रकार महाबलि की शब्द मोक्षता बड़ी ही मर्यादाशुभ्य और बलात्मक रहता में पृष्ठ है ।

भाषानुसूत सब घोषणा—

प्रारम्भिक अवस्था कुछ पूर्ण होने के कारण गोस्वामी जी का हृदय बड़ा संवेदनशील हो गया था । साथ ही इन्हे जीवन का व्यापक अनुभव प्राप्त था । और संस्कृत तथा हिन्दी के विविध रूपों पर उनको विश्वास ज्ञान था । इसलिये इनकी रचना में सर्वत्र भाषानुसूत अर्थ घोषणा प्राप्त होती है । यह बात केवल उनके ज्ञान की ही छोटक नहीं बल्कि उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा की भी छोटक है । उनकी भाषानुसूत शब्दावली को हम दार्शनिक शब्दावली में और प्रथम पूर्ण श्रुतिगारिक प्रयोगों की शब्दावली के शीर्षकों के अन्तर्गत ले सकते हैं । जिनका एक एक करके विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है ।

दार्शनिक भाषा की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्दावली—

दार्शनिक भाषा की अभिव्यक्ति में गोस्वामी जी की शब्दावली निम्नलिखित हो चुकी है । उनके हृदय में अत्यन्त उत्प्रेरित होता है । ऐसे स्थलों पर उनका जल माया के लक्ष्य प्रवाह के साथ जो पवित्र सम्बन्ध अत्यन्त दिव्यसाईं पड़ता है वह एक दम झूट जाता है और दूसरी शब्दावली तथा वाक्य घोषणा बड़ी ही शिष्ट साहित्यिक स्तर को प्रपन्न होती हुई तथा उनके शैली एवं सूत्र पद्धति का अधिक अनुगमन करती हुई चलती है । प्रथम इस प्रकार के दार्शनिक विवेचन में अन्वयाधारण की बुद्धि का प्रवेद मही हा जाता । उसके लिये जसमें एक मात्र सम्मीरता और चिन्तन मौलिकता की स्वतन्त्रता रहती है और बिना इस बात के हस्के प्रामाण्य कि कोई दार्शनिक प्रपन्न शैक्षणिक विद्यालय नहीं है उसे बुद्ध और पता मही चलता तबे प्रवृत्त पर इस प्रकार की शब्दावली का प्रथम सेना जिसमें संस्कृत उत्तम शब्दावली का अधिक समावेश रहता है । तुलसी की सूक्ष्म दृष्टि का परिणामक है कि और साथ ही ऐसी संस्कृत उत्तम शब्दावली में उनकी रचना में एक प्रपूर्वकत्तरमक शैक्षण्य की वृद्धि का है । क्योंकि किसी भी भाषा का साहित्य इस लक्ष्य का साक्षात् है कि सम्मीर दार्शनिक मत, वाक्य शास्त्रीय निष्कर्षों तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रकाशन करने में अमरता की माकारण बोल बाल का भाषा कर्मी की उत्तमी अमर्य मही हो सकती जितनी उत्कृष्ट कोटि के साहित्यिक स्तर का

१ (१) मा० अयो० पृ० १८०

(२) मा० बा० पृ० १३९

(३) मा० बा० पृ० १३९

(४) मा० बा० पृ० १८०

(५) मा० सु० पृ० १४९

विष्ट भाषा । योरोपीय देशों की प्रोक लैटिन प्रादि भाषाओं की भाँति अपने भारतीय साहित्य के अन्तर्गत संस्कृत ही इस प्रकार की साहित्यिक स्तर की आधार शिला बनाई जाने का कारण सबसे अधिक समर्थ और पूर्ण है । यही कारण है कि दार्शनिक विवेचन में गोस्वामी जी ने संस्कृत की समास बहुता (उत्सम) सम्भावनी का प्रयोग किया है और इस बात का सरा प्रयत्न किया है कि वह स्वयं दार्शनिक भाषों के अनुकरण गम्भीर बना रहे । जैसे :—

धुष विधाम सकल जन रंजति । राम कथा-कसि ननुप विमर्जति ॥
 राम कथा कसि र्गतय मरणी । पुनि विवेक पात्रक कहु धरणी ॥^१

स्तुति के प्रसंगों में तुलसी की भाषा जन भाषा के स्तर से बहुत ही ऊपर उठी हुई बिलकारि देनी है । वस्तुतः इन्हीं स्थलों पर वह संस्कृत से इतना निकट और बोलचाल की भाषा से इतनी दूर हो गई है कि उनमें की अधिकांश पंक्तियाँ विमुक्त संस्कृत श्लोकों के भीतर लपवाई जा सकती हैं । कदापि न होना कि इस प्रवृत्ति के पीछे देवदासी संस्कृत के प्रति तुलसी की प्रसीम बड़ा तथा साथ ही स्तोत्रा की पवित्रता और सांस्कृतिक महत्ता के साथ वह परम्परा विद्यमान रही होनी जो प्रायः तक किसी न किसी रूप में बली धा रही है । इन स्वर्णों की भाषा तथा दार्शनिक विवेचन के प्रसंगों की भाषा में इतना अन्तर अचक्ष्य स्पष्ट है कि स्तुतियाँ की भाषा में चाहे कितनी ही संस्कृत उत्समता न हो किन्तु इसमें गम्भीर तर्क सीसी का समावेश बहुत कम मिलेगा । इस सबका अग्रिप्राय केवल बह्वी है कि गोस्वामी जी की दार्शनिक सम्भावनी की विशेषता यह है कि उसमें गम्भीर तर्क सीसी तथा सूत्र पद्धति का समावेश मिलता है । विनय पत्रिका की विनय पंक्तियों में देखिये कितनी गम्भीर तर्क सीसी तथा सूत्र पद्धति का अनुसरण करते हुए अन्त में भक्ति की महत्ता स्वीकार की गई है ।

को नित मन परिहरी बिकारा ।
 तो कत इ त जनिव संसृति तुष संसम सोक अपारा ॥
 मनु मित्र मध्यस्थ हीनि ये मन कीन्हे बरिभाई ।
 त्यागव पाहुव ज्येष्ठलोम धहि हाटक तुम की नाई
 पसन बसन बहु वस्तु विविध विधि सब मनि महुं रहुं भीते ।
 सरग नरक नर अपार लोक बहु बसत मध्य मन सीते ।
 बिरप मध्य पुत्रिका सूत्र महुं कू कुक विनिहि बनाए ।
 मन महु तथा सीम नाग ठनु प्रगटत प्रबसर पाये ॥
 रकुवति भयति बारि छासित भित, विनु प्रयास ही सूम्हे ।
 तुलसीदास कह बिद बिलात अप बुझत बुझत बुके ॥^२

१ मा० बा० पु० २५
 २ विनय पत्रिका पृ १२४

संवादों में भावानुकूल शब्दावली—

संवादों में भी ध्वन्यरामुकूल शब्दावली का प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है। ध्वन्य रचण संवाद में रोप उत्पन्न करने का प्रयत्न है। इसके विपरीत पञ्चुराम लक्ष्मण संवाद में व्यस्य प्रथम शब्दावली है। मरुत राम संवाद विपरीत धीर विनम्रता से मरी शब्दावली से प्रस्तुत किया गया है।

संवादों में प्रयुक्त शब्दावली के विषय में कुछ कहने के पूर्व इतना संकेत कर देना आवश्यक है कि तुलसी के समय में हिन्दी गद्य का कोई रूप निश्चित रूप से उपस्थित न होने के कारण संवादों की सजीव योजना में पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता था। कुछ कवि इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से माटकों की बार्तालाप शैली का अनुसरण करने को बाध्य होते थे। धीर पद्यात्मक संवाद के पद्यार्गव बलव्य के पूर्व पद्य का निर्देश प्रथम से कर देना अनुचित नहीं समझते थे। जैसे कि केदार की रामचन्द्रिका जैसे ग्रन्थों में बहुतायत से देखने को मिलेगा। हममें मन्वह नहीं कि इस प्रकार का निर्देश मूल वाक्य की शब्दावली का धम बनने में प्रथम रहता था। धीर इस दृष्टि से यहाँ पर हम पद्य का अनुसरण कटवता रहा है। परन्तु तुलसी ने अपनी कई रचनाओं में संवादतत्त्व को एक महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी यहाँ पर भी एक पद्यति द्वारा अपनी कठिनाई को हल करना उचित नहीं समझा। उन्होंने ऐसी कुशलता एवं नसात्मकता से शब्दों एवं वाक्यों का विन्यास किया कि बिना किसी बाहरी निर्देश के पाठक के समक्ष पद्य धीर श्रोता को मत्ता का ठीक ठीक रूप प्रकृत होता रहता है। यहाँ तक कि मानस जैसे ग्रंथ में भी यहाँ चार चार पद्यों में धीर चार चार श्लोकों पर्याप्त पाठ पात्रा के बीच संवाद चलता है यहाँ किसी भी प्रकार के भ्रम घपना सम्भवता की संभावना नहीं हो पाती। यह साधारण प्रतिभा का बल नहीं है। कवि को नसात्मक प्रतिभा का परिचय तो उक्त समय मिलता है यहाँ कवि अनुकूल वाक्य में कहा इस बात का विस्तृत संकेत किये बिना परिचित एवं पटनाचक्र के मोड़ द्वारा हमें पात्रों का बोध कराता हुआ पद्यों को बदल देता है। मन्वह के प्रथम श्लोक के कवि भीमर भयवह्वार क्या भी वी 'भयवान उवाच पद्मना 'सुकदेव उवाच' इत्यादि बाह्य निर्देश के ध्वन्य का त्याग नहीं कर सक विन्तु हम पौराणिक शैली का सहारा लिये बिना ही जिन अतिथीय नकलता के माप तुलसी ने अपनी संवाद योजना को प्रभावशाली तथा नसात्मक बनाया है वह उनकी शब्दा की इस प्रयुक्त शक्ति तथा व्यापक ज्ञान पद्यों के ही बल पर सम्भव हो सता है।

यहाँ पर हम बात की मात्र भी संकेत कर देना प्रष्ट होगा कि तुलसी अपने संवादों में शब्दावली से विभिन्न पात्रों की व्यक्तियुक्त विवेकता के अनुकूल भी धावा के रूप में विनम्रता लाते हैं। जिसका उद्देश्य प्रायः यही रहता है कि किसी प्रकार की संभावनाबिरता या संभावित बार्तालाप में न हो पावे। संभवता यही कारण है

कुसली निम्नवर्गीय शिक्षित पात्रों द्वारा ऊँचे स्तर की संस्कृत उत्तम शब्दावली से युक्त संस्कृत भाषा का व्यवहार न कराकर मामाद्य जन भाषा के ठेठ रूपों का प्रयोग करने हैं। इसी प्रकार उच्चवर्गीय शिक्षित पात्रों द्वारा विविध रसगों में उक्त शब्दावली का प्रयोग भी प्रापायों का व्यवहार इष्टियोपर होता है। प्रायः ऐसे शब्दावली द्वारा जन भाषाएँ में सम्मिश्रित मन्मीर प्रसंवा में संस्कृत उत्तम शब्दावली का व्यवहार तथा प्राचीन जन से सम्मिश्रित प्रसंवा में जन भाषा की ठेठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरणों द्वारा हम उक्त विवेचन की पुष्टि करेंगे :

वातासाय का शिष्ट रूप शिष्ट शब्दों की शिष्ट भाषा में प्रस्तुत करते हुए मोक्षामी की कहते हैं : नारक मेला न हिमवत की वातवीत में कहते हैं—

गिरिजहि लानि इमार बिबन मुल मंपति ।

नाथ कहिय मो जनम मित्तइ बौहि भूपतु ।

दोष बलन मुनि कहैत बाल बिपु भूपतु ॥^१

गान्धामा जी की प्रवृत्ति मामय में पात्रों के अनुकूल शब्दावली का व्यवहार करने को विषय में बिलसाई पढ़ती है। निम्नलिखित पंक्तियाँ में प्रयुक्त शब्दावली संभवतः मन्मीर को छोड़कर मानस के किसी अन्य पात्र के मुह से उदात्त ही इतनी स्वाभाविक मिष्ट हुई हो।

एकहि बार धास सब पुत्री । सब कछु कहब जीम करि दूरी ।

कोरि कोपु कपास अभावा । धनज कहत दुख रउरेहि छावा ।

बहुहि भूँठि पुनि बात बलाई । ते प्रिय तुम्हहि करयें मैं मारै ॥

हमहुं कहबि सब ठकुर लोहाती । नाहि त मोग रहब बिन राती ॥

करि कृत्य बिबि परबस कीम्ही । बधा सो मुनिघ सहिय जो बीम्हा ॥

कोठ मूय होत हमहि ना झानी । बेरि छाँड़ि सब होब कि रानी ॥

बारे जीम तुमाइ हमार । अतमस बेरि न जाइ तुम्हार ॥^२

उपयुक्त पाठ राम धर्मिक की तैयारी पर श्लोक प्रकट करने वाली मन्मीर के बचनों की पटवार अनुकर्य रहे हैं।

यहाँ बचन का कोई भी निर्देश नहीं बल्कि उम सीसी में ब्रियका अनुसरण आश्रम के वातासाय प्रमाण कहानियों अथवा उपन्यासों में प्रायः बिलसाई देना है मोक्षामी को मे मन्मीर सम्मिश्रित किया है। वहाँ शब्दावली में बसा में अपूर्व अम रवार बिलसाया है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियों में बाग कृष्ण तथा माना यशोदा का वातासाय बिलसाय मामिक रूप से किया किमी भी बचन के निर्देश दिए उपरिष्ठ किया गया है।

१ पार्वती मंत्र—वर म० २०—२१

२ प० १, १६

छोट मोटी मोसो रोटी बिजनी कुपरि नै तू व सी मैया ।
 नै कर्षीया मो कय भबहि तात ।
 सिगरिये ही ही बह्ना बसराऊ को म दैहीं
 सो बना मट्ट तेरो बह्ना कहि इन उत जात ॥^१

एक एक पंक्ति में बाताबात की मजाबना ममाई हुई है । कई कई छोटे छोटे उपवाचनों की यात्रना बचि की संवाण यात्रना में प्रयुक्त वाक्यावली की बसा का उल्टा रूप प्रकटित करती है । प्रस्ताव धीरे धीरे व्यपकरण का बाताबात का रूप प्रस्तुत करने वाली निम्नलिखित पंक्ति भी इसी प्रकार की बाक्य रचना का एक उल्टा उदाहरण है—

राम बह्ना मय ठाउँ है खंम म ।

है मुनि हाँक मुकेहुरि जाग ॥^२

इस छोटे से वाक्य में कई कई बचना में एक संवाद धीरे धीरे साम प्रथम क्रिया व्यापार का भी निर्देश कर देना तुल्यता की ही ही उल्टा पंक्त बसा का परिणाम है । गोस्वामी जी के प्रथम संवाचों में भी बना अपन उल्टा रूप में प्रस्तुत हुई है । संवाच के अन्तर्गत बसा का विशेषता हम 'इन्द्र प्रयाग धीरे संवाद बसा' तीर्थक के अन्तर्गत बिलार में करते हैं ।

प्रथम पूर्ण श्रुति मारिक बसनों की वाक्यावली—

प्रथम पूर्ण श्रुति मारिक बसनों में गोस्वामी जी का वाक्यावली पर्यन्त मधुर ही जाता है । जैसे—

पूजत किचिम मधुर पुनि मुनि । कहनत सखन मन गम हृदय पुनि ॥^३

धीरे वाटि मनाय सखाबनिहारे । मुमुक्ति बह्नु का बाहि तुम्हारे ॥

मुनि सनहमय संजुम बायो । मधुषी मिय मन मधु मृसुकायो ॥

जिगृह्णि बिलादि बिमाकठि परयो । बुष्ट मकोष सकुचति बरबरयो ॥

सकुचि मप्रम बाय मृग मयता । बायो मधुर बचन विकल्पनी ॥

महुर मृभाय मुमग तन गार । नाम सखनु सधु बबर मारे ॥

बहुरि बरनु बिषु संबल डांवा । मिय तन बिगह मीह करि बांयो ॥^४

संजुम संजु निर्गिरी मयतनि । नित्र पति बरउ निर्गृह्णि मिय मयतनि ॥

यही मंत्र तत्त्व मधुर वाक्यावली है । इसका अन्तर्गत कवच किचिमि मुन पुनि तथा श्रुतीय उदाहरण में मुनि सनहमय मधुषी मिय मृसुकायो विवक्षयनी संजुम

१ धारण्य वाक्यावली पर मं० २

२ बदितावली ७१ ८

३ मा० पयो० पु० १६१

४ मा० पयो० पु० २७-२८

मनु मन्वन्ति सवन्ति प्रादि सभ्य संवीतमय और मन्त्र सम्भावनी के पराहरण है
शिमते सम्भावनी में एक अपूर्व साहित्य और मन्त्रिणा या बई है ।

पर्यानुक्य सभ्य योजना—

पोस्वामी जी के शब्दों का सीख्य बहूँ मिल उठता है जहाँ हम उन्हें पाठकों
को कौतुहल में डाल देने वाले दो शब्दों के शब्दों का प्रभाव करते हुए देखते हैं । ज्ञान
पढ़ता था कि वे ऐसे पर्यानुक्य शब्दों को चुन चुन कर रखते थे । उनकी इस पर्यानु-
क्य सभ्य योजना में मानस के बहुत से ढीकाकार उत्पन्न बने हैं । यहाँ पोस्वामी जी के
पर्यानुक्य सभ्य शब्दों के स्वभावानुसार से एकत्र पराहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

जलि— सीतल सुरभि पवनबहूँ मंदा । सु अत पवि सइ जलि मकरंदा ॥^१

यहाँ पर 'जलि' शब्द से ऐसा आश होता है कि मकरंदा की लिये जले जाते
हुए नीचे गूँब रहे हैं । यहाँ पर संका बहूँ होती है कि उनके मुँह में मकरंदा है ठम
पूँबते कीड़े हैं । इसका कोई भी समाधान न होने पर इन उसके दूसरे शब्दों को इन्होंने
के हेतु विषय होती है जिसका सीतल जलि शब्द के शीतल होने के कारण कथका
है । इसका दूसरा शब्द इस प्रकार होया कि सीतल और सुपन्थित वायु नीचे-नीचे
बह रही है । उसका भीरे बहना इस कारण है कि वह मकरंदा से तिल है । और
साथ ही नीचे भी इसलिये सु गार करते हैं कि वह फूलों का मकरंदा लेकर जली या
रही है । यह उनकी कुँवांग वायु के इस नीचे कार्य के प्रतिरोध स्वक्य है ।

बनी— जगद्व नाम विधि सीह सुतपना । हिम विरि लंन बनी वायु मवना ॥^२

ढीकाकारों ने इस शीतल में प्रामे हुए बनी शब्द पर ध्यान नहीं किया । यह शब्द
प्रचालक नहीं या बड़ा है । इस शब्द को यहाँ लाने के लिये साहित्य-प्रियता हो
कारण हुई है । बनी का शब्द हिमो में बनी हुई और सुधोमित्र होता है । पर कुलहित
को बनी भी कहते हैं । मकरंदा ही यह यहाँ कुलहित के शब्द में प्रकृत हुआ है । पर
बनी के साथ साथ उसका दूसरा शब्द कुलहित भी प्रकृत होता है बोका ही शब्दों से
सबका अमरकार निरार उठा है ।

लोना— नीरदें बरन सीह सुति लोना । मन्वुँ सांघ सरसीबहूँ लोना ॥^३

इसमें सौंदर्य लोना से बहूँ को सुबहूँ कमल का बोका हो सकता है ।
पर यह 'लोना' शब्द संस्कृत के शीत का अर्थ है । जिसका अर्थ है सात ।

दूद— कमल पीठि पवि दूद कठोर । सुव समाज नहुँ पनु तोप ॥^४

'दूद' शब्द प्रायः पर्वत के शब्द में आता है पर यहाँ लोहा के शब्द में आया
प्रतीत होता है ।

१ मा० उत्तर पु० ७०५

२ मा० बा० पु० २२३

३ मा० बा० पु० २४५

४ मा० बा० पु० २४५

चरम— चरम देह द्विज के भी पाई । सुर बुलभ पुराण मूर्ति माई ॥^१

जो सोम संस्कृत के चरम शब्द का अर्थ नहीं जानते वे तो चमड़े की देह ही समझेंगे । संस्कृत में 'चरम' शब्द अन्तिम का बोधक है ।

शब्दों के गुण—

शब्दों के गुण भरत ने १०, व्यास ने १६, मामह ने ३, दण्डी ने १०, बामन ने २० और भास्कर ने २४ माने हैं । परन्तु मम्मट और विश्वनाथ आदि परबतों प्रति प्ठित काव्याचार्यों ने ३ गुणों के भीतर अन्य गुणों को अन्तर्निहित माना है । और अब उन्हीं की मान्यता व्यापक है ।^२ य तीन गुण हैं ।

१—माधुर्य

२—प्रसाद

३—शोभ

इन्हीं के प्रकाश में तुलसी की राष्ट्र प्रयोग सम्बन्धी कला का भूस्थानक संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रस ४—सूखे ई धन में प्राग जैसे धीम्र जस उठती है जैसे ही जो गुण बिल में ध ध्र व्याप्त हो जाता है । अर्थात् रचना का उद्बोध करा देता है वह प्रसाद गुण है । अथवा माध से अर्थ की प्रतीति कराने वाले सरस सुबाध सम्य प्रसाद गुण के अन्वक है ।^३ इस गुण के सूचक स्थलों पर समास का प्राय प्रभाव रहता है साधा रणतः सुकुमार बणों का प्रयोग किया जाता है । कट्टु बणों का प्रभाव तथा कठिन शब्द योजना का प्रभाव इस गुण की प्रमुख वितपतायें हैं ।

मास्वामो जी की रचनायें अधिकतर में इनी गुण का विकास अपनी शब्दावली द्वारा प्रस्तुत करता है । केवल विलपनिका के पुरुषों की कुछ रचुतियों की उच्च योजना तथा कवितावली और मानस के कुछ कुछ बरण आदि प्रसंगों में प्रबुद्ध भाषा इस गुण से रहित है । अन्यथा अन्य सभी स्थलों की शब्दावली इसी गुण से भरपूर मिलती है । कुछ ऐसे उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनके रेखांकित अक्षरों वाले अर्थों में इन गुण के उत्कर्ष के हेतु अपेक्षित अथवा माध से अर्थ की प्रतीति कराने वाले सरस और सुबोध अर्थों की लोक प्रिय योजना देखने को मिलती है ।

सोह नवल तनु सुन्दर सारी । अयत्न जननि अनुमित छवि मारी ॥^४

कीरति जनिति मृति मनि छोई । सुरसरि तम सब कर हित होई ॥^५

१ मा० उत्तर पृ० ७७३

२ रामरहित मिथ—काव्य दर्पण—पृ० ३०१ ३१२

३ रामरहित मिथ—काव्य—दर्पण—पृ० ३१४

४ रा० १ २४८

५ रा० १, १४

बालन प्रीति सीति रघुरार्थे ।

माने मुख हाते करि राखत राम उभरुं सवाई ॥^१

तुलसी कहत तुलत सब लघुमस्त बोय । बड़े भाय अनुराय राम लग हूय ॥^२

श्लोक—बड़ गुल है जिस से बिल में स्फुलि या वाय । घोर मन मे एक
 वैश्विना भर आए ।^३ माना को मोरना की दृष्टि से इनके उत्कर्ष के लिए द्विष बलों
 संकुल बलों घोर ट ठ ड ड घादि बलों का अधिक प्रयोग तथा प्रभाविक्य घादि
 लहावट होने है । इस गुल के उदाहरण कवितावली तथा मानस मे विषय रूप से
 ज्ञाप्य है । सीतावली श्रीहृष्णगीतावली तथा अन्य छोटे छोटे ग्रन्थों में इनका
 प्राय प्रभाव ना ही बिकाराई देना है । श्लोक गुल सूचक साक्षात्की के कुछ उदाहरण
 निम्नलिखित हैं । जिसके रैतावित अक्षरों वाले श्लोकों में इस गुल के उत्कर्ष के हेतु
 अतिशय प्रयोग मात्र से श्लोक गुल को प्रत्यक्ष कराने वाले श्लोक गुल व्यक्तक अर्थों की
 कमात्मक मोरना हृदय है ।

बोलहि ओ जय जय सु ड ड ड

प्रकट छिर बिनु पावही

अपरिगुं जग अनुरिमि जुजमहि

सुभर भटगुं बहावही ॥^४

बतही बिलय नुबर उपारि कर सेग बरकलत ।

बहुं बाजि श्री बाजि नहि पजरान करकलत ।

बलन मोर बडकन बकोर अरि कर छिर बरकलत ।

बिकट अटक बिहरत बोर बारिद जिमि मरकलत ।

लंहर मरैतत बडक भड जवति राम जय उपकलत ।

तुलसीदास मजन मदन घटम बुड कठ कीचुक करत ॥^५

यह रैतावित अर्थों में आये हुये वर्ण विरोध रूप से ध्यान देने योग्य है ।

श्लोक—बड़ गुल है जिसके द्वारा मर्यादरत मानस से प्रकीर्ण हो वाय ।

इस गुल के उत्कर्ष में ट ठ ड ड की छोड़कर क ने म तक के वर्णों ड—अ ल न
 म के विलय वर्ण ह्रस्व ड घोर ल घादि का प्रयोग होता है । अथवा अल्प समास के
 बड तथा बोधस्य घोर अक्षर साक्षात्की का व्यवहार किया जाता है । इस वर्णों मे
 सामुर्थ्य गुल के उत्कर्ष में बहुप्रयोग विस्तृत है । तुलसी की लघुमस्त अनी रचनाओं की
 भाषा में इन गुल का बोध बिकान विस्तृत है । किन्तु मानस कवितावली में उदाहरण

१ विषय पविता १६४

२ वार्त्त ६३

३ राजरहित विषय—अल्प वर्ण—१ ३१३

४ रा० ९ ८८

५ कवितावली ३ ४३

में इसका सर्वोत्कृष्ट रूप सबसे अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सरह बंद गिर्यंङ्ग मुख मोके । नीरज नयन नावते जी के ।
 बितबन चाब मार मनु हरनी । पावति हृदय जाति नहि बरनी ॥
 कम कपोल भूति कु डल लीला । बिबुध बरबर सु बर मुदु बोला ॥^१
 साय निशिनाय मुखी पाप नाप नहिनी सी ।
 तुमसी बिसोकि बित साह भेत संय हैं ।
 आनन्द उमय मन बावन उमंग उम ।
 रूप ही उमय उमपत धय धग है ॥^२

शब्द शक्तियाँ—

काव्य में शब्दार्थ के बोध व्यापार का नाम शब्द शक्ति है। जिसके तीन प्रमुख भेद काव्यशास्त्र के ग्रन्थगत प्रचलित हैं।

१—प्रमिषा

२—संज्ञा

३—व्यंजना।^३

तुलसी जी माया में प्रयुक्त शब्दावली के ग्रन्थगत तीनों शब्द शक्तियों का यथैष्ट विकास दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी स्वयं उस विषय में संशुद्ध रहे हैं। या शब्द शक्तियों स्वयं ही उतनी महत्त्व शब्द शक्ति के प्रयोग का बल पाकर प्रस्तुति हो गई हैं। यस्तु तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों की प्रमिषा करने वाले कुछ उदाहरणों के विवेचन द्वारा हम तुलसी जी शब्द योजना में उन पर विचार करेंगे।

प्रमिषा—

साक्षात् संकेतित अर्थ की बोधिका शब्द की पहली शक्ति का नाम प्रमिषा है।^४ प्रमिषा शक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दों का अर्थ बोध होता है। वे प्रधानतः तीन प्रकार के होते हैं।

१—रूप

२—पीडित

१ रा० १ २४२

२ कवितावली २ १३

३ वाक्योऽर्थप्रमिषया बोध्या सव्यो लक्षणया मत ।

व्यंज्यो व्यंजनाया ताः स्तुतिरत्र शब्दस्य शक्तयः ।

—विरचनाय-साहित्य दर्पण-२, ११

४ तत्र संकेतिवार्थस्य बोधनादप्रिमिषा ।

—विरचनाय-साहित्य दर्पण-२, १२

३—योग सूत्र

इन तीनों प्रकार के शब्दों का व्यवहार प्रकृता से अपने पूर्ण सौख्य एवं शक्ति के साथ तुलसी के काव्य में मिलता है। जैसे हम धामे देखेंगे। संक्षेप में इन तीन शेषों का उदाहरण सहित बिम्बेपत्र प्रावश्यक होगा।

सूत्र—

कड़ धरवा बिना व्युत्पत्ति वाले शब्द जिनके प्रकृति प्रत्यय रूप धरवाओं का या तो कोई धर्म नहीं होता वा होने पर भी संगत प्रतीत नहीं हो सकता।^१ जैसे पुस्तक बसत फूल पादि। तुलसी की शब्दावली का सबसे बड़ा मान ऐसे ही शब्दों से भरा हुआ है। उनका प्रयोग सामान्यतः सभी कविताओं में बड़ा व्यापक होता है। जैसे—

सममुख धायत तपि प्रथम मोना। कर पुस्तक पुर विप्र प्रवीणा ॥^२

गया बस कर कलस ठी तुरत मयाइय ही ॥^३

भोर फूल दीमिने को बयै फुलबाई ही ॥^४

उपरोक्त पंक्तियों के रेखांकित शब्दों वाले शब्द कड़ शब्दों के पन्तर्गत ही धायते। क्योंकि इनके प्रकृति प्रत्यय रूप धरवाओं का न तो कोई धर्म है और न टिक-टिक इनकी कोई व्युत्पत्ति ही सम्भव है।

योगिद्व—

ये शब्द हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का याप होकर धरवाबाई सहित समुदाय धर्म की प्रतीति होती है।^५ जैसे दिवाकर निसाकर जो कमल' सूर्य और चन्द्र के बोधक हैं। ऐसे शब्द भी तुलसी की भाषा में पर्याप्त मिलते हैं जैसे—

मोह निहार दिवाकर तरल सोक भयहारी ॥^६

नित्य नैम कृत दधन उदक जब बीन।

निरखी निसाकर नृप मुज बयै मलीन ॥^७

उपरोक्त पंक्तियों में प्रयुक्त रेखांकित शब्दों वाले शब्द विमुख योगिक शब्दों के पन्तर्गत धायते। क्योंकि दिवाकर और निहाकर दोनों शब्दों की क्रमशः स्पष्ट व्युत्पत्ति दिन का करने वाला तथा रात का करने वाला शिद्ध है। इस प्रकार इनमें प्रकृति और प्रत्यय दोनों के योग द्वारा शब्दों का निर्माण प्रत्यक्ष है। जो योगिक शब्दों का प्रमुख लक्षण है।

१ रामदाहिल मिम-काव्य दर्पण-पृ० २०

२ रा० १, ३०३

३ रा० ल० न० ३

४ योता १ ६६

५ रामदाहिल मिम-काव्यदर्पण-पृ० २०

६ बि० ६

७ वरदी १३

योग रङ्ग शब्द—

ध्वजा समूहों में प्रकृत शक्ति धीरे समूह शक्ति ध्वजा योग तथा रुद्रि दलों का ही निष्पन्न गिनाता है। यहाँ पर शब्द का प्रकृति प्रत्यय रूप ध्वजियों का स्पष्ट रहने पर भी रुद्रि के कारण किसी विशेष धर्म का ही बोध होता है।^१ उदाहरणार्थ पंचम निषाधर ध्वजा गम नायक शब्द । पंचम का धौमिक धर्म हुआ पंच से उत्पन्न होने वाला कोई भी पदार्थ । किन्तु इनसे बोध होता है कबल कमल का । निषाधर का धर्म होता है राम व भूमने बिचरने वाला कोई भी प्राणी । किन्तु रुद्रि के कारण इससे बेशक रामस का बोध होता है । ऐसे शब्दों के प्रयोग में कभी कभी कोई कवि ध्वजशब्द सृष्टि के हेतु उक्त मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं । किन्तु गोस्वामी जी ने इस प्रकार का स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का अनुसरण नहीं किया है । जहाँ किया भी है वहाँ किसी विशेष परिस्थिति का अनुरोध रहा है । यहाँ पर गोस्वामी जी की कृतियों से एकाग्र उदाहरण योग रङ्ग शब्दों के प्रस्तुत किये जाते हैं ।

परत पर पङ्कज श्रुति बरनी ।^२

रत्ननिधर बरनि धर गम ध्वज सुनन ।

हनुमान को हीरक बाँकी ॥^३

केहि सुमिरत मिधि होई गननायक करि बर बरन ।^४

उपरोक्त पंक्तियों के रेखांकित पञ्जर वाले शब्द स्पष्ट रूप से नायक शब्दों में आयेंगे । क्योंकि इन सब में योग तथा रुद्रि का निष्पन्न है । तथा इन सभी शब्दों का प्रकृति प्रत्यय रूप ध्वजियों पंच-पंच पंचम रत्नो-धर, रत्नो-धर गम नायक में गम-नायक गननायक का स्पष्ट रूप रहने पर भी रुद्रि के कारण कबल कमल शब्दों का ही बोध होता है ।

लक्षण—

लक्षण शक्ति उसे कहते हैं जिसके द्वारा मूल धर्म का बाधा या व्यापक हान पर भी रुद्रि ध्वजा प्रयोजन का लेकर मुख्यार्थ में सम्बन्धित धर्म धर्म लक्षित हों।^५ इसी ध्वजा पर लक्षक ध्वजा साधारण शब्द तथा सहायकों के अस्तित्व को गई है । जैसे तो

१ रामरहित विष-काम्य-गीत-पृ०-२१

२ बीजावली १, ६

३ कवितावली ६ ४४

४ रा० १ धारमिक शारदा

५ डा० देवकी लखन धीवास्तव तुलसादास की भाषा-पृ० २२१-२२२

६ मुख्याय वाप्य तद्युत्थे यथाऽप्योर्ध्वं प्रतीपये ।

रुद्रि प्रयोजनशास्त्री लक्षण शक्तिरविता ॥

सम्राज्ञा शक्ति के बहुत से मेद प्राचीन काव्यशास्त्र ज्यों में विनाशे गए हैं । किन्तु उनमें से केवल प्रमुख मेदा तक ही अपने को सीमित रखना उचित होगा । उनमें बड़ि और प्रयोगवन्ती यह दो मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं । जिनके पुनः मीछी और मुटा को विनाश किये जाते हैं । मुटा के भी दो प्रमुख मेद हैं ।

१—अपदान सम्राज्ञा

२—सम्राज्ञा सम्राज्ञा

इन दोनों के तथा बौली सम्राज्ञा के पुनः दो दो श्रेय और माने जाते हैं ।

१—सारेया

२—साम्बन्धमाता ।

अपदान शब्दों में बड़ि के कारण मुत्सार्थ को छोड़कर इसके सम्बन्ध रखने वाले अन्य शब्दों का पहलू अपेक्षित होता है ।^१ इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

बड़ि सम्राज्ञा—

इस शक्ति के मुख्य प्रसंगों में बड़ि के कारण मुत्सार्थ को छोड़कर इसके सम्बन्ध रखने वाले अन्य शब्दों का पहलू अपेक्षित होता है ।^१ इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

बड़ि सम्राज्ञा के अन्तर्गत दो प्रसंग हैं—

१—अपदान सम्राज्ञा

२—सम्राज्ञा सम्राज्ञा

३—सारेया

४—साम्बन्धमाता

५—अपदान सम्राज्ञा

अपदान शब्दों के अन्तर्गत दो प्रसंग हैं—

१ रामदहिन निम्न-काव्यशास्त्र-पृ० १२

२ कवितावली ७, १७६

३ श्री कृष्ण नीतावली ८

४ बोहावली ४६१

झिन्नाई से अनुचित साम ठठाने का भी व्यवहार देना तथा अमित्तक एवं अस्वाम्याधिक व्यापार के प्रयत्न इत्यादि के बोध हो जाने पर ही इन प्रयोगों के महत्व एवं अमत्कार का पता चलता है। गोम्बामो जी का इन सद्व्यार्थ शक्ति पर उचित प्रसीमित अति कार या इसका अनुमान उक्त उदाहरणों में ही हो जाता है।

प्रयोजनवती बीड़ी लक्षण—

इस शक्ति के अन्तर्गत सदृश्य सम्बन्ध में अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण सद्व्यार्थ को ग्रहण किया जाता है।^१ उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित अक्षरा वाले उभय।

मय कज लोचन कज मुल कर कजबद कंजाणुं ।^१

नीलसरोरुह नील मलि नीलनील बर स्याम ॥^२

साजहि तनु सोमानिरलि कोटि कानि मन काम ॥^३

उपरोक्त पंक्तियों में प्रयुक्त कंज और लोचन कंज और मुल कज और कर तथा कंज और पर इन सबमें पूरा सादृश्य नहीं है। किन्तु फिर भी क्यामता और अणुता तथा गुण साम्य वान्ति और कोमलता के कारण योही प्रयोजनवती लक्षण सम्भव हुई। यही बात दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत नील कमल नीलमलि और नीले बाधक के साथ भवकाम राम के स्याम तनु के सम्बन्ध स्थापन के विषय में समझना चाहिए।

प्रयोजनवती गुड़ा लक्षण—

त्रिममें सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध से सद्व्यार्थ का बोध होता हो बहुत प्रयोजनवती गुड़ा लक्षण होती है।^४ इसका भी बड़ा व्यापक रूप तुलसी की कृतियों में विस्तारपूर्वक है। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों के अन्तर्गत आचारारथेय के सम्बन्ध में आनन्द की व्यापक प्रतीति कराने के प्रयोजन से अक्षर में रहने वाला के हेतु अक्षर नगरे को ही आनन्द में उमड़ती हुई कहा गया है।

मंगल मोद उछड़हि निज आहि बिजय एहि नीति ।

उमरी अक्षर धर्मद भरि अक्षर अक्षर अक्षरकानि ॥^५

अक्षर का उमंगना सम्भव नहीं। अतः यहाँ पर आचारारथेय सम्बन्ध से अक्षर वीथे कहा गया है। अक्षर निवासियों के उमंगना की व्यापकता स्पष्ट करना ही इसका प्रयोजन है। इसीलिए यहाँ पर उक्त लक्षण हुई। इसी प्रकार आरतम्य से सम्बन्धित गुड़ा प्रयोजनवती लक्षण शक्ति का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये।

१ राम बहिन निघ—आभ्यदर्पण—पृ० २३

२ विनयपरिका—४२

३ रा० ११४६

४ राम बहिन निघ—आभ्यदर्पण—पृ० २४

५ रा० ११४६

वाचक मय तति यवत न प्रायी । यान्हु माहि जानि हूत प्रायी ॥^१

यह बात स्पष्ट है कि तमि न तो वाचकमय होता है न प्राय सुमाना ही उसका नाम है । तात्पर्य मन्त्रार्थ से सद्यार्थ द्वारा उसमें सीता की धरमन्त तीव्र विरह व्यथा का तथा उस विरह व्यथा को बढ़ाने वाले चन्द्रमा के प्रति सीताजी के तत्कालीन भाव विषय का बोध होता है ।

उच्चारण मसाला—

यही वाच्यार्थ की समति के हेतु प्रथम शर्ष की समित किने जाने पर भी धरमा शर्ष न छूटे वहाँ पर इस शक्ति का समावेश हो जाता है । इसमें वाच्यार्थ का सर्वथा परित्याग नहीं होता । अतः इसे अत्रहस्त्यार्थ भी कहते हैं ।^२ तुमसी की रच भाषा में यदि इसका स्वरूप देखना हो तो निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये ।

अपनी मलाई मसी कि तो भलाई न ता
तुमसी को कुने नी यामोकोटी बाम को ॥^३
कारे ते मलात बिललात डार डार बीम
बालत ही चारि फल चारि ही बमक को ॥^४

उपर्युक्त पंक्तियों से रेखांकित अक्षरों वाले वाक्यों में केवल वाच्यार्थ द्वारा पूर्ण शर्ष स्पष्ट न होने पर भी उसका धरमा प्रतिफल विलुप्त समाप्त नहीं हो जाता । अर्थात् वाच्यार्थ की संकीर्ण के हेतु प्रथम शर्ष लक्षित होता है । इसी सामार पर छोटे बाम का लज्जाना कुलना तथा चार बने को ही चार फल जानना इन वाक्यों द्वारा क्रमशः धरमी हीनता का आचक्षण तथा आश्रय की चरम सीमा का बोध होता है ।

मसाल मसाला—

यह मसाला कहाँ हुआ है । यही वाच्यार्थ की सिद्धि के हेतु वाच्यार्थ धरने को छोड़कर केवल लज्जाने की सूचित करता है । यही धरम का धरमा शर्ष विलुप्त ही हुए जाता है इसी से इसे अत्रहस्त्यार्थ भी कहते हैं ।^५ इस मसाला शक्ति का उपयोग विशेष प्रगिया नामे कवियों में ही अधिक दृष्टिगोचर होता है । तुमसी की निम्न लिखित पंक्तियों में इसका बड़ा उद्घुष्ट रूप प्रकट हुआ है ।

तुमसी कुम्हार एक राम बनयाम ही है
प्रायि बहिनानि से बढ़ी है बाम येत की ॥^६
मुनि मीया तीरी ती करी यायी टेव सरन की

१ रा० ३ १२

२ रामदहिन मिध—वाच्यवर्णन—पृ० २४

३ कविनायकी ७ ७०

४ कविनायकी ९ ७३

५ रामदहिन मिध—वाच्यवर्णन—पृ० २३

६ कविनायकी ७ १६

सक्रुच बेचसी जाई ॥^१

उपसुक्त वृत्तिर्मो में धाम हुने पेट की धाम तथा सक्रुच को बेच माना ने धपना मूल धर्म बिस्तृत ही लाइ दिया और मध्याह से इनमें क्रमस मूल तथा म्याम रैना का धर्म हो प्रहस होता है । ससणा शक्ति का विषय यहीं पर समाप्त करते एक हम व्यंजना शक्ति को धार प्रपत्रर होते है ।

व्यंजना—

धमिबा और सत्रणा के धपना धपना कार्य समाप्त कर क्रुके पर त्रिस धम शक्ति के सहारे धमिप्रोत धर्म का बोध होता है । उसी को काव्य शास्त्रीय भाषा में ध्यंजना कहा गया है ।^२ इनमें शास्त्री व्यंजना और धार्मी व्यंजना यह दो प्रमुख भेद माने धये है । पुन धास्त्री व्यंजना के दो मुख्य भेद है ।

१—धमिबा मूसा

२—ससणा मूसा ।^३

इनके धाधार पर तुलसी की मध्याहली मे वलात्मकता का प्रकाशन माने किया जा सकता है ।

धमिधामुसा शास्त्री व्यंजना—

संयोगादि के द्वारा धनेक धर्म बासे ध्य के प्रस्तुत एक धर्म के निरवध हो जाने पर जो शक्ति धम्य धर्म का बाध करती है उषी को धमिबा मूसा धास्त्री व्यंजना माना गया है ।^४

धम नीचे संयोगादि विधान की रूप रैना उपस्थित करते हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं । त्रिनमे धमिधामुसा धास्त्री व्यंजना का स्वरूप स्पष्ट है क्योंकि निम्नलिखित सभी स्थलों पर संयोगादि क द्वारा धनेक धर्मबाधो धम्य क प्रकृत्योपयोगी एक धर्म मे निर्यमित हो जाने पर इषी शक्ति के द्वारा धम्याय का ज्ञान सम्भव हो सका है ।

प्रस्तुतोपयोगी—

धम्यार्थ की व्यंजना में धमैकार्य की शक्ति को वेदित करने में

१ श्री कृष्ण वीताबली ८

२ बिस्ताम्बामिधा-धामु धमाऽर्षो बोध्यतेऽपर ।

म वृत्तिर्ध्यंजना नाम शबरस्यार्थान्धिस्य च ॥

विरचनाय—साहित्य दर्पण—२ २४

३ धमिबा ससणा-धुसा धास्त्री व्यंजना दिधा ।

विरचनाय-साहित्य दर्पण २ २३

४ धमैकार्यस्य धध्दाय संयोगा धनिर्यमितै ।

एकधार्थेऽप्यधी हेतुर्ध्यंजना साभिवाधया ॥

विरचनाय—साहित्य दर्पण २ २६

संदोषादि^१ बिन साधनों प्रवृत्ता परिस्थितियों के बिना काम्य साधनों के निष्पन्न कर सके हैं उनका रक्षण में तुलसी के ही प्रयोगों के आधार पर उदाहरण सङ्ग्रहित उल्लेख किया जाता है ।

१—सयोग^२—धनेकार्थं वाचक दम्ब के किमी एक ही धर्म के साथ प्रसिद्ध सम्बन्ध का संयोग कहा है । उदाहरणार्थ —

छोई राम कामारि प्रिय प्रवृत्त पति
सर्वदा दास तुलसी वास विधि बहिन^३ ।^३

उपयुक्त पंक्तियों में प्रयुक्त राम दम्ब के परशुराम बलराम रामचन्द्रादि कई धर्म सम्मिलित होने पर भी कामारि प्रिय तथा प्रवृत्तपति आदि विशेषणों के प्रयोग के कारण यहाँ पर यह एक मात्र रामचन्द्र का ही बोधक होगा ।

२—विभोग—जहाँ धनेकार्थवाचक दम्ब के एक धर्म का निर्धारण किसी प्रसिद्ध वस्तु सम्बन्ध में प्रमाण से होता है वहाँ विभोग माना जाता है ।^४ जैसे—

धति धनस्य पति इन्दीवीता । या को हरि विनु कतहुं न भीता ॥^५

यहाँ पर हरि दम्ब बन्दर सिंह सूर्य आदि धनेक धर्म में सम्मिलित होते हुए भी इस स्थल पर भगवान् विष्णु का ही धर्म प्रामाण्य है । क्योंकि इन्दीवित सन्तों के विषय से विभोग होना इसी धर्म को निश्चित करता है ।

(३) साहचर्य—जहाँ पर किसी सहचर को प्रसिद्ध सत्ता के सम्बन्ध से धर्म का निर्लभ हो जाय वहाँ साहचर्य होता है ।^६ उदाहरणार्थ—

हरिहि सपिता विधिहि विविता
सिबहि सिबता जो बई ।

छोई बालकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ।^७

यहाँ पर भी हरि के उपयुक्त कई धर्म संज्ञक होते हुए भी बह्या धीर धिन को विष्णु भगवान् का ही धर्म व्यक्त होना स्वानाधिक है ।

- १ संयोगो विप्र योगवत् साहचर्यं विरोधिता ।
- धर्मैः प्रकरणं त्रिषं सम्बन्धस्यस्य सन्निधिः ।
- सामर्थ्यं मौञ्जिती वेद्य कासो व्यक्तिय स्वरस्ययः । ।
- धनशार्प(मानव)धेरे विधेय सन्नति हेतवः ।

बिबलनाथ-साहित्यदर्पण २, २६ टिप्पणी में ।

- १ रामबहिन मिथ—काम्यदर्पण—पृ० ३४
- २ बिनपत्रिका पृ०-२०
- ४ रामबहिन मिथ—काम्यदर्पण—पृ० ३४
- ५ वैराग्य संतोषिणी—२४
- ६ रामबहिन मिथ—काम्य दर्पण—पृ० ३४
- ७ बिनय पत्रिका १३४

(८) विरोध—किसी प्रसिद्ध धर्मव्यति के कारण जहाँ पर धर्म नियम होगा है ।^१ जैसे—

कंहि भूप बिलोकत जाने । जिमि मज हरि किरार क ताक ॥^२

यहाँ पर भी हरि के उपयुक्त कई धर्म होते हुए भी इस स्थान पर हरि शब्द से सिद्ध का बोध होता । न कि विष्णु शब्द और सूर्य शब्द का क्योंकि मज और सिद्ध का स्वामाबिक विरोध है और इस विरोध में ही उक्त पंक्ति का धर्म निहित है ।

(९) धर्म—जहाँ प्रयोजन धर्मकार्य में एकार्थ का निरूपण कराता हो । वहाँ धर्म को स्थिति समझनी चाहिये ।^३ जैसे—

द्विज देव पुत्र हरि सख बिलु संसार पार न पावई ।^४

यहाँ पर द्विज शब्द क दांत पत्नी चक्रमा तथा ब्राह्मण इन कई धर्मों के संभव होने हुए भी सवार से पार पाने का प्रयोजन होने के कारण इनके धर्म का प्रमुख क्रमशः ब्राह्मण और विष्णु क रूप में ही होगा । इस प्रकार धर्म के द्वारा उक्त शब्दों क वास्तविक धर्म का निर्धारण हुआ है ।

(१०) लिंग—नामार्थक शब्दों के किसी एक धर्म में वर्तमान और उसके धर्म में प्रवर्तमान किसी विशेष धर्म जिन्हें या समस्त का नाम लिंग है ।^५ जैसे—

बालभी बहन भागी और ठौर ठौर योग्यो प्राणि ।

द्विज को दवारि कैंधो कोटि सत मूर हूँ प्र^६

यहाँ पर बसाने का धर्म मूर शब्द क अथवा धर्म के धर्म में नहीं किन्तु सूर्य के ही धर्म में पटित होता है । इसलिये यहाँ लिंग हा मूर शब्द के धर्म का निर्णायक हुआ ।

(११) धर्म्य सन्निधि—धर्मकार्यों शब्द क किसी एक ही धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले विभक्त शब्द को समीपता धर्म्य सन्निधि है ।^७ उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी जा सकती हैं—

बीजे जो कोटि उपाय त्रिभिष ताप न जाय ।

बहुयो जो मुख बटाइ मुनि बर कोर ॥^८

१ रामचंद्रिण मिथ—नाम्य धर्म्य—पृ० ३२

२ रा० १२६३

३ रामचंद्रिण मिथ—नाम्य धर्म्य—पृ० ३२

४ बिनय पत्रिका—१३६

५ रामचंद्रिण मिथ—नाम्य धर्म्य—पृ० ३२

६ कवितावली ३३

७ रामचंद्रिण मिथ—नाम्य धर्म्य—पृ० ३६

८ बिनयपत्रिका—१३६

यहाँ पर कार शब्द का अर्थ 'सुरदा' रहते हुये भी निम्नलिखितों मुनिवर शब्द के कारण इस स्थान पर इन शब्दों से भ्रुकुशेब का ही ग्रहण होया। इसी प्रकार निम्न लिखित पंक्ति में प्रकृत कीर का वास्तविक अर्थ सम शब्द के कारण सुभे के अर्थ का ही वाचक होया।

मुनिय नामा पुराण मिटल नहि अज्ञान ।
अद्विम न समुत्थिय किमि जग कीर ॥^१

उत्पु लोना उपाहरणों में कीर का वास्तविक अर्थ अथवा उचिति के द्वारा ही सफा है।

(८) साधारण्य—इसको स्थिति यहाँ जानी जाती है। जहाँ किसी कार्य के सम्पादन में किसी पदार्थ की परति के अनेकानों में से एकान का निरवयव हो।^२ उपाहरणार्थ—

तनु मई प्रविधि निखरिसर बाहीं ।^३

यहाँ पर सर शब्द का अर्थ ठास न होकर बाण ही होया। क्योंकि यही में यह सामर्थ्य है कि शरीर के द्वार पार हो सकें।

(९) शौचिय—इसको स्थिति ऐसे स्थलों पर होती है जहाँ किसी पदार्थ को वायुता के कारण अनेकानों में एकान का निर्णय हो।^४ उपाहरणार्थ—

सूर लपर करनी करहि कहि न अनावाहि पावु ।^५

यहाँ पर लपर बुद्ध में करनी करनी के शौचिय से 'सूर का' अर्थ कीर ही होया न कि अन्धा या सुवे।

(१०) बैल—जहाँ किसी स्थान की विशेषता का अनेकान लपर के एक अर्थ से निरवयव हो यहाँ बैल होता है।^६ अर्थ—

चार पदारथ में अने गरक द्वार हू काम ।^७

यहाँ पर काम के अर्थ पटविशारात्मकत काव विकार अल्पेष्टि क्रिया की सम्बन्धित कार्य विशेष धीर कोई भी साधारण कार्य होने पर भी 'गरक द्वार' के निर्देश न इन स्थान पर इस अर्थ में 'पटविशारात्मकत काव विकार का ही अर्थ ग्रहण हुआ। इन प्रकार दैम के साधार पर काम शब्द के अर्थ का निरवयव हुआ।

१ त्रिनमपविधा ११७

२ तामहृमि मिथ—काव्यवर्णन—पृ० १६

३ रा० ६, ९९

४ तामहृमि मिथ—काव्यवर्णन—पृ० १६

५ रा० १ २७४

६ तामहृमि मिथ—काव्य वर्णन—पृ० १६

७ दोहावली १५९

(११) काल—ममय क कारण जहाँ पर अनेकाय म मे उचार्य का निरूपण होता है वहाँ पर काल का प्रहण होता है ।^१ उदाहरणार्थ—

सब श्रुतु सुक्त प्रब सो पुरो पावम प्रति कमताय ।

बहु चाति वाजत यमन हरिचनु तदित बिमि विमि सोहृती ॥^२

उपसुक्त-पंक्तियों 'पीठावसा' में पावम श्रुतु बर्लन में से ली गई हैं । पावम श्रुतु के प्रसंग के कारण वहाँ पर 'हरिचनु' शब्द इन्द्र धनुष का ही बोधक होया यद्यपि हरि शब्द के बिषयु बन्दर आदि के कई अर्थ होने से 'हरिचनु' क भी कई अर्थ संभव हो सकते हैं ।

(१२) व्यक्ति—इसकी स्थिति वहाँ पर मानते हैं वहाँ व्यक्ति से अर्थात् पुस्त्रिय आदि में अनेकार्थ में से एक एक अर्थ का निरूपण होता है ।^३ उदाहरणार्थ—

मरतू बर तीरहि तीर फिरें रतुबीर सत्ता सब बीर सबे ।^४

बीर बीर मिय राम लखन बिनु साग्न जय आबियारे ।^५

उपसुक्त पंक्तियों में बीर शब्द का अर्थ पुस्त्रिय के कारण मारि ही होया यद्यपि इसक अन्य अर्थ योधा सत्ता आदि भी हाने हैं । इन प्रकार व्यक्ति से वहाँ पर बीर शब्द के अर्थ का निर्णय हुआ ।

ऊपर संयोगादि विधान की रूप रैखा उपस्थित करते हुए जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं । उन सभी के अन्तर्गत अविद्यामूला शब्दों व्यञ्जना का स्पष्ट स्पष्ट है । क्योंकि सभी स्पष्टा पर संयोगादि के द्वारा अनेकाय बाकी शब्द के प्रहण-प्रयोमी एक अर्थ के निर्दिष्ट हो जाने पर इसी शक्ति के द्वारा अर्थार्थ का ज्ञान संभव हो गया है ।

लक्षणामूला शब्दों व्यञ्जना—

त्रिषु प्रयोजन के लिए लक्षण का आशय लिया जाता है बहु प्रयोजन त्रिषु शक्ति द्वारा प्रतीत होता है अने लक्षणामूला शब्दों व्यञ्जना कहते हैं ।^६ इन शब्द शक्ति का उत्पत्त उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए—

कास्ति ही ठरन ठन कास्ति ही धरति धन

कास्ति त्रितीया रन बहुत बुचासि है ।

१ रामदहिनि मिष—वाच्यदर्पण—पृ० ३६

२ पीठावसी ७ १६

३ रामदहिनि मिष—वाच्यदर्पण—पृ० ३७

४ कवितावसी—१७

५ पीठावसी २ ६६

६ रामदहिनि मिष—वाच्यदर्पण—पृ० ३७

काबिहू ही छापी को काज काबिहू ही राज समान
मसक है कहे भार मेरे मेव हालि है ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों में 'मसक है कहे भार मेरे मेव हालि है' इन शब्दों में पर्याप्त सख्त सामर्थ्य एवं उपकरण से ही प्राणों के द्वारा एक सुन्दर कार्य की संतुष्टता सुचित है। जिसका पता उक्त पद्य भक्ति सङ्ग्रहामुक्ता शास्त्री रचयिता द्वारा ही चलता है।

छापी रचयिता—

यह वह सख्त पंक्ति है जो बला शोचन्य वाक्य सङ्गसन्निधि वाक्य प्रस्ताव प्रकरण हेतु कास काकु (कठ शक्ति) केष्ठा छादि की विशेषता के कारण रचयिता प्रयोग करती है। इस रचना में रचयिता की शक्ति विशेष पर नहीं बरन् प्रथम पर धनसन्निध रहता है।

छापी रचयिता की ही मति इसके मेव भी उक्त विशेषताओं के धारण पर बहुत से होते हैं जैसे बभ्रुवैशिष्ट्योत्पन्नवाक्यसंभवा बभ्रुवैशिष्ट्योत्पन्नप्रसङ्गसंभवा वाक्य वैशिष्ट्योत्पन्नप्रसङ्गसंभवा काकुवैशिष्ट्योत्पन्नवाक्यसंभवा शीर केष्ठावैशिष्ट्योत्पन्न वाक्य संभवा इत्यादि।^२ सत्री शीरो के विस्तार में व जाकर हम मूल ही श्रेणी के प्रकरण में तुलसी की भाषा में छापी रचयिता के शक्य का प्रथमन करते हैं।

बभ्रुवैशिष्ट्योत्पन्न वाक्यसंभवा—

कवि या कवि-कल्पित व्यक्ति के कथन को विद्वेषता के कारण ही जो रचयिता प्रतीत होता है वह बभ्रुवैशिष्ट्योत्पन्न होता है।^३ जैसा तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में है—

जैहि काटिका बसति तई समय मुन तत्रि तत्रि मरै पुयतन मीन ।

स्वाम समीर भैठ भरै मोरैउ तेहि मय बडु न परमो तिहुँ शीन ॥^४

यहाँ पर कवि रचित शम्भुवती में हनुमान जी, विरहिणी सीता की रक्षा उनके विवशत प्रसन्नान केराम से हम प्रकार निवेदन करते हैं कि वे तिन काटिका में रहती हैं वहाँ से उन मुन जाकर शराने तिकास स्वर्गों को जाने मरे शीर स्वाम की समीर से भैठ होने में कारण प्रान कास में भी त्रिदिश बाहु रह रह कर बली उह पर पैर मरी रपता। यहाँ पर बला हनुमान हाउ शीता की विरहविरत शयता के विशिष्ट शब्द के बलुन में राम की हयमान विचिर्बता के प्रति रचयिता है। शीर

१ कविगावली—७१०

२ रामचरित निघ—वाक्यदर्पण—५ १०

३ रामचरित निघ—वाक्यदर्पण—५ १०

४ शीतावली—२२

५ शीतावली २ २०

व्यंग्यार्थ द्वारा ही सम्भव हुआ है । अतः इसमें बहनुर्वीण्योत्पन्न बाध्य सम्भवा
पार्थी व्यंग्यता का स्वरूप स्पष्ट है ।

बहनुर्वीण्योत्पन्नप्रत्ययसम्भवा—

जहाँ सव्यार्थ से व्यंग्यता हो वहाँ यह भेद हाता है ।^१ तुलसी की निम्नलिखित
पंक्तियों में इसका प्रकटा उदाहरण मिलता है —

सखि ते सीतल मोको लागी मारि री तरनि ।

याके अए करति प्रबिक धंग धंग बब ।

बाके अए मिटति रजनि अनित जरनि ॥^२

कोई कृपण-विरहिणी योपिवा कहती है कि उस अग्रमा से प्रबिक दितल सूर्य
मगता है क्योंकि अग्रमा के उदय होने पर उसके धंग-अय में बिरह की दाबानि असने
लगती है और सूर्य के उदय होने पर रात्रि में उत्पन्न असन मिट असती है ।

यही पर अग्रमा न असन तथा सूर्य से घातलता मिलने की क्रिया में
बाध्यार्थ का बोध है । बोध होने पर ललला द्वारा प्रर्थ यह निश्चयता है कि
विरहिलो योपिवा को अग्र वर्णन प्रकृत है । व्यंग्यार्थ यह निश्चयता कि बिरहिली
अपने बिरह ताप की उद्बोधक वस्तुओं से प्रत्यस्त पीड़ित है । बहनुर्वीण्यय यहाँ
इसीनिष्प्र माय्य है कि लला योपिवा के बंदिन्य से ही बाध्यार्थ और सव्यार्थ द्वारा
समया इस व्यंग्यार्थ की प्रतीति हुई ।

बाध्य बंदिन्योत्पन्न बाध्य सम्भवा—

यहाँ पर अग्रमा बाध्य की विषयता से व्यंग्यार्थ प्रकट हाता है वहाँ यह भेद
हाता है ।^३ इसका रूप तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ म हृदय्य है ।

अहि बिधि हुई है परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।

सोइ हम करब न घान कछु बचन नमुपा हमार ।^४

उक्त पंक्तियों राम चरित मानस के प्रथमोत्तर नारद मोह प्रसय से उद्धृत है ।
बिम्बमोहिनी नामक राजकन्या पर मुग्ध होकर उदक द्वारा बरण बिधे जाने की
साक्षता से नारद भयवान् बिष्णु से उम्हरी का रूप मापते हैं । जिसके उत्तर म अय
बान कहने हैं—इमारा यह निनास्त सत्य बचन है कि मैं वही बरु वा त्रिमल तुम्हारा
परम हित सम्भव हो । नारद इससे समझते हैं कि उनका अभिप्राय सिद्ध हो गया ।
बिम्बु यहाँ पर बाध्यार्थ द्वारा बोधित यह व्यंग्यार्थ स्पष्ट है कि वस्तुतः भयवान् क इस
बचन का तात्पर्य यह है कि वे नारद की प्राथमिक साधना में बिम्ब रूप हम

१ रामचरित मिय—बाध्य दर्पण—पृ० ३८

२ श्री कृपण सीतावली ३०

३ रामचरित मिय—बाध्यदर्पण—पृ० ४०

४ पृ० १,११२

बासना की पूर्ति के हेतु धारणा कर उन्हें न देने । और इस प्रकार वैदिक और आध्यात्मिक इष्टि में उनका परम हित साधित करने, यह परम हित नहीं जो जब समय मारद के मन में हुआ था । इस प्रकार यहाँ एक पूरे लक्ष्य बाधय के वैदिकय के कारण बाधय वैदिकयोलस्य बाधय सम्मना धार्मी व्यंजना सिद्ध होती है ।

काकुर्बिसिद्धयोलस्य बाधय लभना—

कष्ट ध्वनि की विमता से प्रकटि यय के द्वारा विमय प्रकार से विकारी तुर्ब ध्वनि को काकु कहते हैं । काकु की विधेयता के कारण जहाँ व्यंगार्थ प्रकट हो वहाँ यह ध्वन्य ध्वनि होती है ।^१ उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ :—

मैं सुकुमारि नाथ बन मोहू । तुमहि उचित तप मोकहूँ बौहू ॥^२

यहाँ पर राम के प्रति लीला के कथन में मैं सुकुमारि नाथ बन मोहूँ तथा तुमहि उचित तप मां बहूँ मोहूँ । इन वाक्यों का विशेष कष्ट ध्वनि के उच्चारण करने पर ही कमल यह बाध्यार्थ होता कि मैं केवल सुकुमार नहीं हूँ याप भी सुकुमार हूँ । याप बन के योग्य हूँ तो मैं भी बन के ही योग्य हूँ । तुम्हारे लिए तप उचित है तो मेरे लिए भी । मेरे लिये यदि धोप का धक्कर है तो वह तुम्हारे साथ रह कर ही । कमल इन प्रकार काकु द्वारा बाध्यार्थ करने पर ही लीला की के उक्त कथन का यह बाध्यार्थ स्पष्ट होता कि मेरा सबैसा याप के साथ बन जाना ही उचित है । इस लिये काकु के वैदिकय से बाध्यार्थ द्वारा सम्मना व्यंगार्थ होने के कारण यहाँ पर काकु वैदिकयोलस्य बाधय सम्मना धार्मी व्यंजना स्पष्ट है ।

बैदा ध्विद्योलस्य बाधय लभना—

जहाँ बैदा ध्वनि इ गित हाव-भाव यापि हाव ध्वंगार्थ का बाध होता है । यहाँ यह धार्मी व्यंजना होती है ।^३ उदाहरण के लिए तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ —

मुनि तुम्बर बन सुधारत साने लपानी है बाबी जान मसी ।

तिरछे करि मीन वी छैन तिन्हें समुझई कसु मुगकाइ लसो ॥^४

इन पंक्तियों में बन जाने के मार्ग में जाते हुए राम के रूप लक्षण पर मुख्य नाम कानियाँ लीला की ल घुलती हैं कि साबरे में राम उनके कीर्ण हैं । इनके इन प्रकार घुलने पर लीला की ल गिरछे करके उन्हें लीला द्वारा कुछ लभकर मुनकर लती । उनको इन विविध बैदाधा द्वारा इन बात की व्यंजना भी गई है कि राम उनके प्रति हैं । यह व्यंगार्थ बैदा के वैदिकय पर निर्भर है । यना यहाँ बैदा वैदिकयोलस्य बाधय सम्मना धार्मी व्यंजना है ।

१ रामरहित विषय—काव्यदर्पण—पृ० ४२

२ रामायण २ १७

३ रामरहित विषय—काव्यदर्पण—पृ० ४२

४ कवितावली २, १२

शब्द शक्तियों के आधार पर तुलसी की भाषा पंक्ति का उपयुक्त विवेचन एवं विवर्णन इतना तो सिद्ध कर देने के हेतु पर्याप्त ही है कि उनकी दृष्टि धरती धोर से इनकी धोर चाहे रही हो घबरा न रही हो। किन्तु इस क्षेत्र में भी उनकी पहुँच घसाधारण हो नहीं जा सकती है। धोर इसमें यह भी स्पष्ट होता है कि वे शब्द धोर शब्द के विविध बोध स्थापारों के विषय में अधिकारपूर्ण ज्ञान रखते हैं।

तुलसी की रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रयोग

योम्बामो जा की रचनाओं में निम्नलिखित भाषाओं की सम्भावनी पाई जाती है।

शब्धी—

तुलसीदास का सबसे बड़ा धोर प्रभावशाली काव्य मान्य है। मान्य की भाषा मुख्यतः शब्धी है। शब्धी की ही उन्होंने इतक श्रुति क्या श्रुता इतका कारण यही हो सकता है कि शब्धी उम प्राप्त की बोली है जिसमें उनके प्रासंग्य देव मर्यादा पूर्वोत्तम ने शब्धकार लिया था। उम पर उनका महत्त्व अनुगत होना बड़ा स्वाभाविक था। तुलसी का शब्धी धोर ब्रज भाषा दोनों पर ही समान अधिकार था। किन्तु भी शब्धी का ही मान्य के हेतु उन्होंने क्यों प्रासंग्यक समझा। शब्धी योस्वामी जी की निज की भाषा थी। इसलिए उन्होंने इसी ही मान्य की कला का माध्यम बनाया। तुलसी ही नहीं राम की जयरी की भाषा में रचित होना श्रेष्ठ राम मत्त कवि के लिये स्वाभाविक है। इस कारण योम्बामो जा ने ब्रज भाषा को छोड़ शब्धी को प्रमुखता दी।

उस समय काव्य की प्रचलित भाषा ब्रज भाषा थी। मध्य युग के वैष्णव मठों ने इसी का प्रयोग था। मूर न मूर नागर के पद इसी भाषा में रच दै। योस्वामी जी ने भी पहले इसी में फुटकर रचना करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कवितावली योतावला धोर बिनयपत्रिका का अधिक समय इसी भाषा में लिखा। परन्तु ब्रजभाषा फुटकर धरती के ही हेतु उपयुक्त था। उसमें समा ठक नाई भी प्रथम काव्य नहीं लिखा गया। शब्धी के राम चरित की प्रबन्ध रूप में लिखन रीठ। तब उन्हें तुलसी भाषा इतने की प्रासंग्यता हुई। जब हम इतने ही कि धाप चलकर जिन लोगों ने ब्रज भाषा में प्रबन्ध काव्य लिखने का प्रयत्न किया वे सब शब्धी रहे। तब हम योस्वामी जी के ब्रज भाषा में प्रबन्ध न लिखन का औचित्य जान पड़ता है। शब्धी की धोर योस्वामी जी की रचित का एक कारण यह भी था कि योस्वामी जी के पहले प्रबन्ध काव्ययन काव्य शब्धी में लिखे जा चुके थे। शब्धी योस्वामी जी ने शब्धी भाषा का धरने शब्ध में प्रयोग किया। तुलसी के बाद धोर किन्तु का भी शब्धी काव्य इतना सुन्दर नहीं हुआ।

शब्धी बोली की दृष्टि ने तुलसी की भाषा पर विचार करत हा यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके द्वारा व्यवहृत नहीं बोलिया में इसका प्रभाव सबसे अधिक है।

घस्तु । मन्थरी को प्रमुख प्रकृतिया के आकार पर तुलसी को सम्भावनी में उपलब्ध मन्थरी प्रयाग की उदाहरण सहित विवेचना की जा रही है ।

मन्थरी में संज्ञा के लक्ष्य अकारणत कर्णों का बाहुल्य पाया जाता है । उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियों में संज्ञा के लिये संज्ञा भासा के लिये मात्र तथा पठाका के लिये पठाक —

पण सकल भुव भंगत भूता ।^१

धीर सब गिरिजा शर्मय भूयण भुवंग बर ।^२

भुव भाल विभु बाल भास बमक कयात कर ।^३

लगत ललित कर बमस भाल पहिदावत

कायलख अनु बन्धि बनम फलावत ॥^४

बमर पठाक बितान तोरन कतस बीपावति बनी ॥^५

मन्थरी में विकारी बहु बचन कर्णों का निर्माण एक बचन कर्णों में गुरु प्रत्यय का बोध कराके बढाया है । जो तुलसी की रचनाओं में प्रचुरता से दिखालाई देता है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में अथर्वान् मारिण् कुषतिण् कोचिण् बंधिण् इत्यादि —

राम रूप यह लिय छवि देखी । नर नारहि परिहरो निमेषे ॥^१

कन कुन नून दून, बधिणेवन कुषतिण् मरि भरि बार लये ॥^२

भावत पत्नी भीर नर बीचिण् बंधिण् पांडुरे चिरद लये ॥^३

कैवल्य न प्रत्यय के बोध से भी मन्थरी में बहु बचन रूप लगाये जाते हैं । क्योंकि यही प्रकृति ब्रज भाषा के विकारी रूपों से भी बहुलता से मिलती है । इस लिये ऐसे रूपों का उदाहरण के प्रयाग में ही दिखाना अधिक युक्त समझ है । मन्थरी के गुरु प्रत्यय से कुछ कर्णों को विभक्त महत्त्व इत्थमिते दिया गया है कि वे इस भाषा के अपने विशेष हैं । जो ब्रज भाषा में नहीं मिलते ।

मन्थरी में बहुल-नी संज्ञाया व विशेषणों के अकारणत कर्णों की उदाहरण रूप में प्रबोध कराके भी बरम्पत बाई जाती है । इस प्रकृति के दर्शन तुलसी की भी मन्थरी

१ रा० १८७

२ विमयपत्रिका १४६

३ विमयपत्रिका १४६

४ जानकी भंगल १२२

५ बीठावली १३१

६ रा० १,१४६

७ बीठावली १३

८ बीठावली १,३

बहुत रचनामा में बराबर ही मिलते हैं। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित शब्द ।

नगर नारि नर हरपित सब जसे सेसन छागु ।^१
 बेसि राम सखि धनुमित उर जमगत धनुरागु ।^२
 प्रसि राम जसेठ मो हनु चिरहु पाति ताहु ।^३

सर्वनामों के अन्तर्गत प्रबन्धी के सम्बन्ध का एक रूप कुत्र विशेष प्रकार के मिलते हैं जिनमें यहाँ पर तोर मोर हमार तुम्हार ताकर, जाकर केहिकर, धारि का उल्लेख किया जा सकता है। तुलसी की भाषा में इनका भी पर्याप्त प्रयोग प्रबन्धी के प्रभाव का द्योतक है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

दियय विमुक्त मन मोर सैह परमारज ।
 इन्हहि देखि मयो मगन लागि बड़ स्वारज ।^४

मोर नाम कहाई नर धासा । करहत कहहु कहा बिस्वासा ।^५

राम नाम दिशि जानकी सखन बाहिनी धोर ।
 ध्यान सकल कस्यान मय मुखठ तुलसी तोर ॥^६

प्रनतपाल प्रन तोर मोर प्रन जियतें कमल पद देख ।^७

गिरिजहि लागि हमार जिनन सुख संपति ।

नाम माहि नामकन्हु सहित पुर परिजन ।

रासन हार तुम्हार धनुइइ नर बन ॥^८

ताकर दूत धनस बेहि सिरिजा । जरा न सो तेहि नारन गिरिजा ॥^९

जाकर नाम सुनत सुभ होई । मोरे नुइ धावा प्रभु सोई ॥^{१०}

गामु करब केहिकर बनु पाई ॥^{११}

भूतकामिक सहायक क्रिया के रूपों में अचल तिन तथा पुरुष के कारण

१ बीठाबली ७२१

२ बीठाबली ७२१

३ रा० ७४

४ जानकी संवल ४

५ रा० ७४६

६ बीठाबली १

७ बिलयपत्रिका ११३

८ पार्वती संवल २०

९ पार्वती संवल २०

१० रा० ४ २६

११ रा० ११६३

१२ रा० २१४

विभिन्नता हुआ भी तुलसी की भाषा में धर्मकी व्याकरण तथा बोलचाल में प्रचलित सामान्य विषयों के प्रभाव के ही कारण आया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त भा में यह कई चीजें पाये, प्रादि —

धरणी समुन्दि साधु सुधि को भा ।^१

धरत सिरामनि के प्रह्वसानु ।^२

सो कुवासि सब बहई मरि लीकी ॥^३

पहुचान को केहि जान सबहि ध्यान सुधि मोठी भई ।^४

तेहि के भये पुनत सुत बीध ।^५

धिया के सामान्य वर्तमान काल में केवल मूल शब्दों के व्यवहार की प्रवृत्ति भी धरणी की एक प्रमुख विशेषता है। जिसके उदाहरण तुलसी की साव्यवसी में भी बहुत से मिल जाते हैं। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त जान घोर कह प्रादि—

जान प्रादि कवि तुलसी नाम प्रसाद ।^६

कुबरि भागि पितु काब ठाड़ि भई सोई ।

रूप न जाह बसागि जान चार चाई ॥^७

कोड कह संकर बाप कठोरा ॥^८

तुलसी की रचनाओं के अन्तर्गत बहुत से ऐसे शब्दों मुद्राओं एवं क्लृप्तियों का ठठ कर में भी व्यवहार हुआ है जो धरणी के क्षेत्र में विद्येय रूप में प्रचलित रहे हैं और उनकी उल्लेख का अर्थ विविध महत्व है, क्योंकि इनके बिना तुलसी की भाषा को जनता में इतनी लोक प्रियता प्रदान करने में धरणी की ठठ अक्षरवली में जो बहुमूल्य सहायता प्रदान की है और जिसके फलस्वरूप ही यह तुलसी काय व्यवहृत अर्थ सारी भाषाएँ एवं बोलियों की अपेक्षा बड़ी अधिक महत्वपूर्ण है इसका स्वीकारण न हो सता। परन्तु हम संक्षेप में तुलसी की रचनाओं में विद्येय हुए इन शब्दों से कतिपय चुने हुए शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

(१) ब्याल—जालक मुचाल वृ के ब्याल ही पिताक ठोरयो ।

मंडलीक मंडली प्रताप बाप बाति रो ॥^९

१ रा० २ १११

२ रा० १,२६

३ रा० २ ११७

४ रा० १ १११

५ रा० १ १११

६ बरई १४

७ पार्वती मंगल १३

८ रा० १ २२१

९ रा० १ २१४

(२) धनराई—वेचि धरूप एक धनराई ।^१

(३) मोडक— जो बिबाह के समय छाया जाता है ।

गुनि बन बोलि कह्यु नूप मोडक छावन ।

प्रातहि नौस के मोडक मलि बन पुरन ही ॥^२

(४) मुझ बाहर—उमरिप बनेत प्रातः मुझ मुई बाहर ।^३

इस प्रकार योश्यामी जी की रचनाओं में प्रमुखतया प्रबन्धी भाषा पूर्ण रूप में व्यवहृत हुई है । और मातृश्री को उमका प्रबन्धी में ही लिखा महाकाव्य है ।

प्रबन्धी काव्यी शब्द समूह—

मुसलीदास जी ने अपनी रचनाओं में अपने अधिक प्रबन्धी फारसी व पद्यों का प्रयोग किया है किन्तु साधक किसी हिन्दी के पुराने कवि ने न किया होगा । मुसली-दास जैसे हिन्दू संस्कृति के प्रबन्ध समर्थक और धार्मिक कवि के लिये यह कम प्राच्यर्ष की बात नहीं है ।

मेरा अनुमान ही नहीं हूँ कि प्रबन्धी में ही कि मुसलीदास अपने समय की राज-भाषा से भी प्रभावित थे । और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वतन्त्रता पूर्वक राजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है । उन्होंने जो यह लिखा है ।

पुनः प्रारंभ न भैनु, अर्पि सुवा बरसहि जसद ।

यह तो मेरा सारी को इन पंक्तियों का अर्थ है—पुनः प्रारंभ ही है ।

पद्य मर भाँचि बिदयी बार

हरगिज मर साध केर हर न सुरी ।

राजभाषा का प्रभाव मुसलीदास जी पर पड़ा है यह बात नहीं है । संस्कृत कवि भी उनके अपने नहीं बने । तात्पर्य यह है कि प्रबन्धी में मुसलीदास और कादसाह काव्य की वह शब्दों के साथ प्रयोग किया है ।

हुतबहुत प्रबन्धी भाषा मुसलीदास जी के पद्यों में प्रयोग की है ।

रचबनि चरकसीनु अरुप बैराबनेते कबिपुन मुसलीदास साधसोतिम्बर ।

सबसतनुभोपतिपुत्रकोको दिव्यदासिताय गीर

मुसलीदास के पद्यों में प्रयोग की है—

मुसलीदास ने अपनी कविता में प्रबन्धी फारसी के शब्दों का प्रयोग प्रयोग किया है । यह भी उनके पद्यों में प्रायः लिखा ही है और माता का उदाहरण है ।

मोरी और उनके भाव-भाव के लिखा व मुसलीदास जी के पद्यों में बहुत है । इनमें से प्रबन्धी फारसी के लिखने शब्द इनमें लिखते हैं उनके पद्यों में लिखते हैं । जैसे

साधित साँच बिभीपन ही पर लीवर भाप नदी है ।

—श्रीगणेश

१ भाषा की संज्ञा १२४

२ रामतला काव्य ३

३ भाषा की संज्ञा २२०

सीपर फारसी का सिपर है जिसका अर्थ है डाल । यह तो स्पष्ट ही है कि पर (हृदय पर) का अनुप्रास मिलाने के लिए ही सीपर धाया है । पर धाया है जिसकी भाषाओं में यह ध्यान देने के बाद है । तुमसीबास न श्लेषों के हिमायती के न श्लेषज्ञ भाषा क प्रेमी । यदि सिपर शब्द उनकी बोलचाल में घामतीर से प्रचलित न होता तो फारसी कोश में से निवास कर के इस शब्द को राम के साथ प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते । कुछ एक शब्द घोर सीलिए ।

मई भास सिधिस जगन्निवास बील श्री ।

मै बिभीपण की बहु न सवीस की ॥

—कवितावली

बिल (बील) घोर सवीस शब्दों को देखते किस्व स्वाभाविक प्रवाह में बड़ बिये गब हैं । राम के मुख से तुमसीबास जैसे बौद्धिक धावु का यह कहलाना कि मैंने बिभीपण की कुछ सवीस (प्रबन्ध) नहीं की साधारण महत्व नहीं रखता । यदि सवीस घोर बिल उनकी रोजमर्रा की बोलचाल के शब्द न होते तो मेरा विदबास है के कम से कम राम के मुख में तो उन्हें न जाने देते ।

रामचरित मानस में तो सरसी फारसी शब्दों का एक ताँता-सा लमा हुआ है । इस प्रकार सरसी फारसी भाषि विदेशी भाषाओं के प्रयोगों के महत्व एवं उनकी परिस्थिति-अव्यवस्था पर एक बिहंगम दृष्टि डाल लेने के पश्चात् अब हम तुमसी की रचनाओं से कतिपय उदाहरण उद्धृत करत हुए इन प्रयोगों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे ।

वे स्वयं वहाँ पर कबल भयस्त प्रचलित शब्द धाएँ हैं जो मात्र एक हिन्दी भाषा भाषी हीन की अनता की बोलचाल में व्यापक रूप से व्यवहृत होते रहे हैं । ऐसी प्राकृतिक कवि घोर कैलक भी जिसका ध्यान धाया के किसी विशेष रूप को दिखाने पर नहीं रहता अपनी अपनी रचनाओं में बराबर खान देते रहते हैं । इनमें कवि की दृष्टि प्रायः अनता पर अपना भाषा का रूप धारण पर नहीं बरनू अनता की भाषा के अधिकाधिक निकट पहुँचने की प्रवृत्ति में प्रभावित रहती है । इस विषय में उगना ध्यान इन प्रयोगों के पीछे देखी जाने वाली संकुचित आतीपठा की मनोवृत्ति पर विस्तृत नहीं रहती ।

ऐसी शब्दावली का व्यवहार तुमसी के सभी महत्वपूर्ण श्रंखों, रामचरित मानस बिनपञ्चिका गीतावली घोर कवितावली धावि के अन्तर्गत प्रचुर मात्रा में हुआ है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त नकर, कुमान मनी, नदीब माहूब, रहम परीब निवास बरीबी ममय घोर कसई इत्यादि, जो केवल ध्वनि की दृष्टि से सुमंजस एवं परिचित कर दिए गए हैं घोर गूबर मनी नदीब इत्यादि के ही उदाहरण हैं ।

गोरो बकर गुमान भरो कहीं कोसिज छोटे से बोटो है का को ।^१
 मनी मरीज घाम नर मापर ।
 साहेब समर्थ बसरप के दयानु देव बूझरो ।

म लों लों तुही भापने की साज को ॥^२

राम के बिरोजे बुरो विधि हरि हर हू को
 सब को मसो है राजा राम के रहम ही ।^३

नाथ गरीब निबाज है मैं मही गरीबी ।^४

राम के प्रसाद गुन नीतम असम भए राबरे हू सतार्नव पूत भए माय है ।^५

साति सत्य सुम रीति नई बटि बड़ी कुपेति कपट कलई है ।^६

के रूपम जहाँ पर धरबी, फारसी सम्रा को हिन्दी भाषा के व्याकरण के साथ म बासने का प्रयत्न बिघाई पड़ता है । यहाँ पर उत्तम रूपों के बहिष्कार तथा उनके बेशी संस्कार की धार कवि की प्रबल प्रवृत्ति जान पड़ती है । भाषा विज्ञान के सम्बन्धित माय्य भाषा विकास के मिथ्यान्तो की दृष्टि से ऐसी प्रवृत्ति भी बहुधा ही करो में मिलती है ।

(प्र) एक तो गये रूप हैं जिनमें केवल ध्वनियों और मात्राओं में ही इस बहुव्यय से साधारण परिवर्तन किए गए हैं कि उनको अपनी भाषा की ध्वनियों व मात्राओं के मत में रण लिया जाय । जैसे—

मई बहोर गरीब मेवाजू सरस सबस साहिब रघुराजू ॥^७

सागति लीग बिभीपन ही पर सोपर धायु भये हैं ।^८

बैरव बांह बमादये वी तुलसी-पद म्याम प्रजामिल करे ॥^९

स्वारथ घाम परमारथ की कहा जसो
 पेट की कठिन जग जोब की बचाव है ॥^{१०}

१ कबितावली १, २०

२ उ० १ २८

३ कबितावली ७ १३

४ कबितावली ६ ८

५ बिजयत्रिधा १ ४८

६ गीतावली ६ ६२

७ उ० १ १३

८ गीतावली ६ २

९ कबितावली ७ ६२

१० कबितावली ७ ६७

कुस सुव सविम निपुन वैशमि
 धर्मैव न क्षमुष्मि सुधारी है ।^१
 पाँच वं शीको मसीत को छोड़को
 लड़े को एकज देवे को छोड़ ।^२

(पा) दूसरे वृक्ष ऐसे रूप भी हैं जिनमें इन विदेशी भाषाओं के ध्वनी में अपनी भाषा के व्याकरण-सिद्धियों के आधार पर प्रत्यय और उपसर्ग आदि के सहारे नए शब्द-रूपों का निर्माण किया गया है, और इस प्रकार उनका देसी संस्कार ही नहीं बल्कि एक प्रकार में देसी कर्पांतर तक कर लिया गया है। इस क्रिया में बड़ी सावधानी और कीचस की प्रयेसा होती है और बहुत कम कवि ऐसे परिवर्तनों को स्वाभाविक एवं लोचनिय बनाने में सफल हो पाते हैं। बरगु तुलसी की शब्दावली में इन दोनों प्रकार के रूपों की संख्या बड़े ही कर्मात्मक संभव में की गई है। अर्थात्—

ऊधो कू म्यों न करै मुझरी जो बरी मट नामर हेरि हुमाकी ।^३

बदनाकर की कफना कफना हिन नाम मुहेंत जो वेत बवाई ॥^४

यदि बरवार में है मरख से सुख झानि
 नाम आम छेप की गरीबी निवर्धीनता ॥^५

नुर खारपी धनीस ससायत्र निदुर बया बित नाही ।^६

नाम धनेर गरीब नैकाने ।^७

हटवी सी न पुरैयो नगसत महेप कू की
 घाघरी पिनाक में लरीकता नहां रही ।^८

इसमें घामे हुए धर्म रूप के धन्तर्वंत रूपक से हुमाकी टया से बवाई मिशकीव में निवर्धीनता नामक से धन्तायक नैकाक से नैकाने (किया) तथा लरीक में लरीकता इत्यादि शब्दों के निर्माण में क्रमशः ई० तथा ता प्रत्ययों और अ उपसर्ग का प्रयोग विशेष कर्मात्मक ढङ्ग से हुआ है।

के स्वस जहाँ पर ऐसे धर्म-वर्तित धर्मका कम प्रचलित धरकी धरसी तथा तुर्बी आदि धर्मों के प्रयोग हुए हैं। जो जान बुझकर कवि द्वारा अपनी भाषा में सामे जान पड़ते हैं। बदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्टतः लरीक पद्धत, लसक-

१ वा० ७१७

२ पीठावली ११८

३ कवितावली ७११४

४ कवितावली ७११

५ दिनमपत्रिका २१२

६ दिनमपत्रिका १४२

७ वा० १२२

८ कवितावली १,१६

हलक बहुरी बहुरी बिरमानी धीर हल्लूब इत्यादि का व्यवहार जिनमें पाँचें कपाशग के साथ कुछ बिदेसी शब्दों का प्रभाव स्पष्ट है ।

भाई का न मोह दोह सोप का न तुमसोम कई में बिमीपन
वा कष्टु न सहील की ।

घाग मुक मारन बोलाए न कहन साम
पुलक सरीर सेना करन कहम हो ।^१

त्राके रोप हुमह त्रिबोप बाह दूर कोम्ह,
पीयल न सनी खोत्र खोत्रन कलक में ।^२

माहियमती को नाब साहसी सहस बाह
समर समर्थ नाथ हेरिए हलक में ।^३

बंक मै बंक महा पड़ दुर्मम बाहिबे को बहुरी है ।^४
सोतर सोम समीचर पैल समीर को मुनु बही बहुरी है ।^५
बम घायस मेपब न कीणह तम बोप कहा बिरमानी ।^६

सामु जानै महामायु बस जानै महाकल
बानी भूमी माँको कोटि छँल हल्लूब है ।^७

सोस्वामी श्री मे संस्तुत शब्दों की पंक्ति में पारसी शब्द का बड़ी सुन्दरता से स्थान दिया है ।

भातु मग्न ना मव खम बात्र ।^८

उपरोक्त संस्तुत शब्द में रचित स्तुत के अन्तर्गत बात्र अंगे बिदेसी शब्द का संस्तुत अथवा किमति के अन्तर्गत पुष्पिय एक शब्द संग्रह का प्रति व्यवहार हुआ है । यहाँ इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि उपरोक्त प्रयोग में मृगशत्रु के जोड़ में केवल मात्रा पुटि के हेतु बात्र का बात्र किया गया है न कि अज्ञानवश उसे संस्तुत का छन्द समझकर अकारण्य पुष्पिय एक शब्द के रूप में रखा गया है । अतएव ही संस्तुत अथवा पंक्ति में इस शब्द का प्रयोग एक अनूठन का सृष्टि कला

१ कवितावली ६ १२

२ कवितावली ६ २

३ कवितावली ६ २३

४ कवितावली ६ २४

५ कवितावली ६ २६

६ कवितावली ६ २६

७ विनयनत्रिका १२०

८ कवितावली ७ १००

९ पृ० ३ ११

मंगल है कवि ने स्वयं नाम ब्रह्मकर राज शब्द का इस प्रकार प्रयोग कर कौमुदित का व्यवहार किया है।

भोजपुरी—

भोजपुरी वाली कुछ प्रांत में भोजपुर, धनूपुर, बलिया नारसपुर, बस्ती धाऊमयक, बनारस और मिर्जापुर बिहार में आहाबाद और छोटा नागपुर तक फैली हुई है। इनके बोलने वालों की संस्था लघुपद छोड़ है। भोजपुरी में कोई लघुपद भीय साहित्य नहीं है। हाँ इस बोली के नाम बीच बहुत ही तरल और हृदय स्पर्शी होते हैं।^१

प्रागस के पूर्व स्थित नास्वामी जी के काव्य में भोजपुरी शब्द आकर ही कहीं देखने को मिलें। क्योंकि उनकी रचना के समय तक तुलसीदास का आबासमन भोजपुरी प्रांत में प्रायः नहीं रहा था। यह शब्द के बाद जब वह वाणी में रहने लगे और जलकपुर आदि की राजधानी में गए तो भोजपुरी के कुछ शब्द उनकी पद में आये। और उन्होंने उनसे नाम भी लिया। परन्तु बहुत कम भोजपुरी शब्दों को उन्होंने व्यवहारा।

जहाँ तक व्याकरण तथा नाम नाम की ठेठ प्रथा परम्परा का सम्बन्ध है भोजपुरी शब्दों से बहुत धरती में मिलती-जुलती है। भोजपुरी के प्रमुख शब्द लक्ष्य यह है—

- १—उत्तरे जिया कपों में लकार का बाहुल्य।
- २—इसके अन्तर्गत आहारार्थ प्रथम पुरुष बाबक सर्वनाम के रूप में राजर राजरी राजरे आदि रूपों का व्यवहार होता है।
- ३—स्वतः बाबक क्रियाविभक्तियों के रूप में जहूँ, तहूँ, बीरे कया का प्रयोग।^२ जब इन्हीं भोजपुरी के अनेक शब्दों के आधार पर हम चौखामी जी की आभासती में व्यवहृत भोजपुरी की आभासती पर कीये संतप में विचार कर रहे हैं।

चौखामी जी की रचनाओं में जहूँ, तहूँ का व्यवहार स्वतः बाबक क्रिया विशेषण के रूप में भोजपुरी के ही प्रभाव का चोटक है। आहारार्थ विभक्तिविहित वस्त्रों में —

करि छोड़ कव तवठ पुनि लईवा ।

बन धरौक छोटा रह लईवा ॥^३

१ राज भवेय विवादी—तुलसी और उनकी कविता—तुलसी की भाषा तीर्थक—पृ० ३००

२ डॉ० देवरी मदन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा—पृ० ११६

३ पृ० ३८

निम्नलिखित पत्तियों में साइ तथा लाई जिसका धर्म प्रायुक्त लड़ो बोसो में प्रचलित सोप है का व्यवहार भी स्पष्टतः भाजपुरो का है। इसका प्रयोग धात्र भी वहीं-वहीं सोनी के रूप में देखा जाता है।

देव होत तम तरुनि का प्रचरज मानत लोह ।

तुमसी जो पानी मया बहुरि न पावक हार ।^१

तुमसी तहि समान नहि कारि । इम नीके यथा सब लोई ॥^२

इसी प्रकार सूतहि का सोते ई के धर्म में व्यवहार भी मोरपुरी के प्रभाव का सूचक है। सोते के धर्म में सूतना बाहु का प्रयोग धात्र भी इस बीसा के क्षेत्र में निरालाई पड़ता है। जैसे त्रिया स्त्रों में सूतत घादि —

जेहि निनि मरुस आब सूतहि तब

रुपापात्र जन आय ।^३

घावरार्थ—मध्यम पुरप बावक सर्वनाम रूप रावर रावर, घादि करा का व्यवहार भी गास्वामी जी की राज्यावली पर मोरपुरी प्रभाव का सातक है। जैसे —

जो रावर धाम्यु में पावो । मगर बकाह तुगत लं पांवा ॥^४

मरो तो पीरी ही है मुखरौनी बिगरिया बसि ।

रामरावरी छा रहा रावरी बाहुत ।^५

रावर होय न पावन का पमपुरि का मूरि प्रभाव महा है ।^६

काटा करा रावरों ही रावरों या रावरे तो भूत क्यों

वहींका राजागों सब ही के मन की ॥^७

कुदेसखण्डी—

कुदेसखण्डी दुष्ट प्रांत के आसीन शमोरपुर में सकर मध्य प्रांत में हर्षनाबाद तक बोली जाता है। इसके बांसने बालों की संख्या ६६ साक है। मानस में कुदेसखण्डी शब्द बहुत है। इनमें से कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

संज्ञा धरशं के धातुगत कई ऐसे शब्द आ तुमसी की रचनाओं में मिलते हैं जो प्रकृषी जैसी तुमसी की सुपरिचित बोसियों में कभी पाए ही प्रदुष्ट होने हैं। विष्णु कुदेसो में उनका व्यापक रूप में व्यवहार होता है। जैसे —

१ वैराय्य संकोपिनी ६५

२ वैराय्य संकोपिनी ५०

३ बिनयत्रिका ११६

४ ग० १ २१५

५ बिनयत्रिका १२६

६ बचितावली २७

७ बिनयत्रिका ७२

गुह्य मुरमि पम ऊँज बजाता । कोमल करिण सुफेरी नावा ॥^१

ननक कलस मणि गोपर करे ॥^२

सर्वनाम के ही अन्तर्गत मध्यम गुह्य वाचक सर्वनाम का आरंभ एवं सर्वत्र कारक रूप रहने तथा शीरे त्रिनका व्यवहार निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है स्पष्टतः कुन्दली से ही लिये गए जान पड़ते हैं ।

पठ्यो धरत सूर मणि धररें । राम मनु मय जानव रहरें ॥^३

बो बोचहि सधि कमहि सी बोचहि शीरंहि ॥^४

ब्रजभाषा—

तुलसीदास जी का जन्म ही ब्रजभाषा की सरहद पर हुआ था । अतएव ब्रजभाषा में रचना करना उनके हेतु स्वाभाविक था । उन्होंने बीठाबली बोहाबली वृष्ण वीठा बली शीर बिमल पत्रिका में ब्रज भाषा के प्रचुर उदाहरण का प्रयोग किया है । पर ब्रज भाषा का मूला उनका कविताबली शीर वीठाबली से देना या सचता है । ब्रजभाषा के उदाहरणों का नैसर्गिक प्रयोग तुलसी जी सिद्ध था । ब्रज भाषा की आत्मीय एवं ध्वन्युत्प्रेरक शक्तियों का प्रयोग करने के लिये उनके कविताबली का प्रयोग तुलसी जी रचनाओं में प्रचुरता से देना या सचता है । सबसे पहले उनके परबाल प्रयोग बाहुल्य के बिचार से इसी का स्थान है ।

कर्म व सम्प्रदान कारक के कर्मों से का कों तथा वी बातों का व्यवहार ब्रज भाषा में होता है । इनमें अधिक शक्तिशाली रूपों का प्रयोग तुलसी जी रचना बली में नहीं मिलता । इनके स्थान में सर्वत्र को तथा का का ही व्यवहार मिलता है । जैसे :—

तुमसी से काम को मोदाहिनी बनिबाव ।

मुनन सिहात सब सिद्ध साधु साध को ॥^५

तुलसी की बाजी राधी राम ही के नाम न तु भेंट पितरन
को न मुहू में बार है ।^६

सियरिदे ही ही रहीं बलदास को न देही

तो नबी भटु देरी कहा कहि हय उठ जल ।^७

१ पृ० १३२९

२ पृ० १३२४

३ पृ० १२५

४ शारंगी पंगल ११

५ कविताबली ७३५

६ कविताबली ७६७

७ वी वृष्ण बीठाबली ७

सम्बन्ध बाणक में भी का पत्र छगं का व्यवहार तुलसी न ब्रह्म से म्यला पर सम्भवतः ब्रह्म भाषा व्याकरण का अनुकरण करके ही किया है। इनका प्रयोग मानस जैसे दसवीं बहुत प्रथ में न मिसकर बहिष्ठावसी पीठावसी बिनपत्रिका पीर पी कुरण पीठावसी जैसे ब्रह्मभाषा बहुत प्रथों में बिस्तार से मिलेया। प्रथवी बहुत प्रथा में इनके कम मिसने का कारण यह है कि प्रथवी में को के स्थान में क प्रथवा के परसर्प सम्बन्ध बाणक कथा में अधिक प्रथमित है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में ऐसे जा मकने हैं।

बातक बरन बिधि बनते मुदाबतो
 दसानल को जानल बनन को मिगार मा ।^१
 धरम धुरीन धार बार गुरुवीर दू को
 कोटि रज सरित भरत दू को राज भो ।^२
 पर उपकार मार सुनि को जा मा घोवहु न दिखारयो ।^३

पुण्यबाणक सवसामा न सम्बन्ध कारण कथा क इत्यमल मरो नरा हमारा तिहारो भादि साकारगत बन ब्रह्म भाषा में हा पूहोव होकर तुलसी का भाषा म पाये हैं।

तुलसीदास सब भाँति सबल सुख जी चाहसि मन मैरो
 तो भदु राम नाम सब पूरन करे कृपानिधि तैरो ।^४

पंछ परबस परै पीत्ररनि मैलो नोन हमारो ।^५

हृया डोरि बसी पर घहुस परम प्रेम मुदु बारा ।
 एहि बिधि रपि हरहु मेरा बुख कौतुक राम तिहारो ।^६

संज्ञामों बिषेवणों पीर सवनाम कथा की भाँति जिया कथों में भी घोकारण कथों का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ है। जो ब्रह्मभाषा की त्रियाणों के प्रमुख मधुओं में बिना जाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में सवारो बिसारो जवापो जगामो पीर धरो—

जीवन जय जानवी सखत को मरन महोप सवारो ।^७
 काहे तै हरि मोहि बितरायो ।^८

१ बहिष्ठावसी ३१

२ पीठावसी २२१

३ बिनपत्रिका २०२

४ बिनपत्रिका १६१

५ पीठावसी २६७

६ बिनपत्रिका १०२

७ पीठावसी २,६६

८ बिनपत्रिका १४

गोरख जयायो जोय बबठि जयायो लोय ।
निबम निधीय छै छी केति ह्यो करौलो है ॥ १

इस प्रकार गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं में ब्रह्मभाषा का भी प्रचुर प्रयोग किया है ।
राजस्वामी—

सुससीबास की रचनाओं में पंचम घोर बज के सिवा धर्य प्राणों के भी उच्च मिलते हैं । राजस्वाम का माधारण शब्द ही नहीं मुहावरें भी गोस्वामी जी की रचनाओं में भरे पडे हैं । वहाँ कुछ उदाहरण दिय जाते हैं ।

मैली—डासा

मुगाबोसि मैली मुनि चरना । १

गिय ब्रजभास राम जर मैली । २

पुजना—पूरा होला ।

एकहिवार घाससब पुजो । ४

पूरना—भरना (हमवार कर देना) ।

बुरहि मत भरि कुबर बिछासा । ५

पुत्रराती—

राजबाला क बाब पुत्रराती माया से सदा की मरमा पुसर्वा की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रसिद्ध मिलती है जैसे—

पुसना—छोड़ना

पासो तीरो दूक को परेहु पूरु मूडिजे मा ॥ १

मीये—बुन

मुनिपन कहुठ धंढ मीवी रहु ।

समुन्दि प्रेम पप ग्वारी ॥ २

साथे—पावा

बाहु व इन समान फल साथे । ३

१ कवितावली ७ ८४

२ मा० बा० पृ० २१

३ मा० बा० पृ० १८४

४ रा० २—१६

५ मा० सुन्दर पृ० ६७७

६ कवितावली—वाल काण्ड—१४

७ कवितावली २ ६६

८ मा० बा० पृ० ३१०

बंयसा—

कुछ शब्द तुलसी की रचनाओं में बंयसा क भी मिलत हैं। जैसे—

पारा—सबटा है।

सबन कहेठ मुनि मुजस तुम्हारा।

तुमहि धरत को बरने बारा ॥^१

बसा—(बोसो)—बैठा

मुनि मय मोक धरत होई बैसा ॥^२

मराठी—

मराठी भाषा के प्रयोगों का भी तुलसीदास जी की शब्दावली में धर्मशास्त्रों का प्रयोग नहीं है। यद्यपि परिभाषा की दृष्टि से उनका कोई भी विशेष महत्त्व नहीं है। संभवतः भाषा के महाराष्ट्रीय पंक्तिों के सम्पर्क में आने से प्रथवा कठिण मराठी शब्द कवियों की रचनाओं के अध्ययन के परिणाम स्वरूप इन शब्दों में मोस्वामी जी का परिचय हुआ होगा। इसके उदाहरण के लिये दो शब्द पंचारो और प्रकसत बिग जा सकते हैं। जिनका प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में हुआ है।

धीर बढ़ो बिद्वैत बसी

धरतूँ बसु बसत बामु पंचारो ॥^३

मोहि प्रकसत उपाम न एहू।^४

यही पर यह भी संकेत कर देना आवश्यक है कि इनमें पंचारो शब्द लम्बी भाषा के धर्म में प्रायः भी प्रथमी की बोलचाल में बराबर प्रयुक्त होता है। जैसे वहाँ का पंचारा वाक्य है। इत्यादि। परंतु तर्क की दृष्टि से यही उक्ति संगत जान पड़ता है कि तुलसी ने प्रथमी सुरचित बोली प्रथमी से ही उक्त शब्द ग्रहण किया होगा न कि किसी मराठी जैसी सुदूरवर्ती प्रांतीय भाषा से।

संस्कृत—

तुलसी के पूर्ववर्ती दृष्टोपासक कवियों में संस्कृत के उत्तम वर्णों से ब्रजभाषा के माहिर्य को धुंध मधुर बना दिया था। तुलसी ने इसका अनुसरण किया। उन्होंने प्रथमी संस्कृत के सुमधुर वर्णों को भर कर उसकी मीरसता बिल्कुल कम कर दी।

तुलसी संस्कृत माहिर्य के परागत बिशाल थे। उनकी द्वितीय कविता में ऐसा ज्ञात होता है कि संस्कृत के शब्द धपना धपना स्थान जोरकर स्वयं धा बैठते थे। कुछ शब्द धपने धपती रूप में धाये हैं और कुछ वेद बदल कर। नीचे कुछ शब्द संस्कृत के ऐसे दिये जाते हैं। जो संस्कृत में ही मिलते हैं प्रथमी या ब्रज में नहीं।

१ मा० बा० पृ० १६०

२ मा० धरप्य पृ० ५७५

३ कवितावली ६ ३८

४ पृ० २—२३३

मुझे—मुझ से
 बाहु मुझे वनहि बसि जाई ।^१
 कही पावसकटा पड़ने पर उम्होने हिन्दी के साथ संस्कृत शब्दों का प्र-
 किया है । जैसे —

उमा रमा ब्रह्मादि बहिता ।
 जपदम्बा संतत मतिगिया ॥^२
 इसमें संतत अनिच्छता पाठ रखते तक भी बड़ी धर्म होता । इस प्रकार पोस्वामी
 जी की रचनाओं में संस्कृत शब्दावली भी कहीं उसी रूप में घोर कही कलेवर बदल
 कर परम्परा से बली भाती हुई संस्कृत की दुबहता घोर नीरसता बूर करती हुई
 आई है ।

नई क्रियायें—
 शब्दों को पावसकतामुत्तर अपने साथे में बास देने में पोस्वामी जी बड़े ही
 सिद्धहस्त कवि थे उन्होंने बहुत-सी नई क्रियायें भी बना ली थी । जैसे—

उपदेवता—समभ्रमा
 मु बर गौर मु विप्रवर घस उपदेवस मोहि ।^३
 मरता—पूरा करना
 नैद्वर जतम मरत बर जाई
 त्रिविधि न करत सबति सेदकाई ।।^४

हिन्दी भाषा में अभी तक विवाधों की बहुत कमो है । श्रिया बना लेने की
 प्राथमिक क्षमता संदेशी भाषा में बिलसाई होती है । मात्र की उत्पत्ति के गाव ही
 मोटरिंग घोर देनाल के साथ प्रटोसिग की उत्पत्ति उसमें एक साधारण ही बात है ।
 धवर्धा घोर बज भाषा म भी क्रियाओं का जन्म प्राणामी से हो जाता है । पर हिन्दी
 में यह परिधि नहीं के बराबर है । इस क्रिया बनाने की कसा में पोस्वामी जी पदु के
 जो उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है । वे बड़ी ही सूझ के कवि थे । जहाँ उन्होंने बँसी
 पावसकता समथी बीछा ही त्रिया बास दो ।
 मुहाबरे घोर सोकोत्थियाँ—

मुसमी की भाषा का टकसाला मोदर्यँ देवता हो तो बड़ उनही पावसकता में
 प्रयुक्त मुहाबरा घोर सोकोत्थियो मे बिगय रूप में मिलना । यह मुहाबरे घोर सोको
 त्रिया प्राय बज घोर धवर्धा से तथा कतिपय धव्य बीतियों में उपलब्ध रूप भन्नार
 में सी गई है । इसमें ठठ जत भाषा की धनैक रूपरमक रण बिद्यमान है । उदाहरण

- १ मा० धयोप्या० पृ० २८८
- २ मा० उत्तर पृ ७८०
- ३ मा धयोप्या० पृ० २७
- ४ मा० धयोप्या० पृ० २१६

क हेतु कुछ प्रयोग उनको रचनाधा से उद्धृत किये जाते हैं जिनमें उक्त मुहावरों और लोकोत्थियों की कलात्मकता का विपर्यय हो जायेगा।

१—पेट खसार्ई—

राम मुमाब सुम्पो तुमसी प्रभू । को बह्या बारफ पेट खसार्ई ॥^१

२—छपुर सोहाती—

हमहु बहब पब छपुर सोहाती ॥^२

३—बड़ें घाल होना—

हंसि कहरानि घाल बड़ तोरे ॥^३

४—घाल करना—मिजाज करना

गालु करब वैहि कर बस पार्ई ॥^४

५—डूबी बीम करके कहना—

एकहि बार घाल सब पुजी । पब बसु बहब बीम करि डूबी ॥^५

६—बारह बाट खाना—

राज करत बिनु काज ही छॉहि ज फुर नुछत ।

तुमसी से बुरराज ज्या रई बारह बाट ॥^६

७—झोखलपना—

तुमसी खातब प्रेम पट भरतहु लया नखौब ।^७

८—मुड़ में बार न होना—

तुमसी की बाजी गरीबी राम हू के नाम छनु ।

मोट पिठरन की नमुड़ हू में बार हू ॥^८

९—घोबी खतो फूकर न घर को न घाट को—

तुमसी खमी हू राम गारै खनाय न ता

घोबी खतो फूकर न घर को न घाट ली ।^९

१ कवितावली ७ ५७

२ रा० २ १६

३ रा० २, १३

४ ग २ १४

५ रा० २ १६

६ बोहावली ४१७

७ बोहावली ३ ३

८ कवितावली ७ ६७

९ कवितावली ७, १६

१ — मुह साए मुझ बहना—

मुह साये मुझहि बड़ी धंतुहु प्रहीरनि तू मुचि करि पाई १
 ११—घरने बना बबार्ई हाथ बाहिमत हूँ

गारी देत नीच हरिबाद हूँ रबीबहु को
 घरने बना बबार्ई हाथ बाहिमत हूँ ।^१
 उपरुक्त उदाहरणों को विचार पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने शब्दावली तो जन भाषा से चुनी है साथ ही साथ प्रतीक भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित वस्तुया एवं पदार्थों से ही चुने हैं । उनकी यह प्रकृति ठठ जन बोधी के साथ साथ ग्रामीण वातावरण के भीतर भी सहरी पैठ भी छोटक है । जैसा पीछे संकेत किया जा चुका है । इन मुहावरों और लोकोक्तिवों का प्रहण जब और प्रबन्धी बोलिया के क्षेत्र से ही किया गया है । और इसीलिये हममें रूप की प्रावेष्टिकता का या जाना स्वाभाविक ही है । वस्तुतः इसी प्रावेष्टिकता में इन मुहावरों और लोकोक्तिवों का ठठ भाव्युर्ध्व प्रनिम्नत्व होता है । इनमें घनेक तो इतने ध्यापक रूप में प्रयुक्त हैं कि प्राज भी वे उठते ही मनोम प्रतीत होते हैं । जितने कवाचित तुलसी के समय में रहे होंगे ।

बावय रचना—

पद्यकार कवि की भाषा के अन्तर्गत बावय रचना के क्षेत्र में यह प्रमादि का व्याकरणिक बंधन उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता जितना पद्यकार की भाषा में । यहाँ पर बावय रचना के प्रयोग में जिध बाठ पर विशेष रूप से विचार करना है वह यह है कि लम्बे-लम्बे बावय से कई छोटे-छोटे बावय पदा की निर्गुं धरित्री में (Clauses) को मिला दी गई है । योजना करने की प्रकृति तुलसी की दृष्टि योजना के अन्तर्गत किध रूप और किध भाषा में निसती है । प्रायामी विशेषण एवं विशेषण से यह मसी धांति स्पष्ट हो जायेगा कि व्याकरण की इन दिशा में भी वह कुछ कम सिद्धहस्त न थे । परन्तु बोधक के साथ बावय रचना की इन पद्धति का अनुसरण करने में भी बोलचाली जी ने पूरी सफलता प्राप्त की है ।

संयुक्त (Compound) और विधिन (Complex) वाक्यों की रचना में प्रधान बावय पर (Principal Clause) के साथ प्रयुक्त होने वाले सहायक वाक्य पर (Co-ordinate Clause) संज्ञा बावय पर (Noun Clause) विशेषण बावय पर (Adjective Clause) और क्रिया विपणन वाक्यपद (Adverbial Clause) प्रकृति धारण बावय पर (Subordinate Clause) इन सभी प्रकार के बावय पदों के उदाहरण तुलसी ने अपनी भाषा के अन्तर्गत उपस्थित किये हैं और वह भी बड़े स्वाभाविक रूप में । उक्त कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

१ श्री दुष्पटीतावली ८

२ कवितावली ७ ६६

संयुक्त वाक्य तथा सहकारी वाक्य पर—

नाब जवामति मायेरं एखेठ नहि कसु गोइ ।^१

एक मुस जनि धाये घान करंभूस फल

एक पूजे बाहुबल तोरि मुस फुल है ॥^२

रामराज भयो काज सगुन सुम

एकाराम जपत बिजयी है ॥^३

उपयुक्त तीनों पंक्तियों में 'जवामति मायेरं' 'एक मुस जनि' 'धाये घाने कर' 'मुस फल' तथा 'राम राज भयो काज सगुन सुम' प्रधान वाक्य पर तथा शेष सारे वाक्य सहकारी वाक्य पर कहे जायेंगे। जिनकी स्वतन्त्र सत्ता यह सकती है। चाहे वे प्रधान वाक्य पर के प्रांग बने, चाहे न बने। इस प्रकार के वाक्यों का जो संयुक्त वाक्यों तथा सहकारी वाक्य परों के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत क्रिये गये हैं। तुमसी ने प्रचुर भाषा में प्रयोग किया है।

निमित्त वाक्य तथा घाभित वाक्य पर—

सजावाक्य पर—सजा वाक्य पर श्री योजना प्रधान वाक्य पर की उक्त घषणा अनुक्त क्रिया (क्याकि पर में कही-कही क्रिया स्पष्ट कथित न होकर प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहती है।) के कर्ता और कर्म दोनों रूपों में उपलब्ध होती है। जैसे—

कर्ता रूप में— जो कुछ कहैठ सरय सब होई ॥^४

तू जो हम घावरयो सो तो तव कमल की कानि ।^५

जो बहुत करिय सो होई सुम नुनहि सुमंगल जनि ।^६

उपयुक्त पंक्तियों में 'सरय सब होई' इस प्रधानवाक्य में निहित क्रिया है का कर्ता 'जो बहुत कहैठ सो तो तव कमल की कानि' के भीतर स्थित है घषणा 'रही' क्रिया का कर्ता 'तू जो हम घावरयो' तथा सो हाई सुम की होई क्रिया का कर्ता जो 'बहुत करिय' है। यह सारे कर्ता रूप सजा वाक्यपर कहे जायेंगे।

कर्म रूप में कही सो बिपिन है जो कितक दूर ।^७

गहि सिव पर कह सागु विनय मुहु माननि ।

१ ट० ७ १२३

२ कवितावली ५ ३०

३ विनयपत्रिका १३१

४ गीतावली २ १३

५ ट० ४ ७

६ रामाज्ञा० १—१—५

७ पौ० २—१३

पीरि सुभीतनि भुरि मोर निय जानबि ।^१

कोउ कह बिहरत बन मधु मतसिब दोउ ॥^२

बह बानी तुनु भीह प्रिय समहरसी रघुनाथ ॥^३

उपरोक्त वाक्य पदों में प्रथम 'कहीं' क्रिया का कर्म है । सोप वाक्य पर यथा स्थान 'कह' क्रिया के कर्म रूप में प्रयुक्त है । इस प्रकार यह छारे वाक्य पर क्रमहीन श्लोक के संज्ञा वाक्य पर है ।

बिसेपल वाक्यपर—

राज करत तिनुकाज ही बटोहि औ झर कुठट ।

तुलसी ठे कुय राज ज्यों बहैं बारह बट ।^४

तुलसीबास तो भजन बहामो जाहि बूढरो पाई ।^५

तुम्ह तो बेहु छरष सिबसोई

जो घाबरत घोर मल होई ।^६

उपरोक्त पंक्तियों के अन्तर्गत रेखांकित प्रश्नों में संश्लिष्ट वाक्यपर क्रमशः अलग अलग प्रश्न वाक्यपदों में प्रयुक्त हैं । अलग अलग संज्ञाओं के बिसेपल होने के कारण बिसेपल वाक्यपदों की श्लोक में धार है ।

त्रियादिवाक्यपर—

काल स्थान परिणाम कारण रीति और प्रयोजन प्रायि के साक्षार पर हम वाक्य पर के कई भेद होते हैं । सबसेम उन सभी का समावेश तुलसी के काव्यों में श्लोकगोचर होता है । यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

काल वाक्य—

जब तेहि भीहु राम क निवा । जोबर्षत पति भयत कपिन्दा ॥^७

स्थानवाक्य—

जिय जहूम मैं जायो जहाँ सो तहाँ । तुलसी तिनुकाह बहामो है ॥^८

कारण वाक्य—

अब कहै सोबत मोचन जल समय पवे चितमूल नई ॥^९

१ पा० म० १५७

२ बरवै० २२

३ रा० ४७

४ बीहाबली ४१७

५ वी० इण्डिया बीहाबली ३३

६ रा० २—१७७

७ रा० ६—३९

८ क० ७ ११

९ श्री इण्डिया बीहाबली २४

परिणाम बाधक—

पाप प्रतिप्य बड़ि परी ताते बाड़ी रादि ।^२

रीतिबाधक—

यो मन कबहुँ तुमहि न साम्यो ।

ख्यो छत धाड़ि स्वभाव निरतर रहत बिषय अनुराग्यो ॥^३

प्रयोजन बाधक—

बड़ बोधन को करै सचेता । जग माहीं बिचरत एहि हैता ॥^४

उपसृक्त पंक्तियों में रेखांकित अक्षरों में अंकित अंग त्रिमा विनोपण बाधकपदों को घेरी में घाते हैं । जिनमें यथास्थान काल क्रम परिणाम कारण रीति एवं प्रयोजन आदि विभिन्न परिस्थितियों की व्यवस्था हुई है । इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्य में सुमझे हुये बाधकपदों का प्रयोग करने वाले तुलसी की अष्ट योजना बाधक रचना के क्षेत्र में भी उत्तमी ही प्रौढ़ सिद्ध होती है जितनी व्याकरण के अन्य अर्थों के क्षेत्रों में । अतः गोस्वामी जी की बाधक योजना सरस सुलभ्ये हुई जसित कलात्मकता से युक्त स्वभाविक और प्रवाह पूण है ।

तुलसी के शब्द प्रयोग परक कला की विशेषतायें—

तुलसीदास जी ने भाषा का परिष्कृत रूप उपस्थित किया । उसमें न तो बीर भाषा काव्य की कर्कषता है न प्रेम काव्य की घामीलुता और न ही असंपति तथा बिगृह्यता । तुलसी का अष्ट अयन पाण्डित्यपूर्ण है । उसमें केवल न गुर वाला अमत्कार भी नहीं । परन्तु इनको भाषा की भावात्मकता रसानुकूलता, अथवा रूप मुक्तता में निमी को भी सम्प्रेह नहीं हो सकता । तुलसी का अष्ट प्रयोग अलंकृत होते हुए भी स्वभाविक है । यही उनकी विशेषता है ।

दूहन पर गोस्वामी जी की रचना में नहीं-नहीं संज्ञ के साम पद्य की तुल्य मिठी है । कहीं संज्ञा के साथ चिन्ता मिली दितलाई देती है । कहीं मति अंग का हृष्य है ता नहीं मात्रा की कमी अथवा अस्तित्व प्रकट कर रही है । परन्तु कवि की ऐसी स्वच्छन्दता रहते हुए भी मात्रा की अन्वयसो बड़ ही परिमात्रित रूप में एक वम व्याकरण सम्मत होकर निकली है । अतः सरीले शब्द का क्रीडित में व्यवहार ऐसी बात है जिसे हम उनकी भाषा का दिठाना मान सकते हैं ।

गोस्वामी जी की शब्दावली में मात्र जिस अलम्बता से व्यक्त हुए हैं उस पर तो जितना भी कहा जाने पाया है । योंदे ने अष्ट में अलम्ब-सा भाव भर कर रख देना इनके शब्दों द्वारा वा अस वा ।

गोस्वामी जी की शब्दावली का सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गोस्वामी जी

२ दोहावली १२४

३ विनयपत्रिका १७०

४ वी० अ० ६

ने जी भी कहा है वह बहुत ही सीधे बड़ से कहा है । जब भाया धीरे धबकी बीनों ही भायाघो पर वास्वामी जी का पुर्ण अधिकार था । इस वनों पायाघो को संस्तुत की परिषदक बापकी की पाप देकर उन्हीं से धबकुल मिठास प्रदान की । इन दोनों भायाघा पर वास्वामी जी का इतना अधिक अधिकार दिखसाई देता है कि कितना स्वयं सूर का इस भाया पर धीरे कामकी वा धबकी पर न था । भाया धीरेस्व तो वास्वामी जी की धम्बाबती से नहीं मिलता ही नहीं । एक घण्ट भी घण्टी का इनकी रचनाघो में नहीं है । बापकी इत पदमावत की रचना मानस से पूर्व की है । परन्तु वह धबकी का कामोण रूप था । सुसंस्तुत धीरे परिमार्जित रूप नहीं । वास्वामी सुखमीरास जो ने धबकी भाया को परिमाणन धीरे माधुर्व प्रदान किया ।

गोस्वामी जी के धम्ब प्रयोग में सबसे बड़ी कला यह थी कि उन्हीं धबकी भाया को संस्तुत धम्बाबती द्वारा मानर रूप प्रदान किया । जैसे :—

राम कुर्वाण्डि सखिब रंग जाही । देखि लोप बहुत तहँ बिलखाही ॥१॥

इसमें कुर्वाण्डि धम्ब संस्तुत धम्बाबती का इत कर वास्वामी जी ने धबकी भाया की मानर रूप प्रदान किया है । इसी प्रकार सूर बन्दना की यह पंक्ति भी धबकी भाया की संस्तुत धम्बाबती द्वारा कितनी सुन्दरता से मानर रूप की प्राप्ति हुई है —

बहुत ब्रह्म पर परम पराया । सुखि सुखात सरस धनुषबा ॥२॥

संस्तुत उदारस वास्वामी जी की भाया परिष्कृति का बड़ा ही ललित उदाहरण है इसमें धबकी जैसी प्रामोण भाया को गोस्वामी जी ने धनुषबाकारक धम्बा की लपोपना द्वारा बड़ी ही सुन्दरता से मानर रूप प्रदान किया है । साथ ही सुरधि सुखाम सरस धारि गंधी से धनुषबा होने ने कारस धीरे साथ ही समस्तकता होने से नाद सीमर्य की ललित है । बड़े है ।

धबकी के साथ जब भाया का सम्मिश्रण सुखती की धम्ब सम्मन्धी कला की उन्मुखता का लोचक है । इनकी भाया की धम्बाबती कितनी ही लौकिक है उन्हीं ही साम्प्रोय थी ।

वास्वामी जी की धम्बाबती में सुन्दरता का नाम भी नहीं है । लीखे देखिये :—
नब वैसी भुजिका बनोहर । राम नाम बंदिश मति सुबर ॥३॥

इस लक्षण धम्बों का प्रयोग हम को पंक्तिमें से हुआ है । लेकिन भाव-व्यंजना धीरे लोचक मन्वता में ललित भी कभी नहीं आई ।

सुखती के धम्ब प्रमाण की एक विशेषता यह भी है कि इनकी रचनाघा में एक धम्ब भी ऐसा नहीं मिलता कितनी जगह हम धुपरा धम्ब का लक्ष्य ।

१ भा० धब० पृ० २०७

२ भा० बा० पृ० ३

३ भा० सु० पृ० १४७

गोस्वामी जी की राश्र योजना की विद्ययता है। माया को सफाई और बन्धन रक्षमा की विशेषता जो हिन्दुओं के किसी भी कवि में नहीं पाई जाती। यह वा हो बातें न होत से इपर क प्रपारो कविता की कविता यह लिखे लागा क काम की न हुई।

अत में मक्षेप रूप में गोस्वामी जी की राश्र प्रभाग सम्बन्धी विद्ययतायें निम्नलिखित हैं।

१—गोस्वामी जी की राश्रावली सरस है जिसमें पाठक जेने सहज इस में हृदयंगम कर सकते हैं। इस सरस राश्रावली का मक्षेप गोस्वामी जी न प्रारम्भ में ही कर हो बिना है। 'सरस कवित्र कीर्तन विमल मुनि प्रादरहित गुजान। गोस्वामी जी की सरस राश्रावली का ही यह परिणाम है कि एक मूर्ख में मूर्ख भी मानव को जानता है। उनकी सरस राश्रावली का एक उदाहरण नीचिय।

प्राय जने बहुत्र गृहगई।

शृष्यमूक परैठ लियगई ॥^१

२—गोस्वामी जी ने ग्रामीण कोशियों की राश्रावली का परिमार्जन भी किया है। जिसका पीछे विवेचन किया जा चुका है।

३—सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि गोस्वामी जी की माया में विभिन्न भाषा-भा की राश्रावली स्पष्ट हुई है जिसकी बिशद विवेचना पीछे की जा चुकी है। किन्तु फिर भी गोस्वामी जी की राश्रावली कहीं अटकने वाली नहीं है।

४—गोस्वामी जी की माया संयत अर्थ-यमित और औचित्यपूर्ण है।

५—उनकी माया भाव परिस्मित और पत्रों के अनुकूल प्रयुक्त हुई है। प्रत्येक पाप अपनी माया बोलता है। निपाय प्रामीण है। अत बहु विद राश्रावली का प्रयोग न कर ग्रामीण राश्र तोहार का प्रयोग करता है जैसे :—

बहुहि तीहार मर्म में जाना ॥^२

६—अन्तिम बात है कि गोस्वामी जी की राश्रावली कथा प्रवाह के अनुकूल है। इसमें किसी प्रकार से कथा के प्रवाह में बाधा उत्पन्न नहीं होती।

अत गोस्वामी जी के राश्र प्रयोग सम्बन्धा इस काम्यशास्त्रीय एवं कलापत्र के विवेचन के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोस्वामी जी की राश्रावली विमुक्त कलात्मक दृष्टि में भी उतना ही समृद्ध एवं महत्वपूर्ण है जितना अन्य दृष्टियों में।



सुसती के काव्य में संगीत तत्त्व और विश्रामकला

संगीत शब्द से भारतीय संगीत में पापन^१ वादन तथा नर्तन तीन कलाओं का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिश्रित रूप को संगीत कहते हैं। यद्यपि संगीत के यह तीनों घंग माने गये हैं।

वीर्यं वाद्यं तथा नृत्यं च संगीतं मुख्यते ।^२

नर्तनं वाद्यं नर्तनं च संगीतं मुख्यते ।^३

वीर्यं वाद्यं नृत्यानां च संगीतं मुख्यते ।^४

संस्कृत साहित्य में संगीत शब्द का प्रयोग करने में मूलिक शब्द का व्यवहार होता है। किन्तु योरोपीय देशों में मूलिक शब्द प्रायः कथं संगीत (Vocal Music) यद्यपि वाद्य संगीत (Instrumental Music) के लिये ही व्यवहृत होता है। मुख्य शब्द हास भास तथा तास (Gesticulation) का सर्व मूलिक शब्द से नहीं निकलता।

संगीत के नाम की प्रिया का लक्ष्ये परिचय महत्त्व दिया जाता है तत्परत्वात् वादन और नृत्य को। वाप्य की प्रकामता हान के कारण तीनों को ही संगीत कहा गया है। जो इस प्रकार है :—

पानस्याऽयं प्रबानवाक्यं वीर्यमिन्द्रियैरितम् ।^५

भी मातसंघे का कथन है संगीत समुदाय वाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। यह कलाओं गीत वाद्य और नृत्य हैं। इन तीन कलाओं में गीत का प्रधान है। यद्यपि केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।^६ किन्तु जिन

१ संस्कृत साहित्य में वाप्य तथा पान शब्द में मुख्य भेद जाना जाता है। यद्यपि वाप्य शब्द प्रयोजन के लिये तथा पान शब्द संगीत के अर्थ में प्रयोग होता है।

२ संगीत रत्नाकर—धर्म शैव—प्रथम भाग प्रथम प्रकरणम् पृ० ११ नं० ११

३ संगीत दर्पण—पृ० ५—सं० सं० ३

४ संगीत पारिजात—पृ० ६—सं० सं० २०

५ संगीत पारिजात पृ० ६ सं० सं० २०

६ पञ्चतन्त्र विष्णु मातङ्गन भरतसंघे—संगीत शास्त्र-प्रथम भाग-पृ० ९

प्रकार साहित्य श्रवणं शिवं श्रीर सुन्दरम् के सहयोग से निरार उठना है उसी प्रकार समीत गायन बादन श्रीर नृत्य के द्वारा ।

समीत की व्यापकता—

किसी न रमणी से कहा Gods rarest blessing is after all a good woman ईश्वर का सबसे बड़ा बरदान है सुखीसा नारी । उस स्त्री ने तरकास उत्तर दिया Rather that is a good music उससे भी अधिक सुन्दर संगीत ।

यद्यपि विद्वत् ही समीत मय है । संगीत की व्यापकता को सत्य करते हुए पश्चिम धींकार नाथ टाकुर ने कहा है संगीत पुरुषो का नियम नहीं है । शब्द प्राकाश का गुण है जिसका प्राकाश विद्याल है नाद संगीत भी उतना ही विद्वत् व्यापी है ।^१

न केवल चैतन्य सृष्टि ही नहीं प्रस्तुत अङ्ग भी संगीत मय है । अङ्ग अंगम अथवा अङ्ग भी दृष्टि दालिये समीत के सप्त स्वरों का समा सा रेंगा हुआ दृष्टिमोक्ष होता है । कलियों की शिटकन मसमानिन की सुकुमार गति शरितायो की नल नल ध्वनि बाहु के धौकों से आन्दोलित वृष सताओं के पत्तों की अङ्गवङ्गादत बबल समीर की मल मलाहट समुद्र गर्जन तथा विद्यास प्राकाश के तारों की अम्भिमलाहट में विष्य संगीत अनुभव कर किसे आनन्द प्राप्त नहीं होता ।

समीत का महत्त्व—

समीत की महत्ता किसी ने भी छिपी नहीं है । अनुराग रहित पद्यार्थ स्वरूप से गायन तथा बादन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ संगीत अङ्ग और चित्रन शोभा पर ही समान रूप से प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । भागवत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण के मुरली वादन से मनुष्य वा पंचल जन्त भी मान्त श्रीर स्थिर हो जाता था ।^२

समीत वह कला है जो विकसित हृदय में शान्त्य का उद्दिक कर देती है । संगीत की स्वर लहरियाँ सुनते ही पावागल हृदय भी सहसा भूम उठता है । संगीत में वह नैसर्गिक शक्ति है जो मानव हृदय की कोमलतम भावनाओं को स्वयं कर उनकी मुष्ट प्राणियों को जगा देती है और हृदय के किसी भीरव कोने में दूबी स्मृतियों को हराकर देती है । संगीत की इसी व्यापक महत्ता को सत्य कर ही मूर्त्तिर ने समीत का मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना है ।^३ संगीत भगवान् प्रदान

१. उभय ओसी—संगीत करवगे ११२२—समीत की स्वर सन्धिया पर मुर्त्त की शोस उठने हैं—पृ० ३०

२. श्रीमद् भागवत महा पुराण—मूर्त्ति बरब्राम प्रणीत अनुवादक मुनि माल द्वितीय अङ्क पद्यम अङ्क—इश्वरीश्री अर्घ्याय—पृ० १११—दशक सं० १२

३. मूर्त्तिर—मूर्त्ति शतकम्—दशक सं० ११

की हुई कथा है जो मनुष्य के शरीरों को दूर कर उन्हें धार्मिक पहुँचाती है ।^१
कविद्वय विहायी न तो संगीत की अनुपम मधुरता पर मुख हीकर यहाँ तक कह
रिखा—

संगीताय कवित्त एव सरस रागरति रम । मन्मूढे बूढ़े धरे जो बूढ़े सब संव ।।^२

काव्य और संगीत—

बहु सम्पूर्ण सृष्टि और मालव ही संगीत से प्राप्त है तो साहित्य में भी
संगीत का हीना अधिभार्य है । साहित्य का निर्माण भी तो संगीत त्रिय मानकों ने ही
क्रिया है । साहित्य यथा काव्य के समस्त अंगों में किसी न किसी रूप में संगीत का
योग अवश्य रहता है ।

कविता को सुन्दर बनाने के हेतु उसके सुधर पाठ तथा रसास्वादन के सिधे
भी संगीत अपेक्षित है ।

यद्यपि साहित्य और संगीत दुबकुं पुपक भी सन्धे भाग्य को प्रदान करने
वासी है । बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सुजन
हा पाता है । जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते हैं उस समय हमारा
हृदय आनन्द विभोर हो जाता है । इसी प्रकार अथवा सुकथ संगीत की सुमधुर ध्वनि
काल में पढ़ने से प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता । तथापि दोनों का संयोग होने में
सुपण्य उत्पन्न कर देता है । दोनों का पारस्परिक विरोध अर्थात्स्नीय है । सहयोग तथा
एकता में ही दोनों की प्रवृत्ति समक हो सकती है । अतः काव्य और संगीत की
स्वतन्त्र सत्ता होते हुए भी दोनों का असी दामन वा धाम है । संगीत को तो
काव्य ने अपने में ऐसा निहा रक्खा है कि वह काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग
ही गया ।

काव्य और संगीत का सहयोग एक ओर दृष्टि से भी है । वह वह कि संगीत
के प्रमुख ताव निम्नलिखित हैं—

1 Music is one of the fairest and most glorious gifts of God,
to which satan is bitter enemy for it removes from the heart the
weight of sorrow and the fascination of evil thoughts.

"Music is a discipline and mistress of order and good manners,
she makes the people milder and gentler more moral and more
reasonable

"Music is the art of the prophets. The only art that can claim
the agitations of the soul. It is one of the most magnificent and
delightful presents God has given us"

—"The New Dictionary of thoughts—Page 413-414

१—बस

२—स्वर

—नाद ?

यह ही संगीत के उपयुक्त तत्त्व काव्य में भी माने हैं जिनके कारण बड़ी महत्व काव्य को भी प्राप्त हो जाता है जो संगीत को प्राप्त है। गोस्वामी जी के काव्य में संगीत तत्त्व पूर्णरूपेण वर्तमान है। जिसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

गोस्वामी जी के काव्य में संगीत तत्त्व—

संगीत से समाविष्ट होने पर काव्य में एक विशेष गति प्रभाव तथा उजबलता आ जाती है। संगीत काव्य की रचना के हेतु निम्नलिखित तरिका को आवश्यकता होती है।

स्वतन्त्रता—संगीत प्रथम काव्य की रचना करने में संगीत के विविध आरोह, अवरोह, स्वर ताल और राग रागिनिया की अव्यक्त आवश्यकता होती है। इसमें क्रमसकृत् पदावली और स्वर वारतन्त्र और नाद सौन्दर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

सुखम तत्त्व—गीत काव्य में धारण कथन की संक्षिप्त प्रणाली को ग्रहण करना चाहिये इसमें सम्बन्धित कथन अथवा मुस की स्थिति का स्पष्ट कथन अपेक्षित है। और इसमें प्रतिपादित भावों को सर्वत्र एक रूप में रखना चाहिये। अनुसूति की गम्भीरता और तीव्रता द्वारा गीत काव्य को भी अभिव्यक्ति में भी स्वाभाविक सौन्दर्य और मार्मिकता का प्रायोजन करना आवश्यक है।

महाकवि तुलसी से पूर्व हिन्दी में विद्यापति मुर धारि ने पर्याप्त गीत काव्य की रचना की। तथापि राम भक्ति के योग्य पदों की उपस्थित करने का श्रेय तुलसी को ही है। इसी प्रकार दास्य भावना को भी तुलसी ने गीत काव्य की अभिव्यक्ति प्रदान की।

महाकवि तुलसी ने विनय पत्रिका में दय पदा की पर्याप्त रचना का है। वह संगीत कला के समझ के। और उन्होंने सकार के स्तूत तत्त्वों का अव्यक्त श्रेष्ठ आचार पर नियोजन किया है। उन्होंने अपने संगीतारम्भ पदों की रचना राग रागिनियों के माध्यम से की है। और स्वर ताल का सामंजस्य स्थापित रखने का भी पूर्ण ध्यान रखा है। अपने भावों को राग रागिनी के बचन में धारण करते समय उन्होंने याद सृष्टि को राग के अनुकूल ही उपस्थित किया है। इसमें यह स्पष्ट है कि संगीत काव्य में उनकी पूर्ण और सूक्ष्म गति थी।

तुलसी ने दम्भ प्रयोग की दृष्टि से अपने गीत काव्य में सुसंस्कृत एक क्रमसकृत् पदावली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस कारण उनके पदों में संगीत तत्त्वों का विशेष विकास उपलब्ध होता है। जैसे—

२) रामचन्द्र कृपासु मनुमन हरणामय भय बाण्यं ।
मम कर्म सोचन कर्म मुख कर कर्म पर कर्माकण्यम् ॥१७

इसी प्रकार उग्होंने पत्रिका में सम्बोधन स्तुति और उद्बोधन शैली के द्वारा अपने भीत काव्य को विशेष सौन्दर्य प्रदान किया है । यद्यपि यह शय है कि पत्रिका के कुछ पदों में विषय वाचक की दृष्टि में यदि संयोजन की स्थिति रही है । परन्तु दोस्वामी जी का उद्देश्य विनयपत्रिका को संशोधन रचना में उपलब्ध करना न था । वह उसे संशोधन की दृष्टि से प्रवाह पूर्ण रूप में उपलब्ध करना चाहते थे । और इसी विद्या में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । यही कारण है कि यदि संयोजन से युक्त पदों में यापन के समय यदि तत्त्व की दृष्टि से कोई भी अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता जैसे —

धन सौं नसामा धन न नवीं हौं ।

राम कृपा भवमिसा सिरामी जाये फिर न उरीहो ॥

पापो नाम चारु बिताममि उर-कर सें न लवीहो ।

स्वाम रूप मुधि कचिर बलीटी बित कंचमहि नवीहो ।

परबम जानि हस्तो इन इ द्रिम निज बस है न हवीहो ।

मम-मनुकर पन करि तुलमी रघुपति-पद कमल बवीहो ॥१८

संशोधन काव्य में प्रभाव की तीव्रता के हेतु भाषिक भावनाओं की संक्षिप्त परिष्कार को मुख्य स्थान प्रदान किया जाता है । उनके काव्य में संशोधन काव्य का स्वभाविक रूप उपलब्ध होगा है । पत्रिका के प्रारम्भ में वाइये बन्धन अयम्बन्धन बन्धन उग्होंने संशोधन कवि और मक्ति के उन्नास का उल्लेख परिचय दिया है ।

तुलसीदास जी ने अपने संशोधन प्रभाव काव्य की रचना करते समय राममक्ति को मूल विषय बनाया है । राम मक्ति के प्रतिरिक्त उग्होंने बलीय, शिव इत्यादि और

बंवा धादि देवी देवताओं के प्रति भी अपनी शक्ति भावना को संशोधन काव्य में प्रस्तुत किया है । अन्त में इन सभी देवताओं से उग्होंने राममक्ति की ही याचना की है । इन्होंने इसमें धार्मिक दार्शनिक मिश्रणों की भी प्रशंसा के रूप में उत्तर धर्मि व्यक्त प्रदान की है । इसी प्रकार उग्होंने विविध पौराणिक प्रसिद्धियों का धार्मिक उल्लेख कर अपने संशोधन काव्य में वाच्य भावना को स्पष्ट करने के हेतु यथास्थान पौराणिक संकेत भी उपलब्ध कर दिये हैं । जैसे:—

मन बलिनी है धरमर बीति ।

तुलसी देव पाद हरिपद मनु करम बचन पर ही ते ॥

सहनबाहु बगबहन धादि गुप बचै न नाम बली ते ॥१९

१ तुलसी प्रभावसी द्वितीय संक विनय पत्रिका—पृ ४७७

२ तुलसी प्रभावसी द्वितीय संक—विनयपत्रिका—पृ १०२—पृ २११

३ विनय पत्रिका—पृ १२७

तुलसीदास ने अपने संगीतात्मक काव्य की खातरस की प्रविष्टि का प्रमुख माध्यम बनाया है। उन्होंने अनुसृष्टि और भावना के बीच संगीतन द्वारा घनने की धीर काव्य को पूर्णतया समुद्र रखा है। इन दृष्टि से उद्गहन घनेक मक्ति पूर्ण पदा की रचना की है। मरुत होने के कारण उनक गेय काव्य में दैव्य धाम्य सनपण प्राधा उन्माह अनुताप और धात्म खानि प्राप्ति बिधिप भावा का भी रमखीय संगीतन हुआ है। उन्होंने नवपा मक्ति के दास्य मक्ति बाने पन को ध्राण करते हुए पत्रिका में प्रसक्तो नितांठ प्रौढ़ रूप में उपरिदत किया है। उनक गेय पदा म सबक संख्य प्राक की भी मार्मिक स्थिति रही है। मात्र ही उन्माहने उन पदों में दैव्य वा ना उन्पेत किया है। प्राये हम लमगा इन बोना न ही उदाहरण उपस्थित करते हैं —

सुगु मम मूढ सिखावम मेरो ।

हरि पव विमुक्त सहयो म काहु सुन सठ यह समुक्तु सबेरो ।^१

× × × ×

तू बमानु दोन हीं तू बानि हो निन्वारी ॥^२

एत तुलसी के पदों में धात्मा की प्रविष्टि और शक्ति रम की प्रतिष्ठा का पूर्ण ध्यात रखा गया है। उन्होंने पदा में प्रवृत्ति काव्य के विभिन्न सुन्दर लक्ष्यों को प्रस्तुत किया है।

सम्भवतः इष्ट काव्य की गीतात्मक रीति का जगत पर प्रभाव देन कर ही तुलसी ने संगीतात्मक रागरागनी से युक्त पदों की रचना पीतावनी में की।

महाकवि तुलसीदास कृत विनय पत्रिका में संगीत सौन्दर्य का उद्दृष्ट उदाहरण है। यदि वे उसे भी संगीतात्मक दृष्टि में न रखते तो वे अपने हृदय के इतने मनोरम शब्दों भाव व्यक्तित्व न कर पाते और जन साधारण में इन शब्दों का इतना प्रचार भी न हो पाता। क्योंकि पंडित मंडली काह म प्रपतावे किंतु साधारण जनता माने की जोरें बड़े भाव से प्रपतायी है। पात्र भी हृदय देहात में सोमों को मूर तुलसी धीर कबीर के मंत्रन गाते हुए सुनत हैं। यहां हास मीरा के मंत्रना का भी है। मानस का भा इतना अधिक प्रचार संगीतात्मक होने के कारण हो हुआ है।

तुलसी की रचना में गति का सौन्दर्य—

गति संगीत का एक प्रमुख लक्षण है। शास्त्रीय भी के काव्य में भावानुभूत घटनागुहून, परिस्थिति के अनुरूप ही गति देखने में पाती है। वहीं भी गति में विभू घलता नहीं पाई है। पात्र के अनुकूल गति मानम में बाह्य बहो भा देख लीजिये। प्रोजोपुल शब्दक भाव में वही ही गति है जो प्रोज की व्यंजना करे। सधमल के इन पदों में देखिये कितनी गति है। पढ़ने ही प्रोज अनुप्य के कल कल में ध्याप्य हो जाता है। अन्ति—

१ विनय पत्रिका—पृ० १०१ १०४

२ विनय पत्रिका—पृ०

लक्षण संकोप बचन जब होते तब मन्वामि महि विरपत्र होते ।^१

इन घटकों में एक ऐसी गति है जो पहले ही दुष्टों के उद्वेगान्ते रूप का चित्र लाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है । घटना न भा यदि समुक्त घटना के समुच्चार ही विवक्षाई देती है । जहाँ पराक्रम करने की घटना है वहाँ योत्सामी जी ऐसे सम्य सावे हैं बिनाकी गति बीरता के समुच्चय है । इसी प्रकार परिस्थिति में भी वही गति समुक्त प्रकृत परिस्थिति के समुच्चय रखी गई है । राम जानकी को संयत्त न बचने के हेतु समझते हैं किन्तु सीता के समस्त ऐसी परिस्थिति है कि वह राम के साथ संयत्त बचें वही उद्वेग कर्तव्य है । देखिये सीता जी के घटकों में कितनी शोक की तीव्रता और गति है जिससे प्रेरित होकर राम को उन्हें अपने साथ संयत्त ले जाया ही पड़ा ।

मैं सुकुमारि नाथ बन भोगू । सुसुहि उचित तप मो बहू भोगू ॥

त्रिय बिन देख नही बिनु मारी । तैसिय नाथ पुन्य बिनु मारी ॥^२

इस प्रकार योत्सामी जी के काव्य में गति की सर्वत्र भोजना यह सिद्ध करती है कि योत्सामी जी के काव्य में मन्वीन के लक्ष पूर्ण कथेल विद्यमान हैं ।

गार—

योत्सामी जी के काव्य में नाथ विद्याम का भी अपूर्व लौन्दर्ब देखने को मिलता है । यह नाथ सम्बन्धी योग्यी निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होता है ।

१—साम्य एवं बर्ण संघटन में उत्पन्न भंगुति

२—प्रवाह

३—पग

घार और बर्ण के द्वारा—

योत्सामी जी ने ऐसे घटकों और बर्ण संघटन की भोजना की है । जो नादसम्बन्ध लौन्दर्ब की सृष्टि करते हैं । जैसे—

संयत्त किंकिनि सुनुर सुमिनुनि । बहुत सखन सन राम हूयम पुनि ॥^३

इसमें कथन किंकिनि धारि ऐसे घटक है जिसमें समुच्चय होने के कारण नादसम्बन्ध लौन्दर्ब की सृष्टि हुई है ।

प्रवाह—

इसकी रचना में भी सर्वत्र एक प्रवाह पाया जाता है । उसमें भी नाथ की सहायता मिलती है । इसका एक सुन्दर उदाहरण जानकी और पावकचुर्पा की मर्ता में मिलता है । धाम बनितार्ये जानकी ने राम का परिचय पूछ रहीं हैं और जानकी उत्तर हम प्रकार दे रही हैं ।

१ मा० बा० पृ० १७७

२ मा० घटो० पृ० ३२८

३ मा० बा० पृ० १६१

बहुरि बहनु जिनु पंचम डौकी । पिय तन पितइ मीह करि बाकी ॥

ब्रजन मधु सिपीखे नयननि । मित्र पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥^१

इसमें मोक्षामो जी के सीता के सखा और भ्रंकोष की रत्ना करते हुए परि-
स्फिति बच धनसे कितना सुन्दर उत्तर बिसबाया है जिसकी शब्द योजना में एक
मनाहूँ आ गया है ।

राग—

विनयपत्रिका और सीतावली में जितने भी पद्य हैं वे सभी राग रागिनिया में
गाये जाने योग्य हैं । यह पद्य ङ्के रागों में गाये जाते हैं । कीर्ण पर किस राम-राम
नियों में गाया जा सकता है इसका भी पूरा विचार रक्खा गया है । तुलसीदास का
सीतावली और विनयपत्रिका में पात्र भरतचण्डे संगीत विद्यालय के सप्तम वर्ष के
कोर्स तक के राग रागिनी में गाये जाने वाले पद्य गाये जाते हैं । नीचे विनयपत्रिका
और सीतावली से एक राग रागिनी सम्बन्धी पद्य का विवेचन किया जा रहा है । इस
पद्य में बालक राम की मनोहारी सीमा का वर्णन है ।

छोटी छोटी गोड़ियाँ धँपुरियाँ सुबीली छोटी ।

नख-जोति मोठी मानो कमल शक्ति पर ।

भलित धायन कलें ठुमुक ठुमुक चरें

भू भुनु भुभुनु पाय पैरमी सुनु सुतर ॥

किबिनी कलित कटि हाटक जटिस मनि

मंडु कर-कंत्रनि पहुँचियाँ रुपारतर ।

पियरी भीमी भ्रुषी साँधरे मरीर चुन्नी

बासक दामिनि चौड़ी मानो बोरे बारिधर ॥

अर बहनहा बठ बटुमा भंडूमे बैम

केड़ी लटकन मतिठिनु मुनि मन-हर ।

पंचम रंजित मैत्र बित बोरेबितबनि

मुल-सोमा पर कारी समित प्रसन्नसर

कुन्धी पञ्चावती नचावती बीसत्या माठा

बालरैसि गावति मरुहावति सुप्रेम धर ।

किसरि बिसकि हँसी ॥ ३ ॥ धँपुरियाँ ससुँ

तुसमी क मन बनें तीठरे बचन कर ॥२॥^२

यह पद्य कलित राग में गाया जा सकता है । यह भरतचण्डे से उत्पन्न होता
है । पंचम बज्य होने के कारण इसकी जाति पाण्डव मानी जाती है । बादी स्वरां मुख

१ भा० घमो० पृ १०६

२ तुलसी संवावली—द्वितीय खण्ड—गीतावली—बास काण्ड—पर १०
पृ० २८१

मध्यम और सम्बाही है पढ़ना । उत्तरांश प्रबल होने के कारण मापन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर माना जाता है । इस राप में बोलो मध्यमों का प्रयोग होता है । ज में घ में यह स्वर समुदाय बार बार मुनाई देता है । इस स्वर समुदाय तथा ति रे, य म य इन स्वरों से यह राप तरकास हो पहुचाने में आ जाता है । इसी प्रकार पोस्वामी जी की भीतावली और बिक्रमपत्रिका में बहुत भैरव, रामकसी भैरवी, विभास टोडी सारंग मल्लार आदि रागो की भी योजना मिलती है जिससे यह मधी जाति पठा जसता है कि गास्वामी जी संवीत कसा क कितने मारी पधित थे । जो सफस गावक हाता है वही संवीत संगत छत्या की रचना में कृतकार्य हो सकता है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा मान हाता है कि जिस राप के उपयुक्त जो पद रचा गया है मात्र भी उसी के अनुकूप हैं ।

तुसही का संवीतारमक काव्य दो प्रकार की बिधेपताया को धपने से समेटे है ।

१—लोकसंगीत

२—शास्त्रीय संवीत

बातावली पार्वती मंगल मे जो भीतावली होसी आदि से सम्बन्धित गीत है वे लोक संस्कृतिक गीत है । इसके प्रतिरिक्त भीतावली बिनयपत्रिका और मानस में भी शास्त्रीय संवीत के तत्त्व समिहित है । उस समय तत्कालीन मारी समाज में प्राय गीत मोहर का प्रचसन था । तुसगी मे राम कसा तहपू म सोहर का व्यवहार कर धपनी लोक रचि को अभिप्यार किया । शास्त्रीय संवीत में कवि तुस कमल रचि ने सुकइता प्रचसन की परिपाटी का मिटा दिया । मानस की बहु अभिप्यारि विरती सरस है ।

आज जने यहुरि रपुगई । आप्यनुक पर्वत नियगई । १

'भूलना' छप्य जी मोरनीत है । संवीतारमक काव्य में लोक संगीत और शास्त्रीय संवीत बात का धपनाकर कवि ने धपना समबधवासी दृष्टिकोण स्थापित किया है ।

कवितावली का कूलना लोकगीत प्रायः घसायु म पड़ा जाता है । बिनयु बिक्रमर जो ने मानस का मनी रावा में गाया था । यह मानस के संगीत की क्या कथ विमकला है । तामन और बारहमासे जिन राग में गाय जात है उन राग में सो दिने स्वर कियो का मानन बात मुना है । यह भी स्पष्ट है कि गीत के माध्यम से कवि का सांसारिक स्वर्ण करने वालों के हेतु तुसगी के देय बधा का धपार महत्व है । भीतावली और बिनयपत्रिका के मधी पदी में बहुत संवीत छूज रहा है । जितने विरल कवित्तों को भी प्रैबलगत कर काला है । बिनयपत्रिका का संगीत प्रत्येक कवि के हृदयों को कलकार कर एक अनुर्व काव्य की सृष्टि करता है ।

यद्यपि गीति Lyrics आधुनिक युग की रीति माना जाता है। फिर भी गोस्वामी जी ने बिनयपत्रिका में शुद्ध गीति भावना का मधुना रचना है। इतना ही नहीं यह एक स्वतंत्र प्रकृत है। अतः इसमें गीत काव्य के विकास के हेतु यथार्थ प्रयत्न मिलता है। मानस की शोभाइयाँ भ्रमणित राम रायणियों से सम्बन्धित हैं।

गोस्वामी जी की कृतियों में हम संगीत का माधुर्य भरना हुआ पाते हैं। वे अरुण के कवि और साधु ही साधु विनोदी थे। उनमें हमें कामस कसाव्यों का एक अद्वैत सामंजस्य देखने को मिलता है।

इसकी गीतावली और बिनयपत्रिका में अनेक भी राग रागिणी के उदाहरण हैं वे इनकी संगीत शास्त्र की अर्थज्ञता के द्योतक हैं।

केवल यह बताना और उस पर किसी राग रागिणी का नाम लिख देना इसका द्योतक नहीं कि उसका रचयिता उन्हें इस स्वर से ना सकता था। यहाँ केवल कहने का अभिप्राय यही है कि तुलसी जी संयोजकता प्रमाणित करने के हेतु हमें यहाँ के अरुण लिख दिये रागों के नाम का ही एक मात्र सहायक नहीं माना जायिये। हमें इनकी अन्तर्गत परीक्षा करके इस प्रयत्न को हल करना है। भाइयों बिनय पत्रिका के एक पर की विवेचना करके देखें कि गोस्वामी जी की रचनायें इनकी संयोजकता को यहाँ तक प्रमाणित करती हैं।

कबहुँक र्वय भवसर पाइ ।

मेरिघो मुनि साइबी कधु कधन कथा जनाइ ॥

बीन सब धग हीन शीत मसीन प्रभी प्रपाई ।

नाम से भरे उदर एक प्रभु शायी दास कहाइ ॥

कृष्णि हँ सो है बीन कहियो नाम बसा जनाइ ।

मुनत रामकृपाधु के मेरो बिपरिप्री बनि जाइ ॥

बामकी जगजगनि जग की कृप बचन सहाइ ।

तरी तुलसादास भव सब नाथ गुनमम माइ ॥११

यह पर वैदारा राग में गाया गया है। जो शायद राग की एक रागिणी है। कबहुँक और कबहुँ पर्यायवाची शब्द हैं। तास शक है ध पर सम है। यदि कबहुँक क स्थान पर कबहुँ रग दिया जाये तो राग के प्रवाह में एक अग्रिम रकावट उपस्थित होगी जो स्वर के सम्बन्धियों का तत्त्वात्क गटकेपी। कबहुँ का कबहुँक किया जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उसके रचयिता राग के रम से परिचित थे। वैदारा गाने का समय अर्द्ध रात्रि है। अरुण के पद्य में गाने के समय का भी ध्यान रखा गया है। अम रात्रि क समय जब राम के ममोप नवन मीठा ही होंगी और राम जब राम नात्र करके परेभू बाँलों के हेतु घासी हागे। तुलसीदास जी ने राम को अपनी वाद दिनाते का यही समय ठीक समझा है।

मध्यम और सम्बादी है यह सब । उत्तरार्ध प्रकाश होने के कारण प्रायः समय रात्रि का अन्तिम प्रहर माना जाता है । इस रात्रि में बोना मध्यमों का प्रयोग होता है । व में म में यह स्वर समुदाय बार बार सुनाई देता है । इस स्वर समुदाय तथा ति रे, म म न इन स्वरों से यह राग तरकास ही पहचानने में आ जाता है । इसी प्रकार मोरारजी जी की मोठाबली और विनयपत्रिका में बरतत औरत रामकली औरती बिबाध टोही सारय मल्लार घाबि रावा की भी योजना मिलती है जिन्से यह पत्नी अति पता चलता है कि बलरामो भी संगीत कला के कितने मादी परिष्ठ थे । जो मण्डल प्रायः होता है वही संगीत संघट्ट एवम् की रचना में हृदयार्थ हो सकता है । प्रकृत हृदि मे बैसने पर ऐसा मान जाता है कि जिय राग के उपभुक्त जो पर रवा बना है बाब भी उसी के अनुकूल हैं ।

तुमसी का संगीतात्मक काव्य को प्रकार की विशेषताओं को ध्यान में रखते हैं ।

१—शास्त्रीय

२—शास्त्रीय संगीत

मोठाबली पार्वती संकल में जो बोवाबली होती घाबि के सम्बन्धित पाठ है के लोक सांस्कृतिक पद्य हैं । इनके अतिरिक्त मोठाबली विनयपत्रिका और मानस में भी शास्त्रीय संगीत के तरह उल्लिखित है । उक्त समय तरकासीय नामो समाज में प्राम्य गीत मोरार का प्रचलन था । तुमसी में राम लला महतू में मोरार का व्यवहार कर अपनी लोक रचि को अभिव्यक्त किया । शास्त्रीय संगीत में कवि कुल कमल रचि में कुकृतता प्रचलन की बरिपाटी को मिटा दिया । मानस की यह अभिव्यक्ति कितनी सरल है ।

घामे बने बहुरि गुगई । भ्रुव्यमुक पर्वत निगई । १

'भूमना एव भी मोरगीत है । गंगीतात्मक काव्य में लोक संगीत और शास्त्रीय संघट्ट दोनों को धन्यकर कवि ने अपना समन्वयकारी दृष्टिकोण स्थापित किया है ।

बलिताबली का भूमना लोकगीत प्रायः धारा में पड़ा जाता है । विषयु रिण्यर जो है मानस का सर्वा रागा में गाय पा । यह मानस के संदीत की बवा कम बिलपना है । साक्य और बारहमासे जिय राग में कार्य जात है उय राग में जो पिये स्वयं रिया का मानस गीत सुना है । यह भी स्पष्ट है कि उपाठ के माध्यम में बलि का सांठरिक्त स्वयं करने वाला के हेतु तुमसी के बच पवा का व्यवहार महत्व है । मोठाबली और विनयपत्रिका के सभी पद्यों में अपुर संगीत प्रयुक्त रहा है । जिनमें बिरत व्यक्तियों की भी प्रयोगम कर आता है । विनयपत्रिका का गंगीत प्रारम्भ अर्थात् के हृदयों को भजनकर कर एक प्रकृत प्राम्य की रचि करता है ।

यद्यपि गीति Lyric प्राच्युक्त युग को देन माना जाता है। फिर भी बोस्वामी जी ने बिनयपत्रिका में शुद्ध गीति भाषणा का नमूना रखा है। इतना ही नहीं यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें गीत काव्य के विकास के हेतु प्रणवा प्रसर मिला है। मानस की बोधाहर्षा प्रमत्तित राम रामनियों में सम्बन्धित हैं।

बोस्वामी जी की कृतियों में हम संगीत का माधुर्य मरा हुआ पाठे हैं। वे मरु के कवि और साध ही साध बिनोबी के। उनमें हमें कोमल कसाधों का एक प्रसूत सामंजस देखने को मिसठा है।

इसकी शोभाही और बिनयपत्रिका में क्लिप्त भी राग रागिनिया के सहाहरण हैं वे इसकी संश्लेष शाल की मर्मज्ञता के चोतक हैं।

केवल पद बना देना और उस पर किसी राग रागिनी का नाम लिख देना इसका चोतक नहीं कि उसका रचयिता उन्हें इस स्वर से गा सकता था। यहाँ केवल कहने का प्रथिप्राय यहाँ है कि तुलसी की संगीतज्ञता प्रमात्तित करने के हेतु हमें पदों के ऊपर लिखे हुये रागों के नाम का ही एक मात्र सहारा नहीं लेना चाहिये। हमें उनकी प्रत्तरय परीक्षा करके इस प्रश्न का हल करना है। प्राइये बिनय पत्रिका के एक पद की बिदेचना करके देखें कि बोस्वामी जी की रचनायें उनकी संश्लेषता को यहाँ तक प्रमात्तित करती हैं।

कबहुँक पद प्रसर पाइ ।

मेरिघो मुचि छाहबो कछु कल कथा बलाइ ॥

बीन सब धग हीन छीन मसीन धमी प्रधाई ।

नाम ही परे पदर एक प्रसु वासी बास कहाइ ॥

बूझि है सो है बीन कहिबो नाम दसा बलाइ ।

मुनठ रामकृष्णामु के मेरो बिपरिघो बनि जाइ ॥

बानकी अगबनानि जम की किए बचन सहाइ ।

तरै तुलसीबास भव तव नाम गुनवन बाइ ॥^१

यह पद केदारा राग में माया गया है। जो बीपक राग की एक रागिनी है। कबहुँक और कबहुँ पर्यायवाची शब्द हैं। ताम काक है घ पर छम है। यदि कबहुँक के स्थान पर कबहुँ रख दिया जावे तो राम के प्रवाह में एक प्रथिय श्लोक अस्पष्ट होगी जो स्वर के प्रमात्तियों का उत्पन्न अटवगी। कबहुँ का कबहुँक दिया जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उनके रचयिता राम के रम से परिचित थे। केदारा माने का समय पदें रात्रि है। ऊपर के पद्य में माने के समय का भी ध्यान रखा गया है। पदें रात्रि के समय जब राम के ममीप केवल मीठा ही होंगे और राम जब राज काज करके परेणु बाघों के हेतु खासी होमे। तुलसीबास जी ने राम को धपनी वाह दिमाने का यही समय ठीक समझा है।

राग का सम्बन्ध रसा से भी होता है। कैवारा कश्चि श्रुत्वा शीत रस का राग है। ऊपर के पद में कश्चि रस स्पष्ट झलक रहा है।

कैवारा इन्द्रिय श्रुति का राग है। राग का सम्बन्ध श्रुतियों से भी होता है। श्रुति का प्रभाव मानव के स्वभाव पर पड़ता है। शीघ्र श्रुतियों का भी प्रभाव मानव के स्वभाव पर भी पड़ता है। शीघ्र श्रुति में मनुष्य प्रायः शीत सुखी और सुखी से सहानुभूति रखने वाला होता है। ऊपर के पद की सम्बन्ध धीमता भाव राग रस और श्रुति पर धीमती तरह ध्यान देने पर यह निश्चित हीर से कहा जा सकता है कि रचयिता केवल गान ही नहीं जानने से अपितु उसके बाह्य उपकरणों से भी परिचित थे। धन एक पद और शीघ्रिय।

श्रीय स्वर्णवत माई बोर माई धाए देखन
मुनत जसी प्रमदा प्रमुत्ति नन
प्रम पुनकि तनु मनहुं मदन मंजुल देखन
मिरसि भनोहरवाई मुक पाई कहै एक एक सों
भूरि मान हम धन्य धासि ए दिन ए सन
तुलसी सज्ज मनेह सुरग छत्र
छो समाध बिठ बिचहार सागी भजन ॥^१

यह बाह्याङ्ग राग म है। पहले चरण में 'या' पर दूसरे 'वे' पर सम है। और ई पर हुस्का घासाय है।

दूसरे चरण में मुनत शब्द में ही उठान है। मुनत जसी प्रमदा यह धर्म हम प्रम से बीठाये गये हैं कि वे सब स्वर के उठान में सहायक हो रहे हैं। स्वर धात्र से धनमिन्न व्यक्ति 'प्रमदा मुनत जसी' लिख सकता था। जो राग के स्वाभाविक प्रवाह में रुकावट उत्पन्न कर देना। और वह सरमता भी न भाठी जो मुनत जसी प्रमदा के द्वारा भाई है। एक उदाहरण और शीघ्रिय।

सजनी है बोर राज कुमार।
पंच जगत मुहु पर कमलति बोर।
छोस रूप सागर।^२

यह असावरी राग का पद है। यह तीन वाला है। पहले चरण में है पर सम है और 'ओ' पर घसाय है और 'मा' पर सम है।

दूसरा चरण अन्तरे का है। अन्तरा प्रथम समय ही से पठ्य है। 'धा' पर फिर सम है। बीच में सज्ज बरुणों की घोषणा है। कमलति के 'स' से स्वर में मधुरता भा गई है। 'कमलति का' कर्मणि किया जा सकता था पर 'क' में राग के

१ पीताबला—पृ० ३०८

२ पीताबली—पृ० ३३७

स्वामात्मिक सुमधुर प्रवाह की स्निग्धता कम हो जाती। इस पद की शब्द योजना में इसके रचयिता की स्वानुभूति प्रतिबिम्बित हो रही है।

बिगकी नाव जिघा से परिचय है वे तुलसी के पदों को पाकर सहज में ही अनुमान कर सकते कि तुलसी को संगीत शास्त्र का केवल पुस्तकों का ही ज्ञान न था। वे स्वर तास और सय से पूर्ण परिचित थे।

संगीत में गान और नृत्य दोनों का ही सम्बन्ध पाया जाता है। तुलसीदास भी ने कुछ ऐसे भी पद लिखे हैं जिन्हें स्वर सहित पाने से मायक और भोला दोनों में ही नृत्य की भावना जागरित हो उठती है। जैसे :—

सुनो भीया मून सकस है कान ।

बधरेख पजवसन जनक-पन बेह-बिदित बय जान ॥^१

राग माक का यह पद ऐसे ध्रुवसर का है जब चारों ओर मण्डसाकार बैठे हुये राजाओं से जनक के दूत चारों ओर मुह फेर कर बगुप तोड़ने के हेतु कह रहे हैं। घटपूर वीसा प्रसंग है उघी के अनुकूल यह पद्य योजना भी है।

शास्त्रीय रागनियों के अतिरिक्त तुलसीदास भी ने स्त्री समाज में गान जाने वास धीरों का भी अत्युत्साह अभ्यस्य किया था। और उम्होंने जानकी भंगस और पार्वती भंगस और राम सत्ता लहभू की रचनायें स्त्री गीतों में की हैं। अतः गोस्वामी जो संगीतशास्त्र के भी पूर्ण मर्मज्ञ थे।

तुलसी की कला में चित्रात्मकता—

गोस्वामी जी की यह विशेषता है कि वह किसी भी चित्र घटना और माक का हमारे समक्ष सजीव रूप में उपस्थित कर देते हैं। इस मञ्जीबता के ही कारण उनके वाक्य में चित्रात्मकता छा गई है। यह भी उनकी कला सम्बन्धी विशेषताओं में से एक है। निम्नलिखित चार प्रकारों में हम महाकवि की चित्रात्मकता सम्बन्धी कला पर एक-एक करके विचार कर सकते हैं —

१—घटनाओं में चित्रात्मकता

२—दृष्टानुभूति में चित्रात्मकता

३—परिचय चित्रण में

४—भाव चित्रण में

घटनाओं में चित्रात्मकता—

घटना है विषयानुभव के प्रापमन की। वह पाकर जैसे ही यह कह देते हैं कि :—

धनुज समेत देखे रघुनाथा ।

निसिचर बध में शीघ्र सनाया ॥^२

१ मीठावली—पृ० ३१५

२ मा० भा० पृ० १४६

बैठे ही महाराजा वसुदेव ने हठ कमल पर तुषारपात का हो गया । वह एक धम धाम उठे —

जीवेपन पायल मुल जायी । विप्र बचन नहि नईहु बिचारी ॥
मागहु भूमि बेनु पन कीला । सर्वस देव भाहु सइरोला ॥
केहु प्राण तें विप्र कहु माही । सोउ मुनि बैउ निमित्त एक माही ॥
सब मुल विप्र सोहि प्राण की माई । राम देत नहि बन्ध पाछाई ॥^१

देखिये तो राम के प्रति वसुदेव का जो प्रेम था वह इन पंक्तियों में कैसा सजीव हो उठा है । इसके यह बर्लुग बिचरनक हा गया है । वसुदेव के महान बलवन्धु का चित्र हमारे मानस पट पर संकित हो जाता है ।

राम्य के बचने राम को आज्ञा हुई बन की । बनिता बन्धु समेत प्रभु सबको समेत करके बस बिये । पर इस भटना के कारण शोक का कैसा सजीव चित्र महा कवि इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं ।

सावति धरम अयाबनि मारी । मानहु नासरति धरिपारी ॥
पर मसात परिजन कनु भुना । सुन हित मीत मनहु जमनुता ॥
बागहु बिप्य कैसि कुम्हिलाई । सगित सरोवर देखि न जाही ॥
राम बिधोय बिजल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहु निज निजि काढ़े ॥^२

पर रामदास कुटुम्बी मुन प्रीत हितैवी घोर निज समराज के दूग है । निज कर कबितुम कमल रवि सोस्वामी जी ने शोक का कैसा सजीव चित्र खींच दिया है ।

इसी प्रकार पटना है जानरी के बिच के समस की । माता के सबब पयान मे समी जनक पुरबासी, मातायें पिता यहाँ तक पगु पधी भी कुम्बी हो रहे ? महाकवि इस समय के शोक का चित्रण इस प्रकार कर रहे हैं ।

पुनि धीरजु परि दुर्घर हेवारी । बार बार मेटहि महतापी ॥
पट्टकाबहि गिरि निमहि बहोरी । बनी बरसपर प्रीति न खोरी ॥
पुनि पुनि निमत गनिगु बिलपारै । बाल बद्ध जिमि पनु सबाई ॥
गुफ तागिना आकन। ब्याल । बनक रिजरगिह रामि बडाल ॥
प्यपुन बहदि बहा बँडेही । मुनि धीरजु परिहरद न बैही ॥
अप बिजल तग मूब लहि भाँपी । मनुज बना बँमें बहि जाता ॥^३

आकन। ने जिन सोदा घोर दीना की पल पोष कर बढ़ा दिया था धीर साके के निहरें में एताकर पदाय का ये व्यापुन होकर बढ़ रहे हैं कि बैरही बहो हो । यह निज कर महाकवि ने शोक का कैसा सजीव चित्र उगावित कर दिया है ।

१ मा० बा० पृ० १५६

२ मा० अयो० पृ० ३०६

३ मा० बा० पृ० २३२-२३६

घटएव यहाँ छबीब बिज होने से ही इसमें बिचात्मकता घा गई है। यह भी महा-
कवि की महान बिसेयता है।

पुच्छभूमि में बिचारमकता—

पुच्छभूमि क रूप में योस्वामी जी के मगर बरुण भी बिचात्मक है। मानस
में हम तीन लगघ —

१—अनकपुर

२—संका

३—अयोध्या

के प्रघस्त बरुण पाते हैं। अनकपुर बरुण में भापा का सौन्दर्य दृश्य है। योस्वामी
जी अनकपुर का बरुण कछे हुए कहते हैं —

पुर रम्यता राम जब देखी। हरये धनुज समेत बिसेयी ॥

× × × ×

बनइ म बरमत मगर निकारि। अही जाइ मन तहुई सोमारी ॥

चाइ बजाइ बिचिन प्रबारी। मनिमप बिचि अनु स्वकर संबारी ॥

घनिक घनिक बर मनइ समाना। बैठ सकस वस्तु सँ नाजा ॥

चौहठ सुहर मली सुहाई। संतत रहहि सुगम सिंघाई ॥

प्रति प्ररूप अहं अनक निवासु। बिपकहि बिपुब बिसोकि बिलासु ॥

× × × ×

सूर सचिव सेनप बहुतेर। नूनपुह सरिस सरन सब केर ॥^१

यह लिखने के बाद उनके घर भी राज महस सरीखे ही हैं सिक्त कर कवि ने
नगर क बैसब घोर सौन्दर्य बरुण को इति भी कर बो है। यह जपजु लक बरुण पढ़ते
हैं। सारा बरुण छबीब हो उठता है इसी से उसमें बिचात्मक घा गई है। इन बरुण
म नगर की पुच्छभूमि का प्रकन बड़ा सुन्दरता से दिया गया है। नगर बरुण का बिशह
बिषेयम प्रबन्ध सोइब घोर बरुण पढ़ति क अन्तर्गत किया जायेगा। यहाँ मनेत भर
दिया गया है।

इसा प्रकार तुलसी क प्रकृति बरुण भी बिचात्मक है। तुलसी क प्रकृति बरुण
पर भी उक्त धम्माम में बिस्तार से बिचार किया जायेगा। यहाँ पर केवल तुलसी के
एक प्रकृति बरुण परक स्पल पर बिचार किया जायेगा। यह मह है —

बिटप बिसाम लता अरुभ्यनी। बिबिय बिठान बिए अनु तानी ॥

कबलि ठास बर पुजा पठाका। देखि न मोह घोर मन आका ॥

बिबिय घांति कूने ठर नागा। अनु बानीत बन बहु नागा ॥

बहु कहु सुहर बिगप सुहाए। अनु मट बिसग बिलग होइ छाए ॥

कूटत पिक मालु नव पाते । डेक महोग उँट बिघराते ॥
 मोर बकोर कीर बर बाजी । पाटावत मरास सव ताजी ॥
 सीरिद कावक पदधर बुधा । बरनि न पाह मनोज बन्धा ॥
 रव विरि सिखा बुबुधी भरना । बलक बंदी पुन बन बरना ॥
 मजुकर मूकर मेरि सहुवाई । बिबिब बवारि बहीठो घाई ॥

× × × ×

बलिमान देवत काम प्रतीका । रङ्गिरी पीर विरह की जय लीका ॥ १

बलंत का बीमा बहीब बर्लान है । बिनाल कूर्तो ये मताल उलन्धी है । ऐसा
 बात होता है मानो माना प्रकार के तम्बू ठाम विण स्यो है । केसा मोर ठाक मुन्कर
 प्यत्र पहापा के समान है यवैको बृत्र माना प्रकार के फूलों से कूपे हुए है । मानों
 यसव यसन माना घारलु फिमे हुए बगुठ से तीरंवान् हों । बही कही मुन्कर वृत्र घोमा
 दे गहे है । कोबब कूँब रही है बही मानों मणबानि हायो बिकाइ एह है । डेक पीर
 महोक पसी मानो लकधर है । मोर, तीरे बकोर बहूगर मोर हुँल मानों सव मुन्कर
 बाजी घारबी बाई है । तीतर मोर बटेर वैबल सिगाइयाँ के फूँक है । कामदेव की
 सेना का बर्लान बही हो ठाठठा । पबंत को पिनायें रव धीर इस के फरने बकाड़े है ।
 बहीहे भाट है जो टुण सगुह बिखाबघो ना बाग करते है । पीसा की पुजार सेठी
 पीर पाइसाई है । पीता मन्ध सुवग्निठ हवा मानों बून ना काम मेकर घाई है ।
 हममें प्रकृति बर्लान के घन्तगत काम की वृष्टामुमि बन्धकर उरणे रूप का धंजन बड़ी ही
 सभोवता से किया है । इमे पड़ कर काम ना चिप वैशों के ममस गुण बर बठठा है ।
 घन्तएक बहु प्रकृति-बर्लान बिनालयक है ।

बलिब बिनाल में बिनालबकता—

पोतकामी जो के जितने भी पात्र है सब सही के कवन धीर कार्य बहीब है ।
 यही एक कि लीप्यासी जो के राबल के भी कामों को इन रूप में रचना है बिनामें
 पुण सभोवता है । दुन्दरे धर्मों में हम दये इस प्रकार बहु सफेते हैं कि बोलिबामी जी
 के बलिब बिनाल में प्रदुपुन कमीरबकता ना जो परिबय मिसता है बहु बहु है कि
 बन्धोनि जिन पात्र ना जो बलिब बिनाल किया उसका स्वल्प हमारे वैशों के समझ
 सभोव करा दिया । परगुणम ना बहु मोर वैप पड़ते है —

पीरि मरीर मुति मस भाजा । मास बिनाल विपुल बिघरा ॥
 नील जहा लतिबन्नु मुहाबा । रिठ बन बगुफ धरल होद पाबा ॥
 बुदुदी कुटिल नव्य रिग लने । ठहन्ही बिबल नव्हें रिताये ॥
 बुपम बंध डर बाहु बिडाता । पाद जनेत्र बाब पुम टोता ॥
 बटि मुनि बदन लून रुद बापे । धनु सर बर बुठाब कस काथ ॥ १

परशुराम का भीरु रूप समीप होकर हमारे त्यों के समस्त मूल्य कर ७० है। यतः इसमें समीपता होने से चित्रारमकता प्रा गई है। इस प्रकरण में परशुर के लिये जो तरबरा बोधने का उल्लेख किया है, उनमें उनके धार वेध का बड़ा रूप तथा के सामने प्रा जाता है। धीरे इससे पाठक के सामने परशुराम के वेध का एक चित्र प्रा जाता है।

भाव वर्णन में चित्रारमकता—

वास्तविकी को के समी भाव वर्णन समझी लेखनी से समीप होकर प्राये है। चित्रका विषय भाव से विशेषतः 'भाव वर्णन' धीरे रस निरूपण' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायगा। यहाँ तुलसी जी भाव में चित्रारमकता सम्बन्धी विशेषता को प्र करने के हेतु केवल एक भाव की विषय रूप में उपस्थित किया जायगा।

मर्दावा के क्षेत्र में वर्ण का हृदि से बाहे त्रिज धीरे निपाद में कितना ही मेर पर हृदय के व्यापार में उनका कोई भी प्रतिबन्ध नहीं। हाँ तो निपाद राम को पहुँ कर वापस प्रा गया है। धन धन सचिव की भूमि लेती है। सचिव धन भी जान चाहता है कि राम लक्ष्मण धीरे सोता नै क्या किया। प्राया बसबली होती ही है। सहसा किसी का भी पिर नहीं छोड़ती। सचिव भी इसी प्राया के आसार कर दि वे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी धर्मिता प्राया पर भी पानी फिर गया ध प्रवेशा निपाद ही उनके समस्त भाकर बड़ा हो गया तब उनके निपाद का उच्छा = रहा —

राम राम धिय लखन पुकारो । परेख परमिष्ठक म्याकुल जाये ॥

बेला बलिन दिशिद्वय हिहिताहीं । अनु बिनु पंत बिहग धमृलाही ॥

नहि तुल चरहि न विमहि अनु मोचहि लोचन बारि ।

व्याकुल भाग निपाद लख, रपुवर बाजि निहारि ॥^१

परफराहि मम बलहि न बारे । बन मृग मगहूँ धानि रय जाये । ।

मझनि परहि फिरि हैरहि मोछै । राम वियोगि बिकल पुल लोछै ॥

ओ नह रामु मरनु वीदेही । द्विकरि द्विकरि द्वित हरहि तेही ॥

बाजि बिरह गति कहि विनि जाती । बिनु मति फनिक बिकल बेहि मति ॥^२

× × × ×

सोच सुमन बिकल पुल बीना । धिय बीबन रपुबोर बिहागा ।

रहिहि न परठहूँ ममम शरीक । अनु न लहेउ बिपुल रपुबीरु ॥

मए मरुस धन भाजन प्राता । लखन हेनु नहि करन पमाना ॥^३

× × × ×

१ भा० धयो ५० ३४४

२ भा० धयो ५० ३४४

३ भा० धयो ५० ३४४

इस न बिबरेउ पंक बिभि बिद्युरत प्रीतम मोर ।

आनठ हीं मोहि बीम्ह बिभि यहु आतना सपिष ॥^१

इस प्रसंग में निषाद सुमन्त और तुमसी की जो बार्ता है उसको सभी प्रजन की रक्षिये । वह तो और भी बुर है । पहले राम के घोड़ों को देख मने से उसकी बुराता आपही पानी हो जायेगी । फिर आप उसका सहज ही पार भी पा लिये । सम्भवतः इसी हेतु कि उसमें असमन भी कम नहीं है । मन्त्री ने तो राम राम कहकर साब सी । और आपनी व्याकुलता को इस प्रकार बुर करता जाहा पर इसका प्रभाव यह पड़ा कि राम के बार्तियों ने समझ लिया कि राम भा गये फिर क्या बा । उनकी दृष्टि भी बलिष्ठ बिदा में बौड़ पड़ी । पर प्रादा से उन्हें भी थोडा हुआ । परिस्राम यह हुआ ।

नहिं पुन अरहिं न पियहिं जसे मोरहिं लोचन बारि ।^२

उनकी इस बधा का प्रभाव निषाद पर इतना गहरा पड़ा कि वह भी व्याकुल हो गया और किसी प्रकार भीरव धरकर सुमन्त को समझाने में लगा । जमने जैसे तैने मनिब को छठाकर एक पर एक बिया पर इनमे मना एक की बसाया जाता । बलाना चाहते भी हैं वो—

अरफराहिं मग अरहिं न जोड़े । बन मुग यहु धानिरय जोरे ॥^३

और बीसे तैसे यदि बिबघता के साथ चलना भी चाहते हैं तो —

यहुकि परहिं फिरि बिठवाहिं पीछी । राम बिभोग बिकल दुख तीछी ॥^४

यदि बात यही तक रह जाती वा भी कोई बात न भी सगरी बधा तो यह हो गई —

जो कह राम लखन बीदेही । हिकरि हिकरि दित हेरहिं ठेही ॥^५

जब उनका दिवू तो बहो है जो राम लखन और बीदेही का नाम सेता है । बघते बस उमरा ऐसा लता कुछ आता है कि उन्हें यह प्रादा ही जाती है कि उसके द्वारा फिर हमें राम का दर्शन होगा । सबिब और तुरंत की इस बधा को देखकर निषाद भी बिषाद के बरा हो गया । उसने यह प्रयत्न बैलभिया कि सुमन्त का साथ देना उसके बरा का काम नहीं । पर—

बोधि मुगेबक बारि तक दिये सारयो संग ।^६

१ मा० पयो० पृ० १४७

२ मा० पयो० पृ० १४७

३ मा० पयो० पृ० १४४

४ मा० पयो० पृ० १४४

५ मा० पयो० पृ० १४४

६ मा० पयो० पृ० १४२

यहाँ शरबों की ब्यथा की ब्यक्त करने क हेतु जो उपमाय साय पय है उन पर हृष्टि झालने के पूर उलक समुमाया पर भी बिचार कर सेना चाहिये और यह भी जान सना चाहिये कि शरबों की वाणों म हितहिताने और हिकरने में क्या अन्तर है। मोस्वामी भी ने स्थिति को स्पष्ट करने क बिचार से पहली बधा में बिमि बिभु पंख बिहंग मकुत्ताही^१ का उल्लेख किया है और दूसरी बधा में बिनुमणि फणिक बिभक्त जेहि भांती। का। एक रूप से अष्ट बधा की अर्थना है। दूसरे म धामस्य की। है दोनों ही उपमा क कर में किन्तु दोनों की बधना में बड़ा भेद है। पंख कहीं जाने का साधन भर है। किन्तु मणि में यह बात नहीं। सांन का बहो सर्वम्ब है। बीच म बन मृग मनु धामि रय जोरे का भी उपमाय है। यहाँ उपमा नहीं अर्थना है। बन मृग रय में तो बस नहीं सक्ता। उनका मन भी बन की ही ओर भागने को होगा। निपाय को बिपाय में ही छोड़ बिबिये उनका बिपाय भी शोक प्रस्य सुमन्त के कारख बिरोध है। अतः सुमन्त को ही परखिये। सुमन्त ने आ कुस्र अपने भाय सोचा उये एक ओर रखिये और तुलसी न इमे बिम रूप म बनसाया उसको रखिये तीसरी ओर और रखिये यह कि अग्रस्तुता के द्वारा यहाँ शोक का काम सिया गया है। सुमन्त के मोक्ष का प्रारम्भ होता है बिग ओबन से^२ और अन्त होता है 'मातना शरीर' में उनको चिन्ता है कि वे ऐसे अभापी जीव हैं जिन्होंने रकुषोर के बिरोध में कोई सया प्राप्त नहीं किया। और वे ऐसे ही पठित प्राणी हैं कि राम के बियोग में उनका हृदय बिदोर्ण नहीं हुभा। अब उनको अपने जीवन की सुधि पाती है तब उनका धारो ओर से यही बिबसाई देता है कि उनको अयध प्राप्त हुभा। फिर भी उनका प्राण अस्थान नहीं करता। न जाने उने अमी और क्या प्राप्त करता है। मन स भी ता उम समय कुछ न बन पड़ा अब यह कुछ कर सक्ता या। किन्तु अब यह मन नामा प्रकार को चिन्ता कर रहा है और हृदय तो बस ही निरुसा को अब भी फर कर दो दुखे नहीं हो जाता। अयमी स्थिति तो यह है और कार्य है अयध में पहुँच कर समाचार सुनाता। अयध में जो भी राम से रहित रय को देखेया यह देखने में भी संकोच करेया किमी प्रकार सुह सिपा कर यदि तवर में पहुँच भी गया तो शोक अ्याकुलता से बौध बौध कर जाने क्या क्या अदन करेये। तब अयमी स्थिति यह होनी कि हृदय पर परपर रन्कर सबका समाधान करना ही होगा। तो क्या मैं इसी हेतु जीबित हूँ। और जैसे जैसे यदि निरुस भी गया तो दोन और बुकारो माताये धारर अब अपने पुत्रा और जानकी के बिपय में पहुँचो तो मैं -तने क्या बहूँया। कौम-सा सुखद सग्येय उन्हें सुनाऊँया। क्या यही बहूँया कि राम सवमग और सीता बन का बने गये। बस अब ता ह्य डाबन का यही सुय भागता रोप रह गया है। किन्तु रामा अशरय के अदन पर कौम-सा उतर होगा। यही न कि यने

१ मा० अयो० पृ० १४४

२ मा० अयो० पृ० १४४

सुगमपूर्वक रामपुत्रों को बग मेव दिया । क्या इसी कुशल समाचार को सुगाने के हेतु में वीक्षित है किन्तु इसका परिच्छाम क्या होगा बधायक का प्राण त्याग । प्रतीत होता है कि यह यह शरीर यातना के ही रूप में रह गया है । अथवा कोई भी उपाय नहीं । यदि होतदार ऐसी न होती तो राम के वियोग में यह हृदय फट जाता और यह शरीर क्या इस रूप में बना रहता । सुमन्त के भी में जो कुछ भीत रही है उसके व्यक्त करने के हेतु जो उपमान कामे हैं वे हैं कृपण सुमन्त विप्र कुलीन विप्र, महतारी और पापा । उधर हम देखते हैं कि उपमेय के रूप में भी जोह नवर, गारि नर सब माता सदान महतारी राम जननि और राठ हैं । तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि सुमन्ती ने अप्रस्तुत के द्वारा सुमन्त की चिन्ता को भी रूप देने का प्रयत्न किया है । उपमानों में रह करम बस परिहर नाहू का' धर्म है कि वह नाथ से प्रसन्न है और कर्म बस ही जी रही है । चाहे तो इसको यहाँ तक ला सकते हैं कि नाहू को उसने अपने आप छोड़ दिया है । पर इसके धामे यह कल्पना करना कि वह किसी की घर बसो हो गई है सर्वथा प्रसिद्ध और प्रसन्न है । बात भी यही है कि सचिव ने राम को छोड़ दिया । यह स्थिति जगकी तक होती है जब उनके सामने सुमन्ता का प्रदन पाता है । यहाँ तक तो कोई भी बड़ी बात नहीं थी यह बास्का बेदना भी सुमन्त सह सकते थे । किन्तु इसके धामे उनकी जो प्रवस्था हुई इसका वर्णन पहले कवि के मुह से सुन लीजिये ।

सौजन सबस डीठि भइ बोरी । सुमन्त न भवन बिकस मति भोरी ॥

सुखाहि प्रथम सावि मुह साठी । बिज न जाइ उर प्रथमि कपाठी ॥

बिबरन भयड न जाइ निहारी । मारेसि मरहु पिता महतारी ॥'

इसमें माता कौनयी के द्वारा पिता बधायक के मारे जाने का संकेत है । इनसे जो हानि और स्नाति मन में प्राप्त हुई है वह बधायक के निपन से चारों धार ऐसी फैलती दिखलाई जो कि उसकी उपमा यमपुरी से भी गई । सुमन्त जिस यातना शरीर का उल्लेख करत है वह भी तो अपना भोग यमपुरी में ही योगेगा । बस यही है अप्रस्तुत बिबाह का रहस्य जो सुमन्त के हृदय की बेदना को साकार बना देता है और जगकी पुति को हमारी दृष्टि में ऐसा लाकर टका कर देता है कि हम उसे कभी भी नून नहीं समझें । बिबाह के बाद क्या हागा हम कोन नहीं जानता । परत उक्त प्रसंग में धाक का भाव बितनी सजीवता से अभिव्यक्त हुगा है । यह प्रवर्तनीय है । हममें तो चित्रात्मकता कूट कूट कर मरी है । गोस्वामी जी के चित्रात्मकता सम्बन्धा इतने विवेक से यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के चित्रात्मक स्वर्णों की सबसे महती बिधेयता यह है कि उनका द्वारा संवित प्रकृति भाव बिम्ब, तथा प्रसकारिक चित्रों में बिम्बात्मकता प्रा गई है । परत इतने विवेक से यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि गोस्वामी जी की वाच्य रचना से संगीत और चित्रात्मकता दोनों के ही एक प्रचुर माणा में बड़ी ही सुन्दरता से उपसन्न है जो उनकी काव्य की संभार महत्व प्रदान करते हैं ।

छठा अध्याय



असंकार और ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ

असंकार प्रयोग की विशेषताएँ—

असंकार जिस प्रकार के अकार पर आधारित रहते हैं। यह अकार जिस भाषाओं पर आधारित रहता है वे साम्य विरोध सम्बन्ध प्रादि हैं। इन्हीं के आधार पर असंकारों के विभिन्न वर्ग किये जा सकते हैं।^१ गोस्वामी जी की रचनाओं में निम्नलिखित वर्गों के असंकारों का प्रयोग विशेष रीति से हुआ है। जैसे—

(१) साम्यमूलक असंकार—ग्राम्य-का गुण साम्य से सम्बन्धित होते हैं। जैसे उपमा उत्प्रेक्षा रूपक, भ्रम संदेह प्रादि।

(२) विरोध मूलक—विपरीतता या विरोध का अकार पूर्ण प्रकाशन इन असंकारों में रहता है जैसे परिस्थिति विषम विरोधाभास प्रादि।

(३) क्रम या शृङ्खला मूलक—कारणमाला, एकावली सार प्रादि।

(४) व्याप मूलक—यथा संख्या काव्यसिद्ध तदनुगुण लोकोक्ति प्रादि।

(५) कारण काय सम्बन्ध मूलक—बिभावना हेतुप्रकाश प्रतिघयोक्ति प्रादि।

(६) विरोध मूलक—अपवृत्ति विनोक्ति व्यतिरेक प्रादि।

(७) शुद्धार्थ प्रतीति मूलक—पर्यायोक्ति समासोक्ति मुद्रा व्याज मिश्रा व्याज स्तुति प्रादि इन सभी असंकारों की विशेषता इसी अध्याय में प्राये की जावेगी।

गोस्वामी जी की असंकार योजना बड़ी ही स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है। उन्होंने असंकार प्रयोग बड़ी ही अमरकार प्रदर्शन के हेतु नहीं किया प्रस्तुत उनके असंकार काव्य में भाव के उत्कर्ष का बढ़ाने वाले और कलात्मक सौन्दर्य को औचित्यपूर्ण समिवृद्धि करने वाले हैं। इनकी असंकार योजना इसी कारण बड़ी ही मनोरम और स्वाभाविक बन पड़ी है। उन्होंने अपेक्षित असंकारों के वर्गों का समुचित रूप से प्रयोग मात्र ही अपनाने के साथ ही प्रयोग में किया है जिसकी विशेषता नीचे की जा रही है।

परिस्थिति के अनुकूल असंकारों का प्रयोग—

गोस्वामी जी ने परिस्थिति के अनुकूल ही असंकारों का प्रयोग किया है। जैसे क्रोध से भरी शीर्षक राम को बन मेरु पर उद्यत होकर पड़ी होती है। उस

समय उसके कर्म और संकल्प की सारी भीषणता गोचर नहीं है। देख और जान वा व्यवधान पड़ता है। इससे योग्यामी जो उसे कपक द्वारा प्रत्यक्ष कर रहे हैं।

धम कहि कुटिल भइ उठि ठाढ़ी । मातहुँ राप तरंगिनि बाढ़ी ॥
 पाप पहार प्रमट नइ छोई । भरी क्रोध बस जाइ न जोई ॥
 टोड़ कर कूल कठिन हठ धारा । भँवर कुबरी बचन प्रधारा ॥
 छाहठ रूप रूप ठह सुभा । जमी बिपति बारिधि धनुकुत्ता ॥^१

पाप और पहारक तथा क्रोध और बस में यहाँ धनुष्यामी कर्म है। राप में वस्तु प्रतिबन्धतु। जैसे मही के कूल होते हैं वैसे ही उसके प्रवेश के लोगों पक्ष को कर है। जैसे धारा में बहा होता है वैसे ही हठ में भी है। जैसे भँवर में प्रमुख का निकलना कठिन कर देता है वैसे ही कुबरी में बचन परिस्थिति को और भी विषम एवं उलझन पूर्ण कर रहे हैं। यह मागकपक कर्मों के कर्म की भीषणता को मनी प्रति प्रत्यक्ष कर रहा है।

इसी प्रकार चित्रकूट में अपने भाइयों के सहित रामचन्द्र जनक में मिलकर उन्हें अपने धाम पर ले जा रहे हैं। वह समाज ऐसे लोग में बना हुआ वा विनया प्रत्यक्षीकरस भी कपक के द्वारा किया जा रहा है।

घामम सामर मोठ रस पूरन पाबन पापु ।
 मेन मनहुँ कइना सरित मिएँ जाइ रघुगापु ॥

बोरति म्यान बिराम करग करारे । बचन सगोक मिलत नव नारे ॥
 मोच जनाम समीर तरवा । धीरज तह तकर कर ममा ॥
 बिदम बिबाह तीराबति धारा । धम प्रम भँवर धकर्त धधारा ॥
 कबट बुच बिषा बड़ि नावा । सवहि न खइ ऐऊ नहि धावा ॥
 बनबर कोम रिगत बिधारे । बडे बिलाकि पबिठ हिमँ हारे ॥
 घामम उदधि मिथी जव बाई । धनहुँ धजेइ धंधुधि धनुमाई ॥^२

इन्हें लोक का कपक द्वारा विनया सांगोवांग बर्णन हुआ है जसमें कल्पना साधार हो उठी है। ऐसा लोक जिनके ज्ञान और वैराग्य को भी धाम्नाबित कर लिया और जो धर्म को भी भंग किये दे रहा है। जिनमें ज्ञान विज्ञान धारि सब धर्म ही रहे हैं। इसी प्रकार योग्यामी जी ने सर्वत्र ही परिस्थिति के अनुकूल ही धनकारों का प्रयोग किया है।

माघ के धनुकूल और उतका उत्कर्ष बुद्धि के हेतु धनकार प्रयोग—

भाबों का उत्कर्ष विज्ञानाने और वस्तुओं के कपकूल और विनया का धनिक

१ मा० धयो० पृ० २३४

२ मा० धयो० पृ० ४२१ ४३०

तीव्र धूम्रमय कगन में कभी-कभी सहायक हान बान्सी सुक्ति हो प्रसंकार है ।^१ धुम्रम का वा यह कथन मास्त्रानो जी के प्रसंकार प्रयाग के लिये सबषा मत्प है । यही पर घाम हम उनके प्रसंकार भावों के उत्कर्ष में कहीं तक योग देत है । इन दृष्टिकोण में उनकी प्रसंकार योजना पर विचार कर रहे हैं । कबीर रामयण के एक प्रसंकार में प्रसंकार के लिये राम के बिरह में सीता को खोलने का प्रयत्न ही है ।

बहुत म है उजरिया निधि तहि धाम । जयत भरत प्रस सागु मोहि बिनु राम ॥^२

यह निदर्शय प्रसंकार सीता के बिरह छाप का उत्कृष्ट दिखलाने में सहायक है । इसी कारण प्रसंकार की प्रकृतता प्रसिद्धास्वर हेतुत्वेषा द्वारा भी दिखलाई गई है ।

अहि बाटिका बसति तैंह कम मृग । तजि तजि भजे पुरातम मौन ॥

स्वाम समोर भेंट भइ भारेहु । तेहि मग पम न भरयो तेहि पौन ॥^३

सीता की बिरह प्रसिद्धा यही इतनी तीव्र है कि उनके साथ से निकल होकर बिच बाटिका में वह निवास करती है कहीं न पशु पक्षी और मृग प्रादि अपना वह स्वाम छोड़ छोड़ कर पुराने घर की ओर भाग जम । इस प्रकार इस उद्धरण में सीता जी की बिरह प्रसिद्धा भाकार हो उठे है । प्रसिद्धास्वर हेतुत्वेषा के द्वारा । मरते हुए बटाक से राम कहत है कि मेरे पिता से सीता हरण का समाचार न कहना ।

सीता हरम साथ बसि कहहु पिता सन बाइ ।

जो मैं राम त मुम सहित कहिहि बसानन धाइ ॥^४

यह पर्यायोक्ति राम की पीरता और सुखीलता की प्रकृतता में कौसी सहायता करती हुई बँटी है । राम सीता हरण के समाचार द्वारा अपने पिता को स्वर्ग में भी बुझी नहीं करना चाहते । साथ ही अपनी पीरता भी प्रत्यक्ष संकोच और विप्लवता के साथ प्रकट करते हैं । यही राम कौसा पर्यान्तर सक्रमित पर है । प्रस्तुत उद्धरण में बसानन शब्द बड़ा ही कसात्मक और भावपूर्ण है । राम का कथन है कि यदि मैं राम हूँ तो हूँ जटापु । तुम सीता हरण का समाचार पिता से स्वर्ग का कर न कहना मैं स्वयं ही रावण के बच का माया करूँगा और वह हीन ही मुम सहित स्वर्ग में जाकर अपने बसानन बसों मुझों से अपने करतूत और उसके फलस्वरूप बिनाप का हाल बतारय से कहूँगा । बसानन का अर्थ उसके पर्यायवाची शब्द से भी काम चल सकता था । किन्तु गोस्वामी जी ने यही बसानन लाकर अपनी प्रसंकार मन्त्रमयी कसा में एक प्रसंकार प्रत्यक्ष कर दिया है । बसानन का दूसरा भाव यह भी

१ रामचन्द्र शुक्ल—दुसमीदास—पृ० १२०

२ कबीर—३०—पृ० ११

३ सीताबली—मुम्बई नाथ—पृ० ३१८ अ० अ० २०

४ मा० प्रत्येक पृ० ४१८

है कि उसको इस मातृका की शक्ति राम के द्वारा जग्गी के शरीरों में मन्दित्र में समाप्त हो जायेगी ।

राम की बड़ाई का हाल सुनकर इतनी चकराहट हुई इतनी धार्मिक लोभी कि बहुत लड़ लड़ेस राबल भक्षण संक गहि साथ कोठ भात रांप्यो^१ यही धार्मिक को स्पष्ट करने में ललसा और व्यंजना के मेल में विभेपोक्ति विरुद्ध काम दे रही है ।

कीटाणा भवन वंभीर वासस्य प्रेम का प्रकाश इत पर्याप्तिक द्वारा त्रिभ प्रकार कर रही है वह परमन्त बरधर्ष सुखक होने पर भी बहुत ही स्वाभाविक है ।

उभय एक बार फिरि धावो ।

ए बर बाबि विभोकि पापलो चतुरो बगहि विवाषी ॥

वे पय प्याह बोपि बर वंफल बार बार चुपु कारै ।

क्यों जीवहि मेरे राम राकिसे ते धव निगट विचारे ।

सुनहु पधिक भी राम मिलहि बग कहिपी मातु लिये ॥

तुलसी भोहि धीर सबहिज से इतका बही प्रीसे ॥^२

त्रिभेके विभोग में पीडे लने विवक है तमके विभोग में माला की मवा बसा होती वह समझने की बात है ।

जागु विभोग विवक वसु देने । कहत मातु किनु जीवहि केने ॥^३

पर्याप्तिक का भावना सोन स्वभावतः किण भवत्वा में देने है वह राम का इन शरीरों में धारा संयत्ता बसा रहा है ।

माव सबत पुर दीपन बहूही । प्रभु लकीच बर प्रवत न बहूही ।^४

लक्ष्मण को शक्ति लाने पर राम को जो भावनात्मक स्थिति या दुःख हो रहा था उसे लक्ष्मण ने बटकर देखा और दे कहने लगे ।

हृदय छोट मेरे पीर रहुबीरे ।

पाई संजीवन जामि कहतयो प्रेम पुमकि विमलवसरीरे ।^५

इन अलङ्कित से संजीवनी बूटी का प्रभाव भी प्रकट हुआ और राम के दुःख को धारणा थी । प्रसन्नकार का ऐसा प्रभाव लक्ष्मण है ।

राबल धीर प्रवह के संवाह में होना की व्याज निम्ना बहुत ही अर्थी है ।

राबल के इन वचन में कुछ बेपरवाही भनकती है ।

धन्य बीस बी निम प्रभु काजा । जहूँ तहूँ नाबहि परिहरि लाभा ।

काच कूहि करि सोन रिम्यई । पठि हिन करै करम निपुन्यई ॥^६

१ गीतावली—अयो० काण्ड—पृ० १०९ सं० लं० ८९

२ मा० अयो० पृ० ३४४

३ मा० वा० पृ० १२६

४ गीतावली लंका कांड—पृ० १२३ सं० लं० १२

५ मा० लं०—पृ० १०३

कम्बुओं का प्रायमी के हाथ में पड़ कर ताजमा बुझना नित्य प्रति देखी जाने वाली बात है। अर्थात् के इन तीनों मिलके कथनों में कैसा भूढ़ व्यंग्य है।

नाक कल बिनु भगिनि निहारी । धमा कीन्ह तुम भरम बिचारी ।

साजर्वत तुम सहक तुमाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ॥^१

इस प्रकार गोस्वामी जी की प्रसंकार योजना सर्वत्र भावों के उत्कर्ष में सहायक रही है।

साहस्य मूलक प्रसंकारों के प्रयोग में समरसार—

साहस्य मूलक प्रसंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक धम सन्देश प्रादि प्राते हैं। प्रत्यक्ष इस प्रकार एक अन्तर्वेत्त इन्हीं प्रसंकारों पर विचार करेंगे।

गोस्वामी जी ने उपमा और उत्प्रेक्षा की स्थिति का अन्तर मनी भाँति स्पष्ट किया है। जहाँ जहाँ उनका प्रयोग किया है वहाँ में क्या भेद है इसे गोस्वामी जी की रचनाओं में देखा जा सकता है। तुलसी ने उत्प्रेक्षा की अधिक महत्व दिया है। उपमाओं में उनकी प्रशुद्धि कम पड़ी है। जिन्हें देय एक बार हम काश्मिरास को भी मूल प्राते हैं।^२ मानस रूपक में जो उपमा बीच जिसास मतारम का उद्घोष किया गया है वह गिरी उपमा के हेतु नहीं वह तो उपमा मूलक प्रसंकार के लिये है। उपमा से उत्प्रेक्षा को वहाँ अधिक काव्य प्रद गोस्वामी जी समझते हैं इसके पक्कर में पढ़ने की आवश्यकता नहीं। उन्हींके स्वयं जो प्रसंगों में इनका निर्देशन भी किया है। पहले राम के प्रसंग को लीजिये। तुलसी की गीतावली का एक गीत है।^३ इससे जिस बात की ओर हम ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह है 'उपमा एक प्रभूत भई महीं मनोतकित छत्राये में तुलसी ने भूर्त्त और प्रभूर्त्त उपमा का भेद उल्लेख जो दृष्टि से मनो का प्रयोग किया है। इसी को सरस रूप से हम प्रकार कहा जा सकता है कि उपमा प्रसंकार में जो दृश्य उपस्थित किया जाता है वह सुष्ठि का रस होता है। किन्तु उत्प्रेक्षा में यह बात सर्वत्र नहीं होती। इसमें कवि प्रकृति मात्र से तुल्य न हो कई प्रकृति वस्तुओं का एकत्रित रेखना चाहता है। उत्प्रेक्षा में जो 'उत्त लया हाता है इसका यही संकेत भी होता है। अर्थात् तो उत्प्रेक्षा के मनो और उपमा के त्रिभि के भेद पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिये। 'त्रिभि' में जैसा है वैसा मान लेने की प्राकाशा रहती है और 'मनो' में जैसा है नहीं वैसा मान लेने की प्रेरणा सन्निहित

१ मा० सं० पृ० ६५

2. "Tulsidas, although not averse to using the conventional language of Indian poets in many passages, is rightly praised because his narrative teems with similes drawn not from the traditions of the Schools but from nature herself and better than Kalidas at his best.

V A Smith—Akbar the Great Moghul—Page 470

१ गीतावली बा० पृ० २६२ सं० सं० २३

रहती है। यतः कहा जा सकता है कि उपमा मानी हुई बात में होती है और उर्येला बात को मानने के हेतु होती है। जो है नहीं किन्तु जो हो जाये तो कितना बढ़िया और हृदय शाही हो यही उर्येला का मूल विषय है।

मोक्ष समय पर सञ्चयन निरखत । तत्र स्वभाव मनु तत्रिष्य क्षमाये ॥^१

'तत्रिष्य' का स्वभाव क्या है संभवता ही न। कहा जा सकता है कि स्वभाव को छोड़कर जैसे 'तत्रिष्य' में क्षमा सिद्धा में क्या व्यापत्ति है। कवियों की यह परिपाटी सी रही है कि उपमेया के साथ साथ वे कहीं उपमा का भी प्रयोग कर जाते हैं। और उपमा के साथ साथ उर्येला का भी। प्रत्यक्ष रूप से उर्येला के उच्चारण के बाद को न समझकर उर्येला रचना में भी बोध निकालते हैं। पर ऐसा करना ठीक नहीं एक बितरथा है। यहाँ भी उपमा मिश्रित उर्येला है। गोस्वामी भी जब क्या किस भाँति से देखते हैं इसे देखना जो तो उनकी यह शौचार्थ पर्याप्त है।

राम सीम सिर सेंदुर शैली । सोचा कहि न जाति बिधि देखीं ॥

मरुत पराय अमनु भरि नीके । सतिहि भूप यहि लोम धर्मी के ॥^२

पराय अमनु सति और यहि किमन्त उपमान हैं इमे कहने की धर्मो धार स्वकता नहीं। तुमसी इस दृश्य में इतल मग्न है कि इसे छोड़ कर कही जाना ही नहीं चाहते। और यह भी चाहते हैं कि कोई महत्त्व भी धार्यक नहीं न जाने पाये। फलतः उपमेय और उपमान को हम रूप में रख बते हैं कि हम उक्त रूपकाविवयोक्ति के रूप में बट प्रहण कर सेते हैं। इतना ही नहीं यह तो तुलसी को प्रतिभा के हेतु बड़ी ही सुष्ठु बात है हममें जो 'लोम धर्मी' का विषय न किया गया है। वह फल ही हम उर्येलाए को सफल बना रहा है। और साथ ही जापस्या कर रहा है कि तुलसी की बाणी कवि की बाणी नहीं उर्येलाए की बन है। यहाँ जिस प्रकृत का लोम विद्यमाना गया है वह राम के जीवन से कभी भी प्रलग नहीं हुआ। यदि प्रसन्न भी हुआ तो यह साम घटा नहीं अपितु बढ़ा हो है। वहाँ तो यह क्या भी कि मोता को धार्यक हुई ता उनके तूनों में भी कवि के हृदय में सुखर हाकर कुछ बह रिया। हमहि सीमपद अनि परिहरही।^३ और यहाँ यह परिस्थिति था गई कि हम नहीं और तुम कहीं। पर्याप्त सीता हरण के उपरान्त राम और सीता का विषय हुआ गया। परिलाम रूप में राम की जा कहना अभी उक्तका विवेचन भाव बाणुम और रस निरूपण धोर्यक के प्रत्यक्ष रिया जायेगा। वहाँ भी तुलसी न रूपकाविवयोक्ति से विदाय काम लिया है। यहाँ दिगमामा यह है कि धर्मो माना की रूप सति के समग्र जो चर्यमा बाणुमों और रंकि विगमा^४ हैता है बड़ी धार्य परिस्थिति के प्रताप में राम को केसरी न रूप में पाकर हुआ और राम ने भी उगगे यह पाठ पड़ा कि मल माना का विचर्यन हा

१ गोतावसी बा० पृ० २८२ पं० सं० २३

२ मा० बा० पृ० १२२

३ मा० धयो० पृ० २१०

गमा धीर उससे यह मुक्ताहस हाथ सयो जो सीता का गृहकार बना पर है वह कपक का प्रसव ही ।

गोस्वामी जी को उपमा मर्यादा की परिधि में बँधी हुई मिसत्री है । अपने राम के सिय महाकवि ने चन्द्रमा की ही उपमा सर्वत्र चुना । चन्द्रमा पूर्ण दिवा में निरुसता है तो राम भी कौशल्या कपी पूर्ण दिवा से उदय हो रहे हैं ।

बनदल कौशल्या दिसि प्राची । कीरति बामु सकल जग माषी ॥

प्रमटेज बेहि रजुपति तसि आरु । बिस्व सुखर लस कमल तुपाठ ॥^१

यह रामचन्द्र उदय को कौशल्या कपी पूर्ण दिवा से हुए जब उन्हें प्रकट भी होना चाहिये । प्रकट भी हुए पुष्पवाटिका में ।

सता मयम तं प्रकट म तहि धीसर दोठ माइ ।

निकसे अनु कुप विमित बिमु नसद पटल बिसगाइ ।^२

जब राम कपी चन्द्र प्रकट हुआ तो उमे पूर्ण रूप में कहीं उदय भी होना चाहिए पूर्ण उदय भी हुआ । कहाँ ? अनुपदल नामे प्रकरण में—

प्रमुहि देखि सब गृन हिय हारे । अनुरासेत उदय भय तारे ।^३

जब राम बिबाह कर घाये तब भी गोस्वामी जी अपने रामचन्द्र को नहीं मूये ।

मब बिधि मब पुरलाक मुखारी । रामचन्द्र मुख चन्द्र मिहारा ॥^४

राम लक्ष्मण धीर सीता सीता ही बन माय में वैदल जप जा रहे हैं तब भी महा राम के हेतु चन्द्र की उपमा मिसत्री है ।

धामे राम लक्ष्मण पुनि पाछे । तारस बेस बिराजत पाछे ॥

उमय बाब निय सीतुति कैठी । बहू औब बिब माया बैसी ।

उपमा बहुरि कहीं त्रिय जोही । अनु बिमु कुब बिचरोहिनि मोही ॥^५

तब रामचन्द्र जब १४ वर्ष उपरान्त घमच में सीट कर घाये तब भी महाकवि ने राम के सिय चन्द्र की उपमा लिख कर प्रथम वा उपसंहार किया ।

नारि कुमुदना प्रबध सर रजुपति बिरह दिनम ।

घसत घय बिबसित भई निरन्त्रि राम राहम ।^६

घबध म राम राग्य रस भँव में माय लेने वाली वो स्त्रियो हैं । मंथरा धीर

१ मा० ब० पृ० १६

२ मा० बा० पृ० १६३

३ मा० बा० पृ० १७१

४ मा० घयो० पृ० २२४

५ मा० घयो० पृ० १३१

६ मा० उत्तर पृ० १२६

कैकेयी । उपमा सम्राट् बामा के लिये ही प्रसंग प्रसंग उपमाओं का विधान कर रहे हैं । कैकेयी के लिये सांपिनि और मंत्ररा के लिये 'किराती' ।

कैकेयी (उपमा) — मानहु सरोप मुञ्जय भामिनि विषम भाति निहारई ।^१

वेत्तिसाधु मनु कुटिस किराती । भिमियत्र तर्षई मेहुं बहि भाति ॥^२
किराती दाहक सेती है इच्छे मरुपी दुखी होती है । वह उन मन्त्रियों की जान नही लेने वाली नही अपितु व्याकुलता ही उत्पन्न करती है और इसीलिये उसके लिये किराती और कैकेयी की रूप रूपांतरण की जान लेने वाली है इत कारण उसके हेतु सांपिनि की उपमा यह है गोस्वामी जी की उपमाओं की सार्वक्यता । जो भी उपमा की यह या ही तुक नही के हेतु नही अपितु उनके अन्तर ऐसे प्रकृति विषय है जो धीमे से ही ही प्राप्त हो सकते हैं ।

इसी प्रकार सीता को जब रावण द्वारा क्रिय सिय जा रहा है तो गोस्वामीजी ने दो विभिन्न स्वार्थों में विभक्त उपमाओं को है । जब पूर्य राज पटापु ने जानकी को रावण के द्वारा हरी हुई देखा तो कपिला बाय की और हनुमान प्रादि जानकों के समीप जानकी ने अपनी वस्तु गिराया तो ध्याय के बलीभूत मुगो की उपमा । विचारो अब विचार करते जाता है तो उसे कोई वैज्ञता नही । मुषोब प्रादि ने भी देखा कि स्त्री प्राकार मार्ग से विज्ञाप करती हुई जा रही है किन्तु हस्ताक्षेप नही किया । इसीलिये यहाँ विचारो और मुनी का उदाहरण है ।

कर्त्तव्य ज्ञाना जात नम सीता । व्याघ्र विषय अत्रु मृगी समीता ॥^३

कोई सज्जन किसी सीखी बाय को बसाई के हाथ में जाती देख कभी भी मीन न रह्या । धीमे भी जानकी को कपिला बाय के रूप में रावण का कर्णार्थ के हाथ में देकर मीन न रहे और उसकी रक्षा क निमित्त प्राण्य तक दे दिये । इसीलिये यहाँ कपिला बाय और कर्णार्थ का उदाहरण है ।

जिनि मनेष्यत्र बरु कपिला गाई ।^४

बिहार का हाथ है जनक बारात को बिधा कर रहे हैं । तब महाकवि सम्राट् ने उत्प्रेषा की —

सत्त्वमकम मुनि सब बिलसाने । मनहु मात्र सत्पित्र सहुमान ॥^५

- १ मा० अयो० पृ० २६६
- २ मा० अयोध्या पृ० २६१
- ३ मा० अरण्य पृ० ४६६
- ४ मा० अरण्य पृ० ४६३
- ५ मा० अ० पृ० ६१९

यही 'सोम सरस्वती' को लिखा गया वह भी मान्यपूर्व है। कमल सूर्य के प्रत्य होने पर सम्पुटित होता है। दधरय भी सूर्य बंधी है और सूर्य धम्य होता है परिचय में और के सूर्यबंधी दधरय भी परिचय की धोर धम्योष्मा में जा रहे हैं। जगत्पुर से धम्य परिचय में है। और दधरय के जाने से जगत् रूप रतक पुरवासी बड़े बुद्धी है कौपी सुन्दर उत्पन्ना र्चिञ्ज उपमा है। जो सोस्वामी जी की बसा में मोने में सुप्रथम उत्तर कर रही है।

कुसल कवि रूपक के द्वारा ही हस्त को बड़ा करते हैं। और उसको प्रसी भाषि मन में जया भी देने हैं। धम्य उनकी बगुणा धीर स्नेह की सरिता को भी देख लीजिये। प्रसंग विभक्त ही का है जो कठार विभक्त पहले कोमल बना या बही धम्य धाकुल धम्भुभि बन गया है।^१ इस संग रूपक में सोस्वामी जी ने जो 'धम्य उठे धम्भुभि धम्भुनाई' की उत्प्रेक्षा कर दी उससे वाच्य की प्रति बड़ी धम्यता मन्द पड़ी इस की सीमावा में हम नहीं पड़ते। हमारी दृष्टि में कोई भी सङ्ख्य इसे धम्य धान ही समझ सकता है कि साहित्य लक्षा बोधा का बही साक्षा नहीं उभमें तो बीच-बीच में धम्य वाच भी उठते बँडे और बढ़ते रहते हैं और उसक उत्सास में इतना धम्यता हो नहीं रहता कि हम किसी काम तक धुपचाप किसी धारेण का लेखा बोधा करते हैं और उनकी तरकों से टकराकर तटस्थ पड़ रहे।

कुसली ने सरिता का रूपक बहुत बोधा है और उनको मित्र-मित्र रूप में बिलभाया भी बूढ़ है। उन सभी रूपकों पर विचार करना व्यर्थ है। नहीं धमीष्ट तो यह है कि इस कुसली के रूपकों के मूढत्व का सन्देह में। राम धम्य को छोड़ कर धम्य में चल पड़े हैं तो तापस वेद में पर भावना राजा की है। इनी स जब वह प्रयाग से पहुँचते हैं तो उन्हें तोषणात्र का ऐसा साज स्यात होता है।^२ इस रूपक में विहासन धम्य और धम्य का जो रूप लिया गया है वह देखते ही बनता है। धम्य बही धम्य राजा होगा बही दुय दारिद्र्य रह मो बँस सकता है। राजा जिस मुहावने और धम्य नद में बैठा है उस पर तो किसी धम्य का धम्भुधामन हान से रहा।

सिद्धिधर राम की दृष्टि पड़ी तो मर्मक बिलभाई दिया। और उभन कुसली धम्य उत्प्रेक्षा किया कि राम धम्य पंडित क बीच में बोल पड़े।

पूरव रिता विभोधि प्रभु रेखा सरित मर्मक।

बहुत सबहिरेखहु सचिहि सुगणति सरित धर्मक ॥^३

१ मा० धम्योष्मा पृ० २७६

प्रस्तुत प्रकरण में सीधे उद्धरणों में म शब्द राम धरित मानस और बीच के धम्य धारि शब्द बोधा के पर्यायवाची हैं और धम्य में पृ० से धमिधाय धुष्ट सत्या से है।

२ मा० धम्यो० पृ० १२०—दो० १३०

३ मा० लं० पृ० १६१

मसा राम जैसे बोर को इस चरित्र से कैसे सन्तोष हो सकता है। उपमा दूर से देखने की वस्तु है वह अपने प्राप रूप धारण नहीं कर सकती। किन्तु मास की पुति तो रूपक में ही खरी उतरती है। अतएव राम ने सतर्क होकर अग्रमा पर विचार किया। यहाँ तक तो पुस्य सिंह ने सिंह को देखा घोर देखा बन चारी सन्नि रेखरी को। किन्तु देखने में सरसता तो इसके भाये पाई। जब उन्होंने यह देखा कि यह केसरी भट नावों के तम कुम्भों को यों ही नहीं फड़कटा ससे तो अपनी सुन्दरी रात्रि का भू मार भी करना होता है। घोर यह रात्रि का ऐसा भ मार करना चाहता है कि मत्र मुत्तमर्षों के बिना उनका काम ही नहीं चलता। प्राकाश में तारे क्या हैं उसी तम कुम्भ के मुत्ताह्वय तो। जब चन्द्र मन्थकार का फोड़ कर अपनी प्रिया के हेतु मत्र मुत्ता निकालता है तो क्या राम भी अपनी प्रिया के हेतु क्या कुछ ऐसा नहीं कर सकते। क्रिया घोर ऐसा क्रिया कि मत्र तम कुम्भ रात्रि का बिनाश हो गया। तारा का उदय हुआ घोर सुन्दरी का भू मार भी हुआ। यह है तुलसी के मास मय रूपकों का मास सीख्यम्।

यद्यपि तुलसी की उपमा की घोर ही रूप में भंगे घोर उनके द्वारा यह बतलाना चाहते हैं कि दोस्वामी ने उपमा से भी बड़ा गहरा काम लिया पाशों की कु जो उनकी उपमा ही है। वह जो कुछ भी लिखते हैं सोच समझकर ही लिखते हैं उनका कथन है—

आमबहि प्रमु सिय सकनहि कैसे। पलक बिलोकक गोलक जैसे।

येवहि ललन सीय रबुनीरिंह। जिय अविशेकी पुस्य सरीरहि ॥^१

इसमें ललमण को जो अविशेकी पुस्य का उपमेय बतलाना है वह गहरा देखने पर अनुकान्ता प्रतीत होता है पर यदि पूरे चरित्र को लिया जावे तो यह उनके चरित्र में बिलुप्त सत्य उतरता है। सम्मण सीता घोर राम के रोकक हैं घोर सेवा सही रूप में करते हैं जैसे अविशेक पुस्य अपने सरीर की। मालस में न जाने कितने ऐसे स्वत भाते हैं जहाँ इस विवेक हीनता के कारण ही राम को उन्हें बरजना पड़ता है। यहाँ तक कि जब राम सीता को छोड़कर मूक बय में गिरत होते हैं तब ललमण को मनेत कर कहते हैं।

सीता नेरि बरेहु रखवायी। बुधि विवेक बस समम विचारी ॥^२

पर विचारणीय यह है कि ललमण ने इसके विपरीत क्रिया क्या। जब राम ने इनसे कहा कि तुम जो मेरी जान की अपेक्षा कर यहाँ बने भाये यह अन्ध नहीं किया हो सकता है। क मरे पीछे निशाचरों ने कुछ जान रखा हो। तब इनसे कुछ कहते ही नहीं बना। हाँ इतना तो सबब ही सीता के साथ यह दिया :—

पहि पर कमल अनुज कर जोरी। बहेहु नाय वसु मोहि न सोरी ॥^३

१ मा० धर्मोपमा पृ० १४३

२ मा० धर्मोपमा पृ० ४६२

३ मा० धर्मोपमा पृ० ३६६

इसा उनमा के दाया तुलसी के राजा दशरथ और राम के जोगबाने का भी योग किया है।^१ बस जहाँ कभी तुलसी में 'जोगबत' लिखलाई है वहाँ सतर्क होकर न लेना चाहिये कि तुलसी क्या कहना चाहते हैं। और उनकी उपमा वहाँ क्या कर व लिखलाई है। अतः भाव दृष्टि से भी तुलसी की उपमा कुछ कम खोबी नहीं है।

जहाँ किसी वस्तु को देखकर संसय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो वहाँ संदेह भ्रमकार होता है। अथवा की भी इत्यादि संदेह सूचक शब्दों आने से संदिग्धकार होता है जैसे —

की तुम हरिबाण्डू मह कोई। मोरे हृदय प्रीति घटि होई ॥^२

इसी प्रकार भ्रम घर्षकार में भ्रम से किसी वस्तु को मान लेने का बर्णन होता है जैसे —

घारतगिर सुग्री अब छोटा। कह लघिमन सन परम समीठा ॥

आहु बेमि संकट घटि भ्रता। लघिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥^३

बरीय घूमक घर्षकारों का प्रयोग—

इन घर्षकारों में विपमता या विरोध का अन्तकार होता है। जैसे घर्षमनि वचन और विरोधामास आदि।

जहाँ बेमोल वस्तुओं और घटनाया का बर्णन हो वहाँ व्यापार घर्षकार माना है जैसे —

श्रीतम मित्त दाहुक मह जैसे। अकइहि सरय अण्ड निधि जैसे ॥^४

यहाँ अकई और सरय अण्ड दो बेमोल वस्तुओं का बर्णन है अतएव व्यापार घर्षकार है।

ऐसे ही घर्षमति में कारख और कार्य की प्रतिभूतता का बर्णन होता है। जैसे —

घोर करे अपराध कोप और पाव फल भीय।

घटि बिबिध भगवत घटि नो जम जाने जोग ॥^५

विरोधामास में इष्य शिष्या कुण्ड अथवा आदि में विरोध की प्रतीति करवाई जाती है। जैसे—

गरम मुषा रिनु करहि मित्राह। गानव मिधु घनत सिधलाई।

गरम सुपेठ रनु समझाही। राम कृपा करि बिनबोहि जाही ॥^६

१ मा० अयोध्या शो० २०१

२ मा० सु० पृ० १४४

३ मा० अरण्य पृ० ४६३

४ मा० अयोध्या पृ० २६३

५ मा० अयोध्या पृ० ३०२

६ मा० सु० पृ० १४३

शुक्ल मूलक धर्मकारों के प्रयोग—

इसमें कारण माता एकावली, धीर धार धार्मिक धर्मकार प्रकृत है।

वहाँ पर इस प्रकार का वर्णन होता है कि कारण के उत्पन्न कार्य माते कारण बसता जाये या कार्य का जो कारण है वह कार्य होता जाये वहाँ पर कारण माता धर्मकार होता है। जैसे —

पाट पीट है ह्रीं ठेहि ठे वाठम्पर धरि ।

एकावली धीर धार धार्मिक धर्मकारों के उदाहरण योस्वामी श्री श्री रत्नमार्गों में प्रायः बहुत कम धीर एकाध ही धोखे पर उपलब्ध हो सकते हैं।

कार्य कारण सम्बन्ध वाले धर्मकारों के प्रयोग—

इसमें विभावना हेतुप्रैसा धीर प्रतिघोषित धार्मिक धर्मकार माते हैं।

वहाँ किसी बटमा के कारण के सम्बन्ध में कोई विलक्षण धर्मना की जाये वहाँ विभावना होती है जैसे :—

मुनि धारस जिहू ठे बुध सइहीं । ठे नरेय विनु पावक रहूहीं ॥^१

प्रतिघोषित में किसी की प्रतिघय सराहना की जाती है। योस्वामी श्री साधु महिमा के वर्णन में इस धर्मकार का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग कर रहे हैं।

बिधि हरिहर कवि कोबिध बागी । कइत साधु महिमा लकुषामी ॥

इसी प्रकार वहाँ किसी वस्तु का हेतु न हो वहाँ उस वस्तु के हेतु की वस्तुता का जाये वहाँ पर हेतुप्रैसा होती है। इसके जो दो भेद हैं।

१—सिद्धाम्पर हेतुप्रैसा

२—प्रतिघोषित हेतुप्रैसा

जहाँ बट्रैसा का आधार सिद्ध हो वहाँ हेतुप्रैसा होती है जैसे :—

घाबे बलि भरत रिम घाटे । मलहु रोप ठरवारि उचारी ॥^२

ऐसे ही वहाँ बट्रैसा का आधार प्रतिघोषित हेतुप्रैसा जाती है। जैसे —

सोइत जनु जुय जलज बभासा । लनिहि सनीय वेत जयमासा ॥^३

प्रायः मूलक धर्म की धर्मकार योजना—

इसमें बड़ा संख्या काव्यनिग तदुत्तु धीर लोकीकृत धार्मिक धर्मकार प्रयोग प्रायः है।

वहाँ पर कृति द्वारा कारण देकर वह या वाक्य के धर्म का समर्थन दिया जाता है वहाँ पर काव्यनिग धर्मकार होता है जैसे —

रघाय धीर विमी वही बघानी । गिरा धववन जयन विनु बाणी ॥^४

१ मा० धयोप्या पु० ३३३

२ मा० धयोप्या पु० १७२

३ मा० धा० पु० १८८

४ मा० धा० पु० १९

येमे ही समीपवर्ती वस्तु के गुण को प्रपन्ना भिने का विभोपना का जहाँ वर्णन होता है वहाँ पर उत्पुण्य भर्त्सकार होता है ।

निय तुव रंग मिति धविक उषोठ । हार बेति पहिरावौ भम्पक होठ ॥^१

इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में स्याय मूलक भर्त्सकारों के प्रयोग भी बड़ी ही सुन्दरता से प्राप्त हो जाते हैं ।

निबेध मूलक भर्त्सकारों के प्रयोग—

इसमें अपन्कृति विभोक्ति, व्यतिरेक धादि भर्त्सकार पाते हैं । जहाँ किसी वस्तु को बेशक संघय उत्पन्न हा और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो तो वहाँ उन्नेह भर्त्सकार किन्तु जहाँ किसी बात को छिपा कर बहुसाधे से दूसरी बात कह कर संतोष करा दिया जाता है वहाँ अपन्कृति भर्त्सकार होता है । जैसे —

मोरे प्राणनाथ सुठ थोळ । तुम मुनि पिता धान नहि कोळ ॥^२

विभोक्ति भर्त्सकार में प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना हीन व रम्य प्रतीत होती है जैसे :—

जिय विनु वेदु नही विनु बायी । तैवेहि नाथ पुस्य विनु नायी ॥^३

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ विधेयता प्रकृति गूणता का प्रदर्शन किया जावे वहाँ व्यतिरेक भर्त्सकार होता है । जैसे :—

कोटि कृत्तिस सम बचन तुम्हारा । व्यर्थ बरहु पनु बान कुञ्जरा ॥^४

सुहार्थ प्रतीति मूलक भर्त्सकारों के प्रयोग—

इसमें पर्यायोक्ति समामोति व्याज निग्या व्याजस्तुति धादि भर्त्सकार पाते हैं ।

जहाँ कोई भी बात सीधे शरणा में न कह कर हेर फेर प्रपन्ना व्यंग्य से कही जावे या किसी बहाने से काम साधा जावे वहाँ पर्यायोक्ति भर्त्सकार होता है ।

१ बरवै पृ० ११ छ० छ० ६

प्रस्तुत प्रबन्ध में मानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थों के सभी उदाहरण तुलसी प्रभाषनी कुंजरा लख सन्नादक रामचन्द्र मुसल भगवान् बीन प्रबलन बास प्रकाशक काशी मागरी प्रचारणी समा तुनीय संस्करण में दिये गये हैं ।

२ मा० बा० पृ० १४७

३ मा० धयोप्या पृ० २१४

४ मा० बा० पृ० ११०

राम चरित मानस के जितने उदाहरण इस प्रबन्ध में दिये गये हैं उसमें कुछ उदाहरणों में प्रपन्न र इसके बाद कीच की संख्या तथा फिर बोहा की संख्या में धर्म प्राय है और र में धर्मप्राय राम चरित मानस में है ।

देखत मिस मुन बिहंग तब, फिरह बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रकुबीर सवि, बाबूह प्रीत न कोरि ॥^१

समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन में अप्रस्तुत का मान होता है जैसे —

लौचन मय रामहि डर घानी । शीन्हें पलक कपाठ सयागी ॥^२

इसी प्रकार जहाँ मत्वया वर्णन से ठो मिथ्या की प्रतीति हो पर परोक्ष रूप से स्तुति अभिव्यक्त हो वहाँ म्याज स्तुति होती है । यथाहरण —

गारब छित पै सुनहि मर बापी । ममसि होहि तजि भवन निजापी ॥

मन कपटी तन समजन कीहा । घाणु छरिछ सबही बहू श्रीमूढ ॥^३

इसके विपरीत जहाँ पर स्तुति करने के विपरीत भी वास्तव में मिथ्या का ही प्रदर्शन हो वहाँ म्याज मिथ्या होती है । जैसे :—

जानई मैं तुम्हारि प्रभुगारि । सहस बाहु सन परी लपारि ।

सपरबासि तब करि जाइ पाबा । सुनि कवि बचन बिहूसि बिहूयबा ॥^४

इस प्रकार इन सभी विभिन्न बयों के अर्थकारों के प्रयोग योश्वामी जी की रचनाओं में बड़ी सुन्दरता से पाये जाते हैं ।

अनेक अर्थकारों के बहुरपी प्रयोग—

योश्वामी जी की कला में अनेक अर्थकारों के बहुरपी प्रयोग देखते ही बनते हैं । यहाँ इस विषय के एकाम उदाहरण प्रस्तुत किसे जा रहे हैं ।

पुष्पवाटिका मे योश्वामी जी ने एक स्मरण अर्थकार में इस प्रकार से अश्लेषा का भी अभिव्यक्त कर अपमा के मान इस स्मरण को अभिव्यक्त कर अपनी इस प्रकृति का परिचय दिया है ।

कुमिरि सीब गारब बचन जपनी प्रीत पुनीत ।

अकित बिलोकति तबल विसि अनु सिनुमुपी तबीत ॥^५

इसी प्रकार बँबयी के बोधभवन के अर्थकार में योश्वामी जी ने एक में अपमा अश्लेषा अर्थकारों का अभिव्यक्त किया है ।

घरकहि कुदिल मई कठि टाड़ी । मानहु रोप तरविनी बाड़ी ॥

पाव पहार प्रकट बह सोई । भरी लौब जन जाइ न कोई ॥

बोड बर हुन कठिन हठ याय । मँबर कुपटी बचन प्रथाय ॥

हादस भुप रूप तब बुसा । जनी विपति वारिधि अनुदुसा ॥^६

१. मा० बा० पृ० ११४

२. मा० बा० पृ० ११३

३. मा० बा० पृ० ६१

४. मा० मु० पृ० २२२

५. मा० बा० पृ० १११

६. मा० अयो० पृ० २७४-२७३

इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में अनेक अलंकारों के बहुसंख्य प्रयोग मिलते हैं। जैसे उपसुक्त उदाहरणों में स्मरण के साथ उल्लेख और द्वितीय में रूपक के साथ उपमा और उल्लेख अलंकारों का प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोग से गोस्वामीजी की कला सीदर्य में पूर्ण हो उठी है।

तुलसी के अलंकार प्रयोग की विशेषता—

गोस्वामी तुलसीदास अलंकार शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। जिसका परिचाय परिचय हमें यह विशेषता में प्राप्त हो चुका है। वरन् उपमाएँ में गोस्वामी जी ने बड़े ही सजिले ढंग में छोटे छोटे अलंकारों का बखूब प्रयोग किया है। सीता का सीदर्य और विरह बखूब प्राणिक अलंकारिक सीदर्य से परिपूर्ण है।

गोस्वामी जी की अलंकार योजना के इस विषय उदाहरणों को देखते हुए यह सभी स्वीकार करेंगे कि उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कहीं भी अलंकार प्रदर्शन के हेतु नहीं किया। प्रत्युत उन्होंने कहीं तो उन्हें भावोत्कर्ष का सहायक बनाया है और कहीं अलंकारों के रूप सुलभ किया प्राणिक की अनुभूति को तीव्र और सजिले करने का साधन। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात और भी है वह यह कि तुलसी का अलंकार विधान साधुता में कहीं भी अलंकार नहीं रखा है। इसी से उनकी अलंकार योजना प्रायः उपदेश समन्वित ही मिलती है। इस प्रकार गोस्वामी जी का अलंकार विधान बड़ा ही मनोरम बन गया है। अनेक विषय भी इन अलंकारों के कारण बिलंब बढ़ा है। गोस्वामी जी की रचनाओं में अलंकार आने का प्रयास नहीं किया गया है। अपितु वह स्वतः ही आ गया है। इनसे उनमें स्वाभाविकता भी आ सकी है। उनके अलंकार कला और भाव अलंकार में बाधा भी नहीं पहुँचाते। और इनसे अलंकार का प्रभाव भी अलंकारक प्रति में प्रभावित होता रहता है। अपने-अपने साम रूपकों में भी यह बात पाई जाती है।

सब अलंकार आने पर भी गोस्वामी जी की रचना ऐसी नहीं है कि पहले अलंकार का पता समाया जावे तब अर्थ जुने। जो अलंकार का भाव तक नहीं जानते वह भी अर्थ ग्रहण का पूरा आनन्द प्राप्त करते हैं। एक विद्वान् हैं कि पहले भाविका का पता मयाइये और तब कहीं अलंकार निश्चित कोत्रिय। और तब इन दोनों को ही सहायता में प्रयोग की उन्मा कीत्रिये। तब कहीं अर्थ से भेंट हो। गोस्वामी जी की इस अलंकार विशेषता का कारण है उनकी प्रकल्प पटुता। गोस्वामी जी की अलंकार योजना की विशेषताओं को हम निम्नलिखित सीदर्यों के अन्वय में कहने हैं।

१—अलंकार सहज रीति में आते हैं।

२—सोक जीवन और प्रकृति के देख सुने उपमान चित्र हैं।

३—रूप और शिवा का सजीव चित्रण करने वाले हैं।

४—आव का तीव्रानुभूति करने वाले हैं।

५—अनेक और स्तुति देने वाले हैं।

६—उक्ति को स्मरणीय बनाने वाले हैं ।

७—नाद शौर्य का सूत्रन करने वाले हैं ।

घर्सेकार का स्वाभाविक प्रयोग—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि बोस्वामी जी की रचनाओं में घर्सेकार सहज और स्वाभाविक रीति से घासे हैं उन्हें किसी भी प्रकार से काव्य में हूँचने का प्रयत्न नहीं किया गया है । यहाँ हमें सप्रमाण सिद्ध करने के हेतु हम गोस्वामी जी के द्वारा उपसम्भ जलके मानस में स्मरण घर्सेकार पर ही विचार करेंगे ताकि यह सिद्ध हो जाये कि गोस्वामी जी की रचना में स्वाभाविक ही घर्सेकार कैसे पाये गये हैं ।

‘जहाँ किसी वस्तु को देखकर स्वप्न के द्वारा, कुछ सोचकर घपना किसी घण्य घटना का स्मरण हो जाये वहाँ स्मरण घर्सेकार होता है ।

प्राची विधि मधि सयल मुहावा । तिय मुख सरिस देहि मुख पावा ॥’

एक और भी स्मरण घर्सेकार का घति विचित्र उदाहरण श्रीजिये श्रीर रसका रमास्वादन कीजिये ।

सबरी देखि राम गृह घाये । मुनि के बचन समुन्नि जिय जाये ।^१

मुनि के बचन समुन्नि जिय जाये में भाव यह है कि महाराज कुमार राम को प्राप्त करके मक्ति क्या सबरी को महात्मा मर्तण ऋषि के उन बचनों का स्मरण हो जाया जो कि जगहाने पहले वास्तवकास में ही सबरी से बड़े थे कि मुझे भीराम का दर्शन होया । इसलिये सबरी ने जैसे ही राम को देना उसे मुनि के बचनों की बात स्मरण हो जाई । इन चार घसरों मुनि के बचन समुन्नि जिय जाये’ में महाकवि ने स्मरण घर्सेकार उठाकर रक्सा है । यह काव्य का बड़ा हा घनूठा घर्सेकार है । घाघर घर्से घर्सेकृति माना के घाघर पर घर्सेकार से कुछ कविता की घोया होती है । इसका विचार है कि सामर ही ऐसा कोई घर्सेकार हो जितका प्रयोग गोस्वामी जी ने न किया हो । इसी सिद्धान्त के अनुकूल यहाँ स्मरण घर्सेकार घपनी काव्य भी को बिलेर रहा है । यों तो माहितकाय महाकवियों ने बड़े ही सुन्दर स्मरण घर्सेकारों की सृष्टि की है । घर्षण घर्षणों प्रकार से स्मरण हो जाने का हत्य भीषा है किन्तु गोस्वामी जी ने जैसे सुन्दर घर्सेकारों का घर्षण किया है वह घर्षण और सुवच भी है । एकाय स्वामी पर ही गोस्वामी जी ने हम घर्सेकार में बड़े घर्षणकार दिखलाया है जहाँ घण्य कवियों की गति होना ही कठिन है । किन्तु यहाँ गोस्वामी जी के स्मरण घर्सेकार पर तो पीछे से विचार किया जावेगा । पहले घण्य महाकवियों द्वारा रचित एक घाव उदाहरण में इन घर्सेकार की शौर्य कृदा का घबसोवन कीजिये ।

१ मा० बा० पृ० १९९

२ मा० घरण्य पृ० २००

भववाम हृष्य द्वारा मेने उन्देश में ऊजोबी ने गोपिकाओं को शातोपदेश दिया । उस उपदेश को सुनने के पश्चात् श्रीहृष्य क प्रेममय रूप धारण करने वाली गोपिकाया ने जो उत्तर ऊजो को दिया वह बड़ा ही सुन्दर स्मरण प्रसङ्गार में प्रस्तुत किया गया है । गोपिकायें कहती हैं—

ता कि निष्ठा स्मरति यासु तथा प्रियाभि । वृन्दावने कुमुद कुन्ध शर्याङ्क रम्ये ॥
रेमै नवम्बदरणुपुर रास गोष्ठया । यस्मा मिरीङ्गित मनोहकचः कदाचित् ॥^१

पर्यात् जब वृन्दावन में कुमुद, कुन्ध प्रादि के फूल फूले हुए चन्द्रमा की चाँदनी बिखी थी तब जिन राधियों में रास भंडस बनाकर हम प्रियाओं के साथ उन्हाँने विहार किया था । विहार के समय उनके घोर हमारे चरनों के सुपूर बनते थे घोर हम उन्हीं की मनोहर गायमें पाते थे । मत्ता श्रीकृष्ण चन्द्र भी उन राधियों का स्मरण करते हैं । कितना सुन्दर स्मरण प्रसङ्गार है । पर तुलसी के स्मरण प्रसङ्गार का एक उदाहरण लीजिये :

सुमिरि सीय नारद बचन उपजो प्रीति पुनीत ।

बहित बिलोकति सकस लिसि जनु सिमु मृगी समीत ॥^२

बोच बास करि यमुनह प्राबे । निरखि गोर भोजन जस बाये ॥^३

यह प्रमाण बड़े ही पूरक भाव रखते हैं पर विस्तार भय से हमकी यहाँ विषय व्याख्या नहीं की जा रही है । वैदक दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ।

एक स्मरण प्रसङ्गार गोस्वामी जी का यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । जिसके ऊपर हमें यह है कि इतनी सूक्ष्म सतियों के साथ भावक ही किसी कवि ने स्मरस्य प्रसङ्गार लिखा हो । यहाँ गोस्वामी जी ने अपनी यह कला दिखलाई है जो अपना मामी नहीं रखती । सुमन्त राम को जयस मेज कर बापस था मये हैं । घोर बधरप को इस प्रकार प्रसाम कर रहे हैं ।

बेखि सचिज जय बीज कहि कीम्वैठ यंड प्रणाम ।

सुमन्त उठेड व्याकृत सुपति बहु सुमन्त वह राम ॥^४

इस बोधे के स्मरण प्रसङ्गार के सम्बन्ध में सूक्ष्म भाव यह है कि प्रणाम शब्द के अन्त में म प्रसर आता है घोर राम का भी अन्तिम प्रसर म है । अत सुमन्त ने बधरप को प्रणाम किया किन्तु राम उठने वाले महाराज के कान प्रणाम शब्द के अन्त में म प्रसर को सुनकर बिलिप्तावरपा में बीख पड़े बहु सुमन्त कहं राम । ध्यान देने के योग्य बात तो यह है कि चौपाई बोधे शब्द की तो बात ही क्या महाकवि सभ्राट ने प्रसर राम में स्मरण प्रसङ्गार रक्ता है । यह महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के

१ श्रीमद्भागवत् बधम् स्तंभ—पध्याय ४० श्लोक ४१

२ मा० बा० पृ० १११

३ मा० प्रयो० पृ० ११३

४ मा० प्रयो० पृ० १४८

अप्रस्तुत विभाग की बहुत बड़ी विषयता है कि उन्होंने एक बहुत बड़ी बात का रूप एक घण्टा में प्रयत्न कर दिया। अन्य कवियों ने अक्सर घोर पंक्तिमें नाम पूरे एक में स्मरण अर्पणकार रखा है किन्तु गोस्वामी जी ने तो घण्टों में स्मरण अर्पणकार रखा बड़ी उत्तरी कला की विशेषता है। घण्टा में अक्षरों का धारण इतना बात का परिचायक है कि गोस्वामी जी की रचनाओं में अक्षरों लाने का प्रयास नहीं किया गया वह अक्षर घोर स्वाभाविक रीति से ही आये हैं। अक्षरों लाने का प्रयास पंक्ति में ही सम्भव है। घण्टा में नहीं। अतः घण्टा में अक्षरों लाना इस बात का दृष्ट प्रमाण है कि अक्षरों महाकवि की कृति में अक्षर ही आये हैं। उनके लाने का प्रयास नहीं किया गया।

श्लोक-श्रीराम घोर प्रकृति के देखे मुने उपमान—

गोस्वामी जी ने अपने अर्पणकार विभाग की लोक-जीवन घोर प्रकृति के देखे मुने उपमान चित्रों के सजीव किया है। यह भी उनकी अक्षरों लाने की एक विशेषता है। राम नाम मार्ग में अग्रसर करते हैं उस समय के प्रकृत उपमा सटीक यदि अक्षरों लोक जीवन के देखे मुने चित्र हैं। जैसे समुद्र यदि। ऐसे ही गोस्वामी जी ने शैली के कोण अक्षर में जो अक्षरों का रूपक रखा है। अक्षरों विशेषता की ही का चुकी है। वह भी प्रकृति का देखा घोर मुना हुआ ही सजीव चित्रण है। इसी प्रकार महाकवि ने सीता जी की चैत्यों की जो विशेषता की है वह भी लोक जीवन के समुद्र हुई है। उपमा अक्षरों के माध्यम से—

बहुत बन् विपु अक्षरों की। पिय तन चित्तु भीड़ बनि बाँकी ॥

अक्षर मंत्रु निरीये नदनति। निजपति नहेतु निम्हहि विम सीतकि ॥^१

इसी प्रकार तो राम सीता के विवाह में गोस्वामी जी उपमा विभिन्न रूपक के माध्यम से अक्षरों द्वारा बग्या के निरूपण का लोक जीवन का देखा मुना चित्रण उप विभिन्न करते हुए बहने हैं—

प्रसुरित मुनिहू भाँबरी केटी। मेग महित तव रीति निवेटी।

राम सीत विर नेंदुर देही। मोमा बहि न पाति विपि केही ॥

अपन पराम अक्षरु बरि सीहें। समिहि भुप यहि सोम पको कें ॥^२

ऐसे ही समुद्र मग में जानरी की समुद्र न टूटने के अक्षरों लाने की विधा है अक्षरों प्रयत्न करते हुए गोस्वामी प्रस्तुत रीति में करते हैं।

प्रसुरि चित्तु पुनि चित्तु यहि उच्चर सीतन सीत।

निजत मनसिज पीत सुन अनु विपु मंत्रु सीत ॥^३

१ मा० घण्टा० पृ० १२८

२ मा० बा० पृ० २२५

३ मा० बा० पृ० १७०

इस उदाहरण में योस्वामी जी ने सीता जी के संकोच की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है। इसमें सीता जी की शिस्ता को रूप देने के हेतु योम्बामी जी ने जो उत्प्रेक्षा प्रसङ्गार के माध्यम से जो उपमान मीन और चन्द्र के लिये हैं वह सोक के देखे सुने प्रकृति चित्र हैं जिनसे शाय्य में महज सरसता और कसा में प्रभावप्रकटा पा गई है।

रूप और क्रिया के लक्ष्य चित्रण—

रूप—रूप और क्रिया दोनों का अनुभव तीव्र करने के हेतु अधिकतर साहस्य भूक्त उपमा यादि प्रसङ्गारों का ही प्रयोग होता है। रूप का अनुभव प्रभावतः चार प्रकार का होता है।

१—अनुरंजक

२—मयाबह

३—पारदर्शक

४—प्रबोत्पादक

इस प्रकार के अनुभव में सहायक होने के हेतु आवश्यक यह है कि प्रस्तुत वस्तु और धारणात्मक वस्तु में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा साई हुई) वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग आदि में मिसरी जुलती हो। और असे उची भाव के उत्पन्न होने की सम्भावना हो जो प्रस्तुत वस्तु से उत्पन्न हो रहा हो। अब देखिये तुलसीदास जी के प्रयुक्त प्रसङ्गार वहाँ तक इन बातों को पूरा करते हैं।

सीता के जयमास पहनाने की घोषा देखिये—

सज्जनैव मिय मुनि पाय परि पहारई मास ।

मिय पिय हिय सोहत सोमई है ॥

मानस है निरुधि बिसास सुतमास पर ।

मनहु मराल पाति बैठी बनियई है ॥^१

इस उल्लेख में श्री राम के शरीर और तमास में क्यामता के विचार से जो बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है। आहृति का साहस्य नहीं है। पर मराल पाति और जयमास में बर्ण और आहृति दोनों के साहस्य से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव बहुत पूर्णता को पहुँचा हुआ है। पर सबसे बढ़कर तो बात यह है कि तमास पर बैठी मराल पंक्ति का मयनाभिरामत्व कौन प्राकृतिक क्षेत्र में सौम्य संग्रह करके योस्वामी जी मेल रखने के सिद्ध साधे हैं।

इसी ढङ्ग की एक और उल्लेखा है। रणलोक में राम के दूर्बलित रूप शरीर पर रक्त की जो छोटें पड़ी हैं वे कौसी सयती हैं :—

१ श्री० पु० २६५ बाल कांड छं० सं० ६४

इस प्रबन्ध में श्री० चन्द्र योम्बामी जी द्वारा उचित मोताबती रचना का परिचायक है।

सोमिव धीट घटान जटे तुलसी प्रभु सीहँ महाधनि सुनी ।
 मानो मरकत सैन बिसास में पँसि बनी बर नीर बहूटी ॥^१
 इनमें भी रक्त की धीटा घोर नीर बहूटियों म बर्ष घोर घातुति दोनों के
 बिचार से बिग्न प्रतिबिम्ब है । इसी प्रकार देखिये तट पर से जाते होकर देखने वाले
 को गंगा यमुना के सङ्गम की घटा बँसी बिसासई पड़ती है ।

सोहे सितासिध को मिलिपी हुलसे हिय हैरि हिसोरें ।
 मानो हरे तुन चाब बरे बपरै सुरबेनु के पीब कतोरें ॥^२
 एक घोर सुन्दर उर्ध्वक्षा है ।

सता मदनसे प्रकट से तेहि पनसर खोज माइ ।
 निकसे जनु कुप विमल बिभु अलब पटल बितगाइ ॥^३

इस उर्ध्वक्षा में मेघ अण्ड के बीच से प्रकट होने हुए अण्डमा का मनोरम
 दृश्य लाया गया है जो प्रस्तुत दृश्य की मनोहरता के समुच्चय को बढ़ाने वाला है । तैज
 धीतल करने का हुए भी राम सप्तमा घोर अण्डमा दोनों में है ।

रूपकालिपयोक्ति का प्रयोग बहुत से कबिता में इस अङ्ग में किया है कि वह
 एक पहेली सो हो गई है । पर मोस्वामी जी ने उसे अपनी प्रकथ भारा के भीतर बड़े
 ही स्वाभाविक अङ्ग से बँटाया है । ऐसे अङ्ग में बँटाया है कि वह अर्धकार जान ही
 नहीं पड़ती । यद्यपि उद्यम अस्तुत भी बग के भीतर प्रस्तुत समझे जा सकते हैं -
 सीता के बियोग में बग बग में फिरते हुए राम बहते हैं ।

पंचन मुक कपोत पुव मोना । मधुव निरर कोकिला प्रवीना ॥
 तुब कतो बाकिम बासिनी । कपस उग्द छसि अहिनामिनी ॥

बनल पास मनीर घनु हँसा । यत्र केहरि नित्र मुमठ प्रमना ।
 भीकल कनक करति हरपाही । तैकु न संक उकुच मन माहीं ॥^४

गोस्वामी जी की प्रकथ सुपसता बिलक्षण है । जिसमें प्रकरछ प्राप्त वस्तुओं
 अर्धकार सामग्री का नाम भी देनी बसती हैं । इनमें होता यह है कि अर्धकारों में
 बुद्धिमत्ता नहीं बाने पाती । अर्धकार के निर्वाह का पूरा प्याण के रखते थे । हिरन के
 पीछे बीड़ने हुए राम को पंचधार नामदेव बनाता है । इसी हेतु देखिए के किम प्रकार
 पारों की यिनपी पूरी करते हैं ।

तर बारिक चाब बनाइ बने कटि पानि सरसल सायक सी ।
 बन लेतउ राम किरें सुयमा तुलसी छवि सो बरनी निमि से ॥

- १ रामचन्द्र सुपसत—तुलसीदास—पृ १२७
 २ रामचन्द्र सुपसत—तुलसीदास—पृ १२७
 ३ ना० बा० पृ० १११
 ४ ना परब्य पृ० ४१७

प्रकृतिक प्रतीक रूप मृगीमृग चोकि चक्रे चित्तवै चित्त वै ।
न इवै न भवै त्रियजानिधिनीमुख पंच धरै रतिनायक है ॥^१

प्रकरण प्राप्त वस्तुओं के भीतर से ही वे प्रायः प्रसंकार की सामग्री चुनते हैं। इस निदर्शना में उसका एक और सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है विरबीमित्र के साथ जाते हुए बासक राम सम्मल सनकी नजर बचाकर कहीं घुल कीचड़ में खेम भी भिंते हैं। जिसके बाग कहीं वहीं बदल पर विखलाई बैठे हैं।

सिरनि सिखंड सुमनबल मंडस बाल सुभाय बनायै ।
केसि धंफ ठनु रेसु पंक जनु प्रकट्ट चरित्त कुरायै ॥^२

कवि सोम कमी कमी दूर दूर कौ उड़ान भी भरा करते हैं। पोस्वामी जी ने कही कहीं ऐसा किया है। सीता क रूप वर्णन में यह प्रतिपद्योक्ति देखिये :—

बौं स्रवि सुभा पयोमिधि होई । परम रूपमय कच्छनु साई ॥
सोमा रजु मबब सिगाऊ । मये पानि पंकज निज माऊ ॥

एहि बिधि उपरै सखि अब सुम्बरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समैठ कवि कहहि सीय समगूल ॥^३

रूप सम्बन्धी एकाच उत्तिर्मा धीर प्रस्तुत की जा रही हैं —

सम सुबरन सुपमाकर सुबद न बार । सीय धंम ससि कोमल कनक कठोर ॥^४

× × ×

केस मुकुट सखि मरकत मनि मय होत । हाथ नेत पुनि मुकटा करत सरोत ॥^५

जहाँ बस्तु या व्यापार प्रगोचर होता है वहाँ प्रसंकार उसक अनुबन्ध में सहायता बोधर रूप प्रदान करके करता है। जैसे यदि कोई घामे वाली विपत्ति या घनिष्ट का कुछ भी ध्यान न करके अपने रंग में मस्त रहता है धीर बाई उसको देखकर कहे । परै हरिउ तुन बलि पसु बसि ।^६ ता इस कथन से उसकी बधा का प्रत्यक्षीकरण कुछ अधिक हो जायेगा। जिसमें भय का उचार पहल से कुछ अधिक हो सकता है।

१ कवितावली—धयोप्या कांड—खं० सं० २७—पृ० १४१

सब जगह इस प्रबन्ध में धाया 'क' अक्षर कवितावली से धमिप्राय रखता है ।

२ रामचन्द्र सुबल—सुमती बास—पृ० १२१

३ मा० बा पृ० १७१

४ बरवै पृ० १६

५ बरवै २—पृ० १६

६ मा० धयो० पृ० २६०

मम बाबा कहन से कोई विशेष रूप सामने नहीं आता । सामान्य सर्व प्रहस्य मात्र ही आता है । इससे मोस्वामी जी उसे ध्यास वा बोधर रूप बैठे हुए परिकल्पकुर का प्रथमम्बन बैठे हुए कहते हैं ।

तुलसीदास भक्त्यास प्रसिद्ध लखनऊ उरन रिपुगामी ।^१

क्रिया—क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने हेतु इस ललितोपमा का प्रयोग हुआ है ।

मास्त नखन मास्त को मन की लकराव का बेव जगयो ।^२

भीषे मिस रूपक मे उपमान धीर जयमेव का अनुगामी एक ही धर्म बड़ी मुग्धर पीठि से धाया है ।

जुपन कैरि धासा निशिनासी । बचन नखत प्रबली न प्रकासी ॥

मानी महिष कुमुद सङ्कुचामे । कपटी सुप उसुक मुकामे ॥^३

इसमें ध्यास बेमे की पहली बात यह है क्रिया का साहस्य है । दूसरी बात है कि बत्तपि यहाँ सङ्कुचता और लज्जित होना धाये हैं । पर रूपक का उद्देश्य इन भावों का उत्कर्ष दिखसाना नहीं है । बल्कि एक साव इतनी मिस क्रियाओं का होना ही दिखलाना है ।

एक ही क्रिया का सम्बन्ध अनेक पदार्थों से दिखायी हुई यह तुल्योपमा भी बड़ी ही गटीक बँठी है ।

सब कर संसत सब धम्यानु । मँध महोपगु कर धमिमाम्नु ॥

भृङ्गापि करि नख पर भाई । गुर मुनिबएह कैरि करराई ॥

सिय कर घोनु जमक पछिदावा । रानिन्नु कर बादन बुख बाबा ॥

मंमु चाप बड़ बोहिनु पाई । बड़े बाद सब संगु बनाई ॥^४

एक धीर उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है । जिसमें सहोक्ति द्वारा एक ही क्रिया (बनुमंजु) का अनेक विधाय उदाहरण रूप दिखलाया है ।

महि करतस मुनिपुनक सहित बोलुकहि सखइ सियो ।

तुयवन मुयनि समेत नमित करि सत्रि कुय सबहो बियो ॥

१ रामचन्द्र गुप्त—तुलसीदास—पृ० १२६

यह उदाहरण बिनयपत्रिका का है । इस प्रबन्ध में वहाँ पर उदाहरणों में वि० सम्ब धम्या है वह बिनयपत्रिका को घोटक है ।

२ क० पृ० १६४ लंका सं० ३४

क० धम्य मे धमिप्राय बरितावली मे है ।

३ मा० बास० प० १७४

४ मा० बा० पृ० १८२

धाकरप्यौ सिद्यमत्त तमेत हरि हरप्यौ जनक द्विपो ।

मम्यो भृशुपति गर्भ सहित तिष्ठु लोक विमोह कियो ॥^१

परिछाम का स्वल्प धामे रखकर कर्म की भयंकरता अनुभव कराने का कैसा गहन प्रयत्न इस भ्रमस्तुन प्रथमा में दिखलाई पड़ता है ।

मातु पितृहि जनि सोच बस करमि महीश किशोर ॥^२

इसी प्रकार कर्म के स्वरूप को एकबारगी गहर के सामने आने के हेतु मन्त्रि धर्मकार द्वारा उक्तका यह गोचर रूप सामने रखा गया है ।

यहि पापिनिहि ब्रूमि का परेत । छाह भवन परपावक बरस ॥^३

इस प्रकार पोस्वामी जी की धर्मकार योजना में इन घोर क्रिया कक्षा का सजीव चित्रण हुआ है ।

मात्र की तीव्रानुभूति—

पोस्वामी जी के धर्मकार मात्र की तीव्रानुभूति कराने में पूरा सफल रहे हैं ।

जैसा कि हम दोखे विस्तार से स्पष्ट कर चुके हैं । अतएव यहाँ एकाक्ष उदाहरण ही देकर यह प्रकरण को समाप्त किया जा रहा है ।

यह कमक रति मात्र की घनम्यता को कियती सुन्दरता से दिखला रहा है ।

दुपित तुम्हरे बरस कारन जगुर तुमसीबास ।

बपुय बारिद बरपि खबिबस हरहु सोचन प्यास ॥^४

दो भावा के दम्ब का कैसा सुन्दर घोर स्पष्ट चित्र हम रूपक से मिलता है ।

मनमगगुड़ तनुपुलक सिधिस भयो मन्त्रि नयन भरे मोर ।

गइत योइ मनु मकृच पैठ मह नठठ प्रेम बल बीर ॥^५

इसके अतिरिक्त पोस्वामी जी के धर्मकार प्रेरक घोर स्फूर्ति देने तथा उक्ति को स्मरणीय बनाने वाले हैं । इसके अतिरिक्त उनके धर्मकार विभाग की गक यह भी विद्यपता है कि वह नाव सीमर्य की सृष्टि करने वाले हैं । जैसे —

ककन किजिनि तुपुर मुनि मुनि । बहत सकन सन राम हृदय मुनि ॥^६

इसमें कंकन किजिनि घोर मुनि धारि में एक प्रकार का नाव है घोर अनु प्रास दृष्टम्य है । अत पोस्वामी जी की धर्मकार योजना इस प्रकार सभी बिलोपताओं से युक्त है घोर सर्वगुणों से सम्पूर्ण है ।

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १३२

२ मा० बा० पृ० १५६

३ मा० भयो० पृ० ३८२

४ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १३२

५ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १३२

६ मा० बा० पृ० १६१

ध्वनि—

काम्य शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वाक्य से अधिक उत्कर्ष वास्ता प्रति-
पादक ध्वन्य को ध्वनि कहते हैं।^१ दूसरे शब्दा में जिस काम्य में ध्वन्यार्थ ही मुख्य
रहता है वही उत्तम काम्य वाक्य ध्वनि काम्य कहा जाता है। मोक्षवादी जी ध्वनि
के मर्म से पूर्ण परिचित थे। परन्तु उन्होंने अपने वाक्य में ध्वनि के भी यथोचित
प्रयोग किये हैं। जैसे तो ध्वनि का एक विस्तृत क्षेत्र और इसके अन्तर्गत श्रेयोपदेर माने
जाते हैं। पर हम यहाँ विषय विवरणों में न जाकर ध्वनि के प्रधान क्षेत्रों में से कुछ
दृष्टान्तों द्वारा तुलसी की कला में ध्वनि का उत्कर्ष दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

ध्वनिविहित वाक्य ध्वनि के द्वितीय भेद अर्थात् ध्वन्यत् विररहृत वाक्य ध्वनि
का यह उदाहरण देखिये।

बाज कृपा मुरति अशुभूसा। कोमल बचन करत अनु कृपा ॥^२

यह परमुत्तम के प्रति सख्यता की उक्ति है। यहाँ कृपा अशुभूसा और मुरति
पूज्य अपने अपने वाक्यार्थ को छोड़ उद्दिष्टार्थ अर्थ का बोध कराते हैं। अर्थात् सख्यता
के प्रयोग को ध्वनित करत है। इतना सुन्दर ध्वन्य सम्भवतः दृष्टिसोचर न हो। इसी
प्रकार —

गरब करहु रघुमदन जल मन माँहि। हैउहु धापनि मुरति विष की छाँह ॥^३

छाँह कानी होती है। राम का स्वभाव भी क्या बर्ण है। धातव्य ध्वन्य है
कि राम का सुन्दर ने सुन्दर स्वभाव सोठा की छाँह के हो सहरम है।

धार्मिक ध्वन्यता—

धार्मिक ध्वन्यता में धर्म उच्च पर निर्भर नहीं रहता परन्तु ध्वन्यार्थ होता है जो
धर्म शक्ति बल्य बोद्धव्य वाक्य अथवा धर्मिय वाक्य प्रकारण श्रेय काम वाक्य सादि
को विषयता के कारण ध्वन्यार्थ की प्रतीति कराती है वह धार्मिक ध्वन्यता कहलाती
है। इनमें से एकत्र के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पनि हैबता मुनाय महु। मानु प्रथम तब रेन।
महिमा धर्मित न तर्क कहि। नहय सारवा सेम ॥^४

यहाँ नीता के कहने के कारण ध्वन्यार्थ महसूसपूर्ण।

१ विद्वत्वाच—साहित्यकारण ४१२

२ मा० बा० पृ० १२५

३ तुलसी संवावती द्वितीय खण्ड—बरवै रामायण—५० २०

४ मा० बा० पृ० ११२

बाहु को निसेपना से—

मैं सुकुमारि नाच बन जोषू । तुमहि उचित तप मो कहू भोषू ॥^१

प्रबन्धित संक्रमित बाध्य ध्वनि—

जिस ध्वनि में बाध्यार्थ प्रपना पूर्ण तिरोमास न करके प्रपना प्रथम रखते हुए भी बाध्य प्रथम में संक्रमण करता है वह प्रबन्धित संक्रमित बाध्य ध्वनि है जैसे—यह घर बरकड़ा है । यहाँ पर घर का तात्पर्य केवल घर नहीं कुल समुद्रि प्राप्ति से भी है । जो उपादान सङ्गण से सिद्ध होता है । व्ययार्थ हुआ सम्बन्ध करने सामक है । इसी प्रकार :—

सीताहरण तप्त जनि कहैउ पिता सन जाइ ।

जो मैं राम त कुस सहित कहिहि बसानम जाइ ॥^२

यहाँ पर राम शब्द का प्रथम सङ्कर का अनुप टोड़ने वाले राससा का भाष करने वाले प्रसुत पराक्रमी है । व्ययार्थ हुआ कि रासण का नाच भी सीमा होगा । यह व्ययार्थ प्रबन्धित जमत्वारपूण होने से प्रबन्धित संक्रमित बाध्य ध्वनि है । इस ध्वनि में व्ययार्थ उपादान सङ्गण पर आधारित है ।

प्रत्यक्त तिरस्कृत बाध्य ध्वनि—

जिस ध्वनि में बाध्यार्थ का सर्वथा त्याग प्रपना तिरस्कार हो जाता है वह प्रत्यक्त तिरस्कृत बाध्य ध्वनि है । यह सङ्गण सङ्गण पर आधारित है । उपाहरण —

प्रबन्धि हौं धाममु पाइ रहौंमो ।

बस बँदयी जोस कृपानिधि बवों बसु अपरि कहौंमो ॥

मरत सुप विप राम ललन बन मुनि सामन्द सहौंमो ।

पुर परिजन प्रबन्धिकि मातु सव सुख सन्तोष सहौंमो ॥^३

यहाँ पर भरत का सामन्द रहना धीर सुख सन्तोष सहना पूर्णतया बाधित है । व्ययार्थ यह हुआ कि मुझे इन सभी कारणों से बड़ा दुःख हुआ । फिर भी प्रापकी प्राप्ति हो तो मैं इनके भी भेदूंगा । अतः यहाँ प्रत्यक्त तिरस्कृत बाध्य ध्वनि है ।

धनुस्तरण ध्वनि—

जहाँ पर बाध्यार्थ निकालने पर फिर व्ययार्थ का बोध होता है । यहाँ प्रमु रण्य ध्वनि होती है । इसके तीन भेद हैं ।

१—स्वतः सम्प्रथी

२—कवि प्रोक्षित सिद्ध

३—प्राप्त प्रोक्षित सिद्ध

१ मा० प्रथो पृ० २१३

२ मा० प्रथम पृ० ४१५

३ गीतावली पृ० १७८ ११ प्रथम अं० १७७

इन में से प्रत्येक के ४ भेद होते हैं ।

- १—वस्तु से वस्तु
- २—वस्तु से प्रसङ्गार
- ३—प्रसङ्गार से वस्तु
- ४—प्रसङ्गार से प्रसङ्गार

इसके बाद भी प्रत्येक के पद यत् वाक्य यत् प्रबन्धयत् यह तीन भेद हैं । इनमें से कुछ के उदाहरण गोस्वामी जी की कृतियों में यहाँ दिये जा रहे हैं ।

अथ शक्ति उद्भव्य अनुकरणं ध्वनि (स्वतः सम्भवी)

इस ध्वनि के भी कई भेद हैं जिनमें वाक्ययत् स्वतः सम्भवी अर्थ मुसक वस्तु ध्वनि का उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

कोटि मन्त्र सजावन हारे । सुमुखि कहनु को मईहि तुम्हारे ॥
मुनि सनेह मय मंजुल बानी । सकुचि नीय मन मंह मुसकानी ॥^१

इन पंक्तियों में मार्ग की प्राग्भ बहुषों का प्रथम सुनकर सीता जी का सकुचाना और मन ही मन मुसकाना इस प्रालय के बोधक वाक्य के वाक्यार्थ द्वारा राम उनके पति हैं यही व्यञ्जित है । पति वाक्य का ध्वनि किसी एक पद द्वारा न होकर सकुची सिय मन मंह मुसकानी इस पूरे वाक्य के द्वारा होता है । यहाँ पर शब्द परि वर्तन के परभाव भी ध्वन्यार्थ का बोध होना रहेगा । इन्हीं कारणों से यहाँ उक्त ध्वनि की स्थिति सम्भव हुई है ।

कवि प्रीकृतित मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि

इसके भी कई भेद होते हैं । जिनमें केवल वाक्ययत् कवि प्रीकृति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है ।

निय विद्योम कुस केहि बिधि कही बखानि ।
फूलबात त मनमित्र बेसत धानि ।
तरव चारनी सवरत बहु बिधि धानि ।
बिबुहि पारि कर बिनबति कुल कुल धानि ॥^२

उपरोक्त पंक्ति का के अन्तर्गत अथवा फूल के बाण से कामरेव का सीता जी को बचना शरद बरिना का चारा दिवाघो में फूलकर पूर के समान यमना और चन्द्रमा को मुस मुस (सुर्य) समझकर सीता जी का बिनय करना इत्यादि से सीता जी को ताब बिरह वैरना ध्वनित हाता है । जो वाक्ययत् है । इसानिये इसके भीतर वाक्ययत् ध्वनि से कवि प्रीकृति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि का स्थिति मानी जायेगी ।

गुणीभूत व्यंग्य—

बाध्य की धरणा गोल व्यंग्य का गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं।^१ तात्पर्य यह है कि वही व्यंग्य र्व बाध्यार्थ की धरणा कम कमलकारक हो धरणा उगी के समान हो वही गुणीभूत व्यंग्य की स्थिति मानी जाती है। इनके भी कई उदाहरण मिले हैं जैसे धनुष व्यंग्य धरणी व्यंग्य बाध्यनिष्ठ व्यंग्य असंख्य व्यंग्य महिम्न प्रधान व्यंग्य तुल्य प्रधान व्यंग्य काव्यनिष्ठ व्यंग्य धीर धनुष व्यंग्य इत्यादि त्रिसमें केवल का का विरलेयत्वं लोके किया जाता है।

काव्यनिष्ठ व्यंग्य—

वही काव्य द्वारा प्राप्त काव्य व्यंग्य धरणा होता है वही गुणीभूत काव्यनिष्ठ व्यंग्य होता है।^२ जैसे —

तुलसी धन बासक सो महि नहू कहा जय आय ममाधि किय।

पर ते कर सुकर स्वान समान वही जय में फल बोन किये ॥^३

हैं धनमीस मनुज रघुनाथक। जाके हनुमान में पायक ॥^४

पहले उदाहरण के अन्तर्गत तुलसीधन की कहने हैं कि राम ऐसे शिषु के प्रति यदि स्नेह नहीं है तो जय जोग और समाधि करने से क्या। यथात् कुछ भी नहीं। वे मनुज यथे सुकर, धीर स्वान के समान हैं उनका संसार में करने का भी फल क्या है। यथात् कुछ भी नहीं। यह काव्यनिष्ठ व्यंग्य है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत काव्य में यह व्यंग्य प्राप्त होता है कि राम रामानुज बालक नहीं हैं। वे सामान्य मानव भूमि में पर माताय भववान के धरणा हैं।

धनुष व्यंग्य—

धनुष व्यंग्य उभे कहने हैं या बाध्यार्थ के समान स्वयं व्यंग्य में प्रतीय होता है।^५ उदाहरण के लिये :—

पुत्रवती पुत्रो जह मोर। रघुवर मल जायु सुन हारि।^६

बाध्यार्थ यह है कि वही पुत्रता पुत्रवती है त्रिभवा पुत्र राम मल है। यही बाध्यार्थ म बाधा है। यथाकि ऐसा भी धरणा शिवा पुत्रवती है त्रिभवा पुत्र राम मल नहीं है। अतः इसका लक्ष्य यह हुआ कि उन धरणाओं का धरणा हुआ न

१ धरणा गुणीभूत व्यंग्य बाध्यनिष्ठ व्यंग्य ॥

विरचना—महिम्न व्यंग्य—४ १६

२ महिम्न व्यंग्य—बाध्यनिष्ठ—पृ० २४०

३ कवितावली १-६

४ ग० ६ ६३

५ रामनिष्ठ व्यंग्य—बाध्यनिष्ठ—पृ० ३४४

६ ग० ७ ३७

होने के लुप्त है। जिसके पुत्र राम मरत नहीं है। व्यंग्यार्थ यह निबन्धा कि संसार में वही बुबली प्रसंगमीव है जिसका पुत्र राम मरत हो। यह व्यंग्य बाष्पार्थ के समान स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है और बाष्पार्थ का ही अर्थान्तर में संक्रमण हो गया है।

घटनसय क्रम व्यंग्य ध्वनि—

जहाँ पर बाष्पार्थ प्रहल करने का क्रम सञ्चित नहीं होता इस वह अनुभव नहीं करते कि यह बाष्पार्थ है और इसके बाद वह व्यंग्यार्थ है। वही वह ध्वनि होती है। इसमें बाष्पार्थ और व्यंग्यार्थ के घासे पीछे का ज्ञान नहीं रहता। बाष्पार्थ के प्रहल करते करते ही वह व्यंग्यार्थ से अभिसृत हो जाती है। जो कहने के लिये ली क्रम मनी जनह रहता है, पर घटनसय क्रम व्यंग्य ध्वनि में शिब भाव इससे आशान्न हो जाते हैं। भाव शिब में यह ध्वनि घाठ प्रकार की मानी गर्।

१—रस

२—भाव

३—रसामास

४—भाषामास

५—भावभय

६—भावसन्धि

७—भावस्योति

८—भावस्यवसता।

इसमें से प्रत्येक के उदाहरण भाषण में उदाहरण हो जाती है। नीचे इन पर क्रमानुसार विचार किया जा रहा है।

रस ध्वनि

जहाँ बर्तन से रस व्यंग्य हो वहाँ पर रस ध्वनि होती है जैसे :—

पल्लव नील तत्रि बोध द्विबोर । त्रिबे न कीम्ह वपु ध्वनि वठीर ॥

त्रिपत्रवूरि त्रिमि जोववठ रहुऊ । दोष भाति महि टारन कहुऊ ॥

तिम बव पमिहि ठाठ कैहि नाठी । बिचतिलित्त कपि दैलि कैपठी ॥

जो तिम मवन रहे कहु घंवा । नाहि कहुँ होइ बहुठ धवसवा ॥^१

यहाँ पर बाष्पार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थ रूप रस का प्रभाव प्रकट है। धानम्बन खीना है। उदीपन बनकी सुभुमारता स्निग्धता मीरता अल्पवयस्कता आदि है। स्वामी प्रिय के दर्शित के वारस्य संक्र है। लंबाठी, बिन्ता मीह स्वरस, तर्क रीत्यारि है। अनुभाव आसदा देव निन्दा आदि है। इस प्रकार यहाँ वदण रस की निष्पत्ति पुर्लक्ष्णैरु हुई है।

भाव ध्वनि—

जहाँ पर वपुह स्थायी धनवा प्रमुखता से प्रकट संचारी भाव का प्रकाशन होता है वहाँ भाव ध्वनि होती है। जैसे :—

खर कुठार मैं धकस्त कोही । धार्गे धपराबी पुखोही ॥
उठर देत छोड़त बिनु मारें । केवल कोसिक सीस तुम्हारें ।
न त ऐहि काटि कुठार बठोरें । गुराह उरिन होतेइ अम बोरें ॥^१

यहाँ पर आसम्बल अनुभव संचारी भाव के होते हुए भी बिस्वामित्र के शीत के कारण श्लेष स्थायी उदबुद्ध मात्र होकर रख गया। पूर्ण परिष्कार को प्राप्त नहीं हो सका। अतः यहाँ भाव ध्वनि है।

रसामास—

जब रस परिष्कार होते हुए भी सहृदय जना की दृष्टि से उसमें किसी प्रकार का अनौचित्य हो वहाँ पर रसामास जाता है। जैसे शूबार में पर स्त्री प्रेम। यह रसबोध है किन्तु आमास रूप में भी आनन्द बाधक होने के कारण इसे ध्वनि के भीतर माना जाता है। अन्य रसों में भी अनौचित्य आ जाने से रसामास होता है। जैसे बीर रसामास का एक उदाहरण है।

उठि उठि पहिरि सनाह धमागे । जहूँ तहूँ पात बभावन लाग ॥
मेहु छड़ाई सीय नहूँ कोऊ । बरि बाबहु मुर बालक बाऊ ।
ठोरें वपुसु चाह नहि सरई । बीबत हमहि कुमरि का बरई ॥
बौ बिदेहु बसु करै सहाई । बीठहु समर सहित दोठ माई ॥^२

यहाँ पर वपुसु न उठ सक्ने बासा (पराजिता) का यह राम के प्रति मुठ करने का उत्साह अनुचित है। अतः रसामास है।

साबा मास—

जहाँ पर भाव में कोई अनौचित्य हो वहाँ साबाभास माना जाता है। मानस से प्रताप भागु की कथा से इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है।^३ अन्तरण में प्रकट है कि कपट मुनि ने अपनी कार्य सिद्धि के हेतु राजा के प्रति अपना कपट रूप प्रेम प्रदर्शित किया है। अतः वहाँ राजा विषयक रति साबाभास हुआ।

साबोदय—

जहाँ पर किसी प्रसंग में भाव के उदय होने में बाधबँध हो वहाँ साबोदय होता है। परशुराम का गर्भ संचारी भावे जब राम ने रमापति वाले वपुसु की प्रार्थना बड़ा ही ठो बिस्मय में परिवर्तित हो गया।

१ मा० बा० पृ० १११

२ मा० बा० पृ० १५२

३ मा० बा० प्रताप भागु की कथा—बोहा १११—१—४

४ मा० बा० पृ० २०२—४—६

राम रमापति कर वसु केशु । सुँबहु पाप मिटै संवेहु ।

देठ चाप घावहु बलि गपळ । परशुराम मन बिस्मय भयळ ॥^१

मठः यहाँ भाबोदय हुआ ।

भाब सन्धि—

यहाँ पर दो भाबों के सम्मिलन के कारण बमस्कार का जाता है यहाँ पर भाब सन्धि होती है । भाब सन्धि मानस की निम्नलिखित परिस्थियों में बड़ी सुन्दरता से उपसम्भ होती है ।

तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम भोक्छि घटि सुन्दर ।

बनित चित्तव मु बरी पहिचानी । हुरव बिपाय हृदय अकुसानी ॥^२

इसमें एक साथ ही हृदय और बिपाय भावा का संचार बणित है मठः भाब सन्धि है ।

भाब शान्ति—

यहाँ पर किसी बठ हुए भाब का समाप्ति में विभयता देखी जाती है यहाँ पर भाब पाणित होती है । धनुर्भंग की प्रबलि सुनते ही परशुराम क्रुणित हुए और जब वह जनक की मभा में प्राये तो वह श्लोक को मूर्ति हो चारण दिव्ये हुए थे । पर यह क्रोध का भाब विरचामित्र के धाकर मिसने और दोनों भाइयों राम लक्ष्मण को मृति के कारण म डामने के बाद कुत्त हो गया है और वे —

शर्महि किन्ह रहे पकि सोचन । रूप अपार मार यब सोचन ॥^३

इस प्रकार यहाँ भाब शान्ति हुई ।

भाबघबसता—

यहाँ पर एक से बार घनक भावा के घान से एक साथ ही घनेक भावा के सम्मिलन का मोहरव्य द्रष्टव्य हो यहाँ भाब घबसता होती है जैसे —

सुबन् समोर को और बुरीन बार बड़ोद ।

देनि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यों दिवा रोद ॥

एकनि बटु बानी कुटिल की श्लोष बिष्य बड़ोद ।

मकुचि सम सयी ईस भाबसु-बससतव जिय बौद ॥

बुद्धि बम नाहन पराक्रम घट्टन राखे मोद ।

नबस साथ सत्राज मायक समत बहे सब बौद ॥

उतरि तब लो नमन पर सकुबात सोचत छान ।

कुके मबसर मनहु सुजनहि सुजन सनमुप हान ।

१ मा० बा० पु० ११६

२ मा० सु० पु० १४८

३ मा० बा० पु० १८७

कहे बचन विनीत प्रीति प्रतीति निबोह ।
 सीय सुनि हनुमान जास्यौ भसी यति भसोह ॥
 बेदि बिनु करतूति कहियो जाति हूँ सङ्ग जोह ।
 कहौमो मुख की समरसरि कासि बारिक पोह ॥
 करत कसू न बनत हरिहिम हरप सोक समोह ।
 बहत मन तुलसीस संका करहुँ सपन बसोह ॥^१

इसमें समान चमत्कारक प्रत्येक भाषा का सम्मेलन होने से अपूर्व भाव व्यक्तता है । अठ-मोस्वामी जी की रचनाओं में वस्तु धीरे धीरे अर्थकार ध्वनि के मा रिकड़ा उदाहरण नरे पड़े हैं । स्थानान्तर से यह प्रकरण यहीं समाप्त किया जाता है ।

मुलसी का प्रबंध सौष्ठव और धराण पद्धति

प्रबंध सौष्ठव—

कमावस्तु का समूह और सौष्ठव का सम्पादन

मानस की कमावस्तु के संवहन पर प्रकाश डालने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि उसमें अधिकारिक तथा प्रथम सोपान के १७१ बें बोहे से (राज्य के धरणाधार वर्द्धन से) प्रारम्भ होता है। और सप्तम सोपान के १७६ बें बोहे में राय राज्य वर्द्धन तथा राम के विविध उपबंधों के बाद रामचरित महाकाव्य से समाप्त होती है। प्रारम्भ के १७२ बोहे और अन्त के ७० बोहे प्रथम की सुनिष्ठा और उपसंहार के रूप में है और उनमें से अधिकांश बातों का कथा से भी सम्बन्ध नहीं है। कमावस्तु की दृष्टि में उनका अधिक महत्त्व नहीं है। मानस पौराणिक रीति का महाकाव्य है इस रीति के महाकाव्यों में सुनिष्ठा और उपसंहार का विस्तार होता ही है। अतएव मानस के प्रधानक की वास्तविक रीति के महाकाव्यों की दृष्टि से नहीं देना चाहिये।

मानस की कमावस्तु का संवहन न तो विष्णुस पौराणिक ग्रंथ का है। न विष्णुस पौराणिक ग्रंथ के महाकाव्यों जैसा। इसमें अर्थात्तर कथाओं की धारा है। यह प्रथम कथाओं प्रथम और सप्तम सोपान में अधिक धार है। मुख्य कथा प्रथम सप्तम सोपान के १७४ बें बोहे से लेकर सप्तम सोपान के २२ बें बोहे तक है उनमें कोई भी अर्थात्तर कथा नहीं है और जो प्रासंगिक कथाओं है उनमें कमावस्तु के संवहन में दोष मिलता है। कमावस्तु के प्रवाह में यदि बाधा होती है तो उपदेशात्मक अथवा महाकाव्य और श्लोक धारि प्राथमिक और अन्तिम र्धों की योजना सुलभी में रानी हेतु की है। क्योंकि यह मानस की महाकाव्य के साथ सर्व सम्बन्ध की कथावा चाहते थे। इन्हीं कारण उनमें पौराणिक प्रभाव है। यद्यपि यह पुराण नहीं है।

सुलभी के जो वृत्त अपने काव्य के हेतु सुलभी यह भारतीय साहित्य में चिरकाल ही वर्तमान था। यह रामायण महाभारत बृहद् कथा और पुराणों में था था ही। मानस महाकाव्य में भी बृहद् विधा में उनका उपयोग होता था था रहा था। महाकाव्य के हेतु कथात्मक का अन्तिम विचार धारित है यह उसमें समुचित रूप से उपस्थित है। मानस का आधिकारिक कमावस्तु सुगुणवति और सुवर्णित है।

बटनामों की अधिकता उनके सुन्दर कालित विकास क्रम और पात्रों की सक्रियता के कारण मानस में नाटक जैसी सजीवता भी पूरी मात्रा में मिलती है। भारतीय काव्य पात्रों के मतानुसार महाकाव्य के कथा संकलन में मुख्य और प्रासंगिक कथाओं का समुचित संकलन होना चाहिए और कथा के उद्देश्य का सुन्दर विकास भी आवश्यक है। इसके हिसाब से महाकाव्य में नाटक की संघियों का होना भी आवश्यक माना गया है।^१ हम देखते हैं कि योस्वामी जो के कथा विकास में इन बातों और नाटक की संघियों का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह हुआ है।

नाटक की पाँच कार्य अवस्थाओं मानस में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जो इस प्रकार हैं।

- १—प्रारम्भ
- २—प्रयत्न
- ३—प्राप्त्याशा
- ४—नियताप्ति
- ५—फलापन

प्रथम कथानुसार मानस से इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रारम्भ—रावण के परयाचार बर्णन में लेकर लक्ष्मण क विद्वान्मित्र के साथ यज्ञ रक्षा करने जाने तक की बटनामों।^२ इनमें रावण बच और राम राज्य की स्थापना के हेतु भीष्मवप उत्पन्न होना है।

प्रयत्न—राम बनबान से लेकर धूपनका प्रसंग तक की कथाओं।^३ इसमें कथा परमन्त शिव गति से फलापन की ओर धपसर होती है।

प्राप्त्याशा—सरदूपण बच और सीताहरण से लेकर हनुमान के सहा से लहर लाने तक की कथाओं।^४ इसमें एक ओर तो राम द्वारा रावण का धस्त क्रिय जाने का विश्वास होता है दूसरी ओर जटायु मरण और सीता हरण प्रादि से घावना भी बनी रहती है। सुग्रीव मंत्री से घाटा बङ्गी है।

नियताप्ति—राम को कुछ मात्रा में सु बंधन विभीषण मंत्री मघनाव और कुम्भकर्ण का बच प्रादि बटनामों नियताप्ति के भीतर प्राती हैं।^५

फलापन—रावण बच और राम राज्य की स्थापना।

१ शू पागबीरछाम्भनामैकीऽङ्गी रस इत्यते ।

अपनि सर्वेऽपि रसा सर्वे न टक सद्य ॥

विरचनाप—साहित्य दर्पण—सं० सं० ११७

२ मा० बा० पृ० १२८ से १४४ तक

३ मा० बा० अयो० धरष्य पृ० १०७ से ४८२ तक

४ मा० धरष्य० सु० पृ० ४८३ से २६२ तक

५ मा० सु० लवा पृ० १६३ से ६४१ तक

सातवाँ अध्याय



कुलसी का प्रथम सौष्ठव और ध्यान पद्धति

प्रथम शीघ्र—

कवाचस्तु का संगठन और सौष्ठव का सम्पादन

मानस की कवाचस्तु के संघटन पर प्रभाव डालने के पूर्व यह कह देना चाहिये कि उसमें धार्मिक तथा प्रथम सोपान के १७१ बें बौद्धों के (राज्य के परमाचार वर्तन से) प्रारम्भ होता है। और सप्तम सोपान के १७१ बें बौद्धों में राम राज्य वर्तन तथा राम के विभिन्न उपदेशों के बाह्य रामचरित महाकाम्य से सम्पन्न होती है। प्रारम्भ के १७१ बौद्धों और अन्त के ७० बौद्धों प्रथम की भूमिका और उपसंहार के रूप में है और उनमें से धार्मिक वर्तनों का कथा से भी सम्बन्ध नहीं है। कवाचस्तु की दृष्टि से उनका धार्मिक महत्त्व नहीं है। मानस पौराणिक टीका का महाकाम्य है। इन टीका के महाकाम्य में भूमिका और उपसंहार का विस्तार होता है। अतएव मानस के कवाचक को भारतीय टीका के महाकाम्यों की दृष्टि से नहीं देना चाहिये।

मानस की कवाचास्तु का संगठन न तो बिल्कुल पौराणिक रूप का है। न बिल्कुल राष्ट्रीय रूप के महाकाम्यों जैसा। इसमें प्रकीर्ण कथाएँ भी पायी हैं। यह धार्मिक कथाएँ प्रथम बार सप्तम सोपान में धार्मिक आई हैं। मुझ कथा प्रथम सप्तम सोपान के १२४ बें बौद्धों से लेकर सप्तम सोपान के २१ बें बौद्धों तक है उसमें कोई भी प्रकीर्ण कथा नहीं है और जो धार्मिक कथाएँ हैं उसमें कवाचस्तु के संगठन में योग्य मितता है। कवाचस्तु के प्रवाह में यदि कथा होती है तो उपदेशात्मक वर्तन महाकाम्य और स्तोत्र प्रादि प्रारम्भिक और अन्तिम वर्तनों की योजना चुननी न इकी हेतु की है। क्योंकि वह मानस को महाकाम्य के साथ बर्ष प्रथम भी बनाना चाहते थे। इती कारण उसमें पौराणिक प्रभाव है। यद्यपि वह पुराण नहीं है।

कुलसी न जो कृत प्रथम काव्य के हेतु चुना वह भारतीय साहित्य में विरक्तता से वर्तमान था। वह उपायय कवाचस्तु, बृहत् कथा और पुराणों से तो था ही। तादृशी महाकाम्यों में भी बृहत् दिनों से इनका उपयोग हुआ कथा या रहा था। महाकाम्य के हेतु कवाचक का अन्तिम विकास अर्थात् है वह उसमें उच्चतम रूप से उपरिष्ठ है। मानस को धार्मिक कवाचस्तु मुख्य वर्तन और मुख्यकथि है।

घटनाओं की प्रतिक्रिया इनके सुन्दर कल्पित विकास क्रम और पात्रों की सक्रियता के कारण मानस में नाटक जैसी सजीवता भी पूरी मात्रा में मिलती है। भारतीय काव्य पात्रों के महासुधार महाकाव्य के कथा संघटन में मुख्य और प्रारंभिक कथाओं का समुचित संघटन होगा चाहिए और कथा के उद्देश्य का सुन्दर विकास भी आवश्यक है। इसके हिसाब से महाकाव्य में नाटक की संघियों का होगा भी आवश्यक माना गया है।^१ हम देखते हैं कि योत्सामी जो के कथा विकास में इन बातों और नाटक की संघियों का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह हुआ है।

नाटक की पाँच कार्य अवस्थाओं मानस में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जो इस प्रकार हैं।

१—प्रारम्भ

२—प्रयत्न

३—प्राप्त्याद्या

४—नियताप्ति

५—फलामय

प्रथम कथानुसार मानस से इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रारम्भ—रावण के परयाचार बल्ल से लेकर लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ यज्ञ रखा करने जाने तक की घटनायें।^२ इनसे रावण बंध और राम राज्य की स्थापना के हेतु धीरेधीरे उत्पन्न होता है।

प्रयत्न—राम वनवास से लेकर शूषणका प्रसंग तक की कथायें।^३ इसमें कथा अत्यन्त तीव्र गति से फलागम की ओर अग्रसर होती है।

प्राप्त्याद्या—शरद्वपण बंध और सीताहरण से लेकर हनुमान के संका से उबर जाने तक की कथायें।^४ इसमें एक घोर तो राम द्वारा रावण का ध्वस्त किये जाने का विश्वास होता है बूझती घोर जटापु मरण और सीता हरण धादि से धारांका भी बनी रहती है। सुपीय मीची से प्राणा बढ़ती है।

नियताप्ति—राम की कुछ यात्रा सेगु बबल बिभीषण मीची मेघनाद और कुम्भकर्ण का बंध धादि घटनायें नियताप्ति के भीतर आती हैं।^५

फलामय—रावण बंध और राम राज्य की स्थापना।

१ गुरुवारकीरघाण्डनामैकीऽऽज्ञी रम इत्यतः।

धमनि सर्वेऽपि रघाः सर्वे नाटक समय ॥

विद्वत्नाय—साहित्य दर्पण—सं० सं० ११७

२ मा० बा० पृ० १२८ से १४१ तक

३ मा० बा० धर्मो० धरम्य० पृ० १०७ से ४८२ तक

४ मा० धरम्य० सु० पृ० ४८३ से २६२ तक

५ मा० सु० संका पृ० १६३ से ६११ तक

कार्यान्वित के हेतु कबानक में जो नाटक की संघियाँ हैं के मानस में इस प्रकार हैं ।

मुक्त संघि—इसमें राजण के पर्याचार बर्णन से लेकर राम के जन्म के कुछ समय तक पूर्व की बटनार्यें पाठी हैं । मुक्त संघि—
 पतिव्रत वैशि भरम की हागी ।

×

×

×

विरि कागन उन्हें तहँ बरपुरी ।
 रहे मित्र मित्र प्रतीक रचिकरी ॥^१
 प्रतिमुक्त संघि—प्रतिमुक्त संघि में राम जनपदम से लेकर सुमंत के पक्ष
 बौटने तक की बटनार्यें पाठी हैं । फल के बीज का यहाँ कुछ सबन और प्रत्यक्ष रूप
 में बिकास रहता है ।^२

पर्व संघि— जब ते राम कीन्ह तहँ बाधा ।
 से लेकर कोषवत तक राजन सीम्हेसि रम बँध्यम ।^३ तक ।

प्रबर्ण राम के बँयस में निवास करने के उपरान्त राजण द्वारा सीता के
 अपहरण तक की बटनार्यें इसमें पार्वेनी । इसमें पर्व संघि है क्योंकि यहाँ बँधकनन में
 राम के बाध के कारण मुनियों का सुखी होना तथा सरदूपण रूप प्रादि बटनार्या
 द्वारा पूर्व संघियों में निवेशित फल प्रदान उपर्य का बिकास और सीताहरण बटाहु
 मरण प्रादि में इसका ह्रास बिलसाई देता है ।

विमर्ष संघि— कोषनेस पतरप के बाधे ।
 से लेकर उठि बँठे लक्ष्मिन हरपार्ये ॥^४

प्रबर्ण किष्किबा में हनुमान निघम से लेकर सधमण के प्रकृि से मुक्त होने
 तक की बटनार्यें विमर्ष संघि के अन्तर्गत पाठी हैं । क्योंकि इसमें पर्व संघि की
 प्रवेसा फल प्रदान बिकास का कार्य प्रबिकरु हुआ है ।

विबर्ण संघि—राजण जब क बाध रामराज्य बर्णन तक की कथा में विमर्ष
 संघि है ।^५ क्योंकि यहाँ फलापम होता है और विभिन्न संघार्यो में बिचरे हुए पर्वो
 का उच कार्य मा प्रदान प्रबोजन में समाहार हो जाता है ।

उपमुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मानस में नाटकों के अंग की संघि योजना
 है । किन्तु यह नाटकीयता उसकी प्राधिकारिक कथा में ही है । प्रकरी कथार्यें जो
 छोटी और प्रासंगिक हैं उनके अन्तर्प में सहायक हैं । ऐसी प्रकरी कथार्यें यह हैं ।

१ मा० बा० पु० १३० १३३ तक

२ मा० पयो० पु० २७१ ३४४

३ मा० परम्य पु० ४७७ ४८४

४ मा० कि० लं० पु० ११४ से ११८ तक

५ मा० लं० उत्तर पु० ६२७ से ७१३ तक

- १—प्रह्लिया उदार
- २—नाइका बब
- ३—राबण बद्रायु बुद्ध
- ४—हुनुमान कालनेमि प्रसम
- ५—एषरी मिसन

प्रवांतर कपार्यो जो सबकी सब धार्मिक कथा क भीतर बाहर धारि घोर भग्न भाव में हैं । बहू यह हैं ।

- १—शिव चरित्र
- २—ब्रह्म विजय की कथा
- ३—कश्यप धरिति की कथा
- ४—नारद मोक्ष
- ५—मनु चरित्र
- ६—प्रतापमानु राबण चरित्र

इन्हें प्रासंगिक कथाओं के रूप में भी माना जा सकता है । इन प्रकार के मानस वा कथानक महान् सृष्टि सुमनसिष्ठ घोर महाकाव्य के स्वरूप हैं ।

कथा मन्दन में उपपुस्तक प्रकारों से प्रतिरिक्त राम चरित मानस वा प्रबन्ध धार्यन्त सुमनसिष्ठ घोर मनोगम है जैसा कि उम्हारे स्वयं ही कहा है ।

माया निबन्ध मति मञ्जुन मातमोति ।^३

इस मञ्जुमता वा संपादन मोस्वामी जी न धनेष्ट प्रकार से किया है । राम कथा के मुख्य स्तोत्र बास्मीकीय रामायण महामारत रघुवंश प्रथम राबण हुनुमान माटक घोर जैन रामायण हैं । परन्तु जो प्रबन्ध शीष्टक मोस्वामी जो न मानस में उपलब्ध होता है उसका सौंर्य बिसलण है । धपने इन प्रबन्ध धारि की सम्पन्नता क हेतु उम्होंने विभिन्न पूर्ववर्ती स्तोत्र कथाधा म कहीं बिस्तार कहीं नक्षेप कहीं जम परिवर्तन घोर कहीं बर्लन घोर जन्ना का त्याग धारि विविध उपायों से काम लिया है । उनकी इन प्रबन्ध धारि सम्झना कता का विवेचन यही प्रस्तुत किया जा रहा है ।

राम कथा काव्य की परम्परा में बास्मीकीय रामायण को धारि काव्य माना गया है । जब रामचन्द्र सिंहासन पर बैठ चुक तो अयशान श्रुति बहमीति न उनका चरित्र बनाया । जिसमें २४ ०० रसाक ३०० उप ठका ६ बाण्ट घोर उत्तर बांड मिसाकर सात बांड हैं जिनके नाम जमग यह है ।

- १—धारि बांड
- २—अयोध्या बांड
- ३—धरम्य बांड

४—किष्किन्धा कांड

२—मुत्तर कांड

६—पुठ कांड

७—उत्तर काण्ड

इस प्रकार काश्मीकि द्वारा रचित रामायण ७ कांडों में विभक्त है। परन्तु 'अध्यात्म रामायण' में प्रायः काण्ड को बालकांड और युद्ध काण्ड का लक्षात् काण्ड कहा गया है। गोस्वामी तुलसी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में भी ठाठ काण्ड है। और नाम के हों हैं जो अध्यात्म रामायण में हैं। 'पद्य पुराण' में भी राम कथा विद्यनी है। लेकिन उद्य कथा का विभाजन कांडों में नहीं है। स्वयं पद्य पुराण ३ खंडों में विभाजित है। जिसके पुष्टि लक्ष्य पाठान्त खण्ड घोर उत्तर खंड में रामचरित का वर्णन है। कथा का विभाजन विद्यमानुसृत हुआ है। जैसे सून तीनिक संवाद शेष के प्रति बलदासन का रामचरित विषयक प्रश्न राबल को मार कर राम का अवोप्या की घोष ज्ञाना सीता उद्दिष्ट मन्त्रि प्राप्त वर्णन इत्यादि।

'पद्य पुराण' में रामायण की भूमि कथा मही के बराबर है। इसमें तो इन समय का वर्णन है जब राम राबल को मार कर अवोप्या मोट घाते हैं उनका राज्याभिषेक होता है। राम सर्वश्रेष्ठी सीता का परित्याग करते हैं। काश्मीकि के आश्रम में सीता के दो पुत्र पैदा होने हैं। लक्ष्मी और कुबु। इकर प्रजाप्या में अक्षयैव जन होता है। सब पाका छोड़ा जाता है। प्रप के साथ समुद्र कीर भण्ड के पुत्र पुष्कस जाते हैं। उनका साथ बिद्याल अनुर्विनी सेना है। विभिन्न देवों के राज्याभों को वे परास्त करते जाते हैं। साथ में कुछ सब मदक का पकड़ लेते हैं मुठ हुआ है। जब श्रीर कुबु लारी बाहिनो को परास्त कर लेते हैं। मन्त्र में काश्मीकि उन्हें राम के बरबात में ले जाते हैं। इकर सबमय सीता को भी ले जाते हैं सभी नहीं मिलते हैं। हाकुड जब वा वर्णन श्री वृष्टि खंड में प्रस्ता है।

महाभारत के इन वर्ष में भी रामोपाख्यात है जो २० अध्यायों में विभाजित है।

अद्वैत रामायण में किसी भी प्रकार का कांड विभाजन नहीं है। यह कथा ही रामायण का मूल कथा से मिल है।

'धीमन्मानवत' में भी लक्ष्मी स्तंभ के दशम अध्याय में मन्वान श्रीराम की सीताप्राप्त का वर्णन है। किसी प्रकार के कांडों का विभाजन नहीं भी नहीं है। महाभारत की भाँति यहाँ भी कथा प्रसंगवत् ही पाई है। इसमें खंडों में राम कथा के रत्नबाहिषेक तक की कथा है। इसमें राम के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाएँ ही पा पाई हैं पूरा कथावक् गरी का लक्ष्य।

बहालना मुत्तान में भी राम कथा की लिखा है। काशी भावरी प्रजापिंडी कथा द्वारा प्रकाशित मुरतानर में बहुत खंड के लक्ष्मी स्तंभ में यह कथा वर्णित है।

‘बिंलु पुगाण’ क वर्गुन बंध में मगर और कट्टांग के साथ राम क वर्गि क वर्गुन मिस्रता है । इनमें तो बिंलो प्रचार का बिनाशन हो हा नहीं मरना क्यकि यही पुगाणकार ने राम के जीवन के बिभिन्न घना को नहीं मिया है बकि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मुने हुए को याद बिलान के लिए राम कबा पर सरसरी नजर दोड़ाई हो । ‘पध पुगाण’ में १०० अध्याय तथा १८८०६ श्लोक हैं ।^१ जिनमें पबिबत्तर राम कबा तथा उनके जीवन में सम्बन्धित पात्रा की ही कथा है ।

‘अध्यात्म रामायण’ में कथा का बिनाशन तो उन्हीं पात्र बंधों में है लेकिन कथा की गति किसी बांड म नहीं है । उनमें पबिबत्तर बर्नन और धर्म की बातें हैं । जिनकी संक्षिप्त बिबेचना धामे यदास्यान की आयमी । इसको कबा बास्मीकीय रामायण का अनुमगल करक ही बिमाशिन की गई है । बालराड कपाबस्तु से सम्बन्धित है । पबिबत्तर बांड में बास्मीकीय रामायण को बड़ी हूमें फिर मिस्र जाती है ।

जैन पुगाणों म भी राम कबा बिस्तारपूर्वक कहा गई है । इनम कबा यत्र-तत्र बिखरी हुई मिस्रती है । कथा का बिनाशन पर्वों में है । इसमें १२३ बें पर्व में राम को मोक्ष प्राप्ति के बर्सेन के पश्चात राम कबा समाप्त हो जाती है ।

‘बास्मीकीय-रामायण’ में राम की कथा पहले पहल पारव जो महर्षि बास्मीकि से कहते हैं ।^२ फिर महर्षि स्वर्ष अपनी बिष्य हृटि में राम के चरित्र को जान लेते हैं और उनका बर्णन करते हैं । परन्तु अध्यात्म रामायण में पार्वती के राम के पत्नीकिक रूप पर संका करने पर पिब जो उनकी शकू निवारणार्थ राम कबा मुनाते हैं । गिब राम क पत्म्य भल माने गय है । पहले क संक्षेप म पार्वती को मारो कथा मुना जात है । लेकिन पार्वती को इसम संताप नहीं हुआ और वे कहती हैं प्रभु राम कुछ पान रूप प्रभुत को मुना रहे हैं इसम मेरा मन तन्त नहीं हुआ । अतएव अब धाप बिस्तार से मुने राम कबा मुनाते की कृपा कीजिये । यह मुनवर पांडुर जी बोपे कि मैंने कुछ रीति में परम श्रेष्ठ अध्यात्म चरित्र राम के ही मुख से मुना है वह चरित्र तीनों भावों को मान बनने वाला है बही मैं तुम्हें मुनाता हूँ ।

एक समय में राज्यादि राज्यों क दुःख से दुःखा गी कप पारस्य की हुई पृथ्वी को सम्पूर्ण देवताओं और मुनीवरों को लेकर मैं बह्या जो के पास गया बहो देवताओं न बिष्णु की स्तुति की । तब भगवान प्रकट हुए । बह्या ने राजा के ममस्त प्रत्याचार भगवान को मुना बिपे तब भगवान ने कहा कि कवन और प्रबिदि जिन्होंने पूर्व काल में पाप तत्र किया है । मुने पुत्र कर में प्राप्त करने लिए वह प्राजकल बौधमजुरी अध्यात्मा में महाराज वारण और बौधिया के कप में प्रकट हैं । मैं उन्हीं

१ हिन्दुत्व—पृ० ४२६

२ बास्मीकि—बास्मीकीय रामायण धारि बांड—श्लोक ७ से लेकर श्लोक ६६ तक ।

न पर पृथक् रूप में व्यवहार हुआ। इसके बाद सम्भवतः व्यवहार होने तक का बही प्रकरण है जो गोस्वामी जी के मानस में निहित है।

परमपुत्र रामायण' में बर्णित राम जन्म की कथा कुछ निम्नलिखित है। इसमें भी राम की उत्पत्ति का हेतु नारद का ध्यापन बताया है किन्तु नारद के ध्यापन के हेतु यह मानस से निम्न है।

पद्म पुराण में भी राम जन्म का प्रसंग है यह ऊपर लिखे प्रसंगों से कुछ निम्न है। इसमें राम और राम जन्म का हेतु मनु और सतम्पी की तपस्या का हेतु बताया है जैसा कि गोस्वामी जी न लिखा है।^१

'महाभारत' में जो 'रामोपनिषत्' है उसमें राम जन्म की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। ब्राह्मीक की भाँति इसमें भी राम को बिष्णु का अवतार माना है।^२

श्रीमद्वाल्मीकि में तो पूर्ण राम कथा ही अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें भी राम जन्म का हेतु धनुष्य को मज्जान धी हरि का अवतार माना है। इसका आधार ब्राह्मीकिय रामायण है।

बिष्णु पुराण की राम कथा ही 'श्रीमद् भागवत' की ही भाँति है। इसमें गोस्वामी जी द्वारा मातृवत्पुत्र और ब्रह्माय संवाद जो बर्णित है उसकी प्रतिकृति है। इसमें लिखा है कि एक वन में सब देवताओं को अन्तर्गत रूप से कुछ में डार जाने के कारण दुःखी होकर भिन्न भी ने उनके माथ बड़ा मारी कुछ किया। पर वह महाबली रूप मारे नहीं मरता था। 'म' रूपराज की स्त्री परम सती भी उसी के प्रताप से सङ्कर की उसे नहीं मान पाठे के। प्रभु ने इस से उस स्त्री का व्रत मज्ज कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह मौर जाना तो क्रोध करके प्रवचन को ध्याप किया। उसी के ध्याप से प्रवचन ने अवतार लिया। इसमें नारद मोह की बही कथा आई है जो गोस्वामी जी ने 'मानस' में बर्णित की है। यह नारद ध्याप की कथा गोस्वामी जी ने इसी से ली।

गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक स्थानों से जोड़कर राम जन्म की कथाओं को अपने मानस में बड़े ही सौन्दर्य पूर्ण ढङ्ग में एकत्रित किया और इन कथाओं की 'मानस' में एक बृहत् भूमिका की सृष्टि की। गोस्वामी जी ने जो मानस की भूमिका प्रस्तुत की वह ब्राह्मीक 'रामायण' में उपलब्ध नहीं होती। सती की मोह होता है ठक संकर को उन्हें राम कथा सुनाने की बात उन्हीं प्राच्यात्म रामायण से ली है संकर पार्वती के विवाह का विवेचन है वह 'विष्णु पुराण' से तथा 'कुमार सप्तम' से प्रभावित है। इसी प्रकार ब्रह्माय और मातृवत्पुत्र का जो संवाद गोस्वामी जी लाये है वह 'बिष्णु पुराण' के आधार पर है। कस्यप और बर्हिषि की बात भी

१ प्राच्यात्म रामायण—बा० कांड—पृ० १५ से १० तक

२ पद्म पुराण—अक्षर अक्षर

३ महाभारत वन पर्व

महान विनयी है वह धाम्पात्म रामायण से ही है। इसके बाद मानस की मुमिका में नारद मोह को कथा घाती है वह विष्णु पुराण के धाम्पा पर है। इसके अनन्तर प्रबन्ध में मनु धीर कथना की कथा आई है जो पद्म पुराण के धाम्पा पर आधा रित है। प्रतापमानु की कथा भी वीरगणेश है इसके पश्चात् रावण के कथाधार का बर्तन धीर पुत्रों को गो रूप में ब्रह्मा के पास जाता धीर सब देवों की प्रार्थना से मयमान का इन्द्र के यही जन्म अनुसुओ मूर्ति में सेता यह धाम्पात्म रामायण के धाम्पा पर रचना गया है।

इस प्रकार बड़ा विरलुड मुमिका रक्त कर सब मोस्वामी जी ने राम की सब तरित कथाया है। इस मुमिका के विस्तार में भी मोस्वामी जी को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि काम कर रही है। वह यह कि मोस्वामी जी कथनाधार की पूर्ण प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। वह निगारा ब्रह्म माकार जैसे हुआ। इस विषय में विरकाल के संकायें बला या रही थी। यही तर्क मोस्वामी जी ने मरुदात्र धीर पार्वती के करवाया है। कि निष्ण ब्रह्म माकार बने हुआ। फिर उसका ममाधान त्रिम शीटब के साथ मानस का कथा म हुआ है वह रक्तन का बनना है। इस मुमिका में बड़ा ही सरलता से प्रबन्ध का प्रसिद्धि का गई है। प्रत्युत इस में मुमिका में 'चलित बुद्धि' को मिलाकर जो सरलता की प्रकृति दिखावाई है इतना वास्वामी जी के प्रबन्ध में सरलता के माध्यम से सर्व ज्ञान मुक्त का ज्ञान प्राप्त होया है वह उनका प्रबन्ध के शीटब ममात्म में योग के रहा है।

इस मुमिका में मोस्वामी जी के प्रबन्ध शीटब को जो मथने बड़ी बात है वह यह है कि प्राग्भिक कथा धार कथन धीर मोठाया के साथ चलनी है के है —

- १—माद्रवस्वयं धीर मरुदात्र मबाध
- २—रावण धीर पार्वती संवाद
- ३—काहनुमुओ धीर पद्म संवाद
- ४—नुसुओ धीर ज्ञान-ममात्र

विष्णु कथा की प्रबन्ध धारा में किसी भी प्रकार की बाधा उपपन्न नहीं होगी तथा स्वाभाविक रीति से चलनी रहती है और उसके समझने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी।

इसके बाद 'राजचरित मानस' नाम का एक नई विस्वामित्र के धाम्पात्र की पटना धानी है लकावि यह धनना धाम्पात्मिक महत्त्व लिये है। विष्णु इसमें फिर भी स्वर्ण की भावनाओं को अधिक प्रथम दिया गया है। धाम्पात्र गमायण की धानि संका ममाधान की प्रतापी को नहीं धपनाया गया है।

इसमें भी विस्वामित्र जो यह जानकर कि दुष्ठी का भार उठारने के लिये प्रभु ने जन्म लिया है राजा उदार के पास धन दत्त रखार्य राम को मांगने का है इनका एक हीरक मयमान के चरणों का दर्शन करना भी था।

इसके बाद मारा कर्त्तव्यक दाम्पतीकीय रामायण बँसा है लेकिन वही ऋषि विश्वामित्र राजा पर प्रेषित नहीं हुए । राजा अपने प्यारे राम का देना नहीं चाहते । किन्तु उन्होंने ऋषि से विनती करने हुए कहा —

मायतु मुनि पेतु बत कोठा । सर्वस देवें पातु सहरोषा ॥
देह प्राण तें प्रिय कसु नाही । सोउ मुनि देवें निमित्त एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय मोहि प्राण की नाई । राम केठ नहि बगद बोपाई ॥
कहं निश्चर प्रति मोर कठोरा । कहं गुदर सुत परम किमोरा ॥^१

राजा की इन बात को सुनकर ऋषि विश्वामित्र न तो विस्मित हुए और न क्रुपित हुए । बल्कि वे तो राजा के प्रिय राम से सभी वाणी सुनकर सब कुछ मूढ मयै । उनकी स्थिति का वर्णन मोस्वामी जी ने किया है ।

मुनि रूप पिरा प्रम रस यामी । हृदय हरय मुनि घग्ग ध्यानी ॥
तब बनिष्ट बहुविधि समुझावा । धृर छेदिह नाच कह पावा ॥^२

जब ब्रह्मिष्ठ ने राजा को अपने और बन्धुवाण की प्रत्येक बातें समझाईं तो राजा ने अपने हृदय में प्रसन्न होते हुए बड़े आदर से दोनों पुरुषों को बुलाया और हृदय से लबाकर उन्हें बहुत प्रकार की सिखा बी और ऋषि से कहा ।

येरे प्राण नाच सुत बोळ । तुम्ह मुनि पिता प्राण नहि काळ ॥^३
इसके बाद :—

तौपि रूप रिबिहि सुत बहुविधि बेह प्रणीस ।
बकनी बबन बए प्रसु बने नाह पब सीस ॥^४

यहाँ बड़ी भावुकता की बात है वह यह है कि जबतक समय राम न तो राजा बधरय को प्रत्याग करते हैं और न पाता से धाञा ही लेते हैं । क्योंकि इनमें पूर्वा परका सम्बन्ध है । सभी प्रणी उपर राजा यह कह चुके हैं कि —

सुम मुनि पिता प्राण नहि कोळ ॥^५

इसके आचार पर राम अपने दूसरे पिता विश्वामित्र के साथ हैं । अतएव उन्होंने अपने पिता से धाञा लेने की आवश्यकता न समझी ।

मोस्वामी जी क इस प्रसंग में विश्वामित्र क्रुपित क्यों न हो हुए । क्योंकि वे तो मरु क्य में राम के दर्शन करने राजा बधरय के यहाँ आये थे । वे जानते थे कि राजा बधरय का राम के प्रति मोह भावा का ही क्य है राजा के इन सौकरिक प्रेम को उन्होंने सतौटिक दृष्टि से देखा । सभी तो वे राजा की प्रेम रस में सभी वाणी पर

१ मा० बा० पृ० १४६

२ मा० बा० पृ० १४७

३ मा० बा० पृ० १४७

४ मा० बा० पृ० १४७

५ मा० बा० १४७

मुख्य हो बने। जबकि 'वास्मीकीय रामायण' में इन्हीं शब्दों में उन्हें चिढ़ा दिया था। गोस्वामी जी ने अपनी कथा को भक्ति के माध्यम से लेकर सर्व जन-मनसकारी बना दिया।

'अध्यात्म रामायण' में बसा धति बसा नामक बिद्याओं का नाम मिसठा है। मानस' में तो इतना ही कहा गया है।

तब रियि मित्र नाबहि जियं चीन्ही । बिद्यानिबि कहुं बिद्या योग्यो ॥

बाते साय न क्षुधा पिपासा । अतुसित बन तनु तेज प्रकाशा ॥^१

इसके बाद ऋषि ने सब अस्त्र अस्त्र राम को समर्पण किये। 'अध्यात्म रामायण' तथा मानस बनने के समय इन अस्त्र अस्त्रों का महत्त्व काफी कम हो चुका था इसी कारण कबाकार ने उन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया।

इसके उपरान्त मानस में जो राम कथा में ताड़का की कथा आई है वह भी 'अध्यात्म रामायण' के आधार पर है वास्मीकि के नहीं। 'अध्यात्म रामायण' में कथा तो बिल्कुल वास्मीकि की भाँति है, ऋषि का भाव भी वही है। लेकिन ऋषि ने यह धीर कहा कि तेरे आधार की शिक्षा पर अब राम और रक्षोमें तब तेरा उद्धार होगा। इसी शिक्षा स्पर्श द्वारा अहिंसा उद्धार की धीर संकेत करता है। 'मानस में यौतम की पत्नी अहिंसा थाप बघ पत्थर का देह धारण करती है। तुमही न मिया है —

यौतम नारि थाप बघ उपल दह बरि धीर ।

बरल कमल रज बाहति रुपा करहु रघुबीर ॥^२

श्री राम के पवित्र धीर धीरु के नाश करने वाले परणु का स्पर्श पाते ही सबभुज वह तपोमूर्ति अहिंसा प्रकट हो गई। वह हाथ छोड़ कर उनके चरणों में बिपट गई। धीर उसके दोनों नेत्रों से प्रेमाशु बहने लगे। प्रभु की धनेक प्रकार से वह बिलती करके अपने पति यौतम ऋषि से जा मिली। प्रस्तुत प्रसंग गोस्वामी जी ने मर्यादा के अन्तर्गत में बड़ा ही सौष्ठवपूर्ण प्रस्तुत किया है। यौतम नारि थाप बघ कह कर उन्होंने कितने सौष्ठव के साथ यौतम ने थाप की धार संकेत किया है। उस थाप का पूर्ण उल्लेख नहीं किया। इसमें गोस्वामी जी की मर्यादा का पावन है। इसी से यह धरलोल न होकर मर्यादा से पूर्ण होने के कारण सौष्ठव संपादन में योग्य दे रहा है। पूर्ववर्ती कथाओं के प्रसंगों में ऐसे ही कई स्वप्न में घटनाओं को संक्षिप्त कर गोस्वामी जी ने अपनी प्रबन्ध कथा चित्रण में जो सौष्ठव की सृष्टि की है वह अमि नन्वनीय है।

अध्यात्म रामायण में अहिंसा उद्धार की कथा के बाद राम लक्ष्मण धीर

१ मा० बा० पृ० १४७

२ मा० बा० पृ० १४४

विश्वामित्र के रथों पार उठने का प्रसंग आता है। यथात् अहिम्सा का धारण विविधा में न होकर रथों के इधरी पार या। इसी प्रकार माण्ड में है।^१

बभ्रुव यज्ञ के बारे में 'वाल्मीकीय रामायण' में यह एक बात मिलती है। यह कि यह यज्ञ कोई एक दिन का नहीं था बल्कि यह एक ही एक वर्ष के अन्त रहा था। राजा जनक स्वयं विश्वामित्र से कहते हैं। हे मुनि धनेक राजा सोय मा धा कर मुझसे सीता को माँगने लगे। उन्हें मैं यहाँ बस बैठा कि यह क्या बीर भूला है। तब तब राजा इन्द्रो होकर अपने बल की परीक्षा के लिए विविधा में धारण। उस समय धिब के बभ्रुव को जाकर मैंने उसके धारण रख दिया। परन्तु वे उसे उठा भी न सके। इसलिये मैंने उन्हें निवस भालकर धारणी कृपा नहीं था। उस समय राजा सीता ने विविधा को धर लिया और मुझ बड़ी पीड़ा दी। इस पेशा बैठी में एक बरस बीत गया। तब मैंने बुद्धि हो देवताओं को प्रसन्न कर लिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझ सेना दी। मैंने उस सेना की सहायता से यज्ञ को मार भवामा।^२

अध्यात्म रामायण में तो यह मिलता है कि सब राजा उस बभ्रुव को देख चुके थे और उस का पुत्रन करके असे भये थे। राजाओं से जनक का कुछ हुआ था इसका बलुन नहीं मिलता।

पोस्वामी तुलसीदास जो द्वारा रचित 'मानस' में बभ्रुव यज्ञ एक दिन हुआ। उस दिन धनेक राजा राजस्य धारि धारण धारण बल को धारणाने बभ्रुव यज्ञधारा में धारण। हे सब महारथबीर राम के रूप का देखकर धारण अन्त में डर लगे। तबकिम अन्त राम ने बभ्रुव को धारि धारि उठाने सीता भी को देख कर कुछ राजा अन्तका उठे। वे धारण उठकर कन्त पङ्कन कर नहीं उहाँ मात बजाने लगे। कोई कहे थे कि सीता को धीन सी धीर राजकुमारों को पकड़ कर बाँध लो धारि जीते लो राजकुमारी को लीन निवाह बरुता है। धारि अन्त कुछ सहायता करें तो कुछ में लोगों माइकी सहित लगे भी बीत लो। इन प्रसंग में राजाओं के बभ्रुव न उठा सकते पर जनक भी धारणतु बुकी होकर रामाया से विरुधा पूरा उत्तर देते हैं।

कुषरि मनीहर बिजय धारि कीरति धारिबभ्रुवमीय।

धारिबिहार धारिधि अनु रथैव न बभ्रुवधारीय ॥

कहहु काहि यह साधु न थाका। काहुँ न संकर धारि बड़ावा।
रुद्र अन्तध धारि धारि। धिधु धारि धुनि न धारि धारि ॥
धारि धारि कीरि धारि मटमानी। धीर धारि मही धारि धारि ॥
तबहु धारि धारि धारि धारि। धारि न धारि धारि धारि ॥^३

१ अध्यात्म रामायण—वाल्मीकीय—पृ० ५०

२ वाल्मीकीय—वाल्मीकीय रामायण—वाल्मीकीय पंचमपाठितय धारि

१ से २७—५० धं० १९६ १९८

बास्मीजीय रामायण' में जनक देवताओं की सेवा से मिलने में पहले सहाय से लगते हैं। गोस्वामी जी ने जनक से उपपुत्र बचन कहसाकर प्रबन्ध द्वारा में एक अनुपम मौलिकता ला दी है।

इस सबके समाप्ति मानस में एक प्रसंग विस्तृत गया है जो अन्य रामायणों में नहीं मिलता। जब राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ निवृत्ता प्राये ठी के एक मध्य प्रायम में ठहरे। लक्ष्मण ने जनकपुर देखने की प्रमिताया प्रकट की। राम उनके भाव को ठाड गये और ऋषि से आज्ञा लेकर जनकपुर देखने चले।

गोस्वामी जी ने जनकपुर की घोषा का एक मध्य चित्र उपस्थित किया है। इसके बाद राम लक्ष्मण को देखकर वहाँ पुरबासिया के हृदय में जो भाव उठे हैं उनको भी कवि ने प्रति सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि में अपनी काव्यमयी भाषा में कलात्मक ढंग से प्रकट किया है।

सभी पुरबासी उनके इन साक्ष्य को देखकर मोहित हुए पर और अपने हृदयों में यह कामना करने लगे कि सीता जी का विवाह राम के साथ हो।

दूसरे दिन प्रातः काम राम लक्ष्मण को साथ ल। बाटिका में पूजन के लिए फूल लेन गये। सीतामय से सीता जी भी अपनी सन्धियों को साथ लेकर सीपी पूजन क हेतु आई थी। राम के अनुपम रूप को देखकर सीता जी अद्भुत कड़ी रह गई। राम भी सीता जी को और आकर्षित हुए। सीता जी की सन्धियाँ राजकुमारी को देख मुस्कराने लगीं। सीता जी ने अपने हृदय में पूरा रूप से राम को बसा लिया। इसके बाद वह गिरिजा क मन्दिर में गई। वहाँ उद्दाम गिरिजा से घनेक प्रकार की प्रार्थना की कि वे उनके मन को कामना को पूर्ण करें। यह पूरा हृदय भ्रम रामायणों में नहीं मिलता। यह हृदय भी गोस्वामी जी की अपनी मौलिकता से पूर्ण है। जठार नर्यादा के पासक तुलसी को लिखने में इन मूर्ति क सुन्दर प्रसंग का बखान उनकी महान उदारता का चोकर है। इनमें यह भी स्पष्ट होता है कि उद्दामे अपने काव्य में भाटकीय तत्त्व को प्रसन्न रूप के आधार पर महत्त्व दिया है। जो चम्पारण रामायण में अपने मूल रूप में मिलता है। इस प्रसंग में गोस्वामी जी की अपनी मौलिकता यह है कि उन्होंने अपने इन प्रसंग में राम और सीता जी का प्रम-वर्णन को किया है वह पुनीत है। श्रमिका सन्धे इस स्थल पर मिलता है।

मुमिरि सीय नागद बचन जगो प्रोत पुनीता ।'

सांसारिक वासना वाला प्रम का चित्रण नहीं। इनका प्रभाव भी है वह यह कि गोस्वामी जी ने राम और सीता दोनों के ही हेतु अग्रवा और अकीर का उदाहरण रखा है।

राम— प्रसक्तहि फिरि चितये तेहि घोरा ;
 तिम मुख तति भये नयन खकोरा ॥^१
 सीता— अधिक सनैहु देह में मोरी ।
 सरद ततिहि अनु चितव बकरोरी ॥^२

बकरोर बन्धुमा को कभी भी छु नहीं पाता । उसका प्रेम बन्धुमा के प्रति निष्कपट और पवित्र है । वह अपना सर्वस्व बाध कर प्रियतम में मिल जाने की भावना रखता है —

पिय सा भिमो भूमति बनि ससि सेकर के बात ।

बहु बिचार संकार नित यहै बकार बबात ॥

प्रसक्त राम और सीता की कहे हेतु भी बन्धुमा और बकरोर का उदाहरण रख कर मोस्वामी की उनके पवित्र प्रेम को प्रकट कर रहे हैं । कौन है ऐसा महाकवि जो प्रेम जैसे प्रकरण को इतनी पवित्रता और झोठव पूर्ण हँस से अभिव्यक्त कर सके ।

विश्रिा की पूजा भी मानस में करवाई गई है, ध्यान नहीं । इसका कारण यही हो सकता है कि मोस्वामी की ने अपने बचन में शिव को महत्व दिया है । इस प्रसंग में जो मोस्वामी की ने प्रेम की भासिक अनुसृष्टियों को कलात्मक सूत्रिका से चित्रित किया है उससे भी उनके प्रबन्ध कथा रीति में झोठव उत्पन्न हो गया है । ऐसी पीछनी प्रबन्ध झोठव में बाध की बिसेरती हुई घाई है ।

देखि धीव सोभा सुनु नावा । हृदय सराह्य बचनु न पावा ॥

अनु बिरचि सब निज तियुनाई । बिरचि बिस कहै प्रवटि देखाई ॥

सुखरता नहुँ सुखर करई । सबिबुद्धं शोषसिमा अनु बरई ॥

सब लपमा कवि रहे बुझरी । कहि बटठरी बिदेहुमाटी ॥

सिम सोमा हिम बरनि प्रभु भापनि वखा बिचारि ।

बोले सुनि मन अनुज सन बचन समक अनुहारि ॥

ताठ बनकठनया यह सोई । अनुपबन्ध येहि कारण होई ॥

पूजन पौरि सती ली घाई । करत प्रकासु फिरर पुसवाई ॥^३

मोस्वामी की ने प्रबन्ध 'मानस' में कलात्मक शब्दों के द्वारा भी कथा-पारत में झोठव लाने का प्रयास किया है और इसमें यह पूर्ण सफल भी हुए हैं । प्रस्तुत प्रकरण में प्रायश शब्दों की काकी बिबेचना पूर्ण प्रकरणों में की जा चुकी है । यहाँ प्रस्तुत उदाहरण में जो दो मा नों के पूर्व 'सोई' शब्द धार्या है वह मोस्वामी की की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है और साथ ही कलात्मक सीरव की अभिवृद्धि करने वाला

१ मा० बा० पृ० १११

२ मा० बा० पृ० ११२

३ मा० बा० पृ० ११२

है। सक्रमण से राम अपने मन की बात बतला रहे हैं। धीरे यह कहते हैं कि सक्रमण यह जनक की बही कन्या है जिसके लिए अनुप यज्ञ हो रहा है। प्लान्ड महाराज जनक की सीता के धर्मपत्न रमिता भी एक कन्या थी। गोस्वामी जी ने सोचा कि यह जनक की कन्या है जबस यह कह देंगे से हो सकता है कि इससे माय स्पष्ट न हो जनक के एक धीरे कन्या होने के कारण। अतएव राम ने कहा कि यह वह कन्या है जिसके लिये स्वयंवर हो रहा है। स्पष्ट है राम का संकेत सीता की धीरे है। यदि गोस्वामी जो केवल जनक की कन्या का ही प्रस्ताव करके छोड़ देते तो बड़ा अनर्थ उपस्थित हो जाता। क्योंकि राम जनक की कन्या ही है जिस प्रेम पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं धीरे रमिता तो माये सक्रमण की पत्नी होने से उनकी पुत्री तुल्य ही हो सकती है। अतः यहाँ गोस्वामी जी ने सोई धार्य लाकर मर्यादा पूर्ण रूप से जो प्रकरण को स्पष्ट किया है उसका सौष्ठव दर्शनीय है।

‘वास्मीकीय रामायण’ में अनुप यज्ञ का अणु एक व्यवस्थित समा के रूप में नहीं मिलता। तुलसीदास कृत भागवत में समा का भव्य वर्णन हुआ है। जिससे उनके प्रकरण के कथानक में रमणीयता पा गई है।

‘वास्मीकीय रामायण’ में परशुराम राम को उम समय रास्ते में मिलने हैं जब वे बिबिता से सीता को पाछिग्रहण के बाद मयोध्या ले जा रहे थे।^१

अध्यात्म रामायण में परशुराम सम्बन्धी बटना ठीक इस प्रकार है। लेकिन रामायण का विषय से अध्यात्मिक रूप होने के कारण परशुराम से राम को स्तुति कराई है।

‘भागवत’ में परशुराम अनुप यज्ञ के समय ही बिबिता में पा जाते हैं धीरे तथा मंडप में आकर लाल लाल नेत्रों से राजा जनक से कहते हैं।

प्रति रिश बोले बचन कठोर। बहु जड़ जनक अनुप केहि तोर ॥

बैधि देखाइ मूढ़ ननु धाड़। उलटउं महि जेह सयि तब राड़ ॥^२

जब परशुराम के क्रोध से राजा जनक मयभीत हो गये तब राम ने प्रति विनीत भाव से कहा है मुनि प्राप क्रोध न कीजिये। सिब का अनुप प्रापके किसी नेबक ने ही तोड़ा है। हम पर परशुराम का क्रोध धीरे भी बढ़ गया। सक्रमण से नहीं सहा गया उन्होंने परशुराम से कहा—

बहु अनुधीं तोरीं लरिवाई। कबहुं न प्रसि रिश कोन्हि सोवाई ॥

एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृष्टुल बेतू ॥^३

इस प्रकार महर्षि का क्रोध धीरे भी ममक उठा। धीरे बहुत ममक तक

१ वास्मीकि—वास्मीकि रामायण—जिसपतलिम/मर्ग ७३—रसोक्त संख्या १ मे २४ तक—१४० १४२

२. मा० बा० पृ० १७७

३. मा० बा० पृ० १८८

सकमण घोर परशुराम से बार विवाह हुआ रहा । महुँचि बार बार चिक् कर सकमण को मारने के लिए अपना परसु दिखसात घोर बुलाई देते हैं कि कोई महु न कहना कि मैंने बामक की दुया की । यह बासक मति नीच घोर छीठ है ।

सकमण मति ध्वंज्यपूर्ण बाड़ी में परशुराम को छतर दे रहे थे । परशुराम बार बार अपने पीर्य का बखान करते तो सकमण छतर देते थे ।

अपने मुह तुम्हें आपनि करनी । बार अयेक मति बहु बरणी ।^१

सकमण हर बात में उनका उपहास कर रहे थे । पूरा परशुराम सकमण तंबार तुलसीदास जी की अनुपम मौलिकता पूर्यें रचना है । जिसकी समता किसी भी रामायण में नहीं मिलती ।

जब बात बहुत बढ़ गई घोर परशुराम जी बार बार अपना परसु तंत्र करने लगे तब राम उठे घोर उम्हारे मति विनीत स्वर में मर्वाबातुकुल बचन नहै—

अनिम लघु बरि धमर सकामा । कुल वस्तु तेहि पार्बर घामा ॥

बहुवं भुभाय न कुमहि प्रसंसी । कासहु बरहि म रन रघुवंसी ॥

बिप्रबंध के मति प्रभुगाई । धमम होइ जो तुम्हहि देराई ॥^२

मुनि मुहु भूइ बचन रघुपति के । उबने पटम परभुबर मति के ॥

यह सुनकर परशुराम को ज्ञान हो गया घोर उम्हारे अपना तंहेह पिटाने के हेतु कहा ।

राम रमापति कर नमु सिंह । लंचहु मिटे घोर लंहेह ॥

देत बापु बापुहि बलि मयक । परशुराम मज बिसमय भयक ॥^३

इसके बाद परशुराम मनेक तरह राम की स्तुति करके चले गए । इस प्रबंध में परशुराम का तब राम ने मही छीबा । बनिद अनुप को घूने से ही अपना प्रताप दिखसा दिया । सम्भव हो सकता है कि तुलसीदास जी अपनी मर्वादा की सीमा के भीतर एक अक्षर की शक्ति को दूसरे अक्षर में लपट नहीं करना चाहते थे बल्कि उसका तात्पर्य तो कैवल्य इतना ही था कि परशुराम को राम के दलौकिक रूप का ज्ञान करा दें । इसके अलावा उपर्युक्त प्रसंग में धाम बर्ये बाहुल्य पीरक पादि की मर्वाबातों को भी तुलसीदास जी ने अपनी सखबी से पूरी तरह निबाहा है ।

प्रस्तुत प्रसंग दोस्वामी जी के प्रबन्ध लीट्यन का भीठा सामता बिन प्रस्तुत करता है । क्योंकि इसमें एक तो विवाह के बाद न आकर रंघुमि में जो परशुराम का धामन दिखसाया है इसके राम का प्रभुत्व सब राजाशा के बीच में जम गया था ही परशुराम द्वारा इनके दिने हुए अनुप को राम वहीं बका देते हैं वह दिखसा कर राम की बीरता का प्रभाव दिख में छा गया । दूसरे परशुराम से राम की स्तुति

१. मा० बा० १० १२०

२. मा० बा० १० १२१

३. मा० बा० १० १२१

को गोस्वामी जी ने करवाई है वह भी राम के महत्व को धीरे-धीरे सौंर्य-
 छित कर रहा है। अतः गोस्वामी जी ने बास्मीकि जी के आचार पर परचुराम का
 आयमन विवाह के उपरान्त न बिल्लता कर मग्न धामा में विखला कर अपनी प्रवृत्त
 आरा में सौंर्य का संपादन किया है।

'बास्मीकीय रामायण' में बखित विवाह का बर्णन ईसा से पूर्व के समाज में
 प्रचलित यज्ञादि को धार्मिक महत्व देता है। जबकि तुमसोदास के 'मानस' में बखित
 विवाह बर्णन में मध्यकालीन राजपूत प्रणाली के विवाह की पूरी छाप है। अन्य राम
 कथाओं में विवाहोत्सव का बर्णन इतना विस्तार पूर्वक नहीं है।

'मानस' के अयोध्याकाण्ड में अयोध्या रामायण की भाँति मरस्वती मंत्रा की
 बुद्धि प्रकट करती है। लेकिन सरस्वती देवताओं की नीच बुद्धि पर तथा पुष्पी के
 मायी कल्याण की सोच कर यह काम करने के हेतु तैयार हो जाती है।

इसके बाद मंत्रा की कुमन्त्रणा का बखन उसी बास्मीकीय रामायण की
 भाँति है लेकिन इसमें मौलिकता यह है कि मंत्रा को मायावेश न ही यह सब
 एकदम पुरा नहीं करती। बल्कि वह बड़ी कुशलता से अनेक उतार चढ़ाव देकर
 कैकेयी के हृदय को बलवती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अतना तुमसो का बखन मंत्रा
 के बारे में पूछा है। अतना अन्य किसी भी कथाकार का नहीं। मंत्रा जब अपनी बात
 का प्रभाव कैकेयी के हृदय पर अमते नहीं देखती है तो एक तरफ तो बहुत गहरी
 आन से अपने मन्त्रा को पूरा करने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर वह राम की
 महाभूमि का पात्र भी बनती है।

बास्मीकीय रामायण में राजा अक्षय ने विभिन्न राज्यों के राजाओं को
 बुला कर उनकी अनुमति से राम के राज्याभिषेक की घोषणा की थी।^१ लेकिन
 'मानस' में अक्षय बखित की सलाह से राजा इस विषय पर राज समा में विचार
 करते हैं और अंत में कहते हैं।

ओ पंथहि मत मागे लीका । करहु हरवि हिय रामहि टीका ॥^२

इसमें बास्मीकीय रामायण से धार्मिक स्वाभाविकता है। इसके अलावा मानस
 के बर्णन में हर एक स्वयं पर मर्मांश और राम के मगदान कर्म में धार्मिक का हृदय
 ध्यान रखा गया है। बास्मीकीय में कथाकार स्वाभाविक विषय में इतना सचेत
 नहीं है।

बास्मीकीय रामायण में अयोध्या नवा पार कर्म न पश्चात् राम पुरवासियों
 को भोगा ही छोड़ कर चल दिये। जब पुरवासियों की निम्न तुमसो तो वे अनेक प्रकार
 से विनाश करने लगे और निताय हाकर अयोध्या लौट आये।

१ बास्मीकी—बास्मीकि रामायण—अयोध्या काण्ड—श्लोक १ मे ५०
 तक—द्वितीय सर्ग।

२ मा० बा० पृ० २१६

अध्यात्म रामायण में तो भगवान् धीरे-धीरे कर्म-सम्भारों को ही भगवत्ता की भावनाओं में व्यक्त किया गया है और मानस में राम के प्रति भगवत्ता का धम्म-श्रीम है न जिसमें कुछ तो उनके भगवान् स्वरूप के कारण और कुछ कैकेयी के द्वारा किये गम्याय की प्रतिहिंसा के कारण भगवत्ता को उनके बिच्छु में रोना हुआ दिखाया गया है ।

इसके बाद मानस में अयोध्या कांड में कैकेय का प्रसंग आता है । 'वाल्मीकीय रामायण' में तो वह राम का उल्लास नहीं है बल्कि स्वतन्त्र राजा है ।

तुलसी के 'मानस' में भी रामायण की पार करने के पश्चात् राम के अंगरेपुर पहुँचने तक मार्ग में किन्हीं नदियों का वर्णन नहीं है । अंगरेपुर में विद्याय राज सुहृ राम को अपने बन्धु बाँधवों के साथ भूमि-कसारि की भेंट देने गया । राम के दर्शन पाकर वह कहने लगा कि आज मैं बन्धु हो गया । मेरी निमटी भाग्यवान् पुत्रों में हो गई । जो आपके दर्शन प्राप्त हुए । यह पृथ्वी धन धीरे-धीरे राज्य आपका है । मैं तो परिवार-सहित आपका भीच ठेकक हूँ ।

'मानस' की यह अन्तिम पंक्ति महत्वपूर्ण है । 'वाल्मीकीय रामायण' में सुहृ एक स्वतन्त्र राजा के धीरे-धीरे राम से मिलता था । उसके साथ कुछ मन्त्री धीरे-धीरे विद्याय राज प्राये । अध्यात्म रामायण में वह पहले से राम को सत्ता-सम्बोधित करता है । मानस में वह पहले अपनी नीचता प्रदर्शित करता है । इस कथन में तुलसी का अपना सामाजिक दृष्टिकोण लक्षित है । अपने मानस में कवि ने उसको भीच-ठेकक का माना है । उन्हें अपने काव्य में नीच कहा है और अन्य बलों के प्रति उसकी धम्म-श्रीम भी प्रदर्शित की है । यही तो उनकी मर्मांश की रस्ता है । कुछ ही तरह अन्य बलों का संस्थात्मक दृष्टिकोण दिखताया है । जिससे राम सब विद्याय राज सुहृ को समा करते हैं ।

अंगरेपुर एक राज ठहर कर सबसे प्रस्तावना मंगा नहीं पार की । राम ने सुमन्त्र को अयोध्या वापस लेज दिया । इसके पश्चात् धन मार्ग में उन्हें अनेकों बाँध-मिले । मानस में आभीण पुत्रों और स्त्रियों के हृदय में राम सीता लक्ष्मण के प्रति जो सद्भावनायें पड़ती हैं उनका बड़ा ही रोचक वर्णन है । ऐसा वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है ।

'वाल्मीकीय रामायण' में बहिरंग प्रसंग के अनुकूल जब राम लक्ष्मण धीरे-धीरे अपिचों के पापों पर पहुँचते हैं तो श्रुति उनका मानसोचित स्वागत उत्तर करते हैं लेकिन 'अध्यात्म रामायण' में श्रुति यह कहकर कि भगवान् राम आपसे हैं उनकी पूजा करते हैं । इसी प्रकार 'मानस' के प्रसंग में भी जब राम वाल्मीकि की से अपने ठहरने योग्य स्थान के बारे में पूछते हैं तो अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि उत्तर देते हैं कि हे भगवान् आप सर्वत्र हैं । मुझसे माहृक उपहास नहीं करते हैं । आप तो सर्व-विद्याय-वर्षी हैं । मैं आपकी वशा-स्वाय-बतलाऊँगा । इसी प्रकार का भाव-भाव में भी व्यक्त है । परन्तु मानस में जो १४ पद्यों के विचार व्यक्त कर उनमें

राम का निवास बतसाया है वह बड़ा ही स्वामाधिक तथा मौलिक है। 'बास्मीकिय रामायण' में राजा अष्टपुर में पड़े इन राम के बियोग में शोक से व्याकुल है। तभी कौटिल्या ने उनसे बहुत बचन कहे।^१ मानस में तो कौटिल्या कोई भी कटु नहीं बोलती बल्कि वे तो इन सबको धर्म कह कर स्वीकार कर लेती है। तभी तो जब उन्होंने राम के बदनबास का समाचार सुना था तो उनकी पति सीता से पूछकर की सी हो गई थी कि पिता की आज्ञा के सामने मैं क्या करूँ। राजा जब अधिक व्याकुल होते तो कौटिल्या को कहती है —

धीरज धरिष त पादम पाक । नाहि त बुद्धिहि सहु पत्रिबाक ।

जौ जिय धरिष बिनय पिय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहि बहोरी ॥^२

कुलसोदास भी अपने मानस में दखरण के एक मर्यादा युक्त परिवार का बर्णन करते हैं। बास्मीक जीवन की स्वामाधिकता जिन एक राजा के परिवार का पदार्थ विषय करते हैं।

जब भरत ने अयोध्या में आकर यह सुना कि पिता का स्वर्गवास हो गया और राम लक्ष्मण सीता बग को चले गये तो उन्हें अपार दुःख हुआ।

बास्मीकीय रामायण में कौटिल्या भरत को धनैक बठार दाय्य कहती हुई उन्हें बोली ठहराती है।^३ मानस में बोली भरत नहीं है। बल्कि बिबाठा ही बाम हो गया है। मानस के बर्णन में माय्यबास का सहाय लेकर एक धार्मिक एवं मर्यादा का पासन किया है। बास्मीक रामायण में श्री स्वभाव एवं वात्सल्य प्रेम में निहित मानबोधित स्वार्थ की ओर पूरी दृष्टि रखकर धरिष का बिवास किया गया है। मानस में पारिवारिक धर्म की मर्यादा तथा धर्मिय मानु प्रेम के बलीभूत होकर ही भरत राज्य नहीं समाप्त है। अघ्यारत रामायण में मगवान की अनुपस्थिति में भरत ईशे राज्य संभाल सकते थे।

शुभवेरपुर पहुँचने पर वह गृह से मिल। बास्मीकीय रामायण में गृह के हृदय में बोड़ा शोक कैसे उत्पन्न होता है जिससे वह अपने मस्ताहों को साबधान रहने के लिए कह कर भरत को यँ केने जाता है जिससे सारा राज मानुम हो सकें।^४ परन्तु मानस में तो एक बार ऐसा दास होता है कि उसने सड़ाई को सारी तैयारी कर ली और बूझ करने वाला है। कोई अज्ञानक छीक सडा। तभी किसी

१ बास्मीक—बास्मीकीय रामायण—बत्वारिषास्वर्ग ४२ पृ० २७८
२८०—अयोध्या काण्ड

२ मा० अयो० पृ० १३१

३ बास्मीक—बास्मीकीय—रामायण—अयोध्या काण्ड—सर्ग ७३ बतोर
मर्यादा १ से १६ तक।

४ बास्मीक—बास्मीकीय रामायण—अयोध्या—काण्ड—सर्ग २४ बतोर
मर्यादा १ से १० तक।

सामु पुर्य ने कहा कि भरत की बात पहले जान ली फिर धारम्यस्य करो । तब यह भेंट लेकर भरत के पास जाता है ।

'वाल्मीकीय रामायण' में जब भरत भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे तो ऋषि का हृदय सर्पकृत हुआ । उन्होंने भरत से पूछा कि हे राजकुमार ! तुम तो राम्यसासन कर रहे थे । मत्सा यहाँ तुम्हारे भ्राते का क्या प्रयोजन है ।^१ 'मानस' में जब भरत भरद्वाज के यहाँ पहुँचे तो वे मन में सोचने लगे कि जब महर्षि कुछ पूछेंगे तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा । लेकिन ऋषि ने तो कुछ सँका नहीं श्री बल्कि सबका झंटा होकर कहा :—

मुनहु भरत हम सब मुधि पाई । विधि करतव पर कछु न बघाई ॥^२

'धर्म्यात्म रामायण' में भरद्वाज भरत के ऊपर सन्नेह तो नहीं करते हैं । भरत के जाने पर यह कीर्तुहलबस प्रश्न प्रश्नय पूछते हैं कि हे भरतमुनिवों के मन में इस प्रकार यहाँ बल्कसावि कुछ भ्राते का क्या तात्पर्य है ।

बातचीत के पश्चात् भरद्वाज मुनि ने अपनी कामधेनु गाय के प्रभाव से भरत को सेना और परिवार सहित बाबत ही । 'मानस' में भरद्वाज ने ऋषि तथा सिद्धियों की सहायता से यह काम किया । 'वाल्मीकीय रामायण' में बाबत में मौस मन्त्रिण का भी बर्णन है ।^३ धर्म्य राम कथाओं में नहीं ।

'मानस' में एक घटना को इस स्वस पर और विस्तार दिया गया है यह है चित्रकूट में जनक ने प्रागम्य की जो प्रम्य कथा काव्यों में नहीं मिलती । नोस्वामी जी का यह प्रसंग बड़ा ही मौलिक और स्वाभाविक है । क्योंकि राम को ऐसी विपत्ति में समी देखने वाले और उनके समुद्र जनक ही उन्हें देखने नहीं न जाने यह कुछ स्वाभाविक नहीं समता । नोस्वामी जी ने इस घटना को जोड़ कर अपने प्रबन्ध सीपुत्र में और भी बार बार लबा दिये हैं ।

चित्रकूट में भरत मिलाप का हृदय प्राय सभी रामायणों में एक-सा है । 'वाल्मीकीय रामायण' में व्यवस्थित रचना के बारे में नहीं लिखा है । 'मानस' व 'धर्म्यात्म रामायण' में पूरी रचना चित्रकूट में बैठती है और रमा तुम्ह ही कार्यवाही नहीं होती है । यह रमा 'मानस' की अपनी विधिष्ट महत्त्व रखने वाली है । पुण्ड्र जी ने तो इसे एक प्राप्प्यात्मिक घटना माना है ।

भरत विगत करके भी जब राम को नहीं लौटा सके अन्त में उनकी चरण पादुका लेकर वे सबब वापस आ गये । भरत मिलाप का बर्णन 'वाल्मीकीय रामायण'

१—वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—धर्म्यात्मा कांड—शर्ष ८२—श्लोक संख्या २ से १४—सक—पृ० ३८२ ३६०

२ मा० प्रयो० पृ० ३८४

३ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—धर्म्यात्मा कांड—शर्ष २१ श्लोक संख्या १२—पृ० शर्ष ३२३

से 'मानस' का प्रथम मर्म स्पर्शी है। वोस्वामी जी ने अपनी महरी अनुभूति में इस विषय को गति शून्यत्व लेखनी से चित्रित किया है।

मानस की मति द्रव्य रागापणो म भी मरत का मन्त्रि प्राप्त में मुनिव्रत मकर रहने का उल्लेख है। उम्होंने चरण पादुकायें सिंहासन पर रख दो भी धीरे शून्य को अपनी तरफ से राज्य का निर्वृता निवृत्त कर दिया था।

परम्य कांड में वास्मीकि जी ने लिखा है कि विराय ने सीता जी को अपने कर्णों पर चढ़ा लिया। वोस्वामी जी ने इस घटना का सर्वथा त्याग कर इसे केवल संकेत रूप में इस प्रकार लिखा :—

मिला समुर विराय मय जाता। भावत ही रघुवीर निपाता ॥^१

वोस्वामी जी की सीता को विराय अपने कर्णों पर चढ़ाये इसे बहू कमी भी महान न कर सकते थे। इसी हेतु उम्होंने 'मानस' में इस घटना का सर्वथा बहिष्कार कर दिया। इससे मर्यादा की भी रक्षा हो गई और साथ ही राम ने धाते ही उसे मार दिया। इससे राम की बोरता भी प्रकट हो गई। इसी दृष्टिकोण के आधार पर वोस्वामी जी ने सीता क कहे लक्ष्मण के बटु बचन वाली घटना भी 'मानस' में नहीं माने दी। इसके अपराध सीता के हरण की घटना धाती है। धूपनसा के क्रूर होने के कारण सरहृण १४००० सेना के सहित राम पर धातमण कर देने हैं किन्तु वोस्वामी जी ने इसे ऐसे देखा :—

देखहि परस्पर राम मय संग्राम रिनु बल धरि मरयो ॥^२

इससे वोस्वामी जी के प्रथम कथा शिल्प में एक चमत्कार था गया है। इसके अनंतर राम सीता को धमि प्रवेश करण कर भापा की सीता बनाते हैं या 'धम्माल राधायण' की ही भाँति है। रावण की जो मक्ति भावना है वह भी धम्माल रामायण की भाँति है। किन्तु उनके इन प्रकरण में रावण की मक्ति भावना को धमिक दृढ़ता है।

जब राम मृग मार कर लौटते हैं तो उसके बाद जब योध राज उम्हें मिसता है तो 'वास्मीकीय रामायण' के आधार पर वह उसे राजस समझ कर मारने बीड़ते हैं।^३ किन्तु मानस के राम को ऐसा भ्रम नहीं होता। वह योध को परम काम प्रदाय करते हैं।^४

इसके बाद राम धररी के प्राथम में जाते हैं। वह निम्न वर्ण की महिला थी। उससे राम का इस प्रकार उत्कार किया जातो मयमान उसके प्राथम में घाये जा।

१ मा० धरम्य ५० ४७२

२ मा० धरम्य—५० ४७७

३ वास्मीकि—वास्मीकीय रामायण—धरम्य कांड—सर्ग १७—वृत्तिक मर्यादा ८ से ११ पर। ५० सं० ११७ ११८

४ मा० धरम्य ५० ४१६

उसने अपने को नीच कहा है। अर्थात् रामायण तथा 'मानस' में राम ने शबरी को नमस्कार मन्त्र का उपदेश दिया है।

वाल्मीकीय रामायण में शबरी को कहीं भी पूजा या नीच नहीं कहा गया। इसमें बड़े एक बूढ़ा तपस्वी भी जो सिद्ध लोगो की पुज्या भी है। 'वाल्मीकीय रामायण' में जब हनुमान राम से परिचय प्राप्त करने प्राय है तो राम को किसी प्रकार का बेसी श्रद्धा मान कर के उनकी स्तुति करने नहीं तप चाते हैं। अर्थात् अर्थात् रामायण और 'मानस' में तो राम के सबसे भवमान स्वस्व को पहचान कर हनुमान को अर्थात्क हर्ष हूया। किन्हींका कांड में धाता है :-

प्रभु पहिचान परेज नहिं करना ॥
 पुष्पकित्त तन मुक्त भाव न बचना ॥ शिखर शिखर शेष की रचना ॥
 पुनि भीरकु बरि अस्तुति कीन्ही ॥ हरप हृदय निज नाशहिं कीन्ही ॥
 मोर म्हात में पुष्प घाई ॥ तुम्ह पुष्पक कस तर की नाई ॥
 अर्थात् रामायण में तो पहले ही सुभीत राम के बारे में हनुमान सगाकर हनुमान से कहता है—हे हनुमान ! यह धर्म का सा रूप धारण करने वाले सेवक पुष्पक नामक नारायण हैं। प्रकृति से परे अथवा कहे हैं और यह राज्यों में भली की रक्षा के हेतु प्रवर्तित हुए हैं।

'मानस' में हनुमान को इतना विद्वान नहीं बतलाया गया है। अर्थात् 'वाल्मीकीय रामायण' में। बल्कि उन्हें मत्त बतलाया गया है यह कहते हैं :-
 तब माया बस किरलें भुलाना या तें नहिं प्रभु पहिचाना ॥
 अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए हनुमान कहते हैं।

एक में संव मोहबस कुटिल हृदय अर्थात्
 पुनि प्रभु मोहि विपारेज कीन्वबु भववान ॥
 के कहते हैं कि आपकी कृपा से ही मेरा निर्वाण हो सकता है क्योंकि—
 या पर मैं रहबोर बोझाई। जानतें नहिं बुझ मज्ज उपार्ई ॥
 अर्थात् रामायण' और 'वाल्मीकीय रामायण' को छोड़ कर अन्य राम कथाओं में भी हनुमान को एक बानर के रूप में लिखा गया है। उनके बारे में बिना ही की कल्पना नहीं की गई। उनके दृष्टिकोण से यह ठीक भी है। क्योंकि उन्होंने हनुमान तथा सुभीत के साथ सब बानरों को भाव पाये जाने वाले बानरों के घर ही देखा है जो पेड़ पर चढ़कर उड़ते हुए कर सकते हैं। मना एक बानर के लिए वेदम परिद्वत को कल्पना कैसे की जा सकती है।

- १ मा० कि० पृ० २१२
- २ मा० कि० पृ० २१३
- ३ मा० कि० पृ० २१३
- ४ मा० कि० पृ० २१३

'वास्मीकीय रामायण' के अनुसार सुग्रीव राम के मित्र है और मित्रोचित व्यवहार ही दोनों करते हैं। लेकिन 'मानस' में सुग्रीव नाम मात्र के राम के मित्र हैं। और हैं भी तो अज्ञानवश। मोहबध प्रभु के असली रूप को न पहचान कर ही ऐसी पसंती करते हैं। भला परम ब्रह्म क्या राम का कौन मित्र हो सकता है। उनका तो केवल भक्त ही हो सकता है। और भक्ति से ही सब बायों की सिद्धि होती है। इसी तरह राम के दर्शन पाकर जब सुग्रीव को ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे कहने लगे —

ब्रह्मज्ञान ब्रह्म ब्रह्म सब बोला। भाष हृषी मन भयत असोसा ॥

मुख संपति परिवार बढ़ाई। सब परिहरि करिखुडै कैबकाई ॥^१

क्यों—

ए सब राम भयति के बाधक। कहहि संत सब पर भवराजक ॥

सबु मित्र मुख बुल अग माहीं। मायाकृत परमारण नाही ॥^२

सबु मित्र यह तो सब माया है। सुग्रीव अब भगवान राम के एक बरवान मानते हैं।

सब प्रभु कृपा करतु एहि भांति। सब तबि भजतु करीं दिन राती ॥^३

इस पर भगवान श्री राम सुग्रीव की वैराग्य बुल बाणी सुनकर बोले —

ओ कछु नहेतु सत्य सब सोई। सखा ब्रह्म मम मुपा न होई ॥^४

इसके बाद जब सुग्रीव पिटकर राम के पास आता है तो 'मानस' में सुग्रीव राम को कोई भी अलाहता नहीं देता। बल्कि इतना ही कहता है —

मैं ओ कहा खुबीर कृपासा। बसु न होब मोर यह काला ॥^५

इसमें राम भी सुग्रीव के सामने वास्मीकी कि भांति ऐसे चीन सत्य नहीं कहते कि हम तुम्हारे शरणार्थी हैं। राम भगवान होकर इतने चीन स्वर में कैसे बोल सकते थे। उन्होंने तो सुग्रीव को हाथ से स्पर्श करके बस के सामने कर दिया और सुग्रीव की सारी पीड़ा भी इससे जाती रही।

अप्यात्म रामायण में तारा बासि को मुँह न जाने से रोकता है। लेकिन उसमें राम के हेतु भगवान राख बहा गया है। बासि कहता है कि हे प्रिये मुझको कोई भी भय नहीं। राम तो साक्षात् मारामण है। जिन्होंने पूम्बी का मार बुर करन के लिए ही भवतार कारण दिया है। उन परमात्मा राम का जिनका न कोई मित्र है न सबु। मैं अरण्यारविण में नमस्कार करके तिजा साऊ गा।

जब पायस बासि के सामने राम पय तो बासि ने राम से अन्कों ब्रह्म नह।

१ मा० कि० पृ० २१६

२ मा० कि० पृ० २१६

३ मा० कि० पृ० २१६

४ मा० कि० पृ० २१६

५ मा० कि० पृ० २२०

'ब्रह्मीकीय रामायण' बालि के शत्रु धरने लौकिक रूप में ही है। राम ने सनतन बर्म का विशेषण करके बालि को समझ लिया है कि उसका वह धार्मिक काम न था। बल्कि राम जैसे बर्म के एक राजा को तो उस दुष्टप्रायी का बंध करना ही चाहिए था। क्योंकि पुत्रीवत् धरने छोटे चाई सुभीक की स्त्री कर्मा को उसने पत्नी बना लिया था और सुभीक का राज्य छीन दिया था।

धर्म्यात्म रामायण में भी छोटे चाई की स्त्री के धरहरण का बोध बालि के स्तिर पर है।

'रामचरित मानस में भी अनवरत धर्म्यात्म रामायण' का ही इतिरोध है। उसमें तो बालि राम से कुछ ही नहीं पाता। राम की बर्म धर्म की ध्याना सुनकर मुह बग्न हो गया। और वह धरने हृदय में भयवान राम के सामने प्रकृत प्रकित होकर बोला,—

मुनहु राम स्वामी सन बल न बालुटी मोरि ।

प्रभु धरहु मै पापी प्रंत कास पति तीरि ॥^१

इसके बाद राम ने बालि के स्तिर पर हाथ रखकर कहा। हे बालि मैं तुम्हारे शरीर को प्रकृत कर दूँ। तुम धरने प्राणों को रकड़ो। इस पर बालि ने कहा :—

बल बग्न मुनि बतहु करगहीं। प्रंत राम कहि पावत नाही ॥

बामु नाम बल संकर काबी। रैत सबहि सम पति अधिगसी ॥^२

'ब्रह्मीकीय रामायण' में बालि की मोघ प्राप्ति का वर्णन नहीं है। और न इसमें राम बालि ने स्तिर बोधित होने की बात करते हैं। यद्यपि बल ने ब्रह्मात्म की की धरनी प्रबन्धात्मक प्रतिभा और विद्यय प्रतिभा सन्निहित है।

धर्म्यात्म रामायण में तारा धरने पति के लक्ष पर रोती हुई राम से बट्ट बचन कहती है। कि हे राम ! जिस बाण के धरने मेरे पति को मारा है उससे मुझे भी मारिय। इसके 'प्राथमी तारा तीन बार बाणों में धरनी कथा कहती है। लेकिन इसमें वह हृदय विचारक इस तारा के बिलाप में प्रयुक्त नहीं होता। बल्कि ब्रह्मीकीय रामायण में।

'रामचरित मानस में तारा राम से कोई भी बट्ट बचन नहीं कहती। वह बिलाप करती हुई धरने पति के शत्रु के पास जाती है। तब उसने व्याकुल बदनकर राम उसको लक्ष आन का उपदेश देते हैं।

छिति बल पावक पाग समीरा। पंच रचित पति धरम मरीरा ॥

प्रपट सा तनु तब धारें साबा। जीव नित्य केहि लखि तुम्ह रोबा ॥^३

पहु मुनकर तारा का ध्यान नष्ट हो गया। तुलसीदास भी कहते हैं—

१ मा. कि० पु० १२१

२ मा० कि० प० १२१

३ मा० कि० पु० १२२

उपजा ज्ञान चरन तब लागी । सौख्येसि परम भयति हर मागी ॥२॥

इसमें राम परमी में भक्ति भावना को दिलाताकर गोस्वामी श्री अपने प्रतिपाद्य राम भक्ति को ही सुगमता से प्रतिष्ठित करते बसते हैं । इससे भी प्रबन्ध में उनके विषय प्रतिपादन संबंधी कर्मात्मक दृष्टिकोण के अभिव्यक्त होने से प्रबन्ध में सौष्ठव उत्पन्न हो गया है ।

शास्त्रीकीय रामायण के अनुसार हनुमान ने संका का पूरा बीमब बेला घोर मन में दंभित होकर विचार करने लगे । इस संका में घाबर तो बानरा से कुछ भी नहीं बन पायेगा । क्योंकि दुष्ट में इन राजसों के पीतने की सामर्थ्य तो बबताओं में भी नहीं । इस महा विषम दुर्गम संका में घाबर राम क्या करेये । फिर राम राम बच्य मेव इन बातों में से एक की भी भास इन राजसों में नहीं चल सकती । यही तो वैबल्य चार बाजनों की प्रति दिखसाई देती है । संवद जोल मेरो घोर सुषोभ ।

इस प्रकार की घका अग्य राम कथाओं में हनुमान के हृदय में नहीं उठती । मानस' में गोस्वामी श्री को इस नयपी का इतना बीमबदासी बर्णन करना मजूर नहीं था । उन्होंने तो इन दुष्टों को भीसे मनुष्य माप कोइ गये आदि मन्त्र प्रमदप खाने बाता बढाया है । घोर अन्त में स्पष्ट शब्दों में यह कह गये हैं कि मैंने तो इन की कथा इस हेतु पाई-सी कही है कि यह निरवय ही राम के बासा से घनै शरीर को त्याग कर परममति पावेंगे ।

घब कवि कुछ हर हनुमान उस पर्वत के शृंग पर पल भर टहर कर राम के वार्म क लिय फिर साब विचार करने लगे कि मैं किम तरह नगर में प्रवेश करूँ जिससे मुझे कोई भी पहचान न सक । शास्त्रीकीय रामायण में वे मुर्दास्त के पक्षपातु विज्ञान के सहज छोटा परभुन बन बारण करके सायकास म कूड़े । घीर उस समय सुन्दर राजमायों से मुपित लका में जा चुके । मानस' में वे वैबल्य एक मसक मजूर के समान रूप मनाकर नगर में चुके । यह बात भी गोस्वामी आ के प्रबन्ध कथा पालन में अमलदार उत्पन्न करने वाली है ।

जब हनुमान संका में चुके तो उन्हें लंकिना नामक एक राजसी मिसी उसने उन्हें राका तब हनुमान ने उसका रूप कर दिया । शास्त्रीकीय रामायण में भाषात संका पुष्टि का ही राजसी का रूप बनाकर भाता दिखलाया गया है । मानस' में उस लंकिनी राजसी को बेध बनाकर इस तरह दिखसाया है मानों यह संका के शर पर पहरा बेनी रहती थी । 'प्रप्यात्म रामायण' में भी 'शास्त्रीकीय रामायण' का समर्थक है । अग्य राम कथाओं में तुलसी क मत को लीकार दिया है । संका का राजसी बनकर भाता अमलकारी बल्पना है । ऐसा जान होता है कि यह लंकिनी या तो कथा में अदभुत का सजन करन के लिए या राम का प्रवहार रूप में प्रस्तुत करने के हेतु ही कवि कल्पना की सुन्दर अभिव्यक्ति बनी ।

वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार हनुमान ने बिभीषण का घर साधारण रूप में ही देखा। लेकिन गोस्वामी जी ने अपने प्रबन्ध की कथा में सीटब उत्पन्न करने के हेतु इस प्रसंग को भिन्न रूप से लिखा है। मानस में हनुमान ने देखा कि—

भवम एक पुनि बीस सुहावा । हरि मंदिर उई भिन्न बनावा ॥^१
 यह भवन कैवा पा—

रामायुव संकित पूह सोमा वर्धन म बाह ।

नम तुमविका बूब तह बैबि हरन कपिराई ॥^२

इस प्रकार हनुमान जी से मिलकर उत्सर्ग हुए बिभीषण ने उन्हें सीता के रहने का स्थान बताया। सम्भातन रामायण में जंकिनी ने स्वयं हनुमान को सीता के निवास स्थान प्रतीक बाटिका का पता दिया था। वाल्मीकीय रामायण में हनुमान स्वयं सीता जी को वहाँ लाते हुए पहुँचे थे।

तुलसीदास जी ने जो बिभीषण का वर्णन किया है वह एक राम भक्त बिभीषण का वर्णन है। वाल्मीकीय रामायण में बिभीषण राम के भक्त तो नहीं हैं। बल्कि वह एक सत्य प्रिय और न्यायवादी प्रबन्ध है। जो समय समय पर रावण को भेक तथा धर्म युक्त सम्राट् देता है। सम्भातन रामायण में भी बिभीषण एक न्यायानुसृत मन्त्रालय देने वाले के रूप में वर्णित है। पद्य पुराण में मानस की कतिपय वगवदयुक्त है।

वाल्मीकीय रामायण में राक्षस राज रावण के भवन का अत्यन्त सजीव तथा काव्यमय वर्णन है। बीजा इमें अग्य काव्यमय कथामा में प्राप्त नहीं होता। गोस्वामी जी ने तो इस विस्तृत विवेचन को काव्य में स्थान न देकर केवल इतना भर ही कह दिया।

यसत बसानन मंदिर माही । घटि बिचित्र कहि कष्ट सा माही ॥^३

गोस्वामी जी राम के विषय रूप से उत्पन्न चमत्कारों से प्रभावित थे। इन्हीं लिये हनुमान का एक मन्थर रूप में जंका में प्रवेश करना भी कवि की कल्पना का चमत्कार है। 'वाल्मीकीय रामायण' में भी हनुमान के छोटे रूप का वर्णन है।

'उत्तचरित मानस में रावण द्वारा सीता को कह पड़े मन को मुजाने वाले कथनों का उल्लेख नहीं। अंतर्धर्म ही केवल संकेत रूप में निम्न जोषाएँ हैं —

बहु बिधि बस सीतहि कमुञ्जवा । नाय वाम नय नेव देखावा ॥

रह रावनु मुनु मुमुमि सकामी । मंडोअरी घाहि लब रागी ॥

तब धनुचरौ करलं पन मोरा । एक बार बिनीकि मय घोरा ॥^४

१ मा० सु० ५० १४१

२ मा० सु० ५० १४४

३ मा० सु० ५० १४१

४ मा० सु० ५० १४६

यहाँ गोस्वामी जी ने मूर्खता एवं मर्दा का विरोध समझ कर ही 'वास्मो-कीय रामायण' के रावण द्वारा कहे गये कामोत्तेजक एवं विनाश पूर्ण शब्दों को यहाँ नहीं दिया। क्योंकि फिर उन्हें भी 'मध्यात्म रामायण' की भाँति उसके गूढ़ार्थ की विवेचना करनी होती है।

पूर्ववर्ती कथा स्रोतो में प्रागज बटनाओं को गोस्वामी जी ने संक्षिप्त रूप से मानस में रक्खा है। जिनका राष्ट्रीय विवेचन पीछे हो चुका है। इससे भी उनकी प्रबन्ध सम्बन्धी कला में सौष्ठव आया है।

रावण बच के परचात विभीषण का लंबा की राज गद्दी पर धमियेक होजा है। यह बटना प्राय सभी राम कथाया में एव ही मिलती है। इसक बाव मीठा का राम के पाव घाने का बर्णन है। यह बर्णन सब जगह एक ज्ञा ही है। अन्तर के बस इतना है कि 'मानस' में सीता का अग्नि प्रबन्ध राम द्वारा उनकी परीक्षा लगा यह सब भगवान की सीता के अन्तर्गत घात है। यही मध्यात्म रामायण म होता है लेकिन 'वास्मीकीय रामायण' में राम एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं। वे सीता से बहुत सम्म कहते हैं। गोस्वामी जी न मयादा की दृष्टि में इन बचनों का सम्मल नहीं किया बबस सकेत भर दिया —

तेहि कारन करमानिधि कह कहुक बुबाद ।^१

इसके बाद राम अग्नि परीक्षा के बाद सीता को लेकर विविध देश में प्रसिद्धि हाकर अन्धकार राज्य करन समने हैं।

इसक बाद 'मानस' के उत्तर कांड म रामर्षि मन्मन्धी बातें ही अर्पित हैं। गुलसीदास जी मक्ति की महिमा का बकाद करत हैं और साथ-साथ उसका एक निरिच्छत पय भी निर्धारित करत हैं। इस विषय पर बाक मुमु कि और परइ भी का सबाह राष्ट्रीय प्रकाश आसता है। समन्वय क बाबार भी अन्त कुछ इसक स्पष्ट होन है। दस्ता जाय तो उत्तर कांड एक तरह का मिश्रण सा है। इसमें स्वामाविष्ठा जाने न प्रबन्ध सौष्ठव निस्तर उठा है। कथा के परचात कथा का महात्म्य इसमें हमें मिलता है। वास्मीकीय रामायण म इन बिस्तार के साथ मक्ति की महिमा का बर्णन नहीं मिलता। इस कांड को गोस्वामी जी ने सब रामायणों में अत्यंत प्रथम समाज दर्शन का अंश बनाया है और वे विभिन्न कथाओं के उत्पन्न करने के क्षेत्र में नहीं पड़े।

अतः इतने विवेचन में पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि राम कथा क मुख्य ध्येय जिनका विवेचन पीछे हो चुका है उनमें जो प्रबन्ध सौष्ठव नहीं वह वास्वामी जी के मानस में उपसम्भ होता है। 'मानस' का प्रबन्ध सौष्ठव वास्तव में बिस्तारण है। अतः में उनकी इस प्रबन्ध कथा फिर सम्बन्धी कला का शोच्य प्रतिम और निरसिद्ध गोस्वामी जी की वाच्य कला की अभिनन्दनीय उपलब्धता है।

बर्लिन और काव्य—

कथानक काव्य मुसत बर्लिनारमक होता है। पर यहाँ हमारा उद्देश्य विवेक बर्लिन वस्तुषा का अध्ययन है। बर्लिन के कई नेत्र हो सकते हैं।

१—सौन्दर्य बर्लिन

२—प्रकृति बर्लिन

३—बालु बर्लिन

यद्यपि हम नीचे उपर्युक्त बर्लिन सम्बन्धी सभी कसोटियों की विवेचना करेंगे। और यह देखेंगे कि मोस्वामी जी उसमें कहीं तक सम्मेलन हुए हैं।

सौन्दर्य बर्लिन—

भारत की शस्य श्यामला भूमि में उत्पन्न होने वाले सरल निरीह जित्पु ने प्रारम्भ से ही अपने चारों ओर एक विशिष्ट वाक्यपूर्ण और मारकता से भरा हुआ संसार पाया। प्रकृति के हरित कोमल मुकुल पातले में मूसले मुसत बसने रमणीय पहाड़ों में रमण करने वाली शक्ति को पहचानना प्रारम्भ किया। घनी; घनी; प्रकृति के उसका रासायनिक सम्बन्ध स्थापित होने लगा। जैसे जगा जैसे बन के पक्षी तब तथा मुसत सरिता वृक्षों की उसके आसीन हैं। तपोवनवासी निजिष्ठ मुनिशुद्ध भी इस मोहक वस्तु से दूर न हट सके। और उन्हीं जैसे अपने घरों में रमणीय चाक और सुन्दर कदु कर पुकारा। ऊप्रा की मरुताया से आलोकित प्राणी की घोषा ने प्रचरों की कनकन के साथ कमल बन को मुस्कायने उसे उल्लास से भर दिया। इस प्रकार यही से सौन्दर्य की रमणीयता का प्रीयण्य हुआ।

राम जन्मसु नरत और सन्तुष्ट के नाम के पदबन्ध यथा विधि उत्तर नाम करण यज्ञोपवीत धारि संस्कार हुए। आत्मीकीय रामायण में रामकुमारों की बाल क्रीड़ा का उल्लेख नहीं है। आश्चर्य होता है कि आत्मीकीय ऐंसा तरह कवि जीवन के इस कोमल पक्ष की छोड़ कर कौन सा नया। इसका कारण यही हो सकता है कि आत्मीकीय ने राम के बीर रूप को ही अधिक महत्त्व दिया है।

अध्यात्म रामायण में ही राम के जीवन की यह कड़ी मिलती ही नहीं है। प्रस्तुत रामायण में ही राम के जीवन की यह कड़ी मिलती ही नहीं है। पद्य पुराण में भी राम की सीता का बर्लिन नहीं मिलता। इसी प्रकार महाभारत रामायण में भी राम के नाम का बर्लिन नहीं मिलता है। 'विष्णु पुराण के शुरुवां प्रथम में बर्लिन राम चरित में बाल सीता का बर्लिन नहीं है। राम की बाल सीता का विरता सरत बर्लिन मोस्वामी जी के 'रामचरित मानस में मिलता है। बीजा अध्यात्म नहीं। राम जन्म लेने की कड़ी से ही मोस्वामी जी के मानस से कल्या की धारा चलबस करती हुई वह निकलती है। बाल कौंड में है

बहते हैं।

सो पावसर बिरेचि अब जाना । बने सकल सुर साधि विमाना ॥
गगन विमल सकल सुर बूया । माबहि पुन गंभर्व बरुषा ॥
बरपहि सुमन सुमंजुलि साजी । महाहि गगन बुदुमी बाजी ॥
अस्तुति करहि माग मुनि देवा । बहुबिधि साबहि निज निज सेवा ॥^१

बच्चे के रोने की प्यारी ध्वनि की सुनकर सब रात्रियाँ उठावली होकर बोड़ी बनी गईं । बासियाँ ह्वित होकर जहाँ जहाँ बोड़ी । मारे पुरवासो भानुष में मगन हो गये ।

राजा दशरथ भी पुत्र जन्म की बात सुनकर मामों बह्मानन् में समा गये मन में अतिशय प्रेम लिये उनके शरीर का रोम रोम पुलकित हो गया । इसके बाद धनेक संस्कार हुए । ब्राह्मणों का सोना दी बत्त घोर मस्तिनो का शान दिया गया । धनेक उत्सव मनाये गये । राम जन्म के समय जा उत्सव रात्रमवन म मनाया जा रहा था उसे देख सूर्य भी धपनी चास भूल गए । गुमर्षीवास ने राजकुमारों के बात रूप का भी धरयन्त स्वाभाविक बर्णन किया है ।

काम कोटि छवि स्वाम मरीच । नाल कंठ शारिद गंभीर ।
अरत बरत पंकज नल जोती । कमल बलमिह बीठे अनु मोठी ।
रेल कुलिश ध्वज अंकुस सोह । मुनुर मुनि मुनि मुनि मन मोहै ।
कटि किङ्किनी उबर नय रेखा । नामि गंभीर जान जेहि देसा ॥
भुव विमल सुपन कुल भूरी । हिमं हरि नल अति सोभा करी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्र अरत ऐनत मम जोभा ।
बहु बंठ अति बिकुक सुहाई । धानन अमित मदन छदि छारै ॥
दुइ दुइ दसन अबर अछनारे । नासा तिमक को बरनै पारे ॥
सुबर यवन मुषाक कपोला । अति प्रिय मपुर तालरे बोला ।
बिनदल कच कुचिठ ममुदारे । बहु प्रकार रवि मानु संबारे ॥
पोत अकुलिषा तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहि नहि कहि अति सेवा । सो जानए सपनेहुं जेहि देखा ॥^२

बहु राम का बहु मनोहर वास रूप है जिस पर राजा दशरथ घोर कोपित्वा मन ही मन मुग्ध हो रहे हैं । वासक्य का यह सबीब बिभ्रण ऊपर मिलित रामायणों में नहीं नहीं है ।

राम को बात ब्रीह्याषों का बर्णन 'मानस में सुमाने वाला है । भाजन करने का समय थाटा है तो राजा दशरथ राम को बुलाते हैं । उस दृश्य का बर्णन करन हुए बोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं ।

पुसर प्रुरि भरें तनु घाए । भुरति बिहसि मार बैठाए ॥

१ मा० बा० पृ० ११२

२ मा० बा० पृ० १४०—१४१

योजना करत समय बिना इत-इत घबराव पाह ।
 मानि जने किलकठ मुल बधि घोरन सपटाइ ॥^१
 इसके बाव वीसे राम किशोर प्रवत्वा को प्राप्त हुए तब भी सबकी सोचा
 तुमसी की एक भर्षा है । उनका एक बन्धन है जो उन्हें काय्य की विद्याल सुमि में
 स्वच्छन्द प्रति से बिचरए करने से रोकता है । वह है राम का दिव्य रूप । इसकी
 शैतना उन्हें हर समय रहती है और इसीलिये वे रामायण के भीतर पात्रों को भी
 समय समय पर उसकी याद दिलाते रहते हैं ।
 इसके अन्वय तुमसी में अनेक सीधार्थमय स्वर्णों का वर्णन किया है । वे सब
 अल्पकाल सीधार्थ माने के हेतु उनके रूप चापि राम रामु के साथ :—
 सरद मयंक बरन छवि सीबा । बाव कपीक बिबुल हर सीबा ॥
 अथर अरन रब सुहर नासा । बिपु कर बिबर बिनिक्र हासा ॥
 नव संबुज पबंक छवि नीकी । पितबनि ललित नावती भी की ॥^२
 --- सा नवीन सीधार्थ प्राप्त कर लेते हैं । उसी समय उनमें शक्ति का भी
 समावेश हो जाता है । सुमि का भार उतारने की संवत्समी शक्ति का रूप बिबर
 पाता है —

केहरि कंवर बाव जनक । बाहु बिभुपन सुबर ठेक ॥
 करि कर सरिस सुमन भुवर्षदा । कटि निरंय कर सर कोरवा ॥^३
 रूप धीर नाबन्ध के बीच प्रतिष्ठित होने से शक्ति धीर धीस को अधिक
 गीधार्थ प्राप्त हो गया है । इसके एक अर्थ मनुहूरा भी या नहीं है । सूर तुमसी के
 पूर्व कविता में सीधार्थ परलन की यह शक्ति न थी जिसमें लोक संवत्स की अमर
 रनिभाया छियो है । कामलता की मुद्रुसता अभिहित हो । सहज मोहू नेने की शक्ति
 हो । सीधार्थ बही अपनी अरम सीमा पर पहुँचता है जहाँ निष्काम सहज भावम्
 प्रदान करे । सहज सुम्बर नामक का दिखकर हृदय की ईर्ष्या होयपूर्ण इन्वि सुन बाये
 यह धनु का है यह मित्र का है मेघ बाव मिष्ट बाये स्वार्थ पर पावरए पद बाये
 उनके समय सुम्बरता का मरल स्वल्प स्थापित हो सकता है ।^४
 राम लक्ष्मण के नाबन्ध पर साधारण जन ठी मोहित ही हैं । किन्तु बिदेह
 राज बीरमी जनक को भी यह अपरिमित सीधार्थ पाहुष्ट कर रहा है । मानन्द की
 भी मानन्द प्रदान करता है ।

- १ मा० बा० पृ० १४३—१४४
- २ मा० बा० पृ० १०७
- ३ मा० बा० पृ० १०७
- ४ बास राम को मोहक छवि द्रुति देखकर ठना-ठा रह जाना उतना
 पारदर्शक नहीं जितना जो न छने हुए है बल बिबकर भावनों का हृदय ।

सुहर स्वाम पीर बोठ भाठा । प्रार्णय्यु के भागद दाठा ॥^१

तमी नन्हें बासक इनकी सोमा देखकर पुलकित हो रहे हैं । उनके कोमल वरीर स्वर्ण का सुस पाने के हेतु मुमुक्षु गाठ का परस करके पुरी बिचला रहे हैं ।

सब सिंसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर मात ।

तन पुमबहि पति हरपु द्वियं बखि देखि रोउ भाठ ॥^२

साक्षात्पूज्य बनिता सब पर उनका सम प्रभाव है तमी तो उनका बर्णन करते समय फिर अनयन लयन विष्णु बानी^३ की प्रकल्पा पा जाती है । रूप शील सुस पापरी सीता का सावम्प पीर भी पुनीठ है ।

पोस्वामी तुमसीवास जी के राम शक्ति शील और सौन्दर्य क निबान है । उन के इन तीनों गुणों का बिबब बिचख ही 'मानस' की हृद मिति है । राम सौन्दर्य में उत्प्रेरित प्रार्थनण उसकी प्रमुख कुँजी है । सुखस जी द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि शक्ति और शील सौन्दर्य के बिचल बपु के ही भवन है और 'मानस' है उसी सौन्दर्य की धनिभ्यक्ति तुमसी ने संसार के बाह्य और अन्तस दोनों ही बधुओं से देखा है । किन्तु उनके बाह्य बधु पठिरित्त बधुओं को खोलने के लिये ही कला के अनुपाय से प्रसुरजित हुए हैं । मानस में जहाँ यह निष्ठुण निराकार की प्रप्राप्यन छवि मङ्कित करते हैं वहाँ सौन्दर्य की साकार प्रतिमा भी उपस्थित कर देते हैं ।

नील सरोबरह नील मनि नील नीरबर स्वाम ।

साजहि तन सोमा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥^४

मूर और तुमसी बानों ही सौन्दर्य के बनि हैं । एक के सौन्दर्य में सुकुमारता और जोड़ा है । दूसरे के सौन्दर्य में सुन्दरता और मायना । तुमनी का सौन्दर्य सहज मनोना है ।

सहज मनोहर मूरति सोऊ । कोटि काम उपमा लपु सोऊ ॥^५

गीरी और मोठा का बर्णन करने समय कवि को मेकनी बार बार रुक जाती है । उनमार्थे सादृश्य प्रतीत होने लगती हैं । दूसरे कवि मर्यादा की रैखा मुक सुन कर चलना चाहता है । तमी तो :—

सुहरता मरजार मबानी । जाइ न कोटिहु बदन बखानी ॥^६

कवि कल्पना 'श्लेषावृत्तिस्तमद्गुणा बसन्ति' की सोमा का भी पतिव्यमल कर गई है और होना भी चाहिए । जिसके मूर्तों की प्बनि मात्र से मुवन विमोहन

१ मा० बा० पृ० १२३

२ मा० बा० पृ० १७५

३ मा० बा० पृ० १६०

४ मा० बा० पृ० १०६

५ मा० बा० पृ० १६६

६ मा० बा० पृ० ७६

उपमा का चित्त बंधन हो उठता है। वह शीघ्रतः प्रबन्ध ही प्रतीक होया। इसीलिए कवि की उपमायें झूठी प्रतीति होती हैं। वह तो साधारण मसनाओं के ही चित्रण में फँकी पड़ चुकी हैं। तुमसी को मूर के सदृश्य :—
 मूकट्टी बिकट जीवन के राजत परिवार मारि ।
 मगधमदल बस जीति करि पसेत मनुष उतारि ॥

उपमा जोड़ने की न सावधान्यता पड़ती है न शीघ्र कवियों के समान दर दर मटकने की। वे तो घरसता से कह देते हैं।
 जनु बिरंजि सब निज निपुनारि । बिरंजि बिरब कहूँ प्रमटि बैसाई ॥^१
 बिरि मे सोठा का निर्माळ कर प्रपना कता नैपुष्य प्रतिष्ठित किया है। वे

नाबन्ध को भी नाबन्धमय कर देती है —
 मुरारता कहूँ मुरार करई । अविपुर्ह शीपसिखा मनु बरई ॥^२
 कवि के स्वतः शीप मूह की प्रकाशित करने के हेतु सोठा शीपसिखा सी है।
 साब साकार हो सठी है। एक प्रौर वरि राम धामम् देखे है तो सीठा मुम्बरता को भी मुम्बर बना रही है।

तभी तो :—
 सब उपमा कवि रहे कुठारी । केहि पटतरीं बिबेह कुमारी ॥^३
 कहना पड़ता है इसमें भी भाव है। उपमा तो प्राकृत शरीर से उत्पन्न मारिणी के हेतु ही जाती है यह बनक की कथा तो बिबेह जिसका शरीर ही नहीं दुम्बी से उत्पन्न हुई है इस हेतु इनका शीघ्र्य वा किसी को तुलना में प्रा ही नहीं सकता। तभी सीठा के रूप के समझ पोसनामी जो प्रतीक लगनी की उपायना करते हुए कहते हैं।

श्री कवि मुखा पयोनिधि हारि । परम रूपमय कबुजु सोई ।
 सोमा रजु मंबरु निवारु । मरै पानि पैकरु निज मारु ॥
 एहि बिरि उपजै सभिरु जब मुम्बरता मुज मूस ।
 तबवि सकोच समेत कवि कहहि शीय सममूस ॥^४
 'दूल' कहने में भी संकोच हो रहा है। इस प्रकार उत्पादित लगनी भी सीठा के समझ ठहर नहीं पाती। इन रीतिवियों में शीघ्र्य का धारण स्थापित कर दिया है। प्राये के शीघ्र्य बर्णन इसी के अनुकरण इन्में मूल धपवा समीप में प्राये जान पड़ते हैं। इससे धार्मिक कहने की लजता नहीं।

- १ मा० बा० पृ० १९१
- २ मा० बा० पृ० १९१
- ३ मा० बा० पृ० १९१
- ४ मा० बा० पृ० १७१

प्रकृति चित्रण—

यह सत्य है कि गोस्वामी तुलसीदास के प्रकृति चित्रण में सामुनिक काव्य का मानवीकरण एवं संस्कृत कवियों की जैसी घालमेलन रूप संस्मिन्ट योजना सर्वत्र नहीं पाई जाती किन्तु इस लक्ष्य को इस सीमा तक पसीटा नहीं जा सकता कि प्रकृति चित्रण की धोर से वे सर्वथा निरपेक्ष थे। निस्सन्देह गोस्वामी जी के प्रति लोगों के इस दृष्टिकोण में प्रतिरंजना व एकांगिता के साथ हृदयहोमता का भी हाथ है। गोस्वामी जी प्रकृति के कवि न होते हुए भी प्रकृति सौन्दर्य में प्रभावित कवि प्रबल्य थे। नकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि प्रकृति के प्रति उनका अनुपम वा हो नहीं। घालमेलन रूप में भी उन्होंने यथ-तत्र प्रकृति को देखने की चेत्ना की है। प्रस्तु, पर हम गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रकृति चित्रण क जितन मो रूप प्राप्त होते हैं उन की एक एक करके विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

गुड बहीपन कोटि में आने वाला प्रकृति चित्रण—

गोस्वामी तुलसीदास जी का अधिकोस प्रकृति बखुन इसी के अन्तर्गत आता है। यहाँ कवि ने संयोग धोर बियोग की सुख दुख मयी ब्याधा के चित्रणार्थ ही ही प्राकृतिक उपादानों की सहायता ली है। इस प्रकार के चित्रण में कवि का घान्तरिक भावोत्सास भी लक्षित नहीं होता। संयोग अथवा बियोग को उद्गीत करने के हेतु ही यह प्रकृति चित्रण किया गया है। यहाँ कारण है कि यहाँ बस्तु परिमाण की परम्परा को अधिक प्रथम मिला है। जनक बाटिका के प्रसंग में बसंत ऋतु के समस्त अर अर उपादानों को संवृष्ट करने में कवि ने सतर्कता से काम लिया है। चातक कोजिस कोर, अरोर मृग पुण्य बेलि बिये मानवैतर जगत के लगभग सभी बिये उपादानों की सहायता से कवि ने 'रम्य धाराम' की धामा बजाई है। हयें प्रसंगता के साथ यहाँ कहना होता है कि जनक की नैट के पूर्व जनक की इस बाटिका का निगे-धण राम ने हृदय के उमड़ते हुए उद्गीत अनुपम में परानुत होकर किया है। वे पुण्य अदन की तिस उर्मय में यहाँ तक आये थे उसी उर्मय के साथ उन्होंने इस बाटिका के प्राकृतिक बीमब व रूप माचुर्य का भी अनुपान किया है। बाग तडाम बिसीकि प्रभु हयें बभु समेत ।^१ में सामुज राम के शर्पावरेक की ही नहीं प्रयुज उनक पीछे मुज बार के रूप में बैठे हुए कवि तुलसी के गुड धारामोत्साम की गहरी धाप देखी जा सकती है। यहाँ तक तो प्रकृति में कवि के सूक्ष्मानुपम से अनुप्राणित दोष पढ़नी है न तो मानवीकरण की प्रचुरता से ही बह विविध होने बिबसाई देती है धोर न उद्गीपन अथ की अलंकारिक छुटता से। उपदेश एक लल बयें की औदितता वा तो यहाँ स्वर्ध मात्र भी होने नहीं पाया है। रहा प्रल बस्तु परिमाण वा बह भी यहाँ नहीं उठता। क्योंकि प्रकृति के अनेकानेक अरकरणा पर एकांन आत्र में मुख होकर उनका उल्लेख करना परम्परा पासन के हेतु नाम बिना देने की परम्परा में विघ्न होता है। इसके

उपपन्न जनक बाटिका की यह प्राकृतिक बुद्धता समाप्त हो जाती है। मृत्युमयी सीता की रूप माधुर्य के समस्त राम प्रकृति की इस निष्काम भाव उपासना को एकत्रम छोड़ देने हैं। साथ ही उन्हें साथ प्रकृति बैभव उद्दीपन के रूप में सीता भी बिखसाई देने समता है। फलतः सीता की अप्रतिम सुन्दरता की तुलना में हिमकर को लड़ाकर प्रतीप का आशय भेते हुए वे उसकी छोड़ामेवर करने में भी नहीं हिचकते।

जनमु सिधु पुनि बंधु बिधु दिन मलीन सकलक ।
सिय मुख समता पाव किमि जनु बापुरो रंक ॥ १

बिचारणीय है कि ऊपर की वंशियों में महाकवि मूर की बिजयनी मूरसी की हो भाति सौन्दर्य प्रतिस्पर्धा में सीता को बिजयी बनाने के प्रयास में कवि की प्राकृतिक सहृदयता बहुत कुछ बिकर्षाया हा गई है। धामे चलकर बीदेही मुख पटलर बीन्हे २ वालो वंश में तो प्राकर पसनी प्रकृति सम्वाची सहृदयता का सर्वथा लोप हो जाता है। प्रकृति बैभव पर मानव सौन्दर्य की यह हठमय विजय चोपला यदि प्रकृति के स्वध्वंस्य उपासकों का प्रबधिकर भो मनुभव हो ता इसमें कोई भी प्राकर्यल वा कारण नहीं। किन्तु इस प्रसंग में भी इतना नह देना आवश्यक होना कि प्रकृति के प्रति सर्वत्र पोम्बामी जो का ऐसा ही दृष्टिकोण रहा है। पुनरप उसकी यह चारला भी वैद्यक की उस हृदयहीनता से भिन्न कही जानेवी। जिससे प्रभावित होकर लहोनि कमल व जग्न बीठे प्राकृतिक उपासकों की सौन्दर्य सता को ही संशय करार देने की बेय्या की थी। पीर कहा पा —

देखे मुख माये मनदेखे कमल जन् ।
ताते मुख मुके सकी कमसी न जग्न टी ॥

मानव की मध्यस्वता हो जाने में सीता के रूप में हमारे कवि ने जिस प्रकार जग्न के प्रति अपनी सरसिकता का परिचय दिया है। उसी प्रकार धन्यव ससने मानव मध्यस्वता को सुरक्षित रखते हुए भी समुद्र जग्न कल्पलद, घाबि प्राकृतिक उपासकों के प्रति अपनी सहानुभूति वा सम्बन्ध स्थापित किया है। सन्ने सहृदयों की माधुरता पूर्णवी नहीं रहा करती। धार्चार्य शुक्ल जी तुलसी को सच्चा माधुर मानते हैं। मल होने के कारण उनके प्रकृति बर्णनों में भी उनके उपास्य राम के स्थितित्व की धनिवार्य रूप से छाप पड़ती है। यह बात धीर है किन्तु प्रकृति के प्रति उनकी माधुर दृष्टि का बिकलाप रूप ही हमें नहीं दिखाई देता। जनक बाटिका के मधुर मिताप को छोड़कर जब हम जन्हीं राम का बटना जग्न की प्रेरणा से बन पय पर नाई व त्रिय सहित बटोही के रूप में देखते हैं तूसरे ही क्षण हमारा विष्यवासी सन धाम जग्न की घोर आकषित हुए बिना नहीं रहता जिसकी माधुरता की बेगवती बाप में मा

बेतर जगत के प्रति मानव की भयाप कक्ष्या का उत्साह भी तरंगित होता हुआ बिच साईं बैठा है। कवि की भावार्थक सत्ता के महत्त्व विस्तार का परिचय देने वाली यह पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।

महित विषाद परमपर कहूँ। बिचि करतब उसटे सब ग्रहूँ।

निपट निरंकुस निठुर निरंकू। जहि ससि कीन्ह सकर सकलकू ॥

रस कल्पवत्स सामर खार। ठेहि पठए बम राजकुमार ॥^१

दृष्टव्य है कि उपरोक्त पंक्तियों में घाया हुआ चन्द्रमा और जनक बाटिका में धमस्तुत रूप सामा यमा में चन्द्रमा दोनों ही एक हैं। किन्तु दोनों ही स्थलों में कवि के दृष्टिकोण में आकाश पाताल का अन्तर है। जनक बाटिका में हिमकर के प्रति हमें मानवीय सहृदयता से बनी अनुभव होती है। ग्राम बंधुओं के द्वारा बलिष्ठ बर्ता में हमें कवि की सुबेदनशील मानुषता का इतना ही महत्त्व रूप दृष्टिकोण होता है। एक ओर चन्द्रमा की कला सीण्टा दूब उसकी सकलकता हो उसकी पराक्रम ब मानवीय अपेक्षा का कारण बनती सीख पड़ती है। किन्तु दूसरी ओर उसके यह बोध ही उसे मानव हृदय की कक्ष्या-कक्ष्या से घातित होने को बाध्य करत हैं। जनक बाटिका के उपरुत्त प्रसंग में अन्तिम रूप से जो बाट विचारस्थीय है वह यह है कि कवि का यह प्राकृतिक चित्रण भी पूर्ववर्ती परम्परा से अधिक प्रभावित है। जहना न होया कि इससे भी पूर्व प्रेम पाशाकार आयासी ने, अयनी पचाबती की भी प्राकृतिक उपादानों पर ऐसी ही विजय घोषित करते हुए कहा था।

का सरवरि तोहि बेहू मंपहू। जार बसकी बा निकलकू ॥

भी बाबहि पनि राहू परामा। बर बिनु राहू सबा परबामा ॥

—पद्यावत

इसी विमोघोद्घोषन की सीमा में घाने वाले प्रकृत चित्रण का यहि मुक्त रूप हमें धामे बलकर अपने कवि की रचना में सीता हरण के उपरान्त देखने को मिलता है। अमिताया चिन्ता स्मृति मरण आदि बिन १० विमोघजन्य प्रवस्थाओं का अन्तरेक हमारे यहाँ के आचार्यों ने बहुत पहले से कर दिया है और कवि परिपाटी गतानुयति में बिलका अनुकरण करती आई है। पोस्वामी तुलसीदास ने भी इस क्षेत्र में इसी परम्परा को सुरक्षित रखा है। अमिताया, स्मृति धामेय और प्रताप की प्रवस्था तक जहोन अपने राम को अरथ्य कांड में पहुँचाकर दिखाया है। विमोघोद्घोषन करने वाले विभिन्न प्राकृतिक उपादानों में सीता के मन्त्र-सिद्ध सौन्दर्य का आभास पाकर उनके राग भी जगमाद के स्वर में बह उठत है।

हे खब मृग है मचुकर भेनी। तुम देखी सीता मुय जयनी ॥^२

नख गिब चित्रण से संशुद्ध कवि के इस प्रकृत चित्रण में हनुमान्नाटक की

१ मा० पदीप्या पृ० ३२६

२ मा० अरथ्य० पृ० ४६७

कुछ पंक्तियों का ह्रास है।^१ इसकी भी तरह ही कन्नडा की भा बनती है। इसी प्रसंग में घाने जलकर विषोवोहीपन के क्षेत्र में प्रकृति के प्रतिभूत भाव से ध्याप्य होकर जब हम तुलसी के राम को मनुज लक्ष्मण से नम नून नून की धिकावट करते देखते हैं कि —

गारि उहित सब लज मृग वृषा । धामहुँ मोरि कण्ठ हृदि लिटा ।

हमहि बेखि मृग निकर पछाहीं । मुनी कहाँहि तुम्ह कहें मज नाहीं ।^२

तब हमें महर्षि बाल्मीकि की निम्न पंक्तियों का उपर्युक्त प्रकृति विषय पर बड़ा हुमा प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।^३

मालतान्तर्गत प्रकृति के प्रतिभूत प्रभाव की व्यंजना करने वाली ऐसी ही कुछ बरम्बरयुक्त पंक्तियाँ हमें सीता और राम के निको बिच्छु निवेदन में भी दिखावाई देती हैं। पद्योक्त बाटिका में धर्म की माता बिच्छटा के अपने विवोध की बीड़ा का परिचय देती हुई सीता कहती है।

पावकम्बल लसि खडक न पागो । पानहुँ मोहि कानि हठभापी ॥

मुनहि बिनब मम बिटप असोका । सत्य नाम कद ह्व मम सोजा ।

मृतन किसलज बनेल समाना । देहि अनिनि जनि कएहि निदाना ॥^४

उपर सीता के विवोध अन्य बहों पर मरहम बट्टी बड़ाने का वी टोड़ परिचय करते हुए हनुमान राम के विवोध का बीसा त्रंसा लड़ा करते हैं वह इस प्रकार है।

कहैत राम विवोध तब सीता । जो बहूँ सकल नय विपरीता ॥

जब तद किसलय मतहुँ कृसायु । काभनिजा सम निसि लसि मायु ॥

बुबलय विपिन कु ठ बन सरिता । बारिध तपठ देल जनु बरिसा ॥

१ रे ब्रह्माः पवतैस्त्वा विरिभूतसता बानुवीज्य माताः यमोर्ह्वाम्बुसघात्या
दधारक तनया धोक सुकैस्करक विम्बोच्छी जाक मैना मुक्तिपुलबभना बहनापन्नकापी,
हा सीता केज सीता मम ह्वयवता को प्रकाय केज हृष्टा ।

—हनुमान नाटक

२ मा० धरम्य० पृ० १०३

३ स्वार्था चन्द्रमुर्ती स्तुत्वा प्रिया पद्यविमलश्याम् ।

पद्म बानुप चित्रेणु श्रीमिः सहिताम्युनाल ॥

मा पुननु बधाबास्या बीहृया विच्छी ह्वाम ।

कवन्तीव में बिल लंकारस्तवस्त ॥

देखिये श्लोक १०१, १०३ बाल्मीकीय रामायण, प्रथम सर्ग, किष्किंदा कांड ।
प्राथम यह है कि मधुर सीता में संतान हिरण कुम्भ मुने (राम को) बन्धवदनी बमल
नमनी सीता की याद दिलाते हैं और मुने दुखी करते हैं ।

४ मा० सु० पृ० १४८

जै हित रहे करत तेइ पीरा । उरय स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥^१

बहूने की आवश्यकता नहीं कि उक्त प्रयास में हनुमान को कहीं तक सफलता मिली या नहीं किन्तु प्रकृति के प्रतिभूत प्रभाव की व्यंजना^२ मोल्बामी जी ने यहाँ कुछमता के साथ प्रकट कर दी है। सब पूछा जाय तो उद्दीपन कथा में घाने वाले प्रकृति के इस प्रतिभूत प्रभाव की व्यंजना में सबसे अधिक दुर्दशा बेचारे हिमकर की हो हुई है। वह भी ठीक इसी प्रकार वैशिकि नख चित्त चिन्मय में बेचारे कमल की। जनक बाटिका में अप्रसूत रूप में उसी हिमकर को बसीट कर बिकलाय एवं बीन बनाया गया है। धीरे संका कोड तक तो पहुँचते पहुँचते उस पर मनमाने धारोपों की जैसे मुसलापार बर्षा होने लगी। राम ने उसे एक बारही घटक कपूर बेने के बाब जब अपने अनुगमन कर्ताओं ने उसकी मेचकताई के सम्बन्ध में पूछ तास करनी चाही तो मौलिक भावनाओं के स्वतन्त्र बिचारों की एक भन्नी-सी भय गई। उनके सामने भूमि धबका राग्य बंभित धंग्र ने कहा कि यह तो भूमि की मर्द्दी है। कुछ ही समय पूर्व भाई का पबाधात सहकर घाने वाले बिमीपण ने परमाया कि यह तो राहु के मारने की स्वाभता है। बेचारे सुधीन ही भला इस स्थल पर अपने बिचार व्यक्त करने की शूष्टता क्यों न करते। दूर की कौडी के उध्माने का प्रयत्न करते हुए बोसे कि रति के निमाण के समय भूक्ति ब्रह्मा ने ससि के सार भाग का धपहरण कर लिया या अतएव उसमें एक छिद्र का हो जाना स्वाभाविक वा धीरे यह मेचकता धीरे कुछ न होकर उस छिद्र भाग में से दोष पड़ने वाली वाकाध की छामा मान है। अत इत समस्त स्वर्णों में हिमकर जैसे जोयस प्राकृतिक उपादान को लेकर कवि ने जो अपनी भावनाओं व्यक्त की हैं वह उसके पक्ष में अधिक अनुदंबनकारी नहीं सिद्ध हो सकता है। प्रकृति के बिपरीत प्रभाव की एक ऐसी ही अतिछयोक्तियाँ पूर्ण मुखा इमें बरवी की निम्नलिखित पंक्तिमा में बेसने को मिलती है। किन्तु यहाँ प्राकृतिक उपादान (अजेरी रात) को अधिक लीलाभेदर नहीं की गई। राम के बिदोग से सारे संसार को ही अन्निबत बठाकर कवि के उद्दीपन रूप में प्रकृति का बलन किया है। यह बर्लन बिहारी के धरो धाव मजु 'मीठरं बरसत पानु धंगार' न ह्वाले में कहीं अधिक स्वाभाविक है। ऐकियै—

बहकनु न है उरिया गिसि नहि धाम ।

अथ अरु अस लामत मोहि बिनु राम ॥^३

हाँ प्रकृति की तो नहीं किन्तु बिदोबाद्दीपन की व्यंजना उस स्थल पर निरन्धय

१ मा० सु० पृ० २३०

२ प्रसन्न राम के प्रसौता ने भी बहुत पहले ऐसी ही श्रवना की थी। द्वितीयपुराणवादी अनुदंबन नाम शब्द दहन। सरही बीबाठ- कुपित्तः फलितः रवान बदन- लबावस्ता कुबलय धन कुत्त महनं ममत्वहिस्नेपात् मनुष्य बिपरीतं अपदिम् ।

३ बरवी रामायण छं० छं० १७

ही मू बार दालीन अतिशयोक्ति से होड़ भिरे देख पड़ती है । वहाँ कवि ने सीता की विरह बन्ध धातुसता का वर्णन करते हुए कहा है ।

कजुपरिमा की मुबरी कंवन होय ।^१

बिहारी की यह पवित्र पठिका नायिका धनुषाढ में भसे ही कवि की उक्त नायिका से अधिक दुर्बल बिलबारी बेटी है जिसे उन्होंने खास प्रवास की मति के साथ घामे घोर पीछे जाते हुए दर्शाया है ।^२ हमारे कवि ने भी यहाँ जसी चाब को पकड़ने की चेष्टा की है । हाँ सुख एवं सन्तोष का विषय है कि विरह खेद की ऐसी अतिरंजना हमें कवि की विधास्य प्रबन्ध रचना में नहीं बरन् उस की मुक्तक रचना में ही यम-यम देखने को मिल सकती है । साथ ही वह ऐतिहासीन वातावरण से कुछ अंशों में भी मुक्त देखी जा सकती है ।

अपनेस एवं तत्व बर्चन से युक्त प्रकृति वर्णन—

ध्यापक रूप से तो मोस्वामी तुलसीदास के इस प्रकृति चित्रण का अर्थ भीमरनायकत को दिया जाता है । बौद्ध बहूत हेर केर के साथ कहीं-कहीं तो भागवत के शब्दों का अधिकतम धनुवाद जैसा उनकी रचना में देख पड़ता है । उदाहरण के हेतु उनका प्रसिद्ध 'ससिपन बैसहु मोर मन नाचत बारिह पैखि' भागवत के लिम्नोक्ति बर का ही अधिकतम धनुवाद कहा जायेगा ।

मैयोगमोस्तथा इष्टा प्रपमंबण्डि-बबिन्धः ।

ग्रहेषुवत्त्वा निबिराणा पबरभूत बनागमे ॥^३

इतना तो हमें भविर्वाय रूप में स्वीकार करना होया कि कवि के ऐसे प्राकृतिक चित्रणों में तुलसीदास की अनुभूति नहीं उसके महात्म्य को आप अधिक बिलबारी बेटी है । किन्तु इस क्षेत्र में भी तुलसी के प्रकृति वर्णन से निरास होकर खीटने वाले विद्वानों से मुझे एक बात बिलभ्रता से कह देनी है कि अपने निरासपूर्ण निरास होने से पूर्व उन्हें एक बार यह भी विचार कर लेना होया कि कवि के व्यक्तित्व का विकास भी कई विधाओं में हुआ है । वह कोई कवि या नाहित्यिक नहीं । प्रस्तुत एक महान संत एवं कट्टर मर्यादावादी समाज सुधारक भी थे । अतएव समाज सुधारक के नाते उनकी रचनाओं में उपदेश और नीति की प्रधानता है । इस कारण उनके काव्य में गहरे तत्व बर्चन की छाप है । यही कारण है कि वह दोनों ही तत्व (उपदेश और तत्व बर्चन) उनके प्रकृति चित्रण में मात्र एक बिलबारी बेटी हैं । विशेष रूप से तो इसका अर्थ 'मानस' के उन्ही कोंकों को है जिनकी संज्ञा किष्किन्वा एवं परम्प

१ बरबै रामायण—अं० सं० ३८

२ बैलिये बिहारी उठसई बोहा—

इत भावति बलि बात उठ जती छः ठाठक हाप ।

बड़ी हिनोरे सी रहे लयी उठासन साब ॥

३ भागवत १०।२०।२०१

है। किन्तु इसके प्रतिरिक्त भी कहीं-कहीं उनकी प्रवृत्ति उपदेशिका रूप लेकर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। धरम्य कांड में गोदावरी के उपकूल पर बैठे हुए 'मालव' के राम अनुब लक्ष्मण से ज्ञान विराम एवं भक्ति की वर्षा करते हुए कहते हैं।

मैं जब ओर ओर लें माया। बहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥^१

प्रत्यक्ष होना क्या चाहिये वह यही—

बचन कर्म मन मोरि पति मजनु करहि निःकाम ।

तिम्हू के हृदय कमल महुं करतें सदा विषाम ॥^२

इसी प्रकार पंपा सरोवर के निकट घाकर भी सरोवर की जमिल सहरो से सबैव घघुते रहकर उनके राम आश्रय भूसक उद्वेगियों को ही विनाश में व्यस्त दृष्टिबोधर होते हैं। यथा—

संत हृदय बस निर्मल बाटी। बाजे बाट मनोहर बाटी ॥

बहु तर्ह विप्रदि किबिष भृग भीष। जनु उदार गृह बाचक भीरा ॥^३

घोर भक्त में—

सुखी मीन सब एकरस प्रति घगाय बस माहि ।

बया बर्म सोसम्हू के बिन मुख संजुत पाहि ॥^४

घाटय यह है कि गोदावरी एवं पंपा सरोवर दोनों के उपकूल पर घाकर भी कविता। सरोवर के स्वतन्त्र रूप रग का प्रबलोकन न मोस्वामी जी ने स्वयं ही किया और न अपने सपास्य राम को ही कराया। चित्रकूट एवं पंचगढी के इन्हीं प्रसंगों में लघुभूमि के धर्म्य सहचर महापि वास्वीकि का हृदय, घट घट क्षणों में फूला-सा पड़ता है। ऐसा प्रकट होता है कि प्रवृत्ति गढी की कमनीय कलाओं उसके बन पर्वतों तिलरारों गढी घोर निर्दरों के साथ अनुरक्त होकर महापि का हृदय भी एक हो जाना चाहता है और यही एक कारण है कि जब महात्मा तुलसीदास के राम अनुब लक्ष्मण का सब तबि हरि भक्ति का उपदेश दे रहे हैं तब कवि वास्वीकि के लक्ष्मण राम से हैमन्त के प्राकृतिक रमन की हृदयानुरञ्जनी वर्षा में ललम है। न कबल इतना हो अपितु उसकी घमित विभूति पर एकांत भाव से मुग्ध भी हो रहे हैं। इसी ओर हम देखते हैं कि हमारे कवि धामे बस कर किष्किष्वा कांड के वर्षों व पारव बर्तन को भी उपदेश बहुत बनाने में संलग्न हैं। प्रवृत्ति विषय यद्यपि हमें यहाँ भी प्राप्त होता है किन्तु उपदेश तत्त्वों से विभित होने के कारण मुक्त प्रवृत्ति का प्रह्लादवादी रूप हमें यहाँ दृष्टिबोधर नहीं होता। सुभ्र दृष्टिक घिता पर बैठ हुये राम ने जब वर्षा काशोन मेघों पर घपना वहला दृष्टिबिलेप किया तब तो उनके

१ मा० धरम्य पु० ४८०

२ मा० धरम्य० पु० ४८२

३ मा० कि० पु० १०१

४ मा० कि० पु० १०१

हृदय के प्राकृतिक बहारा की स्फूर्ति से अनुपाश्रित यह शब्द प्रवहण चूट पड़े। 'बर्षा' कास मेघ नम छाये। किन्तु बूधरे ही अख उनको यह सुख प्राकृतिक अनुभूति नीति एवं उपदेश की बौद्धिक मन्त्रियों में उत्पन्न गई। यह ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जामी उद्यम की सारी साम शुकता जमुना तरंगों एवं ह्रज के करीस कुओं में बिरमा गई थी। अन्तर केवल इतना रहा है कि उद्यम की बौद्धिकता के सुख मस्त्वत के निकल कर हृदय की सरस अनुभूति को घोर मघघर हुए घोर तुलसी के राम हृदय में उपदेश की मायुक अनुभूति से बिरल होकर बौद्धिकता में प्रवेश कर गये।

परिणामत उन्हें बामिनी की बमज में दुष्ट जन की मस्विर प्रीत, भूमि स्वर्षी मज मातापों में बुद्धि बिसारकों की जवारता एवं विनम्रता भूति बूसरित जल में माया सिप्त मानवता क्षुद्र मरियों की बाढ़ में जलों की विमिप्यता शकुलों की शक्ति में धाममवासी ब्रह्मचारियों की प्रथमयन शीतता तुण्णावृत्त पत्नी में सद्बन्ध मुप्यता महाकृष्टि से फूटी हुई क्यारियों में नारियों की शरिज हीनता घोर हिम शिखरों पर पड़ने वाली बर्षा की बूबों में सन्तों की समा पीतता का धामास मिल कर रजु गया।^१ इसी प्रकार ये घोर धामे धामे पर धरद जनु के बर्णन में पहले तो यह महाकवि राम के हृदय में उमड़ने वाले सहज उस्तास का परिचय देता दिखलाई देता है। किन्तु बाद में वह घोर उनके राम दोनों ही सरस जनु के प्रागन में लोभ, मोह माया ममता ज्ञान मक्ति जिहुस एवं सप्रभु के ठारिक उपकरणों का डैर बना देते हैं जब उनके राम का ध्यान एक बार फिर छाई हुई सीता की घोर धाक बित होता है। तब वे एक बारकी कह उठते हैं —

बरपागत निर्मल जनु भाई। मुनि न पात सीता कर पाई ॥

एक बार कैंठिहु मुधि पाबो। कालहु बोति निमिप मंह धाबो ॥^२

बर्षा एवं धरद के उपसुक्त प्रसंगों पर विचार करने के बाद हम इन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचने के हेतु बाध्य हैं कि कवि अपने सहज आत्मोस्तास का परिचय में यहाँ भी नहीं दे सका। किन्तु इसका धर्म यह भी नहीं है कि इस बिदा की घोर सन्मुख होते हुए भी उसे सकलता नहीं मिली। अस्तुतः वह इस घोर प्रकृत ही नहीं हुए। प्रकृतता का प्रस्तन तो तब उठना जब प्रकृत होते हुए भी सफलता समझे हुए रहती। इस प्रसंग में हमें यहाँ कहना होगा कि प्रकृति को नीति एवं उपदेश का माध्यम बनाकर कवि अपने लक्ष्य पर की घोर जिस दरवाह के साथ धामे बढ़ा है, उसका यह सत्याह मस्त तक भी सुरक्षित रहा है। अस्तु के परिणाम की प्रपामता होते हुए भी इस क्षेत्र में हमें कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का ध्यान होता है। किन्तु बहुल का उत्कृष्ट रूप यसे ही हमें यहाँ दृष्टिकोचर न हो किन्तु स्वनिरीक्षण का वह धामा भी जो महाकवि केधन की रचना में पाया जाता है हमें यहाँ न मिलेगा।

१ मा. कि० पु० १२४ १२७

२ मा. कि० पु० १२७

पम्पा सरौबर के बरौन में जब हम अपने कवि को बसंत पत्रों की प्रशानता से सराबर के स्वच्छ जल से ठका हुआ घोर बर्षा के प्रसंग में मार्गों को हरित तुला से मुदा हुआ बठाकर अपने स्वामुमुति ज्ञान का परिचय देने देखत हैं घोर जब हम उन्हें दुमाबों की बटकाहट पलाघाविकों के पुष्पित उस्सास बपसा की बसक बहू-बाकों की कल्पित कैलि के मध्य भी जीवन बिहीन धाक घोर बवासों का उस्सेल करते पाते हैं तो प्रकृति के प्रति हमें उनके धनुराम की सूक्ष्मता का अनुभव हुए बिना नहीं रह पाता । बचपि उन्होंने प्रकृति का क्या तप्य बिचल किया है किन्तु केन्द्रीय भावना उपदेश की रही है तो भी इस बिचल में कवि का प्रकृति के प्रति कुछ धनुराग ब स्नेह भी प्रकट होता है । क्योंकि उन्होंने जहाँ बर्षा अनु में तबीन पर्यब घोर हरित भूमि का बरान किया है वहाँ से धाक घोर बवास से पत्र बिहीन सुने वृत्तों का बरौन करना भी नहीं पूरे हैं ।^१

एक बात हमें घोर भी नहीं सूझनी चाहिये कि बकीर आपसी सुर रहीय धारि कवियों के बाम्यो म भी हमें उपदेश बहुता प्रकृति के ही दर्शन होते हैं घोर इस बात को तो यहाँ तक स्वीकार करने में हमें आपत्ति नहीं होगी कि सम्पूर्ण भक्ति युग की प्रकृति उपदेश बहुमता होकर ही सामने आई है । रासों के युग में तो हमें धिक्काय चारण कवियों की प्रकृति निरपभ्रता का ही आभास मिलता है । रीति युग में भी प्रकृति का उपयोग नल धिक्क बिचल बिभोगोहीपन के ही हेतु क्रमशः किया गया है । पबिच आध्यात्मिक भावों की जया सकन म भी हमारी धात्री प्रकृति का भी किठना बड़ा हाप हो सकता है ।^२ हमकी घोर धायर हो किसी रीतिकामीन कवि से ध्यान देने की जेटा की हा । कृष्णापासक कविया में चाहें बह रीति युग क हा धयबा भक्ति युग क रामा कृष्ण की कैलि स्वामी रूप में ही बिदास प्रकृति को बन्दिनी बनाने की जेटा की है । एकाय स्वतां पर महारया सुर धारि की रचनावा में प्रकृति क उपदेशक रूप की कसक हम मसे ही मिल जाती है यह बात घोर है किन्तु धमि कोय स्वस इससे पूम्प ही है ।

प्रकृति में बरम तत्व का आभास—

प्रकृति में जहाँ तक परम तत्व के आभास का प्रश्न है इस दिशा में ता हमें इतना ही निर्देश करना है कि बह भारतीय बाम्यय को बेदकामीन परम्परा है । समस्त चराचर ही उस महाबलि की लोतासुमि है । हमी बिचार बारा की घोर संवेत करते हुए बकीर ने कहा —

१ डा० किरण कुमारी गुप्ता—हिन्दो बाम्य में प्रकृति बिचल—पृ० १३३

२ वैबिध सुर गाबर बह—“आ दिन मन रंघी उठि जैते ।

ना दिन तेरे तनु तगर के मरै पाठ भरि जैते ॥

जासी मेरे भास की जित देखीं जित ताम ।

—बबीर

सुखी कसाकर जायस। मे भी इसी सुख भावना को अनुभव करते हुए कहा
वगने नखत को जाहि न मने । वे तब प्रोहि बानन के हुये ॥

—भायसा

हमारे महाकवि में समस्त जन बंधन में उसी एक महामानव की परिभ्याप्ति
देखी । उसी की विपन्न स्थायी प्रसार की भावुक अनुभूति की ओर अपने काव्य में
भी इस भावना को इस प्रकार उठा कर रक्खा :—

धकधपुटी प्रभु प्रायत जानी । बई सकल सोमा कै जानी ।
बहुर मुहावन विविध समीप । भई सरह प्रति निर्मल नीरा ॥^१
कब मुन पन पन सुहाय । भये बहुत जब ते प्रभु पाये ॥

धकना

संयत्न कय मयी बन तब ते । कीगह निवास रमापति अब से ॥^२

काम्यसुरजम की जायना से मुक्त प्रकृति बर्णन—

हम कह सकते हैं कि संघी में इस प्रकार के पर्यवेक्षण का ही "Simple
delight in Nature" की संज्ञा की गई है । वस्तुनिष्ठ होने के कारण उसमें वस्तु
परिमलम की ही प्रधानता दृष्टिमोचर होती है । शेषक सुलभ उन्मास की छाया भी
यहाँ सर्वत्र दृष्टिमोचर होती है । पम्पा सरोवर के निकटवर्ती प्राकृतिक सुखमा का
विहायसोक्त करने वाली कवि की यह पंक्तियाँ उनके सहज प्राकृतिक उन्मास का ही
परिचय देती हुई दिखलाई देती हैं ।

तास समीप मुनिगह गृह छाय । बहु विधि कानन बिटप मुहाए ॥
बंधक बहुम कबंध तमासा । पाटल पनस पत्तास रसासा ॥^३
कुह कुह कानिल धुनि करहीं । मुनि रन मरस ध्याग मुनि टपहीं ॥^४

×

×

×

बेसि राम प्रति बचिर तसासा । मग्गनु कीगह परम मुख पासा ॥^५

एक शब्द में गोस्वामी जी का अधिकांश प्रकृति चित्रण इसी प्रकार का है ।
उसमें नामोल्लेख की प्रधानता होते हुए भी कवि के सामान्य उन्मास (Simple
Delight) की निर्झरिणी की बहती हुई दिखलाई देती है ।

१ मा० उत्तर ५० १२१

२ मा० उत्तर ५० १२१

३ मा० धरम्य ५० १०६

४ मा० धरम्य ५० १०६

५ मा० धरम्य ५० १०६

धार्मोत्साह से युक्त प्रकृति बर्णन—

गोस्वामी तुलसीदास का प्रकृति बर्णन समष्टि रूप में तो वस्तु परिचयान प्रधान ही है किन्तु सामान्य उत्साह की भावना के प्रतिरिक्त उसमें कहीं-कहीं कवि के उत्कट अनुराग व तीव्र धार्मोत्साह की स्थाया भासित होती है। यह सत्य है कि ऐसे प्रकृति चित्र महाकाव्य 'मानस' में नहीं पीठावली में उपलब्ध हो जाते हैं। व भी मुख्यतः चित्रकूट व बसन्त आदि के बर्णनों में। चित्रकूट की प्राकृतिक रमणीयता पर हमारे कवि का मानस जिस उत्साह की उमिया से तरफित होता भक्षित होता है उसके आशेष में हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें प्रकृति के संदिलिप्त चित्रण की पूरी क्षमता थी। थोड़ी देर के लिये यदि हम कथक पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होना कि उनके भी इष्टदेव राम ही थे। उनके प्रकृति बर्णन पर भी यही बात लागू होती है। वहाँ भी उनके इष्टदेव का माध्यम ज्यों का त्यों सुपरिभूत रहता है। हाँ इन्हें राम के प्रति तुलसी जैसे पावन अनुराग की प्राप्ति न हो सकी। यह बात धीर है। इस माध्यम की उपस्थिति में भी व अपन प्रकृति चित्रण की अस्वाभाविकता को दूर कर उसे संदिलिप्त रूप प्रदान करने में क्यों असमर्थ रहे। अतः हमें पूर्ण निरपेक्षता के साथ यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि प्रकृति से निरपेक्ष न तो तुलसी ही थे धीर न उनका राजा राम ही। प्रस्तुत वे होना ही थे प्रकृति प्रेम की तरसता से तरफित होने वाले सहृदय प्रकृति निरीक्षक।

मानवीकरण—

मानवीकरण में मनुष्य का दाय सृष्टि के साथ एसा सापारमक संबंध स्थापित हो जाता है कि वह बड़ धीर अंततः ममी में मानव भावनाओं का सा आदान-प्रदान पा सता है। कवि प्रकृति में कभी उत्साह कभी उत्साह कभी मानव धीर कभी छाक की स्थाया देखता है। प्रकृति उनकी मानसिक अवस्था के साथ पूर्ण सहयोग प्रदान करती ही प्रतीत होती है। विद्योपावस्था में तो प्रकृति को संबेचना प्रकट करती है धीर कभी कीम उत्पन्न करता है। धीर कभी भयभीत बना देती है। इस प्रकार कवि अपनी मनास्थिति के अनुसार प्रकृति में मानव भावनाओं का आरोपण ही कर ही जाता है साथ ही उसमें मानव क्रियाया वा भी प्रबलोकन करता है।

तुलसी ने बड़ धीर बेगन प्रकृति में मानव व्यापार का सुन्दर विवरण कथाया है।

पानी हों इन्हें मुझको पीते ।

लेत हिय भरि परि पति को हित मानु हेतु मुव जैसे ।

बार बार हितद्वान डेरि उत की बाने काठ ठारे ॥

×

×

×

लोचन सबस सदा सावत से लाम पाव विद्यमाने ।

चितवत चौकि नाम सुनि सोवत राम सुरति सर पाये ॥^१

राम के वियोग में चौकीं की यह दशा है कि वे अपना कामा पीना भूल कर प्रयास और सबस भैर रहते हैं । राम का नाम सुनकर चौक कर देखने लगते हैं । इस प्रकार सजीव प्रकृति में हमें मानव के प्रति प्रेम के भाव मलिन होते हैं । किन्तु तुमसी की हृष्टि वस्तु पहिलो तक ही सीमित नहीं रही । उन्होंने बड़ प्रकृति को भी मानव के सुख में हँसते और दुःख में मलिन होते देखा है । पीता हरण के पदचान विपन्न और दुःख से पूर्ण प्रकृति का चित्र देलिये ।

सरित बस मलिन सरति सूजे मलिन ।

मलिन न सुँअत कम कूजे न मरान ॥

तवस नै जानही साये ज्माय हरि कटि कपि ।

हेरें न हुँकरि भरें फस न रसान ॥^२

पीता बिरह में सरिताधों का बस मलिन हा बसा सरोवर सूख गये और पहिलो ने अपना कू बन बन्द कर दिया । रसान के फस भी नहीं मड़ते चेतन प्रकृति में तो हर्षे चौक प्रेम की भावना बिद्यमान रहती है । किन्तु सरिता बृशादि का सोकामुनव करना तो वास्तविक तथ्य नहीं है । मानव को अपने मन की सम्भवस्थित बधा के कारण इस प्रकार की संवेकता प्रकृति में प्राप्य होती है और अपने मानविक स्थिति का प्रतिबिम्ब जते प्रकृति में हृष्टिपोचर होता है । कबि इस वास्तविक तथ्य को कल्पना से रचित कर उसे महीन रूप प्रदान कर काव्य में बर्णन कर देता है । तुमसी के राम का वियोग इतना व्यापक हो जाता है कि सबने जीव और बृशादि ही नहीं बरन् समस्त पृथ्वी ही व्याप्त हो जाती है ।

सुनि पितु बचन बरन गड़े रहुपति रूप धक भरि लीगड़े ।

पजहुँ घबनि बिबरत मिस सी घबसर सुनि कीगड़े ॥^३

राम के मन गमन का हृदय इतना घबिक कइस्योत्पावक या कि उनके स्मरण में भी पुरही का हृदय बरार के बहाने से घब भी बिदीस हा जाता है ।

पास्वायी की को रचनाओं में जपयु ल प्रकृति सम्बन्धी विविध रूपों के धम्य निम्नलिखित प्रकृति के संको का भी पूर्ण विवेचन उनकी रचनाओं में मिलता है ।

१—सूर्योदय

२—चन्द्रोदय

३—शतु

४—नदी

५—सरोवर यादि

१ गीतावली—दशोप्या कांड—पर सं० ८६

२ गीतावली—परप्य कांड—पृ० ३२७

इन्हें से प्रायः सभी के बरुंग तुलसी के काव्यों में प्रसंगानुसार मिलते हैं ।
जिनकी क्रमानुसार बिबेचना नीचे की जा रही है ।

संख्या—राम के जन्म लेने के समय गोस्वामी जी ने संख्या का बड़ा ही सुन्दर
रस्य खींचा है । इस प्रकार —

प्रथमपुरी सोइह एहि मोटी । प्रभुहि मिलन पाई अनु राती ।

देखि मानु अनु मन सकुचानो । तदपि बनी संख्या अनुमानो ॥^१

संख्या का यहाँ गायी रूप में कवि ने कितना सुन्दर चित्र खींचा है ।

सूर्योदय—तुलसी के भास के बाद काव्य में सूर्योदय का एक चित्र देखिये ।

उचित उदयपिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग ।

बिन्दते अन्त सरोवर मरु हरये सोचन मृग ।

मृगमूह कैरि घामा निशि नासी । बचन मज्जत प्रथमो न प्रकासी ॥

मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी मूग अनुक तुकाने ॥

भए बिसोक कोक मुनि सेवा । बारिछाहि सुमत जगबहि सेवा ॥^२

यहाँ पर गोस्वामी जी ने राम को दाम पतंग सिखा इसमें भी भाव है ।

बाहूँठे ठो गोस्वामी जी अपने राम को पूर्ण सूर्य सिख सकते थे किन्तु राम को पूरा
सूर्य न सिखने का कारण है । प्रायः परशुराम घामे बाल हैं उनको कवि पूर्ण सूर्य
सिख रहे हैं ।

तेहि धबसर मुनि सिबबनु मंचा । घाम मधुकुन कमल पंचया ॥^३

राम को बाल सूर्य घोर परशुराम को पूरा सूर्य सिख कर भी तुलसी अपने
राम का महुरम ही बड़ा रहे हैं । बाल सूर्य बराबर बढ़ता रहता है । घोर पूर्ण सूर्य
१२ बजे दिन का होता है जो बाद में हलने लगता है । यहाँ परशुराम राम ने परा
बिड होंगे । अतः परशुराम का लेख घट जायेगा घोर राम का लेख अभी घोर घाम
बढ़ना । दूसरे पूर्ण सूर्य राहु से छूट कर ही प्रकाशित होता है घोर राम को अभी
राबल कपी राहु (जने जहाँ राबल समि राहु) पर विजय पाता बाकी है । इस
कारण कवि उन्हें यहाँ बाल पतंग की उपाधि से बिरूपित कर रहे हैं । जब राम
राबल पर विजय पा जायेगा तब घामे घामे तब कवि ने उन्हें पूर्ण सूर्य सिखा ।

जब ठी राम प्रताप खयमा । उदित मयठ धति प्रबल बिनैया ॥^४

रात्रि—‘भास’ में गोस्वामी जी ने रात्रि का बरुंग किया है । जरा एराब
स्पष्ट देखिये ।

१ मा० बा० पृ० १३८

२ मा० बा० पृ० १७८

३ मा० बा० पृ० १८१

४ मा० उत्तर पृ० ७१४

बिबुल जग मुक्ताहल तारा । निशि तु बरी केर भुङ्गारा ॥^१
 जालति प्रपथ भवामव भारी । मानहु काल राति बरिबारी ॥^२

सम्बन्ध—सम्बन्ध का ता बहुत विवेकन कवि ने सही शक्त पंक्ति में कर दिया —

मानहु काल राति बरिबारी ॥^३

प्रसक्तकाल—सबभय से प्रातःकाल का बर्णन राम करते हैं :—

उबहु भजन भवमौकहु ताता । पंजन कोक लोके सुखराता ॥^४

सूर्य के उदय होने के ल्याय से ही पोस्वामी जी ने प्रभात का बर्णन कर दिया और भी —

प्रातकाल सरसु करि मखजन । बौडहि छपर संय द्विज सजजन ॥^५

भुगवा—भुगवा का भी इस प्रकार बर्णन 'मावस' में हुआ है :—

बभु सखा संप मैहि बुभार । बज भुगवा मिठ खेतहि भाई ॥

पावन भुग मारहि मिठ बाबी । दिन प्रति भुपहि दिनाबहि धानी ॥^६

घोर यी धम को भुगवा कियो प्रिय नौ के एवमे कहुती हैं ।

हुम कभी भुगवा बज करही । हुम से खस भुज जोउत करही ॥^७

बर्णन—जागस के मयोप्याकार में तुलसी ने बड़ी ही विचयता से बिचफुट का बर्णन किया है :—

पुरातरि करसह दिनकर कज्जा । पैकसमुठा पोसाकरि जग्गा ॥

उब कर सिम्बु नबी नर नाना । मँदाकनि कर करहि बसाना ॥

उदय अस्त विरि अब कीलानु । रहर मेर तकन भुरवानु ॥

सैल हिमाचल भाकिर जते । बिचफुट जनु मानहि वेते ॥

बिधि मुदित मन सुल म मलाई । धन बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥

बिचफुट के बिहय भुग बेलि बिरप तुन प्राति ।

पुन्य पूजे सब भक्त अंस कहुहि देव दिन राति ॥^८

सम्बोध—सम्बोध कवियों को अत्यन्त प्रिय रहा है । तुलसी ने अपने सम्बोध

१ मा० संवा० पृ० २२२

२ मा० अयो० पृ० १०६

३ मा० अयो० पृ० १०६

४ मा० अ० पृ० १६७

५ मा० उत्तर० पृ० ७१०

६ मा० अ० पृ० १४४

७ मा० अरव्य० पृ० ४५२

८ मा० अयो० पृ० १४१

को धसूना नहीं छोड़ा है। उनकी बस्त्रधारें संस्कृत के किसी भी कवि के समस्त ठहर सकती हैं। अश्रोदय का एक बरुण देखिये। राम का यौवन कास है। सीता के सौन्दर्य को वह स्वयं एक बार देख चुके हैं। भक्त मानस अगत में सीता का ही सौन्दर्य व्याप्त हो रहा है। उनके मित्र संसार के धरा परमाणु में सीता की छवि खोजने में लगे हैं। देखिये अश्रुमा से उदय काल में वे सीता का स्मरण किस प्रकार कर रहे हैं :—

प्राची बिसि ससि उपर मुहाना । सिय मुख सरिम देखि सुनु पावा ॥

बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं । सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥

कोक सोनप्रद पंख ब्रौही । प्रबगुन बहुत चंद्रमा ठोही ॥^१

देखिये अपने प्रेम पाव की प्रार्थना के हेतु हिमकर में कितने रोप एकत्रित किये हैं। तुलसी ने अश्रुमा और उनके कर्त्तक बोलो को ही अपनी मनोहर उल्लेखों से स्मरण किया है। संका में राम और उनके परिपत्रों के बीच अश्रुदय के प्रवसर पर उन्होंने जो कपोकपवन कराया है। वह बहुत ही मनोरंजन है। अश्रुदय की इस बरुण की धाड़ में काव्य कसा में अनिपुण तुलसी ने एक और भी अमरकार उत्पन्न किया है। अश्रुमा की मैकता पर जिन जिन विद्वानों ने अपने भाव व्यक्त किये हैं उनमें उनके हृदयों में उपस्थित माननायें साकार हो उठी हैं। जिन्हें हम पीछे ही व्यक्त कर चुके हैं।

शत्रु—प्रथम शत्रु बरुण का भी ध्यान प्रमुखा कीजिये। सीता हरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वर्षा शत्रु का समय है। तुलसी ने इस प्रवसर पर राम के मुह से वर्षा का धानन्द बरुण करते हुए उपदेशों की झड़ी लगा दी है। मानस में यह बरुण बहुत प्रसिद्ध है। तुलसी के वाक्यों में बल्लभ वर्षा और धरत के ही बरुण प्रसिद्ध है। पीछे और शीत शत्रु को उन्होंने दीक्षित व्यक्तियों और जड़ पदार्थों के बुद्ध के साथ ही स्मरण किया है।

समुद्र—समुद्र का तो बड़ा ही विषय बरुण है। राम और लक्ष्मण के युद्ध का प्रमुख स्थान ही अरुण है। इनुमान जी इमी समुद्र का बरुण इमी प्रकार करते हैं।

सीताहि नापउ बलनिधि सारा ।^२

नदी—तुलसी को बलाघम बल्ल प्रिय लगती है। नदी सरोवर और धरत धारि से उन्होंने कितने ही रूपक और उपमाया की सजीव किया है। एक रूपक में उन्होंने नदी का धारि से लेकर अस्त तक जीवन तिल किया है

श्रुति सिधि संपति नदी सुहार्द । उपाय प्रवच धनुषि बहूँ पाई ॥^३

१ मा० बा० पृ० १११

२ मा० कि० पृ० २३६

३ मा० धयो० पृ० २३४

नदी का एक सुन्दर रूपक प्रयोच्या कांड में उस स्थल पर भी मिलता है । जब चित्रकूट में राम जलक की प्रशुभानी करके उन्हें ले जा रहे हैं ।

प्राथम्य सागर स्रष्ट रह पूरुष पावन पाव ।

मैत्र वनहु कक्ष्मा सरित्त लिये जाहि रघुनाथ ॥^१

सरोवर—सरोवर का सबसे सुन्दर रूपक तो वास कांड के प्रारम्भ में है पर प्रारम्भ कांड में पम्पासर का वर्णन कम बखित नहीं है ।

पुनि प्रभु पमै सरोवर सीर । पंपा नाम सुमन पम्पीर ॥^२

उपसंहार—

हिन्दी घालीचला के बिना निर्दोषक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के बाह्य चित्रण की ओर ध्यान निर्देश करते हुए जो कुछ कहा या मूल रूप में उसका आद्य ब्रतना ही है कि मोस्वामी जी का प्रकृति चित्रण प्राचीन संस्कृत कवियों जैसा सुष्ठम नहीं है । किन्तु इतना होते हुए भी उनही काव्य रचना में कहीं-कहीं प्रबलित संस्कृत कवियों का जैसा सुष्ठम निरीक्षण भी पाया जाता है । अन्ततः प्राचीन संस्कृत कवियों की टीका पर किया गया उनका न्यूनतमिक प्रकृति चित्रण ही उन्हें हिन्दी कवियों में सर्वोच्च स्थान देने का सामता रखता है । निस्सन्देह आचार्य शुक्ल के अभिमत को ही दृष्टि पथ में रखकर जब तक तुलसीदास जी के प्रकृति की समीक्षा होती भाई है । किन्तु बेह न । विषय है कि समीक्षकों ने आचार्य शुक्ल के अभिमत को उसके सम्पूर्ण रूप में ग्रहण करने की पधारता नहीं करती है । किसी ने वास्तविक के प्रकृति चित्रण के सामने तुलसी के प्रकृति चित्रण को बचने का नामा पहनाया है । किसी ने उन्हें प्रकृति निरपेक्ष बनाने की चेष्टा की । डा० श्रीकृष्ण साह जी को तुलसी के काव्य में केवल वे भी ही ध्यान देनी हूय हीनता का आभास मिला है । अन्ततः प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी उन्हें कवि की उसके हृदयहीनता का आभास मिलता है ।^३ किन्हीं लोगों का आरोप है कि तुलसीदास जी के काव्य में वास्तविक आवावाही कवियों का सा प्रकृति स्वरूप व मानवीकरण नहीं पाया जाता । इन अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर में मैं सबसे पहले यही कहूँगी कि तुलसीदास जी की हृदय हीनता से कहीं अधिक हृदयहीन रहा है घालीचलों का यह आरोप किन्हींने शुक्ल जी के अभिमत को एक पक्षीय बनाकर अपने निर्णय देने की छत्रा की है । यह ठीक है कि तुलसी के काव्य में सर्वत्र संस्कृत कवियों जैसा सुष्ठम वर्णन नहीं पाया जाता । किन्तु हम यह भी स्वीकार करने की प्रस्तुत नहीं कि सर्वत्र उन्होंने रीति परम्परा का ही अनुकरण किया है । प्रकृति निर्देश तो उन्हें किसी भी प्रकार ने माना ही नहीं जा सकता । संस्कृत कवियों के अनुकरण की

१ मा० प्रयो पृ० ४२१

२ मा० प्रारम्भ० पृ० १०१

३ डा० श्रीकृष्ण साह—मानव वर्णन—पृ० १५१

उनकी कृतियों में संरिख्त चित्रण देखने को मिलता है । जिसमें अर्थ ग्रहण को भी पूरी क्षमता देखी जा सकती है ।

अहाँ तक प्रकृति में वैतन व्यक्तित्व क आरोप अथवा मानवीकरण का प्ररन है । अंतिम रूप से इस प्रसंग में इतना ही निवेदन करना है कि हमारे कवि को रचना में छायावादी मानवीकरण को छाना नहीं बीख पड़ती । मेघ को संवेग बाहक बनाकर कालीदास ने पहले ही मानवीकरण को नीच आसो किन्तु प्रतीक विधानमयी साध सिद्ध दीसो सरल शब्द भूमिमा ध्वग्यात्मकता यमूर्त की पूर्ण योजना धावि उपकरणों के अभाव में हिन्दी क सत्कृत दोनों ही साहित्या की पूर्ववर्ती रचनाया में धाधुनिक युग जैसी विनात्मकता नहीं पाई जाती । महाकवि निरामा की 'बाहल राम क पंत की अस्मोड़े का अगत' दीर्घक रचनाएँ शैलि धीर अरुमवर्ण क अनुकरण पर भी सिखी जाने पर वे अथनी किन्हीं अत्रिपय विरोधताया क कारण मौसिक हो कही जाएंयी । मौसिकता के इस मनीनतम अयबंध पर हमारे कवि का प्रकृति चित्रण निश्चय ही सफल नहीं कहा जा सकता । किन्तु इस प्रसंग में यह भी कह देना अयंगत न होना कि छायावादी युग को इस मनीनतम कड़ीयो पर मल्लि युग के चित्रण की विवेचना करना आरम्भ से ही निराशा को निमग्नण देना क युग अयेशता को अरुहेलना करना होगा । युगमी क प्रकृति चित्रण की विवेचना सीली कीट्ट अापरन अयार पंग निरामा धावि को हटि अद पर रग कर नहीं की जा सकती । युग विनाय की अोमाधों को अामने ररु कर की गई निर्णानात्मक मानोचना ना ही महत्व हुपा करता है । अन्त क अमात्र सुचारक होये के मान किमी मी कवि के प्रकृति चित्रण मे उपरेआत्मक तरबों का आ जाना रचना हो स्वाभाविक है । जिनका कि अन्द कोठरी से निकल कर किसी बाटिका के मुक्त आतावरण में मनीन स्फूर्ति की अनुमति ।

पोखामो तुमसीदास के इस प्रकृति चित्रण की इस अिलान विवेचना के अयराअ हम एक बार अपने अिअ पाठकों का ध्यान आशिपटन हररिन के इन शब्दों^१ को धीर आरुचित करना चाहेंगे । जिनका अयष्ट आधय यह है कि आत्र के अययारिअ युग में अथपि सुचार बाटियों आलीअकों का अभाव नहीं है । किन्तु इनमें अमी सफल अिलो नहीं कहे जा सकते । अयिनास तो उनमें अिअस के ही अून हैं । इस अजा में हमें अपने प्राचीन मन्दिर को अथ तक सुराशत रचना है जब तक यह निराम के अयंया

1 I should almost tremble to see it meddled with during the present conflict of tastes and opinions. Some of the advisors are no doubt good architects that might be of service but many of them, I fear are mere levelers, who when they had once got to work with Mettocks on this Venerable edifice, would never stop until they had brought it to the ground and perhaps buried themselves amongst ruins.

विचार मति त्रिपाठी—अवि अरिपाठी पृ० १

प्रयोग्य सिद्ध नहीं होता। पोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्मित प्रकृति मन्दिर के सम्बन्ध में भी अन्तिम रूप से ही यह ज्ञान मिला है कि प्राधुनिक विद्वानों द्वारा किये हुये सिद्धान्तों की कसौटी पर उसका मूल्यांकन कभी नहीं किया जा सकता।

वस्तु बर्णन—

वस्तु बर्णन के प्रसंगत किसी उपवन या नगर का बर्णन प्राता है। इस बर्णन में भी पोस्वामी भी अद्भुत क्षमता रखते हैं। तुलसीदास भी कथा की स्वाभाविक बर्ति को वस्तु व्यापार के बर्णन के मोह में कहीं भी नष्ट होने नहीं दिया है और न अनावश्यक वस्तुओं और व्यापारों के बर्णन की ओर ही ध्यान दिया है। उनके वस्तु बर्णन में विविधता स्वाभाविकता अमल्यप्यता और रसात्यकता का पूर्ण सामंभस्य है। 'मानस' में इतने अधिक वस्तु व्यापारों का बर्णन हुआ है कि उन सबका उल्लेख करना यहाँ कठिन है। उनका सस्य वस्तु बर्णन द्वारा कथा में रस शृष्टि करना है। वस्तु बर्णन में तुलसी ने महाकाव्यों की प्रबन्ध कवियों का एक सीमा तक पालन करते हुए भी स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया है। तुलसी के काव्य में नगरों उपवनों और प्रसाधों के बर्णन भी प्रसंगतः प्राये हैं। राम तथा सीता नगरों में बसती हैं। प्रयोध्या

१—प्रयोध्या

२—बनकपुरी और

३—सका।

'मानस' में इन तीनों का बर्णन इस प्रकार है।

प्रयोध्या—

प्रबनपुरी सोइह पहि भाति । प्रमुहि मिसल घाई जनु राती ॥

बेलि धानु जनु मन सकुचामी । तरनि वनी संघ्या धनुमानी ॥

अपर नूप बहु जनु अमिधारी । उइह धवीर मरुई प्रफारी ॥

मंदिर मनि सभुह जनु तारा । नूप इह कलस सो ईनु उचार ॥

बन बंद धुनि धति मुकुबानी । जनु लन मुखर समरं जनु सानी ॥

कौतुक देखि परतन सुसाला । एक मास तेंह जात न जाना ॥^१

किटना सुन्दर प्रकय का बर्णन है। और भी देखिये—

पुरवन धावत धकनि बराठा । मुदित सकल पुसकावसि वाठा ॥

निज निज गुबर सबल संबारे । हाट बाट बीहट पुर द्वारे ॥

बसो सकल धरवजा सिधार्ई । बहू तहं चौकें वाच पुछार्ई ॥

बना बजाव न जाइ बखाना । तोरन केनु पताक बिठाला ॥

सफल पुषफल कहलि गमाला । रोये बहुल करव तमाला ॥

सये सुनय तक परसत बरनी । मनिमय धासबास कत करनी ॥^२

१ मा० बा० पु० १३८

२ मा० बा० पु० १३८

मून भवतु तेहि भवसर सोहा । रचना देखि मग्न मनु मोहा ॥
मगस सपुनु मनोहर ताई । रिधि निधि सुख संपदा सुहाई ॥
अनु नछाह मत्र सहज सुहाए । तनु परि बरि दण्ड्य यहै छाए ॥^१

बनकपुर—

पुर रम्यता राम अब देखी । हृदय अतुल समेत बिटोपी ॥
बापी रूप सरित सर नागा । अलिप्त मुखासम मनि मोपाया ॥^२
मुमन बाटिका बाय बन बिदुल बिहम निबास ।
पुनत फनन सुपल्लवत सोहत पुर यहै पाम ॥^३

✓ × ×

हरित मनिहू के पत्र फस पद्मराय के फूल ।
रचना देखि बिचित्र प्रति मनु विरंचि कर मूल ॥
मंगस कलम पत्रक बनाए । पत्रक पठाक पट अमर मुहाए ॥
बोप मनोहर मनिमय नागा । जाह न बरनि बिचित्र बिलगा ॥
अनक भवन क सोमा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी ॥
देहि तेरुति तेहि समय निहारी । तेहि सपु सपहि सुवन दय बारी ॥
जो संपदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुरलापक मोहा ॥^४

अनक भवन की सोमा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी । में क्या राधा
तया प्रजा वाली कहावत कितनी सुन्दरता मे बरिनाय हो बडी है ।

तथा—

बनक जोट बिचित्र मनि इत सु वरायप्रता बना ।
अनहट हट सुकट बोपी बार पुर बहु विधि बना ॥
पत्र बाणि अक्षर निकर पदपत्र रय अक्षयहि की मर्न ।
बहुकन निमिअर रूप प्रतिबल सैन अगमन नहि बने ।
बन बाय उपवन बाटिका सर बून बापी सोहणी ।
नर नाय सुन गदब बस्या कन मुनि मन मोहणी ।
बहुँ मात देह विपाल सैल सनात प्रतिबल बरैहीं ।
नागा असाएह मिरहि बहुबिधि एक एकहुँ लरैहो ॥
हरि अतल भट जोटिहू बिरट लन नवर बहुँ विंचि रच्योही ।
बहुँ महिप मानुष बेनु सर पा यल निसावर मन्त्रही ॥^५

१ मा० बा० पृ० २३८

२ मा० बा० पृ० १३

३ मा० बा० पृ० १२०

४ मा० बा० पृ० १६७-१६८

५ मा० कु० पृ० ३४२

कितना स्वाभाविक बर्णन है। इसमें जन बाप उपवन बाटिका, सर रूप बापी सोहूही। वाली पंक्ति में कवि जन बाप उपवन बाटिका ही लिख रहे हैं, किन्तु उसमें फल का विवेचन नहीं है। इसी प्रकार सर रूप बापी में महाकवि द्वारा जन की विवेचना नहीं की गई। फल और जन का विवेचन न करने का विशेष कारण है। यह यह कि तुलसी ईश्वरवादी है लंका में न तो भयवान को फलाधिकों का नाम ही बताया जाता है और न जन के द्वारा भयवान के विषय को स्वान ही बताया जाता है। अतः तुलसी ने सोचा कि जब लंका का जन न फल प्रभु के चरणों में उनके निमित्त प्रयोग में नहीं आते तो हम ही इनके राक्षस तपर में फल और जन की विवेचना क्यों करें।

वस्तु बर्णन के अन्तर्गत उपवन का भी बर्णन आता है। जनक बाटिका का बर्णन देखिये कितना सुन्दर है जो राम जैसे सुख राशि को भी सुख प्रदान कर रहा है।^१

अतः मोक्षामी भी न बर्णन न तो अनावश्यक रूप से इतने विस्तृत हो पाये और न इतने विक्षिप्त हो पाये कि उससे काव्य के कलात्मक अन्तर्कार में बाधा आती। तुलसी में बर्णन अल्प उद्भूत भी। बाह्य अर्थ का सूक्ष्म निरोदाहण बिना कवि में ऐसी बर्णन शक्ति का विकास नहीं हो सकता। तुलसी ने त्रिन विषय को लिप्य उसका जीवा जायता स्वरूप सदा कर दिया। इससे उनकी गुरुवि और प्रत्येक विषय का संशोषण बनने और उसमें निहित मीमर्ष को चित्रण करने की अद्भुत कलात्मक बराता प्रकट होती है।

आठवाँ अध्याय



तुलसी के चरित्र चित्रण की कला

प० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार सात्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकृतियों के अनुसार चरित्र विभाज करने में दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं।

१—सादर्य

२—सामान्य

सादर्य चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों ही आते हैं। राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं। इस दृष्टि से सीता, राम भरत इन्नुमान और रावण को सादर्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं, तथा बघरत्न, सध्मण विभीषण सुषोभ-शैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर सादर्य चित्रण में हम या तो यहाँ से यहाँ तक सात्विक कृति का निर्वाह पावेंगे या तामस का। धनेकरूपता उनमें न मिलेगी। सीता राम भरत इन्नुमान यह सात्विक सादर्य हैं। रावण तामस सादर्य है।^१

चरित्र चित्रण सम्बन्धी शुक्ल जी का यह विभाजन निस्सन्देह माननीय है किन्तु रावण को हम सादर्य पात्र के रूप में नहीं ले सकते। शुक्ल जी के इस विभाजन के आधार पर हम मान्य के सभी पात्रों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं।

सादर्य चरित्र में—

सादर्य चरित्र में हम केवल सात्विक प्रकृति को ही लेते हैं। जिसमें निम्न लिखित पात्र आते हैं।

सात्विक—

१—राम

२—सीता

३—भरत

४—इन्नुमान

१ रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—बाबी नववी प्रचारिणी सभा
बृहत् संस्करण—मं० २००५ धीम विष्णु और चरित्र चित्रण पृ० २०००

- १—कीमिया
- ६—जटापु
- ७—सुमिया
- ८—शरमय
- ९—सम्पण

तामस प्रपञ्च जमत्कारी चरित्र—

यह जमत्कारी चरित्र है। अर्थात् इनके द्वारा प्रसाधारण हैं। जिते हम प्राये स्पष्ट करते। जैसे —

- १—राजसु
- २—मिथनाद
- ३—कु मवर्ण

सामान्य चरित्र—

सामान्य चरित्रों में यह है —

- १—जमिना
- २—मांडवी
- ३—समुद्र
- ४—भुक्ति कीर्ति
- ५—दशरथ
- ६—कैकेयी
- ७—संपरा
- ८—जमक
- ९—सुमयना
- १०—संबोदरी
- ११—सुलोचना
- १२—विनीषम
- १३—विजटा
- १४—सुर्मत
- १५—पुरवासी
- १६—बसिष्ठ
- १७—विश्वामित्र
- १८—नारद
- १९—शंकर
- २०—मधि
- २१—बुडीबाण

२२— वास्मीकि

२३— धारवाह

२४— भगवत

२५— बर

२६— रूपण

२७— मारीच

२८— काकृमुर्च्छि

२९— गदक

३०— सुषोम

३१— वासि

३२— कबट इत्यादि ।

यस नीचे मोस्वामी जी की चरित्र चित्रण सम्बन्धी कक्षा पर विचार किया जा रहा है । इसमें हर एक-एक प्रमुख पात्र का संकर उसमें वास्वामी जी की कक्षा पर प्रकाश डालेंगे । सामान्य पात्र जिनका चरित्र चित्रण अधिक नहीं मिलता उनका ऊपर नामोस्नेह ही पर्याप्त होगा ।

घादरां चरित्र चित्रण कला—

मोचे हम घादरां कोटि में घाने बाम एक-एक चरित्र पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे ।

साहित्यिक राम—

किसी भी जाति की काव्य प्रतिभा में कभी भा जिन उदात्त गुणों का ब्यवहार की जागी कदाचित्त हम उनका एक महान् भारतीय रूप राम के चरित्र में देखने को मिलता है । उन्हें भव्य शारीरिक बदन को दन प्राप्त है । उनका चरित्र मत्स्य श्रियता हृदयता धीमहीमा हृत्तकता स्निग्ध हृदयता हृद बिस्वाम आरभ्य उरसाह पण्डितरण का पवित्रता गम्भीरता धीरता क्षमासासता बाम धीरता सबस अधिक एक निराश्रय व्यक्तित्व सम्भवता धर्मिकता अधार्मिकता धीर नास्तिकता के रूपान पर व्यक्तता नैतिकता धार्मिकता धीर आस्तिकता का संस्थापन करने के हेतु एक ऐसे ही पूण चरित्र को ईदवर रूप में दिव्य ब्यवहार कोजिये । यही तुलसी के पूर्वजनों भारतीय साहित्य के राम है । इसी पूर्ण चरित्र में जैसे धीर भी पुण्डरा भरने में वास्वामी जी की प्रतिभा सीन होती है ।

हिन्दू जाति के आचार विचार पर हम महान् घादरा चरित्र का कितना सम्भोर प्रभाव पडा है यह प्रत्यक्ष व्यक्ति जानता है । राम का आचारण धीर स्वभाव हम भाति का निर्धन धीर उच्चकोटि का है जिस प्रकार एक देवी पुरन में ही उचता है । प्रधान पात्र हान के बारण जितनी मित्र-मित्र परिस्थितिया में उनका जीवन बिपत्ताना गया है । उनका धर्म का नदी ।

श्री राम का जन्म उस पवित्र कुक्ष में हुआ है जिसमें महाराजा रघु बड़े प्रतापी राजा उत्पन्न हुए थे। महाराज दशरथ ने बड़ी तपस्या की तब राम को पुत्र रूप में प्राप्त किया। बचपन से ही राम धीर धीर धीर मन्त्रीर थे। विश्वामित्र के साथ जाकर राम ने तपोवन में उनका यज्ञ की रक्षा की। वहाँ ताड़क्य बँधी भयंकर राखसी का संहार किया धीर की सुबाहु पावि का बन् किया। जमकपुर में पहुँचकर सिद्धजी के मारी विनाक के दो टुकड़े कर दिये। मनुष्य भँव के बाह सुन्दरि सिरीमणि जानकी से पाखियहस्य किया। मनुष्यपक्ष में ही २१ बार पृथ्वी पर से सन्धियों को परास्त करने वाले परशुराम को हराया। इसके उपरांत राम धर्मोष्मा पहुँच कर सुख से रहने लगे। एक दिन दशरथ ने सोचा कि यह मेरी मबरता काफ़ी हो गई है धीर उनके राम भी सब विधि और सब जायफ हो पय हैं। अतः अब उन्हें सुखरथ बना दना उचित है। उन्होंने मन्त्रियों को बुलाया धीर उनसे कहा कि मेरा पुत्र राम यह राज्य करने क योग्य हो गया है। मेरा विचार है कि मैं राज्य का भार उठे छौप हूँ। आप लोग धरती धनुषति हैं। मन्त्रियों ने कहा महाराज! आपके पुत्र राम सर्व सुख सम्पन्न हैं। हम लोग उनका राजा होन में अपना सीमाय समझते हैं। राज्याभियेक को तैयारी हुने लगी। अब जाने की धामा पर राम को हर्ष ही हुआ। राम को सीता का धरने प्रति धागाय प्रेम देख उन्हें भी धरने साथ बम से जाना पड़ा। रामराज्य से विरक्त हो पुनि क जग में बत-बत में प्रिया व बन्धु के साथ भ्रमण करने लगे। सभी बड़ों को राम ने सहज कर सिखा किन्तु सीता हरण का कष्ट उन्हें भयान्य था। अन्त में रावणादि राक्षसों का बध कर धीर सीता को पहलु कर सबब पुनः वापस दावे धीर राज्य कार्य करन लगे।

‘मानस’ के राम में हमार कवि छोड़ा सा परिचर्तन करते हैं। इसमें जनकी कला का प्रकाश रूप देखने की मिलता है। बाल्मीकीय रामायण के धर्मोष्माकाण्ड के नोसरे सर्ग में राम सीता से कहते हैं।

ऋषि मुकुटि पुरुषा न सहस्ये पुस्तवम् ।

तस्यान्त ते ह्युणा जय्या भरतस्याश्रतो ॥१

धर्मान् ऋषि विधि से युक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते। इसीलिए तुम कभी भी मेरी प्रशंसा भरत के सामने न करना। मोस्वामी जी ऐसे तपस्वी का श्लेष न कर संशय से ही काम लेते थे। इसी में तो बाल्मीकीय जी की कला पुस्तता को बहूनी है। इसी प्रकार रावण विक्रम के उपरांत वहाँ ‘बाल्मीकीय रामायण’ में स्वयं राम सीता को साधिन करने हैं। वहाँ तक कि वे धरनी स्त्री के रूप में उन्हें स्वीकार नहीं कर सकत हैं। वे धर्य में वहाँ तक कह लगे हैं कि तुम्हें धरुनी सुन्दरी देख रावण की बा भी इच्छा होती उसने किया होगा। ऐसी अवस्था में मैं तुम्हें कैसे

ग्रहण कर सकता हूँ।^१ वही तुमही ने 'बड़े बसुन्धुबुर्बाद'^२ कह कर राम के शील सौभाग्य की रक्षा की है। इसका फल हुआ कि तुमही के शरिरो का बदन स्वामाबिक होते हुए भी धारस घोर क्लामक हुआ है।

एक बालक की सरसता का राम सीता के प्रति अपने प्रकुरित प्रेम को न कवल भाई लक्ष्मण पर वरन् अपने गुरु विश्वामित्र पर भी प्रकट कर देने हैं। प्रतुल नीम मन्त्रता—शिवमनुष्य के छोड़ने बाले को जानने के हेतु परगुराम द्वारा किये प्रस्न के उत्तर में राम द्वारा कहे शब्द तथा भागे के महान कवन समी एक महान शरित्र की इस विशेषता से प्रोत प्रोत है। राम छोटा पर बितना स्नेह करते थे इसका वाचित्र गोस्वामी की ने खीचा है वह अनुपम है घोर सजीव भी है। इसी में गोस्वामी जो की कला देखने को मिलती है। कर्पाचित हो धम्मन ऐसा चित्र उपसम्भ हो सके। राव्याभियेक के पूर्व घुम धंया के फड़कने पर राम बहना करते हैं कि वे भरत के लनिहास लोटेने के ही सूचक हैं।

धनस्त शक्ति के साथ धीरता मन्मीरता घोर कामसता राम का प्रधान लक्षण हैं। राम में अपने गुरु जनों के प्रति धारर को भावना भी पूरा रूप से उपस्थित है। राव्याभियेक के पूर्व घुम धंया के फड़कने के उपराण्ट बघरब क धनुरोप पर बशिष्ण जब राम को उपवेश करमे जाते हैं। उस समय राम उनका जिस प्रकार स्वागत करते हैं वही इसका एक पबलम्भ उदाहरण है। राम म साहस भी कूट कूट कर मरा है। बास्याबस्या म ही जिस प्रसन्नता क साथ बोना माह्या ने पर छोड़ा घोर विश्वामित्र क साथ रह कर धरत्र शिक्षा प्राप्त की तथा बिकट रागसों पर पहले पहल अपना बस धरमाया। उदारता घोर निस्वार्थता राम में कूट कूट कर मरी है। जब बतिष्ट राम को उपदेश करके जान जात है ता राम का यह विचार कितना उदार घोर निस्वार्थता का शोठक है —

जमै एक संग सब माई । भोजन सयन बैलि सरिकारि ॥

करनयेव उपबोत बिदाहा । संय संग सब मए जडाहा ॥

बिमत बंस यह धनुचित एहू । बबु बिहाइ बड़हि समियेहू ॥^३

राम के हम कथन में गोस्वामी जो स्वय बाधन प्रतीत होते हैं। राम क यह वाक्य उनके भ्रातृ स्नेह का बितना सजीव चित्रण करम बाव है। इस स्वस पर जब राम का धमियेक होने वाला है उनके मुह से उपपु क्त वाक्य बहुसाकर अहूने पाठक के मनस राम के भ्रातृ प्रेम का एक चित्र सा खींच दिया है। हम सजीवता की दृष्टि में यह प्रकरण बड़ा ही बसालमक है। राम की धीरता घोर मन्मीरता जो हम वरगु राम के साथ देखते जसते हैं दटना देस कर ही हम कह सकते हैं कि राम का स्वभाव

१ काश्मीरीय गमायण—कुड बांड- सब १११

२ मा० लला पृ० ६७२

३ मा० प्रया० पृ० २११

घोर घोर गम्भीर था। घोर घोर गम्भीर हृदय की भारी बिरोधता यह होती है कि वह धीमे धीमे भाव का दूधरे में आरोप नहीं कर पाता। राम से मिलने जब भरत बिचकूट के समिपट पहुँचे तो उनकी मैना को घाती हुई देख कर सजमल को रोकता होती है घोर के नामा प्रकार के कटु शब्द भरत के हेतु राम से कहते हैं।
 करि कुर्मनु मन साजि समाजू । प्राए करै बकंठक राजू ॥
 एक कीमिह नहि भरत भसाई । निबरे रामु जानि भसहाई ॥^१
 पर राम के मन में ऐसा जरा-सा भी सन्देह नहीं होता। वे दुरन्त कहते

हैं :—

सुनहु ससन मन भरत सरीसा । बिबि प्रपंच महँ मुना न बीसा ॥^२
 धपनी सुधीसता के बस पर ही उन्हे भरत पर पूरा बिबिबाध है :—
 भरतहि होइ न राजमनु बिबि हरि हर पर पाइ ।
 कजहु कि जनी सीकरनि सीरसिनु बिनसाई ॥^३
 राम कर्त्तव्य पासन न भी बने ही रह है । पिता का प्रथम आग्रह करने से
 नमन करते हैं वह उनकी कर्त्तव्य निष्ठा का दोषक है।
 जब सुमन्त्र राम का मन में मैत्र प्रथम लौटते हैं तब राम क्रिती सुधीसता से
 भरा सन्देशा पिता के लिये कहते हैं —
 सब बिबि साइ करतव्य तुंहारें । बुक न पाव विनु साच हमारें ॥^४
 इसके बाद सजमल ने कुछ कटु शब्द पिता के लिये कहे जिसे राम सह न
 सक घोर के दुरन्त सजमल को रोक कर बहो सगे —
 संकुचि राम निज सपन बसाई । मलम सँदिसु कहिस बनि जाई ॥^५
 यहाँ संकुचि शब्द क्रिता भाववन्त है। यह करि की मूरम कतारमक
 प्रसह्यटि सूचित करता है। मनुष्य समाज में रहने वाला प्राणी है। उसे अपने ही
 हृदय पर सज्जा नहीं घाती। बरन वह अपने कुटुम्बी के भी आचरण से लज्जित
 होता है। राम का यह संकोच उनकी सुधीसता घोर ताक मर्दाव को व्यञ्जित
 करता है।
 राम का स्नेही इतनाच हम बम में उस समय बात जाना है जबकि वे यहाँ
 मने सम्बन्धियों के बियाप में बुकी होते हैं।
 त्रिय परिजन बिदोष बिलवाहो ।^६

- १ मा० प्रयो० पृ० १९६
- २ मा० प्रयो० पृ० ४०१
- ३ मा० प्रयो० पृ० ४०१
- ४ मा० प्रयो० पृ० ११४
- ५ मा० प्रयो० पृ० ११५
- ६ मा० प्रयो० पृ० ४२६

उसके साथ ही जब वे सवमण व सीता को अपने दुख में विक्षिप्त देखते हैं तो वह धीरे धीरे जाते हैं। यह भी उनके स्नेही स्वभाव का सावक है। राम के स्वभाव की सबसे स्वभाव विशेषता यह है कि वे घन्यापियों और शत्रुओं के प्रति भी प्रेम की भावना रखते थे। चित्रकूट में वे कैकेयी से अपने सभी माता के ही तुल्य मिलते हैं और साथ ही अपने स्नेह की प्रकृति बर्षा में दात कर देते हैं। चौदह वर्ष बाद राम प्रकृत सीट कर पहले कैकेयी के ही पर जाते हैं और उठका अपनी माता से भी बढ़कर सम्मान करते हैं।

राम्य के माध्यम से मोक्षामी जी ने राम को जो कैकेयी के प्रति धर्माधीनता दिखावाई है उसे पाठक कभी भी विस्मृत नहीं कर सकते। प्रकृत यह स्वतः भी सबीव होने का कारण कलात्मक है।

अधुना के प्रति राम बिले उधार थे। उसे स्मरण कर राम के प्रति हृदय भेदा से गत हो जाता है। जब वे अपने भ्रातृ राजा को भी कुसल और हित कामना करते हैं। इस प्रकार —

बहु सक्रिय संहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥^१

× × ×

कामु इमार ठामु हित होई । रिपु धन करहु बतकही सोई ॥^२

यहाँ पर मोक्षामी जी ने शत्रुओं की कुसल भी राम के द्वारा पुछवाई है यह उनकी प्रकृत कलात्मक दृष्टि की परिचायक है।

मुमन्त ने अपना लौट कर राजा से लक्ष्मण की कड़ी हुई बातें ता न कही पर इस बतना का बल्लेख किमि बिना उममे न रहा गया। राम के पीछे जा आशुतुष परिवर्तन उन्हें प्राप्त किया वह उमे अपने हृदय तक ही सीमित न रह सका मुनीसिता के अनोहर हृदय का प्रभाव प्रकृत-करण पर ऐसा ही पड़ा है। मुमन्त को राम की आज्ञा के विरुद्ध कार्य का दोष अपने ऊपर लेना कठिन हुआ। पर इस घात मोमर्द के घनक वह अपने तक ही सीमित न रह सका। दशरथ को भी उसमें विक्षमामा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अन्तिम मसक न राजा को शत्रु के निकट और भी पहुँचा दिया होगा जो प्रागे जस कर दिखावाई गयी है।

राम इन घृणा के साथ साथ बड़े ही संकाशी थे। चित्रकूट में जब भरत प्राणि उन्हें चित्रकूट से प्रयोष्या लौट जसमे को बिबत करते हैं-तब क्षमस्या का निपटारा के स्वयं न कर हुमरा पर ही छोड़ देते हैं। यहाँ तक के घात में यह निपटारा भरत पर ही छोड़ देते हैं जो कि स्वयं उन्हें लौटाते न हेतु प्राये थे।

१ मा० मु० पु० ३७१

२ मा० संका पु० २६६

मनु प्रसन्न करि समुच्च तत्रि बहु कर्तौ साह धाम्नु ।
सख सीय रजुवर बचन सुनि भा सुखी समानु ॥^१

राम एक हड़ धासाबाही थे । उनकी यही धासाबाहिता विभीषण के हेतु संनक्ष का रूप धारण कर बैठी है । जैसी ही विभीषण उनके निबट घाटा है वह संनक्ष बना बैठे है ।

जब विभीषण पर रावण शक्ति से प्रहार करता है तो राम विभीषण को पीछे कर स्वयं ही उस शक्ति को सहन कर लेते है । वह उनकी धसाधारण भक्त बत्सलता का द्योतक है ।

धाकास मार्ग से शान्तों को धयोप्या दिखलाई समय राम ने जो धबध के प्रति धपने सन्वार प्रकट किये हैं वह उनकी धसाधारण मनु मुनि के प्रति प्रेम के द्योतक हैं । इतना सब हींठे हुए भी राम को तुलसी मानवीय बचतम पर ही रखते है । इसी लक्ष्य से वे राम को इस प्रकार चिहित करते हुए दिखलाई देते हैं कि उन्होंने पिता के बचन का भी उल्लंघन किया होता और पत्नी का भी विधोह सह सिया होता । यदि उन्हें इसका भान होता कि इनका मुख्य एक सन्ने भाई से जुकाता होगा ।

तुलसी ने धपने नायक के चरित्रोक्त में काव्य के समस्त गुणों का समावेश कर धपनी कला का ज्वलंत रूप उपस्थित किया है । मूर के नायक सुन्दरम् के प्रतीक होकर हमारे सामने धाते है । वे धपनी रक्त प्रेम क्रीड़ाओं द्वारा लोक का रंजन करते है पर गोस्वामी जी की कला यह है कि उनके राम सुन्दरम् के प्रतीक तो हैं ही साथ ही साथ धनुरजन्काटी भी है । पर इससे भी बढ़कर वे लिखम् के ही प्रतीक है । धपनि लोक कल्याण के सायक व जन कल्याण के प्रतिनिधि हैं । राम ही वह मूल हैं जिसको कवि सीधता है और उसके फल स्वरूप सीता वधरम कीर्तिमा धारि के भी चरित्र धामने धाते है । कवि न इन सभी की कलात्मकता से चिहित किया है ।

इस सन्ने चरित्र के जीवन में केवल दो प्रसंग ऐसे हैं :—

१—धुपनधा का विरूप करना ।

२—धासि का धुपकर बध

जो राम की चरित्र सन्नेगी महत्ता के साथ सार्मजस्य महीं कर पाते ।^२
डा० गुप्त के इस कथन से हम सहमत नहीं हैं । धुपनधा ने राम से केवल विवाह प्रस्ताव ही नहीं किया धपिनु वह सीता को मरुतु करने के धविप्राय से धर्मकर रूप धारण करके राम के पास धाई ।

१ मा० धपो० पृ० ४२२

२ डा माता प्रसाद गुप्त—पोस्वामी तुलसीदास—धध्याय कला चरित्र चिचण—पृ० २७७

क्य मर्मकर प्रकटय मर् ।^१

राम ने जब देखा कि वह सीता जी का भक्षण कर लेगी तब उन्होंने लक्ष्मण जी से शूषणका की माफ़ ब काण काण लेने का संकेत किया । इसमें राम के चरित्र की महत्ता इस बात में धीर भी बढ़ जाती है कि उन्होंने शाकुना की भाँति उसका बच नहीं किया बल्कि वे केवल उसे बिरुप करके ही छोड़ दिया ।

रही सुधीब के हेतु बाति का बच करना । यह भी हृदय राम की महत्ता का कम नहीं करता । राम का स्वभाव ही ऐसा था कि वह अपने प्रेमियों का दुख सहन नहीं कर सकते थे । जब दण्डकवन में ऋषियों ने राम को दुखी होकर राससों ड्राग काया हुआ हूँ का पहाड़ दिखाताकर राम से कहा कि —

निसिचर निकर सकल मुनि जाये ।^२

सुनते ही राम ने कुपित होकर कहा वे अपने प्रीमियों का दुख सहन न कर सकेंगे —

निसिचर हीम करो महि मुब उठाइ प्रम कीम्ह ।^३

इसी प्रकार जब बाति के कर्म रोकर सुधीब ने इस प्रकार ब्रतसाय —

रिपु सम माहि मारैसि घति भारी ।

हरि सीम्हेसि गर्बसु प्रब नारी ॥^४

राम सुधीब की अपना मित्र बना चुके थे । आपन दुख समरज करि जाना । मिन के दुख रज येइ ममाना ।^५ के धापार पर राम ने अपने मित्र की रक्षार्थ बाति को मारा । कुछ विद्वानों की धारणा है कि राम ने छुर कर बाति का मारा । वास्तव में ऐसी बात नहीं । बैसे ही बाति मरा तुल्य ही —

मुनि उठि बैठि देख प्रमु पाम ।^६

इससे ज्ञात जाता है कि राम बाति के पास ही थे तभी ता बाति के पिरले ही तुल्य उसके सामने था बने । यदि वास्तव में उन्होंने धिक्कर मारा होगा ता बाति के पास धामे में बोक्रे डेर उन्हें प्रबस्य लपटी । बाति जब राम काय से घाहन होकर पिरा ता बनने राम को पहचाना धीर कह उठा ।

सुनहु राम स्वामी सन जस न चातुरी मोरि ।

प्रमु धरहुँ मैं पापी घंतकास यति तोरि ॥^७

१ मा० धरम्य पु० ४८३

२ मा० धरम्य पु० ४७३

३ मा० धरम्य पु० ४७४

४ मा० कि० पु० २१८

५ मा० कि० पु० २१५

६ मा० कि० पु० २२१

७ मा० कि० पु० २२१

इस पर राम का यह कथन उत्तक चरित्र की सदारता की महत्ता को कौनों
उमर उठा देता है ।

संभल करो तनु राक्षस प्राणा ।^१

राम को सबसे तुलसी ने पूर्ण ब्रह्म हरि के रूप में चित्रित किया है । उपर्युक्त
पंक्तियों में संभल करने की बात को कही गई है । इसमें भी पोस्वामी जी की कथा
रमक हृदि काम कर रही है । यह यह है कि यदि उपर्युक्त श्रीवादी गोस्वामी जी न
साथे तो राम की क्षमाशीलता का विवेचन जिस प्रकारता से गोस्वामी जी ने किया
या उसमें कभी आ जाती ।

गृहस्व-जीवन के दाम्पत्य भाव के नीतर सबसे अधिक मनोहर वस्तु है ।
उनकी एक पत्नी की सर्वादा । जो तुलसी की कथा को बड़ा उदात्त रूप प्रदान करती
है । भक्तों को सबसे अधिक बल में करने वाला राम का मुख है अपने धरणागत की
रक्षा । धरणागत की चिन्ता राम के मन से अथाप बुद्ध के समय भी दूर न हुई ।
लक्ष्मण की धवेतामस्ता में पड़े देख रो रहे हैं राम । उस समय जो उन्हें अपने
धरणागत की रक्षा का ध्यान है ।

मेरी सब पुत्रवारण भाको ।

विपति बटावन बंधु बाहु बिन करी परीसों काको ।

मुनु सुबीन साकेहु माँ पर फेरहु बदन विभला ।

एते समय समर संकट ही तज्यो लखन सी भ्राता ।

गिरि कालन बीहँ साका मुग ही मुनि मनुज संवाठी ।

होइ है कहा विभीषन की गति यहै सोच भरि छाठी ।।^२

अपने प्रतिशब्द को माण कर यदि कोई अपने धरणागत की इसी रक्षा कर
सकता है तो यह राम ही हैं । राम का स्वभाव तो बस राम का ही स्वभाव था ।
उनकी तुलना में तो धीर कोई आ ही नहीं सकता । राम रावण का बच इसलिये
नहीं करते कि उसने उनकी पत्नी का अपहरण किया है । बल्कि उनके एक भक्त का
अपमान हुआ । इस कारण वह उसका बच करते हैं । यह भाव इस पद्य में बड़ी
सजीवता से अभिव्यक्त हुआ है ।

बेब विकट मही मुनि साधु । ससेक विषी मुरलीक उवाये ।

धीर कहा कही धीव हृषि । तबहूँ ककना कर कोर न बारयो ।

सेबक झड़ु तेसकही दया । तुलसी सक्यो राम तुमान तिहारो ।

तो न बाप दयो बसकभर । बों बों विभीषन सात न मारयो ।^३

यह है राम का स्वभाव । जिसका सर्वांग चित्रण पोस्वामी जी ने अपनी

१ मा० कि० पू० ५२१

२ वींतावासी-नंदा मगड-सं० सं० ७ पु० १३१

३ रचितारपी-इतर बरि-सं० सं० १-पु० सं० १९०

कृपिमा में प्रस्तुत किया है। राम के उपर्युक्त शरणागत के व्यवहार का पढ़कर पाठक समझें एक बम फोड़ हो जाता है। इस प्रकार बिबला द्वारा ही गोस्वामी जी ने राम के अग्नि बिबला में कन्यात्मकता धरना समझाकर प्रस्तुत किया है।

सीता—

भायार संघों की मोटा म हम यह गुण पाते हैं—निदध्यात्मक बुद्धि वाली निष्कपट सरल हृदया ध्यात्म सम्मान के भाव ने सम्पन्न तथापि प्रतिष्ठित स्नेहमयी महत्कामा रक्षित विमोक्त निमग्न शीला समय शीला मुक्तमहत्स पतिव्रत की धामा से कुछ और अपने स्वामी से विदुक्त होने पर जीएकामा। हमारे कवि इन्हीं सीता को प्रकृत करते हैं।

सीता के अरिष को हम यहाँ संक्षेप म हा लेंगे। क्याकि तुलसी की कला में मर्यादा और प्रौढत्व दीर्घक के अन्तर्गत हम सीता के अरिष मन्मन्धी गुणों पर प्रकाश डाल चुके हैं।

तुलसी की सीता महाकाव्य की नायिका महाराज जनक की कन्या तथा अनुपम सुन्दरी हैं। वह पुष्पवाटिका से ही राम की घोर पार्श्वपथ होती है और उनका यह प्रेम धामे बिबाह में परिणत हो साम्प्रत्य जीवन क धारण को लेकर बड़े ही स्नेह से व्यतीत होता है।

जब वह बचपन की बात सुनती है तो व्याकुल हो उठती है। वह अपनी सास के समीप जाकर बैठ जाती है। उनका अपनी सास का अरुण सू मस्तक नीचा कर बैठना उनकी सज्जापोषिता और विनयशीलता का द्योतक है। इसमें जानकी के इस हृदय से पाठक के समझ सीता की सज्जा और विनयता का समीच चित्र धा जाता है। इन स्वस में भी गोस्वामी जी ने सीता के अरिष में कन्यात्मकता की सृष्टि की है। वह अपने बचपन से सम्बन्धित कुछ मा नहीं कहती कबल धम-धारा प्रभावित करती हुई अपने अरुण के सुन्दर नत्रों से बसीन सुरेखने सगती है। इसमें गोस्वामी जी के द्वारा सीता की के धाक की भावना सितने समीच रूप में सुझा हुई है वह देखते ही बनती है। इसके द्वारा जमीन को नत्रों से सुरेखना जा बिनाया गया है वह शोक को मरपूर व्यवस्था और गोस्वामी जी की कला में समझाकर उत्पन्न करने के हेतु पर्याप्त है। सीता स्वयं राम से नहीं कहती कि मैं भी आपसे सास बन में बनूँगी। राम की माता ही राम से जानकी का यह प मशाय प्रकट करती है। कि जानकी भी है राम तुम्हारे माप बन जाना चाहती है। राम जब जानकी की भावा प्रकार क बन्ध दिसनाकर बच जाने से रोकते हैं तब जानकी उत्तर देने की बाध्य होती है। राम से कुछ मा बार्ता करने के पूर्व वह अपना सास कौमिल्या के अरुण धूनी है और इन पृच्छा के हेतु कि वे सास के मामने पनि से बात करेंगे। कौमिल्य ने सास मापती है। सीता की यही सज्जागामता व सुयोक्तता समझें फिर इन उन नमय दिखलाई देती है जब वह मुमन्त प्राप्त लाने गये मगरम के मन्त्र का

उत्तर देने की प्रस्तुत होती है । उनका यह बचन कितनी सज्जा सीलता से भरा है ।

भारत यह सगुल भयार्थ बिलस न मानव टाठ ।^१

सीता के चरित्र की यह बिनाश और क्षयता उन्हें मानस में एक महान् स्थाव प्रयोग करती है । लचिन क प्रति पोस्वामी जी के सीता की भावर भावना और सज्जा की दिससाकर वास्तव में सीता के चरित्र बिनास में यह कलात्मकता प्रस्तुत की है जो प्रायः निवृत्ता दुर्जन है ।

यस आने के समय माता से बिदा लेते समय उनके यह शब्द ताठ, सगुर, सेवा की प्रांतिरिक्त लालसा के ध्वंसक हैं ।

सेवा समय वैष बनु बीगहा । मोर मनोरम सखन न कीन्हा ॥

तजब छोनु अबि छाकिम ओहू । करमु कस्मि बसु सोसु न मोहू ॥^२

बिभक्त में के माताओं की करगृहीत सेवा करती हुई दृष्टियोचर होती है ।

सीसं तामु प्रति वैष बगार्ई । छाबर करह सरिछ सेवकाई ॥^३

एन प्रकारसे से सीता की की सेवा भावना को बड़ी के प्रति है उनके रूप का एक सजीव चित्रण हो जाता है । प्रत्येक यह स्तन भी कलात्मक है ।

कर्मस्य सीता को छोड़ राम के पास जाना नहीं चाहते तो सीता उक्त समय लक्ष्मण से बहुत बट्ट शब्द कहती हैं । यहाँ तक कि उन्हें भ्रान्त जाती थीर सोमसु तक कह सासती है ।^४ किन्तु दुबली केवल यही कहते हैं :—

परम बचन सीता जब बोला ।^५

यह भी पोस्वामी जी की कलात्मक प्रतिभा का नमूना है ।

जब यह बल से लौट कर पर जाती है । तो अपने घर का समस्त भार अपने ऊपर ले लेती है । अपने पति की आज्ञाकारिणी है । के महान् पतिव्रता है । संका जीने रागु में रह कर राजसु की तुल्य बल समझे, अपने पति के ध्यान में मग्न, अपने की पति बिबोध में रूप किये, अपनी जान को हुबेसी पर रखे । माता प्रकार के कुरी का सामना करती हुई । पहले ही पति प्रेम की महान् कमीटी पर के करी उत्तर चुकी है ।

'मानस की सीता के प्रस्तुत प्रसा से यह कदाचित् सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि लचिन की कला में कौशल का पूर्ण धारण क्या है ।

सीतावसी की सीता के चरित्र में मानस की अपेक्षा कोई भी बिबोधता नहीं है । 'सीतावसी' में सीता के चरित्र से सम्बन्धित एक प्रबंध ध्यान देने योग्य है । यह

१ मा० पयो० पृ० ३१३

२ मा० पयो० पृ० २१९-१७

३ या० पयो० पृ० ४१४

४ बास्मीकीय रामायण—परम्य बरि सवै १३

५ मा० पयो० पृ० ४२३

है उनके निर्वासन का प्रसंग । जो मानस में नहीं आता । उसमें हमें एक निराशापूर्ण मन्त्र हृदय के दर्शन होते हैं जो बड़ा ही रसनीय है । सीता वन में पहुँच कर लक्ष्मण को बिदा देने समय केवल यही प्रार्थना करती है ।

लक्ष्मण कास कृपाञ्च निपटहिं बरिषी न बिसारि ।

पालकी सब तापसिन ज्यौं राजबर्म बिचारि ॥^१

इसमें श्रीस्वामी जी ने सीता जी को कष्टों घबरा खोज भावना का जो सजीव चित्रण किया है । इस प्रकारण में सीता पहले तो राम से यह प्रार्थना करती हैं कि यद्यपि कृपाशुचम ने मेरा परित्याग कर दिया है किन्तु हे लक्ष्मण ! मेरी प्रार्थना यह है कि तुम इनसे आकर कहना कि वह मुझे एकदम मुझा न दे । प्रश्न है कि किस रूप में स्मरण करें क्या पत्नी रूप में नहीं इसकी मुझे कामना नहीं मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि वह सब तपस्वियों को माँति प्रपना राज बर्म समझ कर मेरी पालना और मेरा स्मरण करें । यह भी मैं अपने मन से नहीं कहती । उन्होंने स्वयं ही वास्मीकि जी से मेरे मामले कहा था :—

भुनि तापस जिन ठे दुस लहहीं । ते नरेस बिनु पावक रहहीं ॥^२

ऐसी प्रवस्था में प्रपना कहा ही बिचार वह प्रपना राजबर्म समझ कर मेरा पालन न स्मरण करें । यहाँ 'पालकी सब तापसिन ज्यौं राजबर्म बिचारि' पढ़कर कोई भी सहृदय दो बार धीमू स्वीछावर किये बिना न रहेगा । इसे पढ़ते ही सीता की वेदना का साकार रूप सामने आ जाता है । अतएव ऐसे स्वर्णों द्वारा श्रीस्वामी जी ने सीता जी से बरिष में कलात्मक प्रतिभा द्वारा विभिन्न भावों का अमलकार प्रस्तुत किया है । यहाँ 'पालकी सब तापसिन ज्यौं' वासा उदाहरण बड़ा ही सूक्ष्म भाव पूर्ण और कलात्मक है । जिसकी विवेचना ऊपर की जा चुकी है ।

इसके बाद जानकी का मानस में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है ।

दुख सुख सुखर सीता जाये । सबकुछ बेह पुरानह माये ॥^३

इसमें 'दुख सुख सुखर सीता जाये' वासो पक्ति बड़ी ही भावपूर्ण है । किसी भी स्त्री के जब वासक होता है तो यह कहा जाता है कि प्रभु को स्त्री के पुत्र कृपा कोई भी प्राय स्त्री का भाव नहीं लेता । इसी प्रकार जब मायके में किसी स्त्री के बधा होता है तो वहाँ उस बच्चे के पिता का नाम न लेकर माता का ही नाम लिया जाता है । यहाँ श्रीस्वामी जी राम के पुत्र अर्जुन में राम का नाम न लेकर यह सिल रखे हैं कि जानकी ने जो पुत्र उत्पन्न किये । माय है जानकी के पुत्र अपने पिता के घर को माँति वास्मीकि के स्थान पर हुए थे । क्योंकि वास्मीकि और जनक बनिष्ठ मित्र थे ।

१ सीतावती—उत्तर कांड पृ० १४३ सं० पं० २६

२ मा० अयो० पृ० १३३

३ मा० उत्तर पृ० ७१०

मताः गोस्वामी जी ने किठनी कमारमकना धीर भाबुकता से उक्त चौपाई में छीना के निष्कासन की बात कह दी ।

भरत—

प्राधार पंखों में भरत का चरित्र प्राबल्य रूप में प्रकृत है । गोस्वामी ने ठा राम को भी भरत के सामने खुम ठहराया जिसे हम प्रागे स्पष्ट करेंगे । भरत के चरित्र में कौषस का राज्य त्याग जिसे उनके हेतु प्राप्त करने में कौशेयी को पति खोना पड़ा धीर मानव छटि के तीन परमोत्कृष्ट रत्नों को निर्बाधन की प्राशा माननी पड़ी । तथा माता के धर्मोचित्य पूर्ण प्राचरण करने के हेतु प्रावर्षित रूप में परीकृत उनका एक विरक्त जीवन मानव जीवन के इतिहास में एक मनुष्य उदाहरण है । इन्हीं प्रकरणों में गोस्वामी जी की कमारमक प्रतिमा निबारी है ।

गोस्वामी जी इस चरित्र को धीर भी महात्मता प्रदान करते हैं । राम के प्रति भरत का प्रत्याधिक प्रेम ही कवि के इन चित्रण की विशेषता है । कई स्थलों पर राम के प्रेम की प्रतिवृत्ति तक भरत को कह दिया है ।

भरतहि कहूँकि छरहि सरही । गम प्रेम भूरति तनु प्राहीं ।

× × ×

धीर —

तुम ही भरत मोर मठ पदु । बरे बेह बनूपाम छनेहू ।^१

× × ×

यह भी :—

छाबन छिटि राम पब लेहू । माहि मनि परत भरत मत्र पदु ॥^२

इस स्तेह के लिये कवि इतना तक कह बैठे हैं कि वह प्राकृतिक नहीं धनी किक है धीर यह बिचि हरि हर को भी बिस्ता से परे है ।

धनम छनेहू भरत रघुनर को । नहूँ न जाइ मत्र बिचि हरि हर को ॥^३

धीर भरत समस्त पुरुषार्थ महीं तक कि निर्बाध क स्थान पर जो इसी प्रेम की धोर सङ्ग करते हुए पाये जाते हैं । इस प्रकार —

धरत न बरम न काम रुचि मति न चहूँ निरवान ।

जन्म जन्म रति राम पब यह बन्धान म घान ॥^४

इन उदाहरणों में भरत का प्रेम जो राम के प्रति मजिब्वत हुआ है वह बड़ा ही प्रबाहपूर्ण धीर बरत है । वाष्कीजी ने जहाँ भरत पर मर्याद के द्वारा लालन तक लम्बा दिया वहाँ गोस्वामी जी ने भरत धीर राम के इतने पवित्र प्रेम का प्रकट

१ भा० धयो० पृ० २३३

२ भा० धयो० पृ० ४३८

३ भा० धयो० पृ० ३५३

४ भा० धयो० पृ० ४०७

कर धपनी कला में प्राण फूक रिये हैं। यही यहाँ महाकवि की कला की मौलिकता तथा उत्कण्ठ का मूल है।

एक स्थल पर भरत धपन इस प्रेम के आदर्श को भी व्यक्त करते हैं। स्पष्ट रूप से यह एक पश्चिम प्रेम है जो नि बदले में कोई स्नेह पूर्ण संबंध भी नहीं चाहता।

बलहु जलम भरि सुरति बिसारत । बाबत बभु पबि पाहन डारत ।

बातकु रटनि बटे पटि बाई । बड़े प्रेमु सब भाति मलाई ॥

कनकहि बाल बड़ु जिमि बाहें । तिमि प्रियतम पद प्रेम निबाहें ॥^१

इस स्थल पर भोस्वामी जी ने भरत को राम के प्रति एकांगी प्रेम का मूर्त रूप उठाकर रसना है। उससे यह ध्येय होता है कि स्वामी भले ही सेवक को मूल जाने। उस पर आत्माचार करे किन्तु सेवक की तो मलाई हसी में है कि उसका प्रेम विमोहित बढ़ता ही जाने। यही भरत का आदर्श साध ही तुलसी को भी अच्छा का आदर्श भोग गास्वामी जी की कला का प्रेरक तत्व भी यही है।

राम की वन यात्रा के पूर्व भरत के चरित्र की स्पष्टता सचरित करने वाली कोई भी बात हम नहीं पाते। भरत को अनुपस्थिति में राम के अभिषेक की तैयारी हुई। राम वन को गये। ननिहास से लौटने पर ही उनके पीछ स्वभाव का स्फुरण प्रारम्भ होता है। ननिहास में जब कुछ स्वप्न और कुपकुन देखते हैं तब वह माता पिता और भाई का मगल मनाते हैं। कैकेयी के पदपत्र में उनका तथा मात्र भी हाप है इस सम्येह की जड़ यही से समाप्त हो जाती है। कैकेयी के मुँह से पिता के मरण का सम्बाध मुन व शोक कर ही रहे थे।

तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भायी ॥^२

कि राम वन गमन की बात उनका मामने घा जाती है। राम वन गमन के माप से क्या सा धपना कारण बाल स्तम्भित रह जाते हैं। ऐसे बुरे कार्य से सम्बन्ध रखने वाली माता उन्हें धनु रूप में हृष्टिगोचर होती है। वास्तव में भरत बीसा और उग्रवत्त आत्माकरण ऐसी भयंकर कालिमा का रसत जैसे कर सकता है। भरत के हृदय का यह संताप बिना राम के मामने कुंभ दूर नहीं हो सकता। वे बट बिच्छु व्यपित पुरवासियों को सिध बिभ्रुट वा पट्टेचत हैं और राम क समझ छापी कला के बीच धपना मुख आत्माकरण ही जोस कर रख देते हैं। उस आदर्श के आन्दर राम को धपने प्रति निर्मलता देख कर वे आत्मा हो जाते हैं।

भरत ने यह सब संसार क विकसाने के निमित्त नहीं किया। उनके हृदय में लक्ष्मी आत्मकानि थी। उनका हृदय भाग्य प्रेम की आशा में लवालक मय था। भरत की यह आत्मा इन मग्ना में व्यक्त हुई है।

१ भा० धयो० पृ० ३८३

२ भा० धयो० पृ० ३२२

इह म मोहि अय कहिहि कि पौत्र । परनीकहु कर माहिन सोत्र ॥
 एवइ उर बस कुसइ बबारी । मोहि सपि मे छिय राम बुबारी ॥
 जीवन साहु लक्षण भल पावा । सबु तजि राम चरण मनु लावा ॥
 मोर जन्म रघुबर बन लावी । मूठ काहू पछिवाळें धनमावी ॥

घावति दाहन बीनता कहूँ सबहि बिच नाइ ।
 देखे विनु रघुनाथ पर चिय कैं जरनि न जाइ ॥^१

संसार की भी बारखा इनके प्रति बुरी न हो इसकी भी चिन्ता उन्हें पूर्ण रूप से थी।

परिहरि राम हीन अय माहीं । कौच न कहिहि मोर मठ माहीं ॥^२

बिचकूट की छाया के बीच मरठ अब अपने हृदय की बात निवेदन करने लगे होते हैं। वो प्रायः स्नेह समझ पड़ता है। वास्तविकता की बातें लोगों के सामने मुख्य करने लगती हैं।

मैं जानत निज नाथ सुभाऊ । अपराबिनु पर कोहू न काऊ ॥
 मो पर कृपा सनेहु जिनैपी । बनत मुनिघ न कबहूँ बैसी ॥
 विसुपन सैं परीखैरै न संहू । कबहूँ न कीन्ह मोर मन मंजू ॥
 मैं प्रसु कृपा रीति जिमं जोही । हारेहुँ सेम जिताबाहि पाही ॥^३

घोर छात्र ही मक्ति मावना घोर स्नेह भी क्लिप्ता प्रवत है।

पुर बोसाइ साहिब किय राम । सावत मोहि नौक परिनामु ॥^४

बिचकूट के संवाह मरठ तथा राम के चरित्र की विशेषताओं की घोर भी प्रस्तुत रूप से प्रकट कर देते हैं। दुखनी की कसा इन सम्बन्धों में घोर भी अधिक बमक डली है।

इन प्रसंगों के साथ मरठ अस्तुत विज्ञान भी है। बधिष्ठ की बुद्धि भी इनके सामने बकरप रही है—

मरठ महा महिमा बलराषी । मुनि मति छाड़ि तीर पबसा सी ॥

बा वह पार अठगु हिनं हैरा । पावति नाम न बोहिनु बैरा ॥^५

छात्र जिन बधिष्ठ की बुद्धि मरठ के सामने बकरप रही है वह महान जानी है। वह विज्ञानी भी है राजनीतिज्ञ घोर राम के दुष्ट है। ऐसे बधिष्ठ की बुद्धि भी जो छात्र मरठ के सामने बकरप रही है इसमें की भाव है। मरठ ने अपनी बुद्धि से लौकिक घोर पारलौकिक दोनों ही लोगों में बधिष्ठ को अपनी विद्वता के परास्त कर

- १ मा० अयोध्या पु० ११२
- २ मा० अयो० पु० ११२
- ३ मा० अयो० पु० ४२०
- ४ मा० अयो० पु० ४२०
- ५ मा० अयो० पु० ४२७

दिया। भरत की परीक्षा लेने के अग्रिमार्थ से बधिर्य से भरत से कहा कि राम एक उपाय से अन्ध सौं चकते हैं। यह यह है कि राम और लक्ष्मण की अन्ध तुम दोनों माई अन्ध बने जाओ।

तुम कानन गमनहु दोउ भाई। ऐरियसीय महित रघुराई ॥^१

भरत एकदम शोक पडे कि मुख्येन घाय तो केवल १४ वर्षों के हैं तुम अंगन में रहने को कहते हैं मैं तो राम वरि सौं जायें तो यहाँ तक तैयार हूँ।

कानन करौं अन्ध मरि बामु। यहि ते अतिक न मोर सुपायु ॥^२

भरत की यह असाध्य शोकना देख बधिर्य विस्मित हो गये। इस प्रकार में लौकिक श्रेय में भरत बधिर्य से विजयी हुए।

पारलौकिक श्रेय में तो भरत की महिमा और बुद्धि और भी सुन्दरता से बधिर्य को इस प्रकार पराजित कर रही है। बधिर्य भरत से पूछ रहे हैं कि उपाय बतलाओ जिसमें राम को अन्ध से सौंटा जा जाये।

केहि बिधि अन्ध बनहि रघुराऊ।

कहहु समुक्ति सोइ करिय उपाऊ ॥^३

भरत बड़ा ही मारमार्थित उत्तर दे रहे हैं।

मानुष अम् मूय धरैरे। अतिक एक तें एक बईरे ॥

अन्ध हेतु सब कहें पितु माता। करम सुमासुम देइ बिधाता ॥

वसि बुध सबइ सकस बस्याना। अत असीस राउरि बडु जाना ॥

सो सोमाइ बिधि गति कहि सैकी। सकइ को टाकि टेक जो टेकी ॥

बुद्धिध मोहि उपाय अन्ध तो मोर अभायु ॥^४

इसमें सब अर्थ विचारणीय है क्योंकि यह माय पूछें और कलामक है। भरत भी कह रहे हैं एक जो माता कर्मजनो और विषया हो गई। पिता मर गये। क्या अब आपके उपाय पूछने से इस सति की पूति हो सकेगी।

उपाय तो सब सोचना या जब राम-बनबाम की योजना बनाई गई थी। आपने तो अनिहास में हमें पिता की मृत्यु का समाचार भी नहीं दिया। केवल कुतों से इतना ही कहलाया —

इतना कहहु भरतउच जाई। तुए बोलाइ पढये सोउ भाई ॥^५

घात्र अन्ध भुम्भे उपाय पूछते हैं यह मरघ असाध्य है। उपाय तो आपके हाथ

१. मा० अयो० पृ० ४१७

२. मा० अयो० पृ० ४१९

३. मा० अयो० पृ० ४१७

४. मा० अयो० पृ० ४१७

५. मा० अयो० पृ० २३३

हाथ । जब हमारे पिता प्रापसे राम के धर्मियेक के लिये धाडा मेने प्रापे से तो प्राप कह देते कि कस नहीं हो या तीन दिन याच राम गही पर बैठेंगे ।

पहले कैंकेयी ने राम को बनवास नहीं द्यपितु हमारे हेतु यही मांगी थी । ऐसी घबस्वा में यह उचित था कि पहले प्राप मुझे यही देने के हेतु बुला सेते तब राम को बंदन जाने देते । मैं जब राम के बंदन जाने के पूर्व ही था जाता तो राम कभी भी बन नहीं जा सकते थे । प्रथ उपाय ही तब प्रापके हाथ में था । प्रथ उपाय पूछने से क्या नाम । भरत की इच्छा व्याधोचित तर्क पूर्व बुद्धि के समझ बध्दित जैसे ज्ञानी की बुद्धि बकरा गई और महाकवि ने लिखा ।

भरत महा महिमा बसरायी । मुनिमति ठाढ़ि तीर घबला सी ॥^१

किसी भी महाप्रतिभावाली कवि के हेतु यह बायें हाथ का खेल है कि वह जिस वस्तु को भी चाहे जैसा भी रूप अपनी काव्य कला में प्रदान करे । गोस्वामी जी ने उपर्युक्त विवेचन में बध्दित के समझ को भरत को इतना महान स्वान प्रदान किया है वही उनकी कला का कमलार है । जिस पर हमें जोरन होना चाहिये ।

यदि कोई यह जानना चाहता है महाकवि इन दो ध्यर बरिचों के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से किस प्रकार से सोचते हैं । तो उसे क्यान देना होगा साधारण जनता के उन कथनों पर जो भरत के लम्बीग्राम के जीवन की व्याख्या करते समय व्यक्त किये गये हैं ।

लज्जन राम धिय बानन बसह्यौ । भरत मबन बस वप तनु कसह्यौ ॥

हुँहि विधि समुक्ति कहत सब सोइ । सब विधि भरत सराहण कोइ ॥^२

इसी में कवि कई बुना उँचा राम से भरत को बठा रहे हैं । जिसे हम प्राय स्पष्ट कर रहे हैं । इन पंक्तियों में कवि ने पहले भजन सिखा तब राम । इसमें भी भाव है । भरत और लक्ष्मण दो स्वेच्छा से तप कर रहे हैं और राम को बंदन से रखने की आज्ञा हुई है ।

प्रसन्न है कि जब लक्ष्मण और भरत दोनों ही तपस्या करते हैं तब लक्ष्मण को छोड़ भरत की सराहना करने के योग्य क्यों है । लक्ष्मण क्यों नहीं । क्या लक्ष्मण और भरत के तप की तुलना तो करें । तभी यह निरचय हो सकेगा कि भरत लक्ष्मण के मुकाबले क्यों सराहना के योग्य है । लक्ष्मण राम के रूप के साथ है और भरत के पास राम का नाम है और साथ ही रूप भी । इस प्रकार—

जौह नाम अप सोचन लोक । पुसक पाठ हिव सीम रघुवीर ॥^३

१ मा० धयो० पृ० ४१७

२ मा० धयो० पृ० ४६२

३ मा० धयो० पृ० ४६२-४६३

रूप से नाम भेज है जिसे महाकवि ने बात कीड में नाम महात्म्य के प्रकारण में नाम रूप की तुलना स्वीकार करत हुए कहा है।^१

लक्ष्मण क्या राम भी तप में भरत की समता नहीं कर सकत । क्या राम ता पिता की आज्ञा से तप कर रहे हैं और भरत स्वच्छ से ।

साक्षात् रूप राम के साथ रहने पर भी लक्ष्मण का क्रोध नहीं गया । राम ने उपदेश भी किया—

क्रोधत नहुँ मिस्र नहिं भूरी । करह प्रीत निमि धरमहिं हूँ ॥^२

लक्ष्मण स्वयं भी इसे इस प्रकार स्वीकार करते हैं—

क्रोध पाप कर मूल ।^३

पर स्वयं क्रोध में सा पय—

धनुष बड़ाइ महे कर बाजा ।^४

लक्ष्मण क्रोध के आरोह में भरत के हेतु यहाँ तक कह पये—

तेहेहिं भरतहिं येन समता । सागुन निवरि निपातं जता ॥^५

भरत को तो लक्ष्मण मार रहे हैं और भरत उनके प्रति कितन प्यार के शब्द कह रहे हैं ।

बालक बाहु लखन सपु लोने ।^६

राम ने भी भरत की इस महत्ता को स्वीकार किया—

लखन तुम्हारा सपप विनु धाना । मुनि मूर्खधु नहिं भरत समाना ॥^७

यही भरत की महानता की तबी तुलसी कहते हैं—

सब बिधि भरत सराहन जोयू ॥^८

इसके अतिरिक्त संत और भगवान् बानों की बानी भरत की महानता को स्वीकार कर रही है । संत बानी माछाव कहते हैं—

तेहि फल कर फणु दरस तुम्हारा ॥^९

भगवान् की बानी—

१ मा० अयो० पृ० २३ २४

२ मा० कि० पृ० ४२४

३ मा० बा० पृ० ११२

४ मा० वि० पृ० २२८

५ मा० अयो० पृ० ४००

६ मा० अयो० पृ० १८०

७ मा० अयो० पृ० ४०१

८ मा० अयो० पृ० ४१२

९ मा० अयो० पृ० १५६

जो न होत अथ अनाम भरत का । सकल अरम पुर अरनि अरत को ॥^१

संत श्रीर अयनाम दोनों की ही धारणा अरत के विषय में पुरवासी सुन चुके थे वही यह कहते हैं कि भरत सभी प्रकार अरत होने योग्य हैं । भरत श्रीर लक्ष्मण की समता ही क्या । लक्ष्मण तो राम के अरतों की सेवा करते हैं और अरत उनके अरतों की नहीं उनके अकारण की पूजा करते हैं ।

जिन्ह पायन्ह के पातुअन्हि भरतु रहे मन साह ॥^२

एक जगह तो तुमही की कथा में राम के श्री अरत की उपनामों में ऊँचा उठाने का प्रमाण कर दिया है । तुमही राम व भरत दोनों के ही जिसे श्रीर का अकारण के रहे हैं । किन्तु राम को केवल अरत श्रीर अरत को अंश के साथ का भीर ।

१ अरत— जिन्ह राम मन भरत न भूना ॥^३

२ अरत— ताहि पुर अरत भरत विभु रामा ।
अरतक विधि अरत बाधा ॥^४

राम का अंश इस कारण जिहा । पुत्र पर भीर कभी न कभी अकार बैठ ही जाता है । इस प्रकार राम भी १४ वर्ष बाद अमी न सही इस अरत भी कभी पुत्र पर अंश अरत कर बैठे ही । अरत उनके हेतु तो भीर का अकारण । किन्तु अरत के लिये अंश के साथ का भीर सिद्ध कर अकारण यह अंश कर रहे हैं कि अरत प्रकार अंश के साथ में भीर कभी भी नहीं जाता ।^५ इसी प्रकार से अरत कभी भी इस अरत अरतों को न लेंगे । इसमें अरत की महानता यह है कि अरत अरत अरतों का राम में अंश कर पुत्र अरत किया किन्तु अरत में कभी भी अरत अरत नहीं किया । अरत अरत की अरत अरत है । १४ वर्ष बाद अरत अकार उन्हें इसी अरत में देखते हैं ।

१ मा० अयो० पृ० ४०२

२ मा० अयो० पृ० ५६६

३ मा० अयो० पृ० २६७

४ मा० अयो० पृ० ४६१

५ अंश में अरत श्रीर अरतों तथा यह भीर अंश के साथ में कभी नहीं जाता इस पर एक कवि अरत अरतों से लिखते हैं—

अंश ताहि में तीर अरत अंश अरत ।

अरत अरतों में एक है अरत न अरत पात ॥

अंश अरतों अरत अरत अरत ।

ताते यह अरत नहीं अरत अरत ॥

बैठे देखि कुसासन बटा मुकुट इस गाथ ।

राम राम रघुपति अपठ सबठ नयन असबाठ ॥^१

संक्षेप में आचार प्रथों से मरुत के आदर्श चरित्र में हमारे कवि इस प्रकार से बसन्तक बसन्तकार उत्पन्न करते हैं। उनका यह चरित्र कृतिना हृदयघ्राही है यह कहने की आवश्यकता नहीं। मानस के इन मरुत में गोस्वामा जी इस प्रकार एक मध्य चरित्र की सृष्टि करते हैं।

हनुमान—

महाकाव्य के हनुमान बसन्तान तथा समर्थ साहसी वीर, हृद तथा निर्भीक बलाघों एवं विद्याओं में दक्ष तथा विद्वेकशील विद्वेगिय सरल तथा मात्सर्य हीन मानिक एवं आद्यानाम मुख संयुक्त एक परव्यस्त स्वार्थ हीन धीर कर्त्तव्य परायण सेवक हैं। सर्वत्र स्वामी के कल्याण तथा स्वामी के कार्य के साधन तादात्म्य स्थापित किये हुये दिव्यतार्दी पकृते हैं। 'मानस' में हमारे कवि ने उन्हें वास्य मल्लि के रूप में तथा राम के परम प्रिय सेवक के रूप में स्वीकार किया है। हनुमान का तुममी न शकर का घबठार माना है। इसकी चर्चा उन्होंने बार-बार की है।

अहिं सरीर रति राम तो मार बाहरहि सुमान ।

रख देह तत्रि नेह बस जानर मो हनुमान ॥^२

हनुमान जी राम के परम प्रिय थे। एसे बैसे नहीं मानस में राम स्वय ही कहते हैं।

मुमु कवि जिय जनि मानेसि कृपा । तैं मम प्रिय लक्ष्मिन ठे दूना ॥^३

धर्मात् राम यह कह रहे हैं कि ह कवि तुम अपना मन छोटा न करो क्योंकि तुम मुझे सक्षमण से दून प्रिय हो। भोग इसम बाँका करते हैं कि क्या राम सक्षमण से दूना हनुमान को चाहते हैं। कुछ विज्ञानी ने इसका समाधान इस प्रकार किया है कि तुम न सक्षमण मेरे लिये हो नहीं हो। यह धर्म शब्द का अर्थान्य करके किया गया है। जो सर्वथा अप्रामाणिक है प्रामाणिक नहीं। वास्तव में हनुमान जी ने राम यही कहते हैं कि तुम मुझे सक्षमण से दूने प्रिय हो जा प्रत्य भी है, कुछ निम्न लिखित प्रामाणिक तथ्य भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनके आचार पर यह बात सिद्ध की जा सकती है।

१—सक्षमण ने मल्लि-रुपा जानकी को ला दिया। यदि वह राम के बड़े अनुभार :—

१ मा० उत्तर पृ० ६८१

२ दोहावली—दोहा १४२—पृ० ६६

३ मा० कि० पृ० २१३

सीता केरि करेहु रजवापी । बुनि बिनेक बर समय बिबापी ॥^१

सीता की रक्षा करते और सीता के कहने से न जाते तो सीताहरण न हीरा सदन के कारण तो जानकी हरण हुआ पर फिर इन जानकी की खबर जाने जाने नहीं हनुमान की से । इसीलिये राम हनुमान से कहते हैं ।

ते मम प्रिय लखिमन से हुना ।

२—प्रथम है हुना ही प्रिय क्यों कहा । प्राय है मति क्या जानकी का लिकारण भी लखमण के द्वारा ही अन्तिम समय में हुआ बर फिर शोकाय भी जानकी को राम से मिलाने जाने नहीं हनुमान को से । क्योंकि यदि सब कुल के सपर के उनके द्वारा संभ कर जानकी के पास हनुमान न जाते तो राम का सीता से पुनर्मिलन न होता । अर्थात् प्रेम कपी जानकी को दो बार राम से विमुक्त कपाने जाने लखमण से और दोनों वाप उन्हें पुन राम से मिलाने जाने हनुमान ही से । इसीलिये राम हनुमान से कहते हैं कि हे कनि । तुम मुझे लखमण से होने प्रिय ही ।

३—अन्तिम माव ता अन्तम सुन्दर है । कान्हा भी सुन्दर ही कीबूब है । हनुमान के अन्तम से होने प्रिय हागे का । अन्तर का धामूबल है कर्ष और हनुमान को कुबली के अन्तर का सबतार माता है । माव का अन्तम है अन्तम स्वभावतः धामूबल से सब बलु की मूला अधिक होती है जो तले बारल करता है । राम यही जानकर हनुमान को से कहते हैं कि राक्षस के सबतार ही और लखमण से । यह कर्ष के रूप में पुष्पाय धामूबल है । इसीलिये स्वभावतः ही तुम मुझे लखमण से होने प्रिय ही । नहीं कोम्बारी को भी अरिष चिन्ता के अन्तर्वत अर्थों में कलात्मकता । विपति एक कोमाई के बिजने सुन्दर माव पूर्ण ३ सर्व विक्रम रहे हैं ।

हनुमान की वास्तव में राम के परम प्रिय लखमण से । तभी तो बिबा कि यह राम जिन्हें अन्त देखते हैं तो :—

बुनि बुनि प्रसुहि चित्तव नरनाहू ॥^२

और नहीं राम जब हनुमान को देखने हैं तो कौरी सुन्दरता से तुमनी उन्ही सजा में हनुमान की महानता व्यञ्जित करते हैं ।

बुनि बुनि कपिहि चित्तव मुर नाता ।

लोचन नीर पुनक पतिबाता ॥^३

जरा हीनी ही उचाहरणों में अर्थों का साम्य हैलिये । इससे मोस्वायी को का गर्मों पर अर्थात् अर्थिकार वा । इसका भी प्रमाण मिल जाता है । अन्तम और हनुमान के प्रकरण में एक ही अर्थों में 'बुनि' बुनि को वाक्य कोस्वायी की ही मूक कलात्मक इति की मूक है ।

१ मा० अर० ३० ४६६

२ मा० बा० ५० ११३

३ मा० यु० ४० २६०

यम ब्रह्म हनुमान की बीरता पर विचार कर सें तुमसी मिलते हैं —

बानु हृदय प्राणार बसहि राम सर बाप घर ।^१

टीकाकारों ने इस पंक्ति का अर्थ किया कि जिसके हृदय रूपी प्राणार में राम अनुप बाण धारण करके निवास करते हैं । पर ऐसी बात नहीं । महाकवि ने मानस के प्रारम्भ में लिखा है ।

अनि प्रारब्ध कवित गुन बाघी । मीन मनोहर ते बहु भाँषी ॥^२

अतः उक्त पंक्ति प्रारब्ध-काव्य के अन्तर्गत प्राती है । प्रारब्ध काव्य की परिभाषा है कि जो वाक्य सीधे अर्थ से वास्तविक अर्थ की अभिव्यक्ति न करे बल्कि साने पर ही जिसका अर्थ लिया जा सके । इसीलिये यह शब्द का अर्थ धारण करना नहीं है अपितु अर्थ है जिसके हृदय रूपी प्राणार में राम अनुप बाण प्रसंग रख कर निवास करते हैं । ऐसा इसी हेतु है क्योंकि राम को स्वयं हनुमान जो की बीरता पर इतना बड़ा भरोसा है कि जब राम अन्ध अन्धों के हृदय में निवास करते तो अनुप बाण धारण करके । पर जब हनुमान के हृदय में अनुप बाण धारण करने का प्रसंग पाता है तो वह अनुप बाण को प्रसंग पर कर उनके हृदय में निवास करत है । वास्तव में हनुमान की बीरता इतनी ही बड़ी नहीं थी । मीन हनुमान की बीरता के कुछ स्वयं प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

१—कवितावली में हनुमान की बीरता के हेतु स्वयं तुमसी कहत है —

मास्त नंदन मात को मन को लवराज को बेग सजायो ।^३

२—मानस में सुन्दर कांड के प्रारम्भ में हनुमान जी को गोस्वामी जी बल का नाम बतलाते हुए कहते हैं ।

धनुर्निहतबलधाम स्वर्ण शीतामदेहम् ।^४

१—जब युद्ध में रावण ने अमर राक्षस छोड़ त्रिनका विजय करना राम को हेतु भी दुर्लभ था उस समय हनुमान की बीरता का मान तुमसी के ही मुख से सुनिये ।

ज रजनीचर बीर विसास करस बिलोकत कास न बाये ।

त रन रीर रूपोष क्रिछोर बड़े बरजोर परे फग पाये ॥

भुप सपेटि धकास निहारि नै हांक हटी हनुमान साये ॥

सूषि के पात जने नम जात परे अम बात न भूतस साये ॥^५

४—गोस्वामी जी ने परम प्राणाय राम के ही मुख से हनुमान जी की बीरता का मान सुनिये ।

१ मा० बा० पृ० १८

२ मा० बा० पृ० १४

३ कवितावली लक्ष्मी काण्ड पृ० म० २४ पृ० १६२

४ मा० सु० पृ० ७३६

५ कवितावली लक्ष्मी काण्ड पृ० म० ३० पृ० १६१ १६२

हाथिन सी हाथी पारे थोड़े थोड़े सो संहारे ।
 रथनि सी रथ विचारिन बसवान की ।
 बंधन थपेट बोन बग्न बक्रेट बाहें ।
 हृदयानी छीबें महारानी बाहुमान की ।
 बार बार सेवक सराहना करत राम ।
 तुलसी सगई रीति साहब मुवान की ।
 साम्बी भूम नम्रत लपेदि पटकत भट ।
 बेको बेको लखन लरवि हनुमान की प्री

इस पद्ये ही हनुमान की बीरता का बिज बाटक के सामने सजीव हो उठता है । बड़ी तुलसी के बिभलु की कमा है ।

बीरतावली में राम को परम बड़ा है वे तो यह कहते हैं :—

नैरो सब पुण्यवारण बाको ।^१

पर इसी समय हनुमान के जरा बीरता से नरे बचन मुनिने :—

जो ही सब अनुसासन पावो ।

तो बग्नमहि निबोरि बँल ज्यो वानि मुवा सिर बावो ।

के पाठाल इतो म्याबाबलि अनुठ कु ब महि लावो ।

मेदि भुवन करि मान् बाहिरो तुछ राहु बै ठाबी ।

बिबुब बैर बरबस नहि धानी तो प्रनु धनुष कहावो ।

पटको भीष भीष मुपक सबहि को पाप बहावो ॥^२

हनुमान पर तुलसी की झट्ट मझा की । राम भी हनुमान के बली के ।

मालव के हनुमान में हमें केवक सेव्य भाव का पूर्ण स्फुरण मिलता है किना किसी पूर्व परिचय के राम का देखते ही उनके धील स्वभाव पर मुख ही घाम सत्र पैल करने वाले हनुमान ही थे । इसी राम प्रीति के प्रभाव से वे सब राम बली की शक्ति के अधिकारी हुवे । केवक में तो जो दुग धर्षेधिप हैं वे सभी हनुमान में के । सबसे प्रथम बिधपटा यह है कि हनुमान प्रत्येक क्षण राम का प्रत्येक कार्य करने की प्रस्तुत रहते थे । समुद्र के किनारे एक बार धन वालर समुद्र पार करने की चिन्ता कर ही रहे थे कि वे समुद्र पार कर पडे । लज्जामल को छक्ति लबी ठव बैय नी हनुमान ही धामे चीर घोषधि मैने भी यही यथै । केवक को धमानी बाहिने । मघोक बादिबा से बकड़ कर अब रासल उन्हें राबल के सामने से जाने हैं इत पर उन्हें प्रीय नहीं वामा । प्रीय की शक्ति है —

१ कवितावली लंका कांड छं० सं० ५० पृ० १११ ११२

२ बीरतावली लंका कांड छं० सं० ७ पृ० १११

३ बीरतावली लंका कांड छं० सं० ५ पृ० १११

है तब इसमें तीरज लायक ।^१

नहीं कहते । ऐसा कहने में प्रभु के कार्य में हाथि हो सकती थी । अपने मान का ध्यान करके अपने स्वामी का काम बिपाड़ना उनका काम नहीं था । वे रावण से साध कहते हैं ।

मौहि न कसु बांध कर साजा । कीन्ह जहा निज प्रभु काजा ॥^२

यह है हनुमान की स्वामि भक्ति । वास्तव में हनुमान राम के सबसे बड़े कार्य साधक थे । राम स्वयं कहते हैं :—

पुनि पुनि कपिहि चित्तव सुरजाता । साधन मीर वृत्तक घठियाता ।
मुनु कपि तोहि उरिन मैं नाही । करि बिचार देखहु मन माही ।
प्रति उपकार करीं का तोरा । समुल होइ न सकत मन मोरा ॥^३

राम का भी अपने समस्त मंत्र मस्तक करा देने वाले हनुमान ही थे । निरवयव है हनुमान की के चरित्र का जिस सफलता के माय मोस्वामी को न भंजन किया है । वह उनकी कसा की घबूत पूर्व सफलता है । इस चरित्र में मोस्वामी जी ने राम को हनुमान की का ज़खी बनाकर हनुमान के चरित्र में प्रभुत्व कलात्मक बमत्कार की सृष्टि की है ।

कौसिन्धा—

घाघार बन्नों की कौसिन्धा में हम पति द्वारा उचित सम्मान में बंधिता इसी इनु धोए काया निज ममा पर भमा द्याग धीर दीसता धीर पति परायण मारी का बिब पाते हैं । जो अपने निर्दामिन पुत्र के बियोप में अपने घण्टर धीर भी सह दुएँ का बिकास करती हैं । हमारे कवि मानस में इस चरित्र का घणताकर एक बियोप प्रकार से उत्कर्ष प्रदान करने हैं । 'बास्मीकीय रामायण' में जहाँ मरत घणव वाकर ही कौसिन्धा को संतुष्ट कर पाते हैं वहाँ तुमसी की कौसिन्धा में जहाँ कोई भी ऐसा साधन इष्टियोचर नहीं होता । इसी में कौसिन्धा का चरित्र अधिक उज्ज्वल रहा है । यही मोस्वामी जी की कसा भी है धीर मा 'बास्मीकीय की रामायण' की कौसिन्धा की कहती है ।

यपेक राजा प्रजपरते धीरवेसु

बकारवां माहू नातु आतामि न मन्तव्यामितविनम् ।

यदि त्वं मासुमि बर्न त्यन्वा मां धीरताममाम् ॥

मई प्राय मिहा मिपे न च ररयामि जीविनुम् ।

१ मा० लं० पृ० १००

२ मा० मु० पृ० २२२

३ मा० मु० पृ० ३६२

तत्सर्वं प्राप्तमसौ पुत्र निरर्षं लोकं विष्णुतमम् ॥

ब्रह्मत्यानिवाङ्मति समुद्रः सरितापतिः ।^१

‘अध्यात्म रामायण’ की कौसिख्या कहती हैं—

पिता पुण्यर्षी राम तवाहमभिका ततः ।

विनाशमी बर्षं गन्तुं वारयेहमहं सुतम् ॥

तवा प्राणान् पेटित्यग्म पञ्चामि यमं सदनम् ॥^२

परन्तु मामस की कौसिख्या कहती हैं—

ओ देवस पितु धामसु ताता । तौ जनि जाहु जनि बड़ि माता ॥

जौ पितु मातु कहैत बन जाना । तौ कानन सत प्रथम समाजा ॥

पितु वनदेव मातु वनदेवी । लम मृग वरम सरोवरु सेवी ॥^३

इन रामायणों में कौसिख्या देवी अपने मातृत्व का अधिकार स्थापित करके घोर धारम हत्या का भय दिखाकर राम को पितु धामा से विमुख करने का प्रयत्न करती हैं। बाल्मीकीय की कौसिख्या तो एक हम धामे बड़ बई हैं। वह राम को घोर नरक में भी डालने को प्रस्तुत हो जाती है। राम की माता भयभ्र कर भोग समका धार करे है। पर इन दोनों ही रामायणों की कौसिख्या को कोई प्रेम नहीं कर सकता। परन्तु लोक महत् के हनु योग्यामी जी का वह कौसिख्या देवी परमद रान् जो राम के घोर अपने सब अधिकार देनेयी के चण्डों में धामि घोर स्नेहता से धरित कर हैं घोर स्वयं मरत की भी माता बन जायें। ममा ऐसा बरिष बिस्व के सौहित्य में कही मिलेवा जो अपने पुत्र की ही माति सबके पुत्र से प्यार करें। उसमें भी गोस्वामी जी की कला का जमत्कार है।

तुलसी की कौसिख्या कर्तव्य पराधरु बिदेक को सूरम भावता को प्रबोधित करने जाती हैं। पुत्र के निर्वासन का कारण बतलाया जाता है ता के नियम अन्तर्ह लव में पड़ जाती हैं। एक घोर कर्तव्य घोर दुसरी घोर मातु स्नेह उन्हें व्यथित करने लगता है। पर कर्तव्य की शिष्य होती है। राम को इस समय का इनका शिवा हुआ अपनेस बिदेक समरब बुद्धि कर्तव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ पर गोस्वामी जी ने कौसिख्या को एक कर्तव्य पराधरु लारो के रूप में चित्रित किया है। वह राम को इस प्रकार कैसा कर्तव्य से जरा हुआ उत्तर देती है।

जौ देवस पितु धामसु ताता । तौ जनि जाहु जनि बड़ि माता ।

जौ पितु मातु कहैत बन जाना । तौ कानन सत प्रथम समाजा ॥^४

१ बाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड सर्ग ११ श्लोक १८

२ अध्यात्म रामायण—अयोध्या कांड सर्ग ४ श्लोक ११

३ मा० अयो० कांड पृ० २८५ २८६

४ मा० अयो० पु० २८५

कौटिल्या से उद्युक्त कथन करा कर गोस्वामी जी से भारतीय नारी समाज में उबारदा का एक रूप बड़ा कर दिया है। जिसे पढ़ते ही पाठक में सहृदय ही कौटिल्या के प्रति घाघर भावना का उदय हो जाता है। ऐसे ही प्रसंग है जिनमें गोस्वामी जी की कथा का उग्रबल रूप देखने को मिलता है।

कौटिल्या के दयानु हृदय का परिष्कार उस समय मिलता है जब भरत के घाघे पर बहु समा के शोक में उन्हें राज्य करने का उपदेश देती हैं। प्रागे बहु अपने कारण स्वभाव के ही कारण भरत को अपना ही पुत्र समझ कर हठान पैदास चलने में रोइती है। चित्रकूट में वे एक बिसमलण आशुति उत्पन्न करती हैं। कथा का कोई भी पात्र इसकी बुद्धिमत्ता पर घाघेरिक अनुभूति के साथ नहीं बोलता। जितना कौटिल्या। अब बहु सीता की माता से कहती हैं।

हेहि मोहू बस सोचिषि बादी । बिबि प्रपंचु घस घबल घनादी ॥^१

यह वास्तव में राम की घाघरी माता है। कौटिल्या भरत को राम की ही भांति प्यार करती है। उनका व्यवहार भी जो राम के साथ होता है वही भरत के साथ भीके देखिये। अब राम और भरत मिलने घाघे तो दोनों को ही कौटिल्या से गोद में बैठाया।

भरत— माता भरत गोद बैठाये ॥^२

और राम का भी भरत के ही समान—

गोद गति पुनि हृदय समाये ॥^३

राम को कौटिल्या ने बन्धन कर कर दिये ।

बनाइ बन्धन करि लाल करि रघुप न रघुवर लाल ।

भरत के तनिहाल में घाघे पर माता इसी वन्द से इन्ह भी सबाधित करती हैं।

घरहुँ बन्धन बसि घारज घरहुँ ॥^४

राम की माता ने बल जाते समय जब घाघ से बैठाया सब ता उनके स्तन में बालन्य में पूर बहने लगा था।

गोद गति पुनि हृदय समाये । अबल प्रेम रस प्यर सुहाये ॥^५

और जब भरत को कौटिल्या ने गोद में लिया ता इस समय उनकी भी यही घबस्था हो गई।

१ मा० घयो० पृ० ४३४

२ मा० घयो० पृ० ३२८

३ मा० घयो० पृ० २८६

४ मा० घयो० पृ० २९६

५ मा० घयो० पृ० ३२८

६ मा० घयो० पृ० ३८६

माता भरत नाभ वीर्यर । यम यम ब्रह्मि मयम ब्रम ध्याये ॥^१

यह तो राम की माता का ही प्राथम्य है कि वह अपनी सपत्नी के पुत्र को अपने पुत्र के बराबर मान रही हैं। जिसके कारण उनका निर्दोष पुत्र निर्वासित किया गया। यही है कौसल्या के अरिष विमला में बोस्वामी की की कथा। जिसमें भरत और अपनी बोना पुत्रों के साथ एक ही व्यवहार किया जा रहा है। ऐसा व्यवहार कित ही कही देखने को मिले।

गीताबली में उपयुक्त कोटि के उदाहरणों का काफी प्रभाव है। पर इसमें इसकी पूर्ति एक समय प्रकार से हुई है। उसमें मनुष्य पक्ष का सुन्दर और मौलिक विकास हुआ है। यहाँ पर कौसल्या का विमल एक सौहार्दपूर्ण माता के रूप में हुए है। मानस में अरिष के इस पक्ष का विकास नहीं हुआ है। यही हेतु गीताबली में यह अरिष निरवयव ही महत्वपूर्ण और कर्तात्मक है।

सुमित्रा—

आचार प्रणवी की सुमित्रा कथा में एक अत्यन्त उपेक्षित घोर हीन जीवन व्यतीत करती हैं। के अपने पुत्र को सपत्नी के पुत्र के साथ मेलती हैं। किन्तु हमारे कवि उनके अरिष की उदारता मात्र से संतुष्ट न होकर उनमें एक प्राथमिकता का विकास करते हैं यही उनकी कर्तात्मकता है।

यह भीर दाम्भ्य को माता है। के लक्ष्मण को राम के साथ ब्रम जाने का उपदेश देती हुई कहती हैं।

तात तुम्हारि मातु ईडेही । पिता रामु सब भाँति मनेही ॥
तुम्हरीहि भाय रामु बन जाही । दूसर हेतु तात कसु नाही ॥
की ते सोय रामु बन जाही । सब तुम्हार कामु कसु नाही ॥^२
मदम प्रवार विहार बिहार । मत कम बचन करेहु सबकाई ।

यह ही प्राथम्य सुमित्रा । जो परम सुधीला प्रणववी ब्रमकारी और पतिव्रता है। जिसका लक्ष्मण को उक्त उपदेश उनकी त्याग मानना का सजीव विमल है। यह तो कौसल्या से भी बहुत धाम बढ़ गई है। क्योंकि कौसल्या धर्म के पासनाई धारा तो राम को बन जाने को ही देती है। किन्तु उनका हृदय राम को बिदा करती ममत्व महान बेचना से भर जाता है। जो उनके हृदय रूप से प्रकट होता है।

ब्रम विनीत मनुष्यरुबर के। सर सम सने मानु सर करके ॥^३
इसके ठीक विपरीत सुमित्रा एक कर्तव्य धीला और स्वाम की प्रतिमा के रूप में कितने धर्म के साथ बस्युक्त उपदेश देती हैं। यह उनके उक्त कथन से घली

१ मा० प्रबो० पृ० १११

२ मा० प्रबो० पृ० २२२-१००

३ मा० प्रबो० पृ० २२७

भाति प्रकट हो जाता है। इस प्रकार में उनकी त्याग और कर्तव्य पराधरता मुखर हो उठी है। यही तो तुलसी की कलारमकता है जिसके कारण यह कहा जाता है कि गोस्वामी जी के पात्र काठ के टुकड़े नहीं जो कबि द्वारा गढ़ कर सड़े कर दिये जायें। बरन् वे सजीव हैं।

गीतावली में कबि इन्हें एक बीर माता के रूप में चित्रित करते हैं। जो दूतों के पुत्र धनुष्म को भी रणभेज में जाने का उपदेश करती हुई दृष्टियोग्य होती हैं। गीतावली में हमारे कबि सम्राट ने जो एक बीर माता के चित्रण में सजीवता उत्पन्न की है वही उक्त प्रकार की कलारमकता है।

सदमण—

सदमण में राम और भरत दोनों ही चरित्रों से कुछ मौलिक अन्तर है। यद्यपि वे इन दोनों की ही भाँति दृढ़ और निर्भय, उसाही निरक्षय निष्ठ और निष्कपट हैं। किन्तु इन चरित्रों को विनम्रता समीरता संकोच क्षीमता दृष्टिकोण की व्यापकता तथा समधीमता आदि कुछ भी इन चरित्रों के समान नहीं है। वे निरंतर उसाही साहसी स्पष्टवाची और कुपचाप कर्म करने वालों में हैं। वे कथनी की प्रयोग करनी में अधिक विश्वास रखते हैं। राम के सिवा बहु एक मित्र और सेवक की भाँति है। यही उनके चरित्र की सुन्दरता है। महत्वाकांक्षामा रा हीन सदमण राम में अपने व्यक्तित्व की भावना को इस प्रकार मरहित किये हैं कि उनकी समता का और कोई चरित्र ही नहीं मिलता। तुलसी ने इस चरित्र को लेकर ही उसे स्वाभाविक कलारमकता से चित्रित करने का प्रयत्न किया है और जहाँ उन्हें अन्य कवियों की प्रवेष्टा सफलता भी मिलती है।

सदमण की उग्रता की काफ़ी उदा गोस्वामी जी ने की है। उन्हें मर्दाना से बाहर जाना प्रिय नहीं था। सदमण पिता के पास सुमन्त द्वारा यह सम्बोध भेजते हैं।

घरुँ तावग्यहारखे पितृत्वं भीसपयये ।^१

यद्यपि हम महाकाव्य में पिता होने का कोई भी सराण नहीं देखते। गोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा :—

पुनि कसु सखन कही बटु बानी ।^२

सुमन्त पहुँचा कर राजा से सदमण की कही बात इस प्रकार कहते हैं :—

पुनि कसु सखन कही बटु बानी । प्रभु बरजे बड़ प्रमुचिंत जानी ।।

सकुचि राम निज सपय देबाई । सखन सहितु कहिय जानि जाई ॥^३

यहाँ पर गोस्वामी जी ने सदमण की कही बात को बिलम्बे पूर्ण और व्यक्तित्व रूप में बहू दिया यही उनकी कला है।

१ वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ३

२. मा० अयो० पृ० ११४

३. मा० अयो० पृ० ११४

सम्पूर्ण जप में रही कहीं भी राम के अपमान का प्रश्न थाया लक्ष्मण तुरन्त धारण में आ गया। मिथिला की रात्र सभा में जैसे ही जनक के मुख में —

धीर बिहीब मही मैं जानी ।^१

को बात सुनते हैं धरने नहीं राम के अपमान से लक्ष्मण क्रोध से भड़क उठे। धीर से कहने लगे।

कहीं जनक बसि अनुचित बानी । बिद्यमान रघुकुस मनि बानी ।
मुनहु बानुकुस पकर भातू । कहूँ सुमार न कसु प्रविमानू ॥
औ तुम्हारि अनुपासन पाबो । कुन्दुक इब ब्रह्मांड ठठाबो ।
काँच बट जिमि बारी छोरी । सकठ मेर मूलक जिमि तोरी ॥
तब प्रताप महिमा भयबाना । को बापुरी दिनाक पुराना ॥
नाब जानि भय मायसु होऊ । कौतुक करी बिसोकिस सोऊ ।
कमस नाक जिमि जाप बढ़ाबी । ओवन सत प्रमान सँ बाबी ॥^२

इसमें लक्ष्मण का अट्ट अत्य प्रेम व्यक्त हुआ है। यहाँ पर कातरमन्ता यह है कि क्रोध में भी गोस्वामी जी लक्ष्मण को मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करने देते। उपर्युक्त प्रकरण में 'भय' शब्द बड़ा कर्मात्मक धीर भाव पूर्ण है। इसमें भाव यह है कि लक्ष्मण कहते हैं कि भगुव छोड़ कर सीता से विवाह करने की आज्ञा में नहीं आइता। बसि में तो केवल सिलबाड़ करते की यह आज्ञा आइता हूँ। यही है गोस्वामी जी की कला जो क्रोध से भी पूर्णरूपेण मर्यादा को रखा की आ रही है। इसके धारो यह राम के अंतस जाने समय —

गुरु पितु मानु न जानुँ काहू । कहूँ स्वभाव नाब पति पाहू ॥^३

यह दर यह धारण समर्पण करते हैं। यह भी गोस्वामी जी की कला में भगु प्रेम के अत्यंत चमत्कार उत्पन्न कर देने के हेतु पर्याप्त है। धारो राम के राज्य न मिलने से दुःखित हो वे मुमन्त के द्वारा पिता तक को बटु शरर कहना देने हैं। जिसका अन्तैव गोस्वामी जी ने नहीं किया। इससे मर्यादा की भी अकहेतना नहीं हुई धीर भाव ही उन्हें गोस्वामी जी ने उन्मुख्य होने से भी बचा लिया जिसे हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं। इसमें भी गोस्वामी जी कला में उदारता धारै है। धारो यह राम के ही कारण भरत व लक्ष्मण के प्रति भी विश्रुत में कुचित हो जाते हैं धीर अन्त में मार डालने की भी यह देते हैं। उनकी समुद्र को मुखा देने की सम्मति राम को देना भी उनके इन उत्साही स्वभाव की चोटक है। लक्ष्मण प्रत्येक परिस्थिति में राम के भाव रहे इन कारण उनके बरिब का बड़ा महत्व है। यह महान धीर भी है। जो

१ मा० बास० पृ० १७९

२ मा० बास पृ० १७९ १७७

३ मा० धयो० पृ० २६८

मपनाय को बंध से स्पष्ट है। सक्षमण की उद्यता ऐसी न थी जो ब्रह्मा न चक्षुरा पर भी क्रोमसता न खाने दे। सीताजी को जब बाण्डोकीय माधम पर छोड़ने पये तब वह नक्ष्त्रा के भाव में मग्न थे। लक्ष्मण एक धार्दर्य भाई सेवन घोर प्राणाकारिता के धार्दर्य थे। इस चरित्र को गोस्वामी जी ने बड़ी ही विचित्रता से प्रस्तुत किया है। यही उद्यकी कलात्मकता है। वह यह कि उद्योगे सक्षमण घोर राम के चरित्रो की साकर एक में इतना अधिक मिला दिया है कि वे घोगा एव दूसरे का योग मात्र बन कर रह गये हैं जिसका प्रारम्भ में ही गोस्वामी जी ने संकेत किया है।

रघुपति कीरति विमल पताका। दह समान भयत अस जाहा?

ऐसे चरित्र विचरण में गोस्वामी जी की कला भी सफ़ल हो गयी है।

तामसी ब्रह्मधा चमत्कारो चरित्र

रावण—

रावण के चरित्र में एक प्रकृति की प्रमुत्तता है। रावण का चरित्र धार्दर्य बावी नहीं अपितु बल्लुबादी, सशयबावी नहीं बल्कि निरबधयपावी नक्ष्त्राबावी नहीं प्रत्यक्षबावी निराशाबावी नहीं बल्कि धाशाबावी और संवहनबावी का है। रावण के इस तिर घोर बीस भुजा की उसमें अधरिभय शक्ति की यही धादि नाम्य के रावण का स्वरूप था।

दलित्त के अधिपों के रुध से ब्रवीमूत हो राम रासस समूह को मत् कराने का प्रयत्न करते हैं। घुमनका को नकटी व कनकटी देख कर रावण क्रुद्ध हो जाता है। घोर वह राम की रामी को चुपकर इसका बहना जता है। धारि कवि इस प्रकार धाव्यात्मिकता का समावेश करन है कि रावण को राम क चक्षुषार का पता था। घोर वह जानता था कि रासस के तमोगुली मटार से मोक्ष प्राप्ति क हेतु कोई भी साधन नमब नहीं है। फलतः इसके हेतु राम के हाथों से प्राण त्यागने के धतिरिक्त कोई भी मार्ग नहीं था। धरा राम के हाथ से प्राण त्यागने के धनिप्राय से ही रावण ने सीता का अधहरण किया था। तुलसी रावण के इसी रूप को लेकर भगनी भावना के धनुभूत रावण का चित्रण करते हैं।

जिम प्रकार राम राम थे उसी प्रकार रावण रावण था। वह मयमान को भी ललकारने बातों में से था। जिसकी ललकार पर बह्य को भी धाना पड़ा। बास काष्ठ में गोस्वामी जी ने उनके उक्त धावाचारों का बर्णन करके राम का चक्षुषार होना कहा है। वह राससों का सरदार था जो गाँव / उजाड़ने घोर केटी बल्लाते थे बीपाये मत् कर देते थे मुमिनों को यज्ञादि भी नहीं कराने देते थे। किसी की भी कोई धच्छी भीज देखने तो नै जाने थे। जिसकी धाई हुई हृदयों से दलित्त का बन बरा था। रावण में सहिष्णुता नहीं थी वह बड़ा माघी उपरबी था। यही तक कि

उमने घंटा की पूजा में अपने सर तक काट कर घंटा की प्रतिष्ठा कर दिये । इस पर गोस्वामी जी ने रावण के हेतु लिखा ।

कर सरोज निज करवि सतारी । पूज्येक समित्त बाल निपुसरी ।

इसके रावण की मति भावना का समीच विन खड़ा हो जाता है । हम सोचने लगते हैं कि वह रावण जो अपने हाथों से सर काट कर घंटा का बड़ा सफटा या बह सबल विठना या घोर बह रावण किन्तना बड़ा मक्त होना घोर सहाज ही हम रावण को एक बक्त मान लेने को प्रस्तुत हो जाते हैं । गोस्वामी जी की कला का यही अमररार है जहाँ एक घोर हम रावण को सीता हरण करते देस पूणा से मर जाते हैं नहीं दुसरी घोर उन की उपयुक्त मति भावना से मरा स्वल्प देस भडा से विनत हो जाते हैं ।

उसकी बीरता में भी कोई सन्देह नहीं । परिवार के सभी व्यक्तियों के मारे जाने के उपरान्त भी वह उरसाह से सड़ता है । रावण पण्डित या विद्वान या, उसने केशों पर माप्य किया था । उसने अपने दुष्टों का सर्वोपयोग किया ।

तुलसी या रावण हम बाघों के साथ मक्त भी था । वह सीता के हृदय के पूर्व अकेले में विचार कर रहा है । देखिये तोता हरण जैसे क्रय में भी उसकी कितनी मति भावना है ।

खर रूपन मोहि सम-बसवता । तिग्गहि को मारइ विनु पयवता ।

मुर रंजन मंजन महि मारा । जी मजवत सोगू पवतारा ॥

तो मैं जाइ बैस हठि करक । प्रसु सर प्राण तजै मज तरक ॥

होइहि मजनु न तामस देहा । मज क्रम बचन मंज हइ पहा ॥^१

घाये अब सीता हरण करवा है तो भी उसकी यह मति भावना अभिन्न नहीं होती । सीता तो उसे कष्ट बचन कहती है ।

कह सीता मुनु जठी मोसाई । बोसैहु बचन दुष् की नाई ।

कह सीता बरि धीरजु माड़ा । भाइ मयज प्रसु रहु कस टाड़ा ॥^२

किन्तु रावण सीता से इन कष्ट वाक्यों का उत्तर न दे इनके विपरीत रावण जानकी का हरण करने में पूर्व उन की दाया महाभावा मज्ज कर उनके चरणों की बगहना करता है ।

मन महु करन बंदि मुस माना ॥^३

रावण अब हरण करता है तब जानकी की वह भ्रातृ भाव से ही सब कर

१ मा० अरण्य ५० ४२६

२ मा० अयो० ५० ४६४

३ मा० अरण्य० ५ ४६४

बैठात देखा है। तुलसी ने इस स्थल पर अरा सा भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि रावण ने ग्य पर बैठाकरे समय जलका स्थल किया —

शोषवत तत्र रावण सीन्धुमि ग्य बैत्रह ॥^१

इसके अनन्तर रावण जानकी को लेकर अपने सदन में लटिका पक्षिघण्टोक बाटिका में टिकाता है। तुलसी का रावण भक्त नहीं परम भक्त है। पुष्प बाटिका में जाकर वह जानकी से कहता है।

एक बार बिलोक मम घोष ॥^२

कुछ लोग की धारणा है कि रावण जानकी की प्रेम हरि चाहता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं कह सक्त है। जानकी की मातृ हृष्टि से हृषा चाहता है। वह जानकी से कहता है कि यदि माप मातृ हृष्टि से हृषा कर दें तो फिर मैं देखूँगा कि राम बड़ा होकर भी मुझे कैसे बिजय कर सकेंगे। क्योंकि माप राक्ति हैं मापकी मक्ति की प्राप्ति के बाद में प्रजय हा जाऊँगा। हमारे यह बड़ा मुहूर्त का समय जबकि वह जानकी से ऐसी शायना करता है। प्रातः का है जो प्रेम का समय है ही नहीं यह तो देवी की पूजा का समय है। अतः इस समय का माप भी रावण का जानकी के प्रति पूज्य भावना को अभिव्यक्त करता है। इस पूज्य भावना के माप ही वह जानकी को मारने बनता है।

कटिहीं तत्र तिर कठिन कृपाना ॥^३

घोर मंहोदरी के राक होने से एक जाता है। इसमें भी भाव है। रावण परम विद्वान है। वह अपने अभिव्यक्त की बात को जानता है कि मेरी मृत्यु होगी। वह यह भी जानता है कि मेरी मृत्यु के बाद लंका में विभीषण का राज्य होगा। हो सक्ता है मेरी मृत्यु के बाद मेरी क्षियों पर भी राम के द्वारा धरणाचार हो। अतएव माप के मंहोदरी के कहने से सीता के मारने से निवृत्त होने में भी उसकी राजनीति है। वह यह कि जब मेरी मृत्यु के बाद मेरी क्षियों पर धरणाचार होगा तो जानकी की यह प्रवृत्त बहैया कि रावण की धरणाचार के रं से से बचाने वाली उसकी स्त्री मंहोदरी है। अतएव रावण की क्षियों पर धरणाचार न किया जावेगा। रावण की यह मक्ति भावना अतः एक सुत रूप से बनती है। अपने जीवन में उसने राम के लिये मर्वै ही वपनी धाव का प्रयोग किया।

सपु तापत कर बाग विलासा ॥^४

× × ×

१ मा० धरणा० पृ० ४२४

२ मा० सु० पृ० १४१

३ मा० सु० पृ० १४१

४ मा० सु० पृ० १७२

त्रे भट त्रिभु सुगुण मा ह्री । सुगु तावम मी सग सय गाह्री ॥^१

विष्णु मरती समय उसने बड़ी ही कतुरता मे मास पाने के पद्वय मे तपसी
गहीं राम कह कर पुकारा ।

मरती बैर धीर रब मारी । बह्री राम रन ह्री प्रचापी ॥^२

घात में राम ने उसके तेज को धपने मुह में लेकर इसे यम इच्छित मोक्ष
प्रदान की—

तामु तेज समान प्रभु ब्राह्मण । हरये वैरि संयु कतुराण ॥^३

बादरव में रावण का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो राम को भी रामत्व प्रदान
करने वाला था । रावण के ही कारण आज हम राम की महत्ता का गान करते हैं
धीर शाय ही में गोस्वामी जी ने इसे अपनी कथा के भाष्यम में ऐसा चित्रित किया है
जो अम्य में हमारी सहानुभूति का विषय बन जाता है । जहाँ भावि कवि ने रावण के
चित्रण में सीता हरण के समय यहाँ तक लिखा कि उसने सीता के नाम पढ़ कर
बड़ीना या धीर बनका मुक्त रावण के घंटे में था जहाँ गोस्वामी जी ने इसे फितने
महाचित बंग से सुम्न कसारमक उभिजा के द्वारा परिष्कृत किया है जिसे पढ़ कर
हय वाग्मीकि के रावण को एक वम विस्मृत कर बैठे है । धीर तुलसी के रावण की
जति भावना ही हमारे सामने रेष रख जाती है । यही गोस्वामी जी की कथा का
अमरकार तथा असबा प्रवाह तथा उदात्ता है ।

सामान्य चरित्र चित्रण

बादरव—

यह एक बुद्ध से घातृत चरित्र है । यह एक राष्ट्र के मन्त्रिण है । इनमें राम
के प्रति सपास जति धीर प्रेष है । इसके साथ ही साथ वे अपने बचन पासने में भी
बड़े हठ हैं । 'वाल्मीकीय रामायण' के बादरव कहते हैं ।

यह राषबा कीकेया भरवानेन मोहितः ।

अयोध्यायात्कर्मिणाव मकराजा निग्रहयमाह ॥^४

'अध्यात्म रामायण' के बादरव कहते हैं ।

स्त्रीबिर्ल ज्ञान्य हृदय मुग्धार्थं परिवर्तितम् ।

निघट्टम मां प्रहसतेर्षं राज्यं पाव न लईव ।

एवं वैकुण्ठं नैवमात्सुमेरुतुम्बन ॥^५

१ मा० सं० पु० १२४

२ मा० सं० पु० १६७

३ मा० सं० पु० १९७

४ वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—अर्ध—३४—श्लोक २६

५ अध्यात्म रामायण—अयोध्या कांड—अर्ध ३—श्लोक १६

धीर 'मानस' के दधरण भी कहते हैं -

मुनि स्नेह बस उठि नरमाहां ।

बैठारे रघुपति महि बाहो ॥

धीर करै धपराबु कोठ धीर पाब फल भोगु ।

प्रति बिचित्र मयगत गति को बच जाने जोषु ॥^१

ऋार के दोनों दधरणों का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर वैश्व पड़ेगा कि उनका सत्य प्रेम पुत्र प्रेम के सामने लज्जित हो गया है। किन्तु योत्सामी जी के दधरण में मन सज्जा सत्य प्रियता पिता पुत्र की मर्वाशा राम के प्रति बाहर धीर प्रेम कैकेयी से बिड़ जाने प्रादि के भाव कौमो मनोहर रीति से शिबसाय मय हैं जो उनकी कला में बमत्कार उत्पन्न करते हैं। यह सत्य धीर प्रेम शोगा की ही एक साथ रसा करने वाले थे। वे राम का बतबास देने में सत्य धीर प्रतिज्ञा का पासन हृदय पर परपर रखकर जमड़ते हुये स्नेह धीर बालस्य भाव को बबाकर करते हुए पाय जात हैं। इसके उपरान्त हम उन्हे स्नेह के निर्बाह में तत्पर धीर प्रेम की पराकाष्ठा न बर्म उत्कर्ष में उस समय पाते हैं जब कि न कहन हैं -

हा रघुनदन प्राग विरीठै । तुम्ह बिनु जियत बहुत बिन बाउ ॥^२

मन्व की रखा उन्होंने प्रिय पुत्र की बतबास देकर धीर स्नेह का रसा प्राण देठर की। यही उनके जीवन का महत्त्व धीर चारम की बिमपता है। रामचन्द्र जी भरत को समझात हुए इस बिषय को धीर भी स्पष्ट करते हैं -

राबड राम सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेत पैम पन लागी ॥^३

बिबिये किस प्रकार उन्हाम राम के मुख से उपपु त्त बिबेचन का सार बड़े कसात्मक ढंग में जीपाई के दा ही चरणों में बहसा बिया।

गमाभण की बचा के भीतर तो दधरण का ही महत्त्व सामन प्राता है। पर कपोपकयन रूप में जो कवि बलित बिब हैं उनमें बास्मीक धीर तुससीदाय दोनों में दधरण की अंतकृ ति का धीर भी कुछ प्राभाष दिया है। विरबामिब जी जब बालन राम लक्ष्मण को मांमने सये तब दधरण न बहुत प्राबा पीछा बिया। बहु सब कुछ यही तक धपना सरीर भी वे सकते थे पर राम को नही ब सकते थे। बूढावस्या में पाये हुए पुत्रों पर इतना स्नेह स्वाभाविक था। न मुनि न कहते हैं।

धीबेपन पायई मुठ चारी । बिब बचन नहि बहेहु बिचारी ॥^४

इम स्पन पर गोत्सामी जी न दधरण के मुह य मूडावस्या में प्राप्त पुत्र स्नेह का धीर स्वाभाविक धमिब्यति करा है। वह बड़ी ही सहाज धीर बसात्मक है।

१ मा धयो० पृ० ३०२

२ मा० धयो० पृ० ३३२

३ मा० धयो० पृ० ३३२

४ मा० बा० पृ० १४६

इस बृद्धावस्था में वे अपनी छोटी रानी के बचीमूत के जो सनकी इस पर्वत
हट स प्रकट होता है —

प्रमहित तीर प्रिया केर कीम्हा । केहि बुह छिर केहि जमु बह लोम्हा ॥

कहु केहि रंकहि करी नरेसु । कहु केहि नृपहि निकार्थी देसु ॥^१

प्राण, पुत्र परिव्रज प्रजा सबको कैंकयी के बच में कहना स्वयं राजा का
कैंकयी के बचीमूत होने की प्रमिष्यंजना करता है । कैंकयी के सामने जाने पर उनमें
प्रायः घोर विवेक विधाम ले लेते थे ।

इस स्वप्न पर हमारे महाकवि ने राजा को कैंकयी के बचीमूत दिलाकर बहु
विबाह की निर्बलता की घोर मानव का ध्यान प्राकपित कर मानव की सहाय मर्य
से पुत्र प्रवृत्ति का उद्घाटन कर अपनी सुख कक्षात्मक प्रसन्नदृष्टि की सूचना दी है ।

दशरथ के हृदय की इस दुर्बलता के क्षेत्र के भीतर प्रकथित साम्राज्य विधान
का बहु शोच भक्तकता है । जिसे मन्विष्य में महाराज राम ने दूर किया । कैंकयी ने एक
बार पति के साथ जाकर रथ के पहिये में उगली लपानी भी तो उसके बदन में जो
बरखान भी मान लिये थे । सोता भी १४ वर्ष तक राम के साथ बल भ्रमण करती रहीं
घोर इस बल भ्रमण को ही उन्होंने सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा था । राम के सामने
घण्ट म जब राम्य धर्म की बिकट समस्या सामने धापी है तो हम राम का ठीक दशरथ
के विपरीत करत हुए पाते हैं । दशरथ ने कैंकयी को प्रसन्न करने के हेतु कहा था कि
मैं तुम्हारी प्रसन्नता के हेतु किसी भी निरापराध राजा को बेश के बहार निकाल
दूँगा ।

कहु केहि रंकहि करं नरेसु ।^२

पर राम प्रजा को प्रसन्न करने के हेतु प्राणों से भी अधिक प्रियतमा को बिना
किसी अपराध के निकाल देते हैं । दशरथ अपनी रानी के कहने से एक राजा को
निकालने को प्रस्तुत हा मरे राम ने एक घोड़ी के कहने से अपनी प्राण बस्तमा को
बाहर निकाल दिया । राम के द्वारा सीता को निकाल देने पर भी इन बातों का स्नेह
भय नहीं होगा जब कि दशरथ कुपित हो अपनी रानी से यहाँ तक कह देते हैं ।

लोचन घोट बँटु मुहु घोर ।^३

दशरथ रानी के कहने से अपने बड़ा पुत्र को निर्बलित करते हैं, यह भी दण्ड
है । पर राम के राज्य में उन पादों की दृष्टि देने के बजाय उस की रक्षा की
जानी है ।

मिय निरंक ध्रुव धीच बनाए । लोच बिनाच बनाइ बसाए ॥^४

१ मा० अयो० पृ० २९८

२ मा० अयो० पृ० २९८

३ मा० अयो० पृ० २७६

४ मा० अयो० पृ० २९

दरारव बीर भी बहुत बढ़ गे । उनके चरित्र की अपूर्व विशेषताओं का विश्लेषण करना हुआ यह बोझ बड़ा सुन्दर बीर महत्त्वपूर्ण है —

रस हृत्कार रचि कर सबै दसौ दिशा रय जाइ ।

रस सिर भरि प्रकटै सुखन दरारव कहिये ताइ ॥

यह है गोस्वामी जी द्वारा चित्रित दरारव का चरित्र जिसमें राम ने जो क्रिया उसके ठीक विपरीत हम दरारव को करते बाते हैं। इन्हीं में गोस्वामी जी की कला पूर्ण रूप से समर्थ हुई है ।

कैकेयी—

घाबि काश्य की कैकेयी में हम रावस का प्रतिरूप पाते हैं। उसमें हम कौसिक्या के विपरीत पति से अधिक सम्मानित अपनी सीता के प्रति अनुहार अर्माह्वान स्वेच्छा परामाण महारजर्षी तथा सर्वत्र स्वभाव वाली मारो का चित्र पाते हैं ।

कैकेयी महाराज दरारव की पतिव्रता करी है। गोस्वामी जी ने इसका चरित्र बड़े ही सुबोध और कलापूर्ण ढंग से रखा है। वह विदुषी भी है और रण युद्धस भी है तभी तो वह अपने पति के साथ युद्ध में जाती है और रण के पहिले की अपेक्षा अपनी खैबरी बना लेती है। तभी महाराज दरारव उसे दो बार देने के निमित्त कहते हैं। वह राम के प्रति अनाथ स्नेह रखती थी। जिसका परिणय उसने मंत्ररा को इस प्रकार किया है ।

प्रात लें अघिक रामु प्रिय मोरें । तिनहूँ कें तिनक सोमु कस तारें ॥

राम तिसकु औं साकेहुँ काली । देउं भागु मज भावत घाली ॥^१

और जब मंत्ररा ने दक्षिक विशेष क्रिया तब वह उसे कण्ठकारती हुई कह जती ।

पुनि घल कबहुँ कहसि परकोये । तब भरि भीम बड़ाबउं लोपी ॥^२

मन्त्रा राम को इतना दक्षिक प्यार करते बासी। कैकेयी इतनी कठोर कैसे हा खती थी। फिर प्रश्न है कि राव को अंगण मंत्रने के लिए कैकेयी इतना हठ कैसे पकड़ गई। इसका कारण तो गोस्वामी जी ने कैकेयी को इस क्षेप में माने के पहल ही बता दिया कि दोनों ने गरस्वती को मेघ मंत्रण को मति पकटवा दी। जती का प्रयास कैकेयी पर भी पड़ा। कैकेयी का अन्तिम जीवन अनुताप व मन्त्राति से पूर्ण है ।

इस चरित्र में मारवायो जी की कला यहा है कि यदि वे इस चरित्र में गरस्वती को मा कर न सड़ा कर देंते ता कैकेयी के चरित्र की मोड़ किसी दूखते ही धार होती । गरस्वती का प्रकरण था जाने से प्रत्येक पाठक कैकेयी के कृत्यों को पढ़ कर यह बकर

१ मा० घपो० पृ० २६२—२६१

२ मा० घपो० पृ० २६२

कहेगा कि कैंची ने यह जो भी किया उसमें उसकी अपनी बुद्धि नहीं मयितु देवी सक्ति की प्रधानता थी। यही इस विश्व में शास्वामी जो की कमा है।

मंत्र—

शाबि काश्य मे कैंची को परम विरवाम पात्र दासी मंत्रा है। जो अपनी स्वामिनी की मति कुछ निर्यंक मी है। इसके प्रतिरिक्त वह अत्यन्त अतुर और स्वामीभक्त है। यह अपनी अटल स्वामि भक्ति के ही कारण कैंची के पुत्र को राज मुकुट न मिसते बेल विरोध की भावना जाग्रत कछी है।

तुमही अपनी कमा का ऐसा उत्कर्ष इस अरिज में बिलमाते है कि मंत्र का अरिज अमर हो जाता है।

मंत्रा को जाने क्या कौशल्या अण्डो नहीं लगती। कैंची अण्डो मन्ती है। शास्त्रीक भी ने उसे मालु कुस भी बाधो कड़कर कारण का पूरा संकेत कर दिया है। पर गोस्वामी जो ने इस कारण का संकेत न देकर उसकी प्रकृति को रिज्या की सामान्य प्रकृति क अन्तर्गत रखा है। जिसमें स्वामिभक्ता अण्डिक है। इसी में गोस्वामी जी भी कमा अमलकार प्रस्तुत करती है।

राम के अभियेक की तैयारी होते बेल वह कुछ जाती है और वह मुँह लटकाने कैंची के पाम खड़ी हो जाती है। कैंची का उसके अनुराग का पता चाहे रहा हो पर अभी तक उन अचक डीप का पता बिल्कुल भी नहीं है। वह मुँह लटकाने का कारण पूछती है और अण्डिक में 'माल बड़ तोर' कहती है। इस भाष्य में जी की बात धीरे-धीरे बाहर निकालन का मार्ग मंत्रा को दिख जाता है वह अपनी बड़ी मुहा कायम रखती हुई कहती है—

कत सिद्ध बह हमहि काज माई। माल करन केहि कर बस पाई ॥^१

जिसी का बल पाकर माब बकयी। एतना मजसब मही है कि मुके एक तुम्हारा हो बल ठहरा। मैं तुम्ह चाहती हूँ और तुम मुके चाहती हो। वो मैं देखती हूँ कि तुम्हारी यही कोई गिलनी नहीं। रानी पूछती है सब सोच कुयाब से तो हूँ इसकी उत्तर मी फिर वह इसी प्रणाली का अनुसरण करती हुई देती है।

रामहि सीहि बुसल केहि पाऊ। बहि जैसु जिगै सुवात्त ॥^२

राम क प्रति व व माब अत्यन्त करमे के निमित्त मंत्रा कैंची के अथवा उसकी सगली का रतरो है। जिसके गर्व को न सहना गिया की प्रकृति होती है। सगली के अर्थात् की बात मान पर वही तक ईर्ष्या अत्यन्त न होनी। इत ईर्षा के माब अरत के प्रति कुछ आश्चर्य भाव भी जमाना चाहिये।

१ मा अयो पु २६२

२ मा० अयो पु २६२

पुत्र विदेश न शोच तुम्हारे ।^१

इतना होने पर भी राजा के प्रति जब तक शोक उत्पन्न न होगा । तब तक कैंकेयी में अभावस्थान कठोरता का समावेश कहीं से होगा । इसके हेतु मंत्ररा ने यह शपथ है—

मीन बहुत प्रिय मेव तुम्हारे । लखतु न मूष कपट वतुम्हारे ॥^२

इतने पर भी जब कैंकेयी कुछ घटकारती है तब मंत्ररा पुनः कहती है—

एकहि बार भास सब पुत्रो । पुनि कष्ट कहव जोष करि भ्रुजो ॥

कोठ मूष होहि हमहि का हानी । बरि छाडि किम हाव कि रानी ॥^३

अब कैंकेयी को विश्वास हो रहा है । यह बसते ही वह राम के समिपक से होने वाली कैंकेयी की दुर्बला का विषय चीखती है ।

नामिनि महतु हूव कइ माखो ।^४

इस भावी हृदय की कल्पना से भसा कौन सी स्त्री उठी न होगी । वह कैंकेयी मंत्ररा के पुत्र समर्पन में घा गई । तब कैंकेयी को बरदान भागत के हेतु मंत्ररा हड़ कर देती है । मंत्ररा के चरित्र को देख कर अनुमान सपामा जा सकता है कि तुषसी ने मानव रहस्यों का कैसा सुन्दर उद्घाटन किया है ।

इसी में शास्त्राधीनी की कला का मुख्य रूप बलन का मिसता है । उन्होंने उपयुक्त कैंकेया से वा उसकी बार्ता कराई है वह बड़ा ही मर्म-स्पर्शी और भाव पूर्ण है । साथ ही मंत्ररा ऐसी उत्तमा कैंकेयी के सामने लाकर रलती है ।

पाव दिवस भा सबत समावू । तुम पाई सुधि मुहि सन भावू ॥^५

जिस पर कैंकेयी की अवह जा भी स्त्री होती उस विश्वास ही करमा हाता । ऐसा बार्तालाप का निर्माण करना और उसके माध्यम से मानव कृतियों का उद्घाटन जो तुलसी न करमा है उसी में उसकी कला है ।

केचर—

मामस में केचर का चरित्र बड़ा ही महत्वपूर्ण है । वह राम का प्रिय सखा है । राम को नाव से पार उतारन का हृदय और उद्यम बार्ता शास्त्राधीनी ने बड़ी ही मार्मिक र्व्यपारमक कलात्मक सक्तियों के द्वारा चित्रित की है । जिसे हम यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं । राम भाकर उससे नाव मांगत है । पर केचर नाव साने के बजाय कितना र्व्यनात्मक उत्तर देता है ।

१ मा० घयो० दो० १४ १७

२ मा० घयो० दो० १४ १२

३ मा० घयो० दो० १६ १७

४ मा० घयो० दो० १६ २०

५ मा० घयो० दो० १६-२०

मामी माय म केवट घाना । कहहि लोहार मर्म में जाना ॥^१

यह प्रश्न है कि मर्म क्या है जिसे केवट जानता है । मर्म यह है—

चरण कमल ग्वर्कहृ छत्र कहई । मानुष करनि मूरि कछु यहई ॥^२

यहाँ कितनी धर्मशास्त्र से काम लिया गया है जो कवि की शार्पक शब्द प्रयोग की कला के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है । यहाँ इस चरित्र चित्रण में कसात्मकता यह है कि केवट से धन्य मुनिवों की भाँति—

नमामी शमीघाम निर्वाण रूपम् ॥^३

नहीं कहनाते हैं प्रत्युत वह इस कवट से राम के हेतु लोहार' शब्द का प्रयोग करवाते हैं जो बड़ा ही कसात्मक है । मोस्वामी जी के समी पात्र अपनी अपनी भावा में बोझते हैं । यही तो उनके चित्रण की कला है । यही केवट बही लोहार शब्द का प्रयोग कर रहा है । वह वास्तव में उसकी शमीण संस्कृति के अनुकूल घोर कसात्मक है । घाम केवट बिनाश से बही बात कह रहा है कि सभी लोग कहते हैं कि घामके चरणों की धूलि मनुष्य बना देने वाली बड़ी है । घाम तो उसके धर्म का हार हो गई । वह कहता है कि घामके चरणों की रज मनुष्य बना देती है । यह तो कोई बुरी बात नहीं है । लेकिन दोष यह है कि वह जो बनी बनती है वह उड़ जाती है । घाम में मजबूर हैं जब तक घाम घपन चरणों की धूल न धूलचार्यसे तक तक में कमी भी घामको पार न उठाकरा ।

तरलज मुनि घरणी होइ जाई । बसत परइ मोरि नाव उड़ाई ॥^४

घामे उसकी निर्लौमता का भी रूप देखिये—

नाथ न उठराई बहा ॥^५

घाम में भी वह उठराई देने पर उठराई देने को प्रस्तुत नहीं होता—

छिरत बार मोहि जो कछु देवा । सा प्रसाद में मिर करि देवा ॥^६

इतम मोस्वामी जो मे का कवट की निर्लौमता का रूप बीजा है । वह बड़ा ही लज्जी है । घोर सहज ही पाठक का प्रभावित करने का कारण यह कसात्मक है ।

छिरत बार प्रभु जो कछु देवा ॥^७

ये केवट राम का पुन लीटते समय बुझाता है । राम पुन इसके पास जबल से घपन जाते हुए घाते हैं । राम की जल बसलता देखिये । केवट तो उन्हें एक बार घपने

१ मा० घयो० पृ० ७१६

२ मा० घयो० पृ० ३१६

३ मा० उत्तर ४ ७६६

४ मा० घयो० पृ० ३१६

५ मा० घयो० पृ० ३१६

६ मा० घयो० पृ० ३१६

७ मा० घयो० पृ० ३१६

स्वान पर बुझा रहा है। श्रीर राम राज्य पर बैठ कर उसे उसका अन्तर वाला माया प्रसाद—

सो प्रसाद मैं सिर बरि लेना ॥^१

देकर प्रथम म सर्वेष्ट घाने के सिद्धे कहते हैं जब कि वह धमी को बिबा कर देते हैं ।

बुनि प्रभु बोलि सियो निवाहा । बौन्हें सुवन बसन प्रसादा त
तुम प्रिय सखा भरत सम भ्राता । सबा यहें हु पुर यावत जाता ॥^२

यह है गोस्वामी जी की पूर्वा पर निर्वाह की कला । जो प्रसाद केवट ने मांगा था उसी का र कांड निकाने के बाद राम द्वारा उत्तर कांड में निर्वाह कथना गोस्वामी जी की प्रस्तुत पूर्वा पर निर्वाह की कलात्मकता का द्योतक है ।

उपसंहार—

तुलसी ने अपने काव्य में जिन पात्रों का चित्रण है उनमें प्राण कृक दिये हैं । क्या यज्ञात्त जी पाठक उन्हें पढ़ कर उनके अन्दर कवि इच्छित भावनाओं और विचारों की मूलक न देख सकें । तुलसी के पात्र बोलते हैं वे जाते जागते स्वल्प के रूप में हैं । काठ क टुकड़े कवि द्वारा चढ़ कर सड़ गयी कर विष वषे हैं । यही गोस्वामी जी की चित्रण कला है । सभी सामान्य पात्र राम के चरित्र विकास में योग देते हैं । चरित्र-चित्रण में कवि को विशेष रूप से सफलता मिली है ।

नारी के चरित्र चित्रण में गोस्वामी जी न तोच नयक की ही दृष्टि रखती हैं । वहाँ नारी का व्यक्तित्व भी उभरा है । सीता कोसिम्हा धारि की महिमा का मान गोस्वामी जी न राम के ही नाठ किया है । इन पात्रों की महिमा यूनवत राम की ही महिमा है ।

गोस्वामी जी ने अपने पात्रों को दो विधेय भरातलों पर सजा किया है । एक का सम्बन्ध राम की मानव सीताओं में है । दुबरे का राम के मानवैतन रूप में । यह जो उनकी सामान्यक प्रस्तुतता का द्योतक है । पत्रिकांध कथा में यह दोनों भरातत एक दुबरे की सपेटे हुए बनते हैं । यहाँ हम उन भरातत पर विचार करके जितका संबन्ध राम के मानवैतन रूप में है ।

'मानव के सभी पात्र राम जलत हैं । इसमें गोस्वामी जी की निज की —

नीय राम मय सब बस जाओ । करों प्रणाम ओरि कुम पावो ॥

बासो पक्ति की भावना नय कर रही है । वह भी तुलसी की कला का उदात्त कर हमारे सामने प्रस्तुत करती है । कहने का अभिप्राय यही है कि गोस्वामी जी की राम भक्ति उनके पात्रों में भी व्यक्त हो गई है । मानव का कोई भी पात्र राम को छोड़ कर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रखता । वह घटैर है तो राम

१ मा० धयी० पृ० ११८

२ मा० उत्तर पृ० ७०६

३ मा० बा० पृ० १

घातना । राम के परिवार स्वयंज्य और मातृवीय देव ऋषि भक्त विरोधी सभी ऽनृत या अप्रकृत रूप से उनके भक्त हैं । रावण और मेघनाद उनके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हैं । उन्होंने जीवित रहते राम की ब्रह्म सत्ता को स्वीकार नहीं किया । पर मरते समय दोनों ने किसी भी भाव से राम को स्मरण कर भुक्ति पाई है । राम रावण युद्ध में राक्षसों के युद्ध के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

राम राम कहि तनु तबहु पावहि पान् निवनि ।^१

तुमही क सब चरित्रो मे बितने ही चरित्र ऐसे हैं जो भक्त हो हैं उनकी प्रवृत्तारणा इस हेतु की गई है कि उनसे तुमही की कला का एक-विशेष उद्देश्य सिद्ध होता है । वे कथा प्रसंग को किसी भी प्रकार से धामे नहीं बढ़ाते । सुतोकाण्य धर्म आदि ऐसे ही चरित्र हैं । धर्म्य पात्रों को राम भक्ति उनका चरित्र तथा व्यक्तित्व का एक आवश्यक भाग है । राम के माथ उनके मातृवीय सम्बन्ध में जो चरित्र प्रकाशित होता है वह धर्म की बात है । धर्म्य पात्रों की धक्ति भावना भी महत्त्वपूर्ण है । तुमही ने सभी पात्रों में राम भक्ति का प्रवेश कर धर्मो कला में एक विशिष्टता उत्पन्न कर दी है ।

योस्वामी जो ने दार्शनिक जी के चरित्र चित्रण क दाया वा स्वीकार नहीं किया है । इसमें वे काव्य की भूमि पर धरम्य सतर्कता से चलते हैं । वे विद्यपतया उन उल्लेखों को त्याग नहीं देते जो उनके काव्य का मासित करने वाली हैं । जिनको विवेचना पीछे की जा चुकी है ।

तुमही ने चरित्रों का विकास धर्म बहिष्कृत सामूहिक धरातल पर किया है । चरित्र चित्रण की कला का उत्कर्ष यही है कि उसमें पात्रों का वास्तविक स्वभाव और कर्म का समर्थ परिचय प्राप्त हो सके । चरित्र के विकास क हेतु शास्त्रात्मा जी ने धर्म काव्य में सुन्दर सुन्दर सम्वादा की भी व्यवहारस्था की है । उनका द्वारा काव्य का पीसी को ही रोचक नहीं बनाया अपितु वे नाटकीयता की दृष्टि से अपने सुन्दर और सरस बन पड़े हैं कि पाठक उनकी चित्रण कला पर बिना मुग्ध हुये नहीं रह सकता । पात्रों की धार्मिक भावनाओं के साथ उन्होंने बाह्य रूप हीनत्व क साथ धर्म सौष्ठव का यही मर्वाङ्गपूर्ण चित्र अद्भुत किया है ।

चरित्र चित्रण के उत्कर्ष के हेतु यदि बटनामा में भी कुछ और कर काम का आवश्यकता हुई तो योस्वामी जी उनमें द्विके नहीं हैं । चित्रकृत की सत्ता में यदि जनक न बहुधाव वाले तो धर्मात्मा की सामान्य धटनामा के प्रति उनही ऐसी विरक्ति धार्य नहीं कही जा सकता । जनक की सत्ता में परमुराम का प्रवेश वा एको ही पटना है । जिनमें योस्वामी जी की कला देखी जा सकती है ।^२

मानस का शिरीय सापान ही चरित्र चित्रण को कहीटी है । इसमें तुमही मुख

१ मा धरम्य पु० १८७

२ मा वा० पु० १८

राम हैं। मानस के प्रमुख पात्र जिस रूप में हमारे हृदय में घपना भर बनाते हैं वह रूप अनुचित निरखता रहता है। केवल मंत्रण ही ऐसी है जो पुनः नियंत्रण कर हमारे सामने नहीं आती। कँटियों का निवारण भी प्रागे हो जाता है। उसही स्थिति में ही उसके सार स्वप्न धुल जाते हैं। इनके पात्र वृत्तियाँ के प्रतीक होकर प्राये हैं। अतएव इन विभिन्न बाधों में मोस्वामी जी की कला दशनीय है।

सभी मुख्य पात्रों का चरित्र मोस्वामी जी ने ग्रन्थ के उपक्रम में ही बखूब बत दिया है। यह भी उनका चरित्र चित्रण की कला है। धादि में ग्रन्थ तक ठीक नहीं बिधापता मिसती है। कहीं कियो भी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ने पाता। अन्त का ही उदाहरण नीचिमे।

प्रथमक प्रथम अरत के चरना । जासु मेम बत जाइ न बरना ॥^१

अरत के चरित्र की यह बिधापता मानस भर म मिसती है।

मोस्वामीजी के चरित्र चित्रण का एक यह भी कला है कि मानस में सभी पात्रों का चित्रण करने में उन्होंने सदुत्तरों का आरोप इस प्रकार किया है कि उससे काम्य में कहीं भी इतिमता नहीं आने पाई है और उनका पात्रा में वह आदर्श समिहित है जिसकी आवश्यकता किसी एक कास के लिये हा नहीं बनने सभी युगों सभी श्रेणों के हेतु हा सक्तो है। यह भी उनके चित्रण कला की ही महती महानता है।

आचार पंचों में कपालक के पात्र जिस अविचार और भावेय का परिचय देने हैं उन्हें समये रहित बत देने में हमारे कवि की उत्सम्भायी कला दृष्टिपोचर होती है।

अध्यात्मसमायण में लक्ष्मण^२ सोता^३ और अरत^४ राम का भय बिधसाते है कि यदि राम उन्हें अपने साथ बत नहीं ले आयेगा तो न अपने प्राणा का उत्कास अन्त कर देंगे। बिभ्रकूट में बत राम न कहन है कि के अन्त छोड़ कर प्राण त्याग द्ये यदि राम उन्हें अपने साथ रहने की आशा न द्ये और सदुपांत अपने इस निरकय की प्रति के हेतु बुर में दुखा बिधकर पुर्य को धार मुह कर बँड जाते हैं।^५ बिभ्रकूट से बिदा हाते समय फिर अरत कहने है कि यदि अन्धि समाप्त होने ही राम अन्त न मोटेंगे तो के अन्धि समाधि मे सँग।^६ दूरगता कर को भय बिधसाती है कि वह अपना प्राणान्त कर लया। यदि राम सदगण का अन्धिर पान उमे न प्राप्त होगा।^७

१ भा० बा० पृ० १८

२ अध्यात्म समायण—अधो० मग ४ अलाक १२ १३

३ अध्यात्म समायण—अधो० मग ४ अलाक १७ १८

४ अध्यात्म समायण—अधो० सर्व १ अलाक ३६

५ अध्यात्म समायण—अधो० मग ६ अलाक ६

— ६ अध्यात्म समायण—अधो० मग ६ अलाक ४०

७ अध्यात्म समायण—अधो० सर्व १ अलाक २५

'ब्रह्मसूक्त' में पात्रों में प्रायः यही धारण और अभिव्यक्ति पाया जाता है। गोस्वामी जी ने इसका पूर्ण निराकरण किया है जिसे हम पीछे स्पष्ट कर पायेंगे।

चरित्र विचल की कला के तीन पक्ष हैं।

१—धार्मिक व्यक्तित्व का धर्मन।

२—बौद्धिक गुणों की विवेचना।

३—हारिक गुणों का विचल।

जो भी महाकवि चरित्र विचल की इन तीनों बातों की पूर्ण कल्पना धर्म-व्यक्ति धरने पात्रों में कर सके वही चरित्र विचल की कला में पूर्ण सफल कहा जा सकता है। गोस्वामी जी ने इन तीनों ही पक्षों की बड़ी ही मनोहारी व्यंजना धरने पात्रों में प्रस्तुत की है। धार्मिक व्यक्तित्व के धर्मन का प्रथम अहाँ तक है वह उनके परशुराम के बीर बेश के सजीव धर्मन से भली भाँति प्रकट हो जाता है कि वह इन पक्ष के धर्मन गायक थे। जैसे —

बीर मरीर सुति भस भ्रात्रा । भाम विद्यास त्रिपुत्र विरात्रा ॥

बीस जटा सतिवरनु मुहावा । रिम बस कसुक धरन होइ धावा ॥

बृकुटी कुटिल ममन रिम राते । सहजहुँ चितवत मगहुँ रिधाते ॥'

इन प्रकरणों को पढ़ते ही पाठक के समक्ष परशुराम के धार्मिक व्यक्तित्व बीर वैप का एक रूप सा लड़ा हो जाता है। ऐसी ही संवत्स के चरित्र विचल में गोस्वामी जी ने जो बौद्धिक चतुराई की विराट धर्मव्यक्ति की है वह पर्याप्त है इसके हेतु कि वह बौद्धिक गुण चतुराई के धर्मन में भी पटु थे। अब रहा तीसरा पक्ष हारिक गुण बीरता। इनको व्यंजना गोस्वामी जी ने राम के चरित्र में भली भाँति की है।

अतः इनके विवेचन के उपरांत स्पष्ट रूप में यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी की पात्रों की विचल कला अद्वितीय थी। जिसकी तुलना में अन्य महा-कवि नहीं जा सकते। यह निस्सन्देह है।

नवीं अध्याय



छन्द योजना और संघात कला

पोस्वामी जी की छन्द योजना—

छन्द योजना काव्य कला का एक महत्वपूर्ण स्वकप है। कविता कानिनी के कमनीय काँठ अथवा आबिभूत सुरम्य मधोत मे मानव हृदय तन्वी का निनादिन कर देने वाले कवि सम्भाट पोस्वामी जी ने यह भली भाँति अनुमान लगा लिया था कि उनके पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रबन्ध निर्माण के लिये अक्षरी में जो बोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है वह सर्वथा उपयुक्त है। उनका यह दृढ़ विरवान था कि बोहा और चौपाई के लिये अक्षरी में बढ़कर इमी भाषा और प्रबन्ध कला की तरंगिनी प्रवाहित करने के हेतु बोहा और चौपाई से बढ़कर ब्रह्मण्ड छन्द न उपयुक्त होगा।

यद्यपि पोस्वामी जी ने बोहा चौपाई को प्रबन्ध रचना का मेरुदण्ड माना तथापि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि प्रबन्ध का कसेबर इन्हीं दो छन्दों में पूर्ण तथा सुमण्डित और आकर्षक होना। बस्तुतः उन्होंने प्रबन्ध सौष्ठव के लिये बोहा चौपाई में परिवर्तित कुछ चुने हुए अल्प प्रकार के छन्दों का उचित प्रयोग भी किया है। उनका मानस ऐसे प्रयोगों के कारण केसब की रामचन्द्रिका की भाँति अजायब घर नहीं हो गया है। प्रस्तुत उनमें उनके प्रबन्ध की एक कपडा और आदर्श छन्द प्रयोग की प्रतिष्ठा होती है।

‘मानस’ के अत्येक सोरान के अन्तर्गत संस्कृत के कुछ स्तोत्र विविध वृत्तों में प्रयुक्त हुए हैं। उनको छोड़ देव अक्षरी भाषा में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। अल्प्य काँठ में अनेक छन्दों का समावेश है। उनके अर्थों में सभी प्रवासित अक्षरा का प्रयोग प्रसंग पर अक्षर अ अनुकूल हुआ है। मानस में प्रयुक्त अक्षरा पर विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि मानस में ११ अक्षर और २ मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा रचना में मात्रिक अक्षर और मयतापरम्य के सब रूपों में बर्त वृत्तों का प्रयोग हुआ है। इन बर्त वृत्तों का प्रयोग केवल स्त्रीयों में ही हुआ है। अतः इन पर विचार करने का प्रसन्न उत्तर नहीं होता। मानस मूलतः मात्रिक छन्दों में लिखा गया है। इमलिये पोस्वामी जी की छन्द योजना पर विचार करते समय उनके मात्रिक छन्दों का ही विशेषण विस्तार में किया जायगा।

गर्भवा और कवियों की पद्धति मुक्तक के लिये तो ठीक है किन्तु कथा के लिये उनमें अनेकान प्रवाह उत्पन्न नहीं होता। यही कारण है कि पोस्वामी जी ने

भी मानस के हेतु बोझा बोपाई का ही माभय लिया है। किन्तु मानस की एक महान् विशेषता यह है कि उसमें बोझे और बोपाई का प्रयोग एक निश्चित योजना के आधार पर हुआ है। प्रायः सर्वत्र न घरवासी पर एक बोझे का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक काँड के अन्त में एक हरिपीठिका का अन्ध देकर तब बोझा या सोरठा देकर समाप्त किया गया है। अयोध्या काँड में तो इस नियम का पालन और भी कड़ाई से हुआ है। यहाँ प्रत्येक २३ बोझे के बाद एक हरिपीठिका अन्ध किया गया है। बोझों के परभाव सोरठों की ही संख्या अधिक है। जिसका अन्ध का प्रयोग संका काँड में एक स्वाग पर स्तोत्र के रूप में हुआ है। चिमरी और बोपामा का प्रयोग भी स्तोत्र के रूप में बाक काँड में हुआ है। तोमर का प्रयोग अरजुपल्ल एवं राय रामल्ल कुछ में हुआ है। माप ही लका काँड में अन्ध कुछ स्तुति में भी हुआ है। अन्धों का विशेषण करने में प्रतीत होता है कि जहाँ बसंतों को पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहाँ हरिपीठिका अन्ध का प्रयोग किया गया है। हरिपीठिका अन्ध के बाद भी सर्वत्र सोरठा आया है। इसके अन्वय जहाँ कहीं कोई विदेष चमत्कार की बात कहनी है वहाँ पर सोरठे का प्रयोग हुआ है।

मंकर चाप जहाज रघुपति सागर बाहुबल ।

बुद्ध सो सकल समाज बड़ा जो प्रथमहि मोह बस ।^१

युद्ध में प्रथम गति होती है। इसीप्रकार युद्धों में तोमर जैसे वैयथीय अन्ध का प्रयोग हुआ है। बर्णन सब के सब बोझे और बोपाइयों में हैं। प्रबुद्ध अन्धों के संख्या क्रम से देखा जाये तो पहला स्वाग बोपाई का दूसरा बोझे का तीसरा मोरठे का और बोपा हरिपीठिका अन्ध का है।

यह प्रबलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रक्षित बरबी की एक पंक्ति पर मुग्ध होकर इस ललित अन्ध में अपने बरबी नाविका नेत्र की रचना की। बरबी अथवा का अत्यन्त मोहक अन्ध है। भाव और स्वर के असीम विस्तार का इस अन्ध से अन्ध में पुरा अवकाश है। पोस्वामी जी ने भी आपने बरबी में रचना करने का कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुमसी ने बरबा अन्ध में बरबी रामायण की रचना की। यह अन्ध अस्तिम दुष्ट राघु का क्रम भाव और विस्तार की असीमता की लक्ष्मणें हुए हैं और मध्य के लघुतावाची अथवा के अन्ध सोच पूर्ण लालित्य के लक्ष्मणें बन्ध है। इसमें १२ ७ १२ ७ के विद्यमान से चार्ड बरणी में १२ नाचारों हूयी हैं। भावा की इष्टि से बरबियों ने इस अन्ध में मण्डल व्यापकता पाई है। अथवा भाषा का इस अन्ध से बड़ा और बल प्राप्त हुआ है। इस अन्ध को कुछ अन्धों ने अथ बोझियों तथा कुरंग भी कहा है। वास्तव में बरबी और मोहिना में बहुत कम अन्ध है। मोहिनी में केवल अणु के स्थान में अन्ध में मण्डल होता है। अन्धों के प्रयोग में दीर्घान्त करने की कृति बहुधा बरबी अन्ध में पाई जाती है। इससे

भा बरई में अखिल माधुय का जाता है और एल् में सरसता और प्रवाह का भा जाता है। गर्मों के दोषान्न हान में उन्के नाम में देर तक सुखित होने का अवकाश प्राप्त होता है जिसमें उमका प्रवाह भी एक विशेष प्रकार का होता है। बरई रामा यण में कुछ मिलाकर रह एल् है। जो माठ काहा में विभक्त है। बाक और अयोध्या नाइ के एल् रूप अखिल और माव विभक्त की सुमता की मित रूप है। यह बरई एल् मुक्तक रूप में है पर अन्तमक मोखर्य की बागीची उन्क बाव्य प्रेमो जनों का कठिहार बनाये है। प्रत्येक बरई यण मुक्त के समान सामान्य है और पाठक की भी यही इच्छा होती है कि वह ऐस हो एल् का सामान्य प्राप्त करे। इसी इच्छा का विरवास यह परिणाम जान पड़ता है कि तुलसी का यह एल् बहुत रूप में ग्हा होया। प्राप्त एल् उन्की की उन्की वर्ण माहा के बितरे कर है जो इस रूप में संकलित ग्रा है।

पार्वती मंगल में भी मंगल और हरिणीतिका एन्की का प्रयोग किया गया है।

कवितावली व अनेक सर्वेयों अखिल धारि एल् है जिसमें भी माव जाने एल् सामान्य योगावली और विमलपत्रिका धारि एन्की में पाये जाते है। इसी प्रकार कवितावली में विरचित सरस मयूर और धोखरुण एन्कावली दर्शनीय है। शौराड्यों का संकेत करने हुए तुलसी ने लिखा है।

मत्पंच चौपाई मतोह्य जानि क नर चित्त परे।^१

एल् के नियमानुसार मात्रा पण बण अदवा गुरु लघु की योजना मात्र करके एल् विधान कर मना कोई विषय महत्व की बात नहीं है। ऐसा तो टीति एन्की का सामान्य ज्ञाता भी कर सकता है। महान् कलाकार के एल् विधान में केवल एल् विधान के नियमों की पाबन्दी हो नहीं ग्हनी अपितु इनमें प्रमंगानुसृत लय और ताल भी उपस्थित रहते हैं जैसे काव्य का ताल में निर्भर क नाद में प्राकृतिक संमोठ स्वयमेव बरामाचर होता है जैसे ही उन्क कलाकार विरचित एल् में भावानुसृत नैसर्गिक शक्ति होती है। शोषामो जो ऐस ही उदात्त एल् निर्माता थे। मानस में उन्होंने जिन विविध प्रकार के एल्ओं पर पूरा अधिकार रखत हुए उनका बराम किया है वह अमृता ग्रा है। कवितावली बाहुक में कई प्रकार क सर्वेय बनासरी एल्मय तथा अमृता धारि का प्रयोग हुआ है। बालों मंगलों की रचनाएँ मात्रिक हरिणीतिका में है। बरई नाम का एल् उसके नाम से ही स्वतः है। इसी प्रकार कोहावली में शौरा भी है। रामाका प्रथम तो पूर्णतया कोहा एल् में है। महारू की रचना शोहर एल् में हुई है। शोहर एल् हमारे प्राप्त का एक अत्यन्त सरल एल् है। यह तुलसी-त्वति के अक्षर पर गाया जाता है। अिनी इस की माहाया में अन्की इच्छा के अनुसृत कमी और अधिकता कर यती है। इस एल् का सबसे बडा हुए प्रवाह है।

भी मास के हेतु वाहा औपाई का हो माध्य सिमा है। किन्तु मास की एक महान् विशेषता यह है कि उसमें बोहे घोर औपाई का प्रयोग एक निश्चित योजना के आधार पर हुआ है। प्रायः सर्वत्र ८ घरभासी पर एक बोहे का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक कांड के प्रत्येक में एक हरिगीतिका का छन्द लेकर तब बोहा या सोरठ्य लेकर समाप्त किया गया है। अथवा कांड में तो इस नियम का पालन घोर भी कड़ाई से हुआ है। यहाँ प्रत्येक २२ बोहे के बाद एक हरिगीतिका छन्द रिया गया है। बोहों के पश्चात् सोरठों की ही संख्या अधिक है। इस्तिना छन्द का प्रयोग संका कांड में एक स्थान पर स्तोत्र के रूप में हुआ है। त्रिभंगी घोर औपाया का प्रयोग भी स्तोत्र के रूप में बास कांड में हुआ है। तोमर का प्रयोग सरहूपस एर्ष राम रावण युद्ध में हुआ है। मास ही सका कांड में इन्द्र वृत्त स्तुति में भी हुआ है। छन्दों का विश्लेषण करने में प्रतीत होता है कि जहाँ बर्णनों को पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहाँ हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है। हरिगीतिका छन्द के बाद भी सर्वत्र सोरठ्य आया है। इसके अन्वय जहाँ कहीं कोई विशेष चमत्कार की बात कहनी है वही पर सोरठे का प्रयोग हुआ है।

मंजर भाष बहान रघुपति सावर बाहुवस ।

बुद्ध भी सकल समाज बड़ा जो प्रथमहि मोह बस ।^१

बुद्ध में प्रबंध बति होती है। इसीलिये बुद्धों में तोमर जैसे वेगशील छन्द का प्रयोग हुआ है। बर्णन सब के सब बोहे घोर औपाइयों में हैं। प्रयुक्त छन्दों के संख्या क्रम से देखा जाये तो पहला स्थान औपाई का दूसरा बोहे का तीसरा सोरठे का घोर औपा हरिगीतिका छन्द का है।

यह प्रबलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रचित बरबई की एक पंक्ति पर मुख होकर इस मन्त्रित छन्द में अपने बरने नायिका श्रेय की रचना की। बरबई अथवा का अत्यन्त मोहक छन्द है। मास घोर स्वर के असीम विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अन्वय है। मोस्वामी जी से भी आपने बरबई में रचना करने का कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुलसी ने वरबा छन्द में बरबई रामायण की रचना की। यह छन्द अन्तिम युद्ध सङ्ग का क्रम भाव घोर विस्तार की असीमता को समेटे हुए है घोर मध्य के मधुताभासी अथवा के शब्द लोच पूर्ण लाभित्य के समीप रूप है। इसमें १२ ७ १२ ७ के विराम से चारों बरबई में १८ मात्राएँ होती हैं। भावों की दृष्टि से कवियों ने इस छन्द में अनेक व्यापकता पाई है। अथवा भाषा को इस छन्द से बड़ा औरत प्राप्त हुआ है। इस छन्द को कुछ अर्थों में प्रबुद्ध मोहिनी तथा कुरूप भी कहा है। वास्तव में बरबई घोर नाहिनी में बहुत कम अन्तर है। मोहिनी में केवल अथवा न स्थान में अन्त में मयल होता है। अर्थों के प्रयोग में शीर्षान्त करने की वृत्ति बहुधा बरबई छन्द में पाई जाती है। इससे

भी बरबै में प्रविष्ट माधुम भा जाता है और छन्द में सरलता और प्रवाह भी पा जाता है। बरबै के बोधोन्मत्त होने से उसे काम में देर तक तुलित होने का प्रयत्न प्राप्त होता है जिससे उमका प्रवाह भी एक विशेष प्रकार का होता है। बरबै रामा वण में कुस मिसाकर १६ छन्द हैं। जो मात काव्यों में विभक्त हैं। बाल और प्रयोप्या कांड के छन्द रूप अरिष और माघ चित्रण की मूढमता को लिये हुए हैं। यह बरबै छन्द मुक्तक रूप में है पर कलात्मक सीख्य की बारीकी उग्र काव्य प्रेमी जनों का कंठहार बनाये हैं। प्रत्येक बरबै मणि मुक्ता के समान प्रामाण्य है और पाठक की नी मही इच्छा होती है कि वह ऐसे ही छन्दों का प्रागल्भ्य प्राप्त करे। इसी इच्छा का विश्वास यह परिणाम जाम पड़ता है कि तुलसी का यह ग्रन्थ बृहत् रूप में रहा होगा। प्राप्त छन्द उमो की उमो वर्ग मात्रा-के द्विकरे रूप हैं जो इस रूप में संकलित हुए हैं।

पार्वती मंत्र में भी मन्त्र और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया गया है।

कविताबली व अनेक मन्त्रों का विल आदि ऐसे हैं जिनके ये मात्र नामे छन्द मानम मोठाबसी और विलपत्रिका आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार कविताबली में विरचित सरल मधुर और भोजपूर्ण छन्दाबली दर्शनीय है। श्रीपाद्यों का संकेत करते हुए तुलसी ने लिखा है।

मत्पंच श्रीपाई मनोहर कामि के नर विठ धरे ।^१

छन्द के नियमानुसार माभा गण बर्ण घषबा गुव सधु की योजना मात्र करके छन्द विधान कर लेना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। ऐसा तो रीति ग्रन्थों का सामान्य प्राप्ता भी कर सकता है। महान् कलाकार के छन्द विधान में केवल छन्द विधान के नियमों को पाबन्दी ही नहीं रहती अपितु इनमें प्रसमानुकूल सय और तात्त्व नी उपस्थित रहते हैं जैसे कोयल की तान में निर्भर क नाद में प्राकृतिक सरोत स्वयमेव कणमोचर होता है जैसे श्री उष्ण कलाकार विरचित छन्दा में भावानुकूल वैश्विक प्वनि होती है। पोखामी जी ऐसे ही उदात्त छन्द निर्माता थे। मानस में उगहोने जिन विविध प्रकार के छन्दों पर पूर्ण अधिकार रखते हुए उनका वर्णन किया है वह धनुठा ही है। कविताबली बाहुक में कई प्रकार के सर्वेय घनाक्षरी स्यप्य तथा झूमना आदि का प्रयोग हुआ है। दोनों मंत्रों की रचनाएँ माथिक हरिपीतिका में हैं। बरबै नाम का छन्द उसके नाम से ही स्पष्ट है। इसी प्रकार बोहाबसी में सोरठा भी है। रामाका प्रस्तुत तो पूर्णतया बोहा छन्द में है। नहलू की रचना सोहर छन्द में हुई है। सोहर छन्द हमारे प्रायः का एक अत्यन्त सरल छन्द है। यह पुत्री लपित के घबराव पर गाया जाता है। श्रियाँ इस की मात्राओं में अपनी इच्छा के अनुसार कमी और अधिकता कर लेती है। इस छन्द का सबसे बड़ा गुण प्रवाह है।

बड़े-बड़े उत्तम छन्दों की बहुसता होने से इसमें अस्वामाधिकता या बाती है। इसी दृष्टि से गोस्वामी जी ने इसमें कठिन छन्दों का प्रयोग नहीं किया है। साधारण बोल चाल के छन्दों का ही आधिपत्य है। मीठावली कृष्ण मीठावली एवं बिनवपत्रिका के छन्द विद्याल के विषय में कुछ कहना ही नहीं इन पदां का वास्तविक मर्म विविध राम रायणियों का विशेष सहृदय ही पा सकता है। पर इन तीनों कृतियों के छन्दों द्वारा काव्य और संकीर्ण का समन्वय तथा अल्पसंख्यक समन्वये में किसी विशेष प्रवास की अपेक्षा नहीं। गोस्वामी जी ने मीठावली^१ में तथा बिनवपत्रिका में ही विभिन्न प्रकार के छन्दों का समावेश कर एक ठीसरे प्रकार के नये छन्द का निर्माण करने की इच्छा दिखाई। मीठावली में बोहा के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो मात्राएँ बटाकर ४ नये हय के छन्द निर्मित किये गये हैं।^२

प्रबन्ध द्वार पर सर्व प्रथम जिन छन्दों के वर्णन होते हैं वे हैं संस्कृत के श्लोक। प्रत्येक कोष्ठ का मंथलाचरण संस्कृत छन्दों से प्रारम्भ होता है। मानो गोस्वामी जी प्रबन्ध कला के छन्द प्रवाह का उत्पन्न यहीं से सूचित कर रहे हैं। उत्पन्न स्वान के इन छन्दों का बेबजाणी में हूँने का उद्देश्य पूर्ण हो संभवतः ऐसा इसी धर्मिप्राय से किया गया है। इससे कवि सम्राट ने संस्कृत के प्रति अपना आस्था भी प्रकट की है। प्रबन्ध की समाप्ति पर संस्कृत के दो छन्द लिखकर मानों प्रणय की इति भी संस्कृत में ही की गई है। कवि कुल कमल विद्याकर महाकाव्य के सर्प के प्रारम्भ में छन्द परिवर्तन का निवम भी पूरा करते गये हैं। हमारे कवि ने बिचार कर ही अनुष्टुप का प्रयोग अन्वारम्भ में किया है। मानस में प्रयुक्त सभी पादू लक्ष्मीरिद्ध छन्दों के भीतर भौकने से पता चलता है कि इनमें राम और शिव के चौथे तेज काव्य की कीर्ति दीप्त दीपित है। मानस में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

१—बालिक छन्द

२—माषिक छन्द

जब इन दोनों प्रकार के छन्दों का भी गोस्वामी जी की कृतियों में उदाहरण देकर विस्तारपूर्वक किया जा रहा है।

बालिक छन्द—

मानस में कुल मिलाकर ११ बरुं बरुं का प्रयोग हुआ है। बिनकी विवेचना निम्नलिखित है।

(१) अनुष्टुप—इस छन्द में चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में ८ अक्षरों का होना आवश्यक है। प्रथम और तृतीय पर के अक्षर अक्षर गुरु होते हैं। चारों चरणों में पंचम बरुं का सप्तु और बट का गुरु होना अनिवार्य है। द्वितीय और चतुर्थ चरणों का अष्टम बरुं लघु होना चाहिये।^३ जैसे—

१ मीठावली प्रबन्ध पर नीति १७।१-८ और उत्तर ११।१।१

२ अनुष्टुप माझी—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २०

बणुत्तामर्षसंभाना श्वातो दम्बसामपि ।

संबसानो च कर्तारो बन्धे बाणोविनायको ॥^१

(२) बाणु लक्ष्मीवित्त—इन कृत के प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होने हैं

अर्थात् एक अक्षर एक अक्षर एक अक्षर एक अक्षर दो अक्षर और एक अक्षर का होना आवश्यक है । इसका क्रम ११११११११११ ११११११११ है । पहली पंक्ति १२ अक्षरों पर और दूसरी १६ अक्षरों पर होती है ।^२ उदाहरण—

यन्मायाबधनि विरवमलिनं ब्रह्माविदेवासुरा ।

यन्मन्त्रावबुधैश्च यानि मन्त्रा रश्मो यथाहेम ॥

यत्पादन्तबन्धेकमेवऽहि भवान्मोर्धेस्ततीर्षावता ।

बन्धुऽहं तमरीश्वरस्यपर रामास्वमीर्यं हृग्म् ॥^३

(३) वल्लत तिलका—इसके प्रत्येक चरण में एक अक्षर एक अक्षर दो अक्षर और अक्षरों में दो अक्षर होने हैं इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा । ११११११ ११११११११११११—

नाम्ना सृष्ट्वा रघुपते हृदयेऽस्मन्निवे ।

मत्सं बधामि च भवान्विमान्तरात्ता ॥

भक्तिं प्रकथय रघुनन्द निर्घरां मे ।

वामादिदोषरहितं कुरु मातसं च ॥^४

(४) इन्द्रबन्धु—इन छन्द में ४ चरण होने हैं । प्रत्येक चरण के ३ १ ७ और १६ अक्षरों का ह्रस्व होना आवश्यक है । दो अक्षर एक अक्षर और दो अक्षर प्रत्येक चरण में आने में यह छन्द निर्दिष्ट होता है । जिसका स्वरूप ऐसा होगा ।^५ ११११११११११११—

नीलाम्बुजस्यामलकोमलाय सीताश्वारीपितृबाधभाषम् ।

पारुणी महासायकबाधबाधं नमामि रामं रघुवर्मनाबद्ध ॥^६

यहाँ पर कवि ने तीन चरण इन्द्रबन्धु क तिलकर अनुर्ध चरण इन्द्रबन्धु के रख दिये हैं । इन बद्ध अन्व इन्द्रबन्धु के अक्षरों में दो अक्षर और हंसो मभिधित हो गया है ।

(१) मालिनी—इस छन्द के चार चरण १३ १२ अक्षरों के होते हैं । अर्थात् प्रत्येक चरण के दो अक्षर एक अक्षर और दो अक्षर आते हैं इसके चरणों में

१ मा० भा० पृ० ३

२ रघुनन्दन छात्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० १६

३ मा० भा० पृ० ३

४ मा० भु० पृ० २१६

५ रघुनन्दन पामनी—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० १६

६ मा० अयो० पृ० २२३

प्रत्येक का स्वरूप ॥ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ इस प्रकार का होता है।^१ इसका उदाहरण—

अतुमितवसवाम हेमदंतामवेर्ह ।
 वनुजवनकृष्णानु ज्ञानिनामङ्गण्यम् ॥
 सकलपुष्पनिधानं वातपश्यामधीर्षं ।
 रघुपतिप्रियवक्तु वातवार्तं नमामि ॥^२

(१) वज्रस्व—इस वृत्त के प्रत्येक चरण में १२ १२ अक्षर होते हैं अर्थात् एक अणु एक अणु एक अणु और एक अणु होता है प्रत्येक चरण का स्वरूप ऐसा होगा।^३ ॥१ ॥१ ॥१ ॥१ ॥१ ॥ उदाहरण—

प्रसप्ततां वा न कथाधिपेकस्तथा न मन्मे वनवासुः क्वत् ।
 मुञ्जान्मुञ्ज धी रघुनन्दनस्य मे सवास्तु मा र्गर्जुनवलप्रवा ॥^४

(७) रघोद्विता—इस स्वर में प्रत्येक चारों चरणों में ११ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक अणु एक अणु और पुनः एक अणु अंत में एक अणु और एक अणु का होता निरिचत है। जिसका स्वरूप ऐसा होता है।^५ ॥१ ॥१ ॥१ ॥ उदाहरण—

कुन्दइमुवरभीरुमुञ्ज^६ धम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिबम् ।
 कास्तुवकसकजसोचनं नीमि सवरमतर्गमोचनम् ॥^७

(८) नगस्वकविनी—इस स्वर में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में एक अणु एक अणु एक अणु तथा एक अणु होता है। अर्थात् प्रत्येक चरण में द्वितीय चतुर्थ और षष्ठ तथा अष्टम अणु का अणु होता आवश्यक है। जिसका ऐसा रूप होगा। ॥१ ॥१ ॥१ ॥ जिसको प्रमाणिक भी कहा है।^८ उदाहरण—

नमामि भक्त वरसत्तं । कृपायु धीस कोमलं ।
 मजामि ते पदाङ्गुलं । धकामितां स्ववामर्हं ॥^९

(९) जगद्वरा—इस वर्ण के प्रत्येक चरण में २१ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक अणु एक अणु एक अणु एक अणु और तीन अणु का होता आवश्यक है। इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा।^{१०} ॥१ ॥१ ॥१ ॥ उदाहरण—

- १ रघुनन्द शास्त्री—हिन्दी छन्द शास्त्र पृ० २१
- २ मा० सु० पृ० ५३१
- ३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० १२
- ४ मा० प्रयो० पृ० २२३
- ५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २३
- ६ मा० व पृ० ६१७
- ७ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २३
- ८ मा० धरम्य पृ० ४६८
- ९ रघुनन्दन शास्त्री हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २३

उसमें भीरसता नहीं माने पायी । मंगसाचर्यु क संस्कृत छन्दों के पदबाध भी विधाम के लिये एक बोहा या सारठा धामा है । उदन्तर चौपाइयों की धारा बहती है और बाध धर्मात्मियों की सड़ी बन जाने पर एक बोहा या सारठा भा बाधा है यद्यपि विधेय कम से इसी कम का निर्वाह हुआ है फिर भी कुछ ऐसे स्वस भी हैं जहाँ ७ २, १० या इनसे भी अधिक धर्मात्मियों के बाध विधाम धामा है । छतर कीट में तो प्रायः ११ धर्मात्मियों के उपरान्त दो या तीन बड़े धर्मात्मा दो बोहे का विधाम पड़ता है । बरु के सप्त प्रथम के प्रथम में लयमय ४ धर्मात्मियों के बाध बोहा धामा है । बिन प्रसंगों में चौपाइयों की अधिक संख्या के उपरान्त विधाम धामा है उन्हें विचारपूर्वक देखने से पता चलता है कि यदि इतना अधिक विस्तार न करके बीच में ही विधाम रक्त दिया जाता तो बर्तन में अपुष्टता या चाटी और बहु कटकन बासा हो जाता । ऐसी ही अपुष्टता के हेतु कहीं-कहीं चौपाइयों में कबा प्रवाह को यदि तब तक बर्दाई ही गई जब तक वह पूर्णता को नहीं पहुँची । प्रवाह के निमग्न की पूर्णता के हेतु बाध धर्मात्मियों के बाध विधाम उपस्थित करने का मामान्य नियम कई प्रसंगों में छोड़ दिया गया है ।

मोस्वामी जो ने अपनी चौपाइया के द्वारा यह प्रमासित कर दिया है कि भ्रम प्रतिघम की बितनी प्रयत्न और सजीव मूर्ति इनमें दृष्टिपोचर हो सकती है सतनी और किसी भी धर्म्य छन्द में नहीं । प्रबन्ध छन्दयंत कोई भी ऐसी वस्तु या ध्यापार नहीं है जो चौपाइयों की माया में संश्रियत न हो । यह दूसरी बात है कि इस माया को बिसय मनोरञ्जक बनाने के हेतु धर्म्य छन्द भी विरोधे गये हों । एक ही छन्द चौपाई में धृति नाद और धैरी की बिसयताभा के द्वारा कवि ने माना प्रकार के बाठाबरसों का सकल संकल किया है । धनेकानक चौपाइयों की मायाओं में प्रयुक्त स्वरी और व्यंजनों की नाद धृति में ऐसा उत्तम धारोह या धबरोह है कि वे धायकों के लिये भी उपकारक सिद्ध होती हैं । फलतः धनेक बाधा के साथ उन्हें पाठे भी है । इनका संदीतक स्वीकार करने में हमें कोई भी धापशि नहीं होनी चाहिये । क्योंकि प्रबैक गल्पों पर मोस्वामी की ने धपने का रामचरित का धायक मो कहा है ।

हरियौतिका का प्रवाग भी प्रबन्ध के सनी कर्बों में किया गया है । संख्या की दृष्टि से सर्व प्रथम स्थान है चौपाई का । प्रतोय बाहा सारठा का और तुलीय हरियौतिका । मोस्वामी जो की चौपाइयों की मुख्य विधेयता के सम्बन्ध में ऊपर संकेत किया जा चुका है कि यह धृति नाद और धैरी के सहाने माना प्रकार के बाठा बरस की सृष्टि करती है । यही बात उनके हरियौतिका छन्द के भी विषय में कही जा सकती है । उनके हरियौतिका के छन्द प्रयोग की बिसधरणगा यह है कि जहाँ वे किसी नाद ध्यापार या परिस्थिति का बिध पूर्णतया साकार और प्रमाबोत्पादक बनाना चाहते हैं वहाँ चौपाइयों को बारा धर्मबिध कर उमे प्रवश कराने के हेतु हरि यौतिका छन्द उपस्थित करते हैं । हरियौतिका में प्रसंग की शृङ्खला धर्मब रचने के हेतु उसके प्रथम बरण में उसके ऊपर की धन्तिय धर्मात्मा का जो धन्तिय धंग सृष्टी

रहता है । वह छन्द द्वारा प्रस्तुत किये गये त्रिषु को पूर्ण प्रवाह के साथ दृष्टा किन्तु रोषकटा के साथ मिलाये रहता है । एक उदाहरण लीजिये । राम रामण सुख में —
रामण से दुखी हो :—

तब बाज़र :—
हाहाकार करत मुर भाये ।^१

विकस देखि मुर धंगद भाय । पकरि सात पहि धूमि गिराये ॥^२
हरिबीतिका :—

पहि धूमि पारेज सात मारेज बासि सुत प्रभु पंह गयो ॥^३

छन्द के पूर्व की अन्तिम बीपार्ई का अन्तिम धंय पहि धूमि गिराये इसी पदा बसी से प्रारम्भ होकर छन्द प्रवाहित होता है । घोर कवि का अभीष्ट चित्र भी उप स्थित करता है । छन्द के इस रूप से प्रयोग करने का परिणाम यह नहीं हुआ कि छन्द अत्मानात्मिक हो गया है । प्रस्तुत यह उपरुक्त बीपार्इयों के प्रवाह में प्रवाहित हो स्नायाविकटा सा देता है । साथ ही यह एक विचित्र चित्र की भी झलक देता है । प्रत्येक नाँव की समाप्ति के उपरान्त जब कि विषय विद्याम की अपेक्षा होती है । ता हरिबीतिका घोर बोहे का मनोहर जोड़ा देखते ही बनता है । यद्यपि यह बताया दुस्तर है कि धमुक बर्णय विषय के प्रकाशमार्ग हरिबीतिका विषय उपरुक्त है । तथापि बास नाँव में पार्वती एवं जानकी के विवाह के प्रसंग में इस छन्द की मातामा की छटा लियी है। जान पड़ती है । उसी प्रकार लुठि के प्रसंग में भी । इस धाम्पार पर कहा जा सकता है कि विषय उन्नासमय प्रसंग में दोस्नानी जो को इन छन्द का विषय प्रयोग पसन्द था ।

बीपका त्रिषुकी घोर प्रमासिका छन्दों का प्रयोग अनेक स्थानों में नहीं है । इसके उपरुक्त^४ स्थलों के धाम्पार पर यही कहा जा सकता है कि अनेक प्रयोग स्थल पर यह बँसे ही रमणीय लगत है जैसे मयल मयल पर इन्द्र धमुक । उन बिबिध छंदों के प्रयोग करण में जो कई बिराम पर्व पड़ते हैं उनका कारण इनमें प्राकृतिक भावा सेव शोभन की अयोग्य समता है । इसी से इन छन्दों का प्रयोग कवि ने ऐसे ही प्रयोग में किया है जहाँ बिना किसी अपवाद के हमारी बाणी धाम्पारिरेक में प्रेम बिषय ही आय । इन छन्दों में धाम्पारिरेक की साकार प्रतिमा दृष्टिगोचर होती है । जैसे धाम्पारिरेक से हृदय उल्लसने लगता है जैसे ही यह छन्द भी अपने बातावरण के धाम्पार धाम्पार अपवा भावातिरेक के साथ में उल्लसते घोर अटलसियाँ करते चलत है

- १ मा० सं० पृ० ११०
- २ मा० सं० पृ० ११०
- ३ मा० सं० पृ० ११०
- ४ देखिये मानम बास नाँव—दीहा १९१ के धाम ।

उनकी मति के साथ हमारे हृदय का तादात्म्य हो जाता है और भावावेश में हमें भात्मविस्मृत ही हो जाती है ।

भए प्रकट हुवाला शीनवयाला... तेन न परंहि भवकूपा ।

वही नाम काँड दोहा २२० के प्रागे ।

परसत पद पावन छोळ नमावन... बई पति लोक धनन्ध मरी ।

वही धरष्य दोहा ३ के प्राग ।

नमामि भक्त बस्यसं... त्वदीय भक्ति संयुक्त ।

श्रीशुक और भुवनेश्वरप्रयास की उपयुक्तता उनकी सजीबता और सीमर्य अलमें की बई स्तुतिया में ही बेशक बनता है । प्रचारम्भ में पहल का प्रयोग केवल सीम स्पर्शा पर क्रिया पया है ।^१ और दूसरा सिर्फ एक स्थान पर । तीमर छन्द का प्रयोग प्रायः कुछ बर्णन में बहुत उपयुक्त माना गया है ।^२ जहाँ कुछ का संकुप्त वातावरण उसकी भयोत्पादकता विह्वलता भीमस्तता और इसी प्रकार क धर्म्याम्य व्यापारों से हृदय की बुकभुकी पढ़ाने वाला शीको को रूपाने नामा कुछ बर्णन निताम्य प्रावश्यक है । वही हमारे कवि ने तीमर छन्द का प्रयोग क्रिया है । मोचे केवल तीमर के दो चरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

तब बसे जान करान फु करत अनु ज्वाल ।

कोपेड समर की राम बस विधिघनिष्ठित निकाम ।

-- -- कट कटहि कठिन कराम ।^३

-- बब दीन्हतहि पालंड ।

भए प्रकट जंतु प्रबंध

बीतास भूत पिताष ।

कर करि अनु माराष ।

-----तहि मध्य कोसल राब ॥^४

छन्द के यह धर्म चरण मौप की फुन्दार की ध्वनि उत्पन्न करते हुए कवि क अभिप्रेत वातावरण की धमिध्वलित कर रहे हैं । उठे स्पष्ट करने की प्रावश्यकता नहीं । यबकार ने उपयुक्त ही उदाहरण किये हैं जहाँ इस छन्द का प्रयोग कुछ बर्णन में क्रिया है । एष तीसरा प्रबंध भी है ।^५ जहाँ उन्होंने तीमर में ही स्तुति की

१ वैजय मानस वाहा सका काँड १२ और ११४ के प्राग का छन्द तथा उत्तर काँड दोहा २३ के प्राग का छन्द ।

२ मा० उत्तर वाहा १०७ क प्रागे का छन्द ।

३ मा० धरष्य दोहा २२ वापाई १-२३

४ मा सका वाहा १० वापाई १-३

५ मा० सका वाहा ११२ वापाई १-१-१

मधुर स्मृति मर कर यह भी विस्मय दिया है कि कुम्भत कलाकार विपरीत शब्द को भी अपने विषयानुसंग बना सकता है ।

वाचिक शब्द—

- १—बीपाई
- २—बोहा
- ३—सोरझ
- ४—बीपैया
- ५—डिस्ता
- ६—सोमर
- ७—हरिपीतिका
- ८—बिर्पवी

बीपाई—

इस बीपाई में ४ चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में १६ मात्राओं का इत्ना घनिष्ठत्व है । चरणगत में प्रत्येक चौर उपरु न हो । 'सोस्वामी को मे विसासित वापरम स्वपथा समुद्रमा विस्वा बभ्रवमासिनी विष्णुप्यासा शौचक श्रमर प्रीर बम्पक बासा इत्यादि शब्दों को भी परिवर्तना बीपाई शब्द में ही की है । को भी हा मात्र में १६ मात्राओं के कुछ बीपाइयाँ का ही बाहुल्य है ।

बन पुन नाब कहे बहुरे । मय विपाद परिनाप यनेरे ॥

प्रभु विरौय राबनेम सपाना । नब मिनि होहि न कृपानिधाना ॥^२

बोहा—

इस शब्द में ४ चरण होते हैं प्रथम चौर तृतीय चरण में २३ १३ मात्राओं शब्द द्वितीय चौर चतुर्थ में ११ ११ मात्राओं होती हैं ।^३

पाके बन सबनेम छे भितेहु बराबर भारि ।

दासु दून में जा करि हरि धारैहु प्रिय नाहि ॥^४

सोस्वामी जी ने अपने रस्यों में बहुरे ऐसे दोह मिले हैं जिनके प्रथम चौर द्वितीय चरण में ११ १२ मात्राओं है उदाहरण —

विनय कीन्हि बनुराजन प्रेम पुलाक धरि पात ।

सोबा निधु किलाकठ सोबत नही धमात ॥^५

दोहे को बलठ देने में सोरझ बच जाता है ।

१ रत्नमदन दासी—हिन्दी शब्द प्रकाश—पृ० २१२

२ मा० पयो० पृ० २६६

३ रत्नमदन दासी—हिन्दी शब्द प्रकाश—पृ० २१२

४ मा० सु० पृ० ११२

५ मा० सं० पृ० ६७६

छोरठा—

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम और तृतीय चरण में ११, ११ और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में १३ १३ मात्राओं होती हैं।^१ जैसे —

जो सुमिरत सिद्धि होइ गन नायक करिजर बदन ।

करत अनुग्रह सोइ बुद्धि राखि सुम पुन सबन ॥^२

छोरठे को पलट देने से बोहा बन जाता है।

चौपमा—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण १० ३० मात्राओं का होता है। १० १५ और ३० बीं मात्राओं पर मति होती है।^३ जैसे:—

सुर मुनि बंधुर्वा मिलि करि सर्वा मं बिररिचि केतोका ।

संभ बोलनुबाटी भूमि बिचारी परम विकस मय सोका ॥

बह्यां छत्र जाना मन अनुमाना मोर कनु न बसाई ॥

बा करि रैं वासी सो भजिनासी हमरेज तोर सहाई ॥^४

द्विजना—

इस छन्द के ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १५ १५ मात्राओं होती हैं। चरणांत में मयल का होना आवश्यक है।^५ जैसे:—

मामधिरक्षय रजुनल नायक । भूत बर पाप दधिर कर सायक ॥

मोह महा बन पटम प्रभजन । संसय विपिन प्रनल सुर रंजन ॥^६

तोमर

तोमर छन्द के ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १३ १३ मात्राओं होते हैं। चरणांत में पुन अनु का होना आवश्यक है।^७ जैसे:—

जब कीन्ह तैहि पायंठ । मय प्रगट अंगु प्रचंड ॥

केवाल भूत विसाच । कर बरै अनु नाराच ॥^८

हरिमीतिका—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २४ मात्राओं होती हैं। १५वीं

१ रजुनन्दन शास्त्री—द्वितीय छन्द प्रकाश—पृ २२

२ मा० बा० पृ० २

३ रजुनन्दन शास्त्री—द्वितीय छन्द प्रकाश—पृ० २३

४ मा बा० पृ० १३०

५ रजुनन्दन शास्त्री—द्वितीय छन्द प्रकाश—पृ० २५

६ मा० लं० पृ १७६

७ रजुनन्दन शास्त्री—द्वितीय छन्द प्रकाश—पृ० २६

८ मा लंका पृ० ३६४

घोर २०वीं मात्राओं पर यति होती है।^१ गोस्वामी को ने कहीं १४वीं मात्रा पर भी यति की है। चरणांत में छंद लक्ष्म बर्ण धामे हैं।

उपदेशु यह खेहि तात तुम्हूर राम प्रिय मुख पावही ।
पिनु मानु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रजुहि सिख बेइ धाममु बीन्ह पुनि धासिय देई ।
रति होत अद्विरल अमल प्रिय रघुबीर पर नित नित नई ॥^२

त्रिभंगी—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं प्रत्येक चरण में १२ ३२ मात्राएँ हाती हैं।
१०वीं १० वीं २० वीं घोर ३२ वीं मात्राओं पर यति होती है।^३ जैसे —

बह्मांड निकाया निमित्त माया राम रोम प्रति बँद कइ ।
मम उर सौ बासो यह उपहासी सुनत पीर मति बिर न रहै ॥
उपमा जब प्यासा प्रभु मुसकाना अरिठ बहुत बिधि कीन्हु अहै ।
कहि कथा मुनाइ मानु बुझाई खेहि प्रकार सुत प्रेम सई ।^४
कवितावली में पाँच प्रकार के छन्द उपसम्भ हाते हैं।

- १—सर्बिया
- २—कवित्त
- ३—बनाभरो
- ४—द्वय्य
- ५—भूतना

त्रिभंगे लक्षण घोर उदाहरण नीचे दिय जाते हैं।

सर्बिया—

यह अर्थात् है इसमें ४ चरण होते हैं। पद्य विचार से सर्बिया के १० प्रकार हैं। जैसे —

- (१) मदिता—त्रिभंगे ७ भगण घोर एक गुरु हो।
- (२) किरौटी—त्रिभंगे ८ भगण हों।
- (३) मातजो—त्रिभंगे ७ भगण घोर दो गुरु हों।
- (४) बिभ्रपदा—त्रिभंगे ७ भगण घोर एक गुरु घोर एक लक्षु हो।
- (५) मन्तिफा—त्रिभंगे १ लक्षु घोर ७ भगण हों।
- (६) नावको—त्रिभंगे १ लक्षु ७ भगण घोर दो गुरु हों।

१ रघुनन्दन धारणी—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० १६

२ मा० बा० पृ० २०१

३ रघुनन्दन धारणी—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० १६

४ मा० बा० पृ० १३६

- (७) बुभुक्षिका—जिसमें २ लक्ष ७ नवख घोर एक गुह हो । धमका जिस में ८ सयख हों ।
- (८) कमला—जिसमें दो लक्ष ७ नवख घोर २ गुह हों ।
- (९) मंजरी—जिसमें एक लक्ष ७ नवख १ लक्ष घोर १ गुह हो ।
- (१०) क्षितिता—जिसमें दो लक्ष ८ नवख हों धमका जिसमें ८ सयख घोर दो गुह हों ।
- (११) सुभा—जिसमें दो लक्ष ७ नवख १ गुह घोर १ लक्ष हो ।
- (१२) धनसा—जिसमें ७ नवख घोर १ सयख हो ।

उदाहरण के लिये कवितावली में किरीटी मालती बुभुक्षिका घोर कमला विजय रूप से मिलते हैं जिनके उदाहरण कवितावली में प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

किरीटी :—

बाके बिलोक्य सोक्य होत बिदाक सहै सुरसोक सुठीरहि ।
 सो कमला तबि रचलता करि कोटि कला टिम्बे सुरमोरीहि ॥
 ताको कहाय कइ तुलसी तू सजाहि न नांयत कुरुर कोरहि ।
 बाजकीबीजन को बन है बरि बाड सो जीह भी बांयत प्रीरहि ॥^१

मालती—

बुलह भी रहनाय बने बुझही सिव सुबर मन्धिर माही ।
 पावति नील सबै निमि सुबरि, बेद बुबा पुरि बिम पहाही ॥
 राय को रूप निहारति जागकी कंकन के लय की परछाही ।
 बसै सबै मुवि भूसि बई कर टैकि रहीं पल छारति माहीं ॥^२

बुभुक्षिका—

तन की वृष्टि स्वाम सरोवर, लोचन कंज की मंजुलताई हर ।
 अति सुबर सोहत पूरि नरे, अवि मूरि धनंज को दूरि करे ।
 बसके बतिमां वृष्टि बामिनि ज्यों फिलके कज बास विनोद करे ।
 धमकस के बालक चारि सद्य तुलसी मन मंदिर में बिहरे ।^३

कमला—

पद कोमल स्वामल, धोरकलेवर राजत कोटि मनोज सबाए ।
 कर बाज सरासन सीस जटा सरसाइ लोचन सोम तुहाए ॥
 त्रिज बेके सखी सत भामहु लें, तुलसी विन ती मन फेरि न पाए ।
 यहि मारन घातु किषीर बधु बिधु बैनी समेठ मुबाए सिबाए ॥^४

१ कवितावली—उत्तर कांड—छंद सं० २६

२ कवितावली—बास कांड—छ० सं० १७

३ कवितावली—बास कांड—छ० सं० १७

४ कवितावली—प्रयोग्या कांड—छ० सं० २४

पोस्वामों जी के निगूही छन्दों की रचना में उपयुक्त नियमों की व्यवहारा मो कर बी है । उदाहरण स्वरूप उत्तर कांड के छंद संख्या १२ १४ और ४६ दिये जा सकते हैं जिनके चारों चरणों में प्रक्षर का पण समान नहीं है ।

छन्द—

इस छन्द में ७ चरण होते हैं जिनमें प्रथम ४ चरण रोसा के घोर अन्तिम दो अस्ताका के रहते हैं । यह मासिक छन्द है रोसा में २४ २४ और अस्ताका में २४, २८ मात्राओं होती हैं । अस्ताका में १५ मात्राओं पर प्रथम और २४ वीं मात्रा पर द्वितीय यति होती है ।^१ जैसे

विगति सवि घति सुवि सर्वे पदे मनुद पर ।
 व्यास बभिर ठेहि कास विक्रम विपनात अटावर ।
 विगादेर सरखल परत बसकंठ मुक्कमर ।
 सुसविमान हिमयानु मामु संपठित परस्पर ॥
 चौक बिरंषि संकर सहित कोल कमठ प्रहि कसमस्वो ।
 ब्रह्मांड बंड किमो बूड अबहि राम सिबबनु रन्वी ॥^२

कवित्त—

यह छन्द चार चरण का होता है । प्रत्येक चरण में ३० या ३१ पछर होते हैं । जिसमें १६ पछरों के पनन्तर पहली यति होती है । इस छन्द में मात्रा व्यवसा पण का विचार नहीं रहता ।^३

सुन्दर बदन सरमौबह सुहाए मैन
 मंजुल प्रमूल माये मुकुट अटनि के ।
 प्रसनि सगसम ससत मुनि कर पर
 मूने कटि मुनिपट मूक पटनि के ॥
 मारि मुकुमारि संग जाके प्रंग उलटि के
 बिधि बिरने बरुप दिवत रत्नि के ।
 गोरे को बग्न देख सोनोन ससोजो लाये
 सांभरे किमोफ गर्बे बग्न पटनि के ॥^४

पनासरी—

इसमें चार चरण होते हैं । पण व्यवसा मात्रा का विचार इस छन्द में भी नहीं रहता । प्रत्येक चरण में ३० ३२ या ३३ पछर तक होते हैं ।^५ जैसे

- १ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश
- २ कविशास्त्री—बाल कांड—छं० सं० ११
- ३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० २४
- ४ कविशास्त्री—सप्तमी कांड—छं० सं० १६
- ५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ३३

बलकल्पत बलबालत, बला है बिर,
 बीबल उमंग धंग उषित बबोत है ।
 लोबरे बोरे के बीब बालिनी मुद्यामिनी नो
 मुनिपट धारे डर कूलनि के हार है ॥
 करमि सुपासन सिमीमुख निरंभ कटि
 भविही भ्रूप काहु भूप के कुमार है ।
 तुलसी बिलाकि के तिलोठ के तिलक तीनि
 रहे नरनारि ज्यों बिसेरे बिजहार है ॥११

भूतना—

यह मानिक अन्ध है इनके भी चार चरक होते हैं । प्रत्येक चरक में ३७ पात्राएँ होती हैं ।

बुध्बुध पाटीच डार भिनिर दूपव बालि
 बलत जेहि दुसरो सर व सोधो ।
 धानि परबाम बिधिबाम जेहि राम सा
 लकठ सोधाम बलकंभ कांधो ॥
 लमुनि तुलसीठ कबिकर्म चर चर बंध
 बिकल सुनि सकल बाबोनि कांधो ।
 बसठ यह लंक संकेत नायक बसठ ।
 लंक महि साठ कोड भात रांधो ॥२

पीताम्बी धीर बिजयपत्रिका में गोस्वामी जी ने बलामोक्षम परिचयों लिखीं । इनकी राव रामनिर्वाह के वर्णन ही यहाँ पाठ्यवस्तु नही ।

उत्कर्तहार—

गोस्वामी जी की ब्रह्म बारा नामो संस्कृत वर्णवृत्तों के सुप्र हिन धिया लंड से प्रसूत होकर बीवाइवा की सम भूमि में लहज स्वाभाविक यति से प्रवाहित होती है । भाष्य में बंहा छोरठा के धोड़ पर बिपाय करती हुई भाषाबोध रूप वागु के मकोरी से बिनाकिट होकर धपनी भव मोहक लहरों से सजीव बिब बिबलान के हेतु हरिनीविका बीवाया धारि के दौंग में धपनी इटसाइठ बिबभाटी कल-कल नार करती हुई उत्तरोत्तर राम सापर में लीग हो जाती है ।

यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने भाष्य की स्वायी भाष के स्थापना करने के बिचार से अपनी क बबसने धीर धपनी रचना वागुटी बिबभाटी की केजा नही की, प्रस्तुत प्रवाह के निर्वाह के हेतु अन्ध याचना नर्बंभ एक ही रखी है ।

महाकवि गोस्वामी जी अन्ध भाष्य के चारंतव परिचित थे । कई जगहों पर ती

१ कवितावली—धर्मोपमा कांड—सं० सं० १४

२ कवितावली—संका कांड—सं० सं० ४ पृ० १२१

इसका पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। बीपाई बोहा सोरठा प्रादि की रचना करते समय तो ज्ञात होता है कि बासी इसकी बाखी पर नृत्य करती थी। गोस्वामी जी काप विरचित समस्त रस छन्द शास्त्र के नियम से पूर्णतया सुसज्जित है। महाकवि वेद्य का भी प्रति ज्ञान प्रदर्शन का मात्र इसकी छन्द योजना में समित नहीं होता।

हिन्दी छन्दों में तुक का मिसाल उसके प्रारम्भिक काम से ही आवश्यक माना गया है। यह एक गवेषणीय बात है कि हिन्दी में छन्दों में तुक मिसाले की प्रथा कब से चली। संस्कृत से यह नियम आ नहीं सकता क्योंकि संस्कृत में तुक मिसाले की अनिवार्यता है नहीं। ज्ञान पड़ता है प्राकृत और अपभ्रंश काल से तुक मिसाले की प्रथा निकल पड़ी है। इसमें तो स्पष्ट नहीं कि तुक छन्द का एक आवश्यक अंग है। क्योंकि इससे छन्द का भूति माधुय बढ़ जाता है और वह प्रभावोत्पादक भी हो जाता है।

फारसी में भी तुक बन्दी का प्रचाल्य है। फारसी से यह नियम उरू में आया। उरू में भी तुक का नियम बड़ी कड़ाई से पासन किया जाता है। धौधवी कविता में भी पहले तुकों की प्रधानता थी। दोसवीयर ने अपने को तुक बधन से मुक्त किया। फिर तो बैतुकी कविताओं का प्रचसन बहुत जारा से चल पड़ा।

संस्कृत में मद्यपि तुकों का बधन नहीं है। पर जहाँ कहीं किसी कवि ने तुक मिसाल दिया है वहाँ उनके छन्द की संरक्षा और भी बढ़ गई है। प्रादि कवि बास्पीकि ने घपत्री रामायण के सुन्दर कोड में कुछ धन्यानुभास श्लोक लिखे हैं। गोस्वामी जी को भी तुक मिसाले का प्रख्या लोक ज्ञान पड़ता है। जहाँने उत्तम कोटि के तुक मिसाले का ध्यान सर्वत्र ही रक्खा है। इससे भी उनके छन्दों के प्रचार में बड़ा ही योग मिला है।

वीरताबती के एक मीत में हाक शब्द का प्रयोग हर एक पंक्ति में करके तुकों पर प्रपना सहज धनुराम प्रकट किया है। हिन्दी में स्वर संयुक्त व्यञ्जन का तुक मिसाले की प्रथा प्रचलित है। केवल स्वर के तुक का मिसाल तो उरू में चलता है। तुसली ने तुक मिसाले में मद्यपि प्रचलित नियम आ हो सर्वत्र अनुकरण किया है पर कविताबती में कुछ छन्द ऐसे भी मिलते हैं जिनमें स्वर क ही तुक मिलते हैं। जैसे :—

छाड़े हैं मी इम डार पड़े, बनु कोड धरे डर सायक से।

बिहटी मूट्टी बड़टी धमिया घबभोल जयाजन न। धक है ॥

तुलसी प्रति मूरति प्राणि हिये बड़ डारिहीं प्राण निरावरिदै।

सम सीकर शीरि देह लसँ मनो शक्ति मरा लम ठारक में ॥ १

आजकल हिन्दी में भी अनुकूल कविता होने लगी है। पर अभी तक उनका प्रचार बढ़ता हुआ विद्यताई पड़ रहा है। छाया के भी नये नये रूप निकाले गये हैं।

पर ऐसे छन्द जब तक पाकर न पड़े जायें तब तक उनमें कोई पादपर्यन्त नहीं होता ।
यह पद्य रचना में तुकों का प्रचलन भी ही कायम ही दिखाई पड़ती है ।

प्रवाहमयी गति भी छन्द का एक भावपूर्ण गुण है । उचित तो यही है कि प्रवाह को ही छन्द कहा जाय । प्रवाह की विभिन्नता में छन्द का स्वल्प तो बल ही जाता है वह सुनने में भी ग्रिय नहीं लगता ।

गोस्वामी जी ने तो छन्दों की गति और प्रवाह पर बड़ा ही ध्यान रक्खा है । उनके छन्दों को बड़ते समय बीच अपने आप जाने की चिन्तनशील बनती है । उन्होंने प्रत्येक छन्द के जाने का शब्द सबसे मिलाता जुलता ऐसा चुन कर रक्खा है कि उसके छन्द के स्वाभाविक प्रवाह में बड़ी ही सरलता पा जाती है । जैसे—

यौं पटतरिय तोय सम भीया । अप धरि सुवति कहां कमनीया ॥

पिरा बुद्धर तन धरव भवानी । रति प्रति बुद्धि वतनु पति बानी ॥^१

जरा धनिम पंति को ध्यान से पढ़िये । लगातार हृदय वर्ण रख कर छन्द के प्रवाह को निरन्तर स्तम्भ बना दिया गया है ।

प्रवाह में स्थितिक्रम कहां जाता है । जहां छन्द न कुछ माध्यामें बढ़ जाती है या बति धीप होता है । छन्द में जैसे प्रवाह की सरलता पावश्यक होती है वैसे ही प्रवाह में बति या विराम का अपने उचित स्थान पर होना भी आवश्यक है । तुलसी ने यति और बति में जीवित्य का सर्वत्र ही ध्यान रक्खा है । फिर भी कहीं कहीं वे हमने कुछ से बचे हैं ।

सुखिबर बहुरि राम ससुभार । सहित बभाज सुतरि महार ॥^२

इससे उनके स्वाभाविक प्रवाह में बकावट पड़ती है । छन्द की माध्यामें ठीक हों पर अर्थों का बुझाव ठीक नहीं तो भी प्रवाह में बाधा पड़ती है ।

कहें मोहि मीमा कहीं मैं न मीमा भरत की,

करीबा मैंहीं मीमा ठेरी मीमा कैंकी है ।

—बीठाबर्मा

यह ३१ अक्षरों का छन्द है इसमें ३१ अक्षरों की बिनती ठीक होने पर भी अर्थों का संगठन ठीक नहीं है । इससे वह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार से :—

मिसा धनुर विराव मय जाता । धामत हो रघुवीर निपाता ॥^३

इसमें धनुर के पहले विराम शब्द कर दिया गया होता तो प्रवाह में धरक न पड़ती । यह बताना पर्याप्त है कि गोस्वामी जी छन्द शास्त्र के प्रकार बतित से उन्हें किन्तु उद्देश्य से इस रूप में रहने दिया । क्योंकि वह उनका बाध नहीं कहा जा सकता ।

१ मा० बा० पृ० १०२ १७३

२ मा० धर्म० पृ० ४१८

३ मा० धर्म० पृ० ४७२

उनके जैसे सरस्वती की अपने प्रायतन से लजाने वाले कवि सम्राट के हेतु इनका कर लेना कोई मुश्किल न था। मेरो समय में तो ऐसे प्रयोग में तुलसी का काव्य ५ का नाम क्लृप्ता है जिसमें काव्य की लोप नहीं होती। प्रयुक्त निम्न उठती है।
संवाद कला—

संवादों का वास्तविक लोप तो नाटक है। नाटक में ही संवाद का महत्व भी है। संवादों के ही कारण नाटक बनते व बिभङ्गते हैं। काव्य उपन्यास वा कहानी में संवाद या कथोपकथन का साधारण महत्व होता है फिर भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। यदि किसी कथा काव्य में बीच बीच में संवादों की योजना की जाने लो उसमें जीबन का आटा है। बैबल बर्लिन करते जाने या कथा लिखते जाने से रचना में कोई कमलकार नहीं घा पाता। यह मन को झुमा नहीं पाती। इस कारण नाटकों का पान सर्वोच्च माना गया है। क्योंकि उनमें संवादों की प्रधानता के कारण विशेष रोचकता की दृष्टि हा जाती है। पात्रों का चरित्र निम्न घाता है।

मानस तो ब्रह्मसत्तया संवाद काव्य है। यह पूरा काव्य ही उमा महेश संवाद काकमुमु हि मङ्ग संवाद और भारद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद है। किन्तु संवाद से हमारा वात्पर्य कथा के पात्रों द्वारा कथा की धारा में जोड़ तोड़ के उत्तर से है। इस प्रकार का एक प्रथम सुन्दर संवाद कामिवास के कुमारसम्मन में बर्हा है जहाँ उमा और बडु क्य सिव ने होकर के क्य प्रणु और स्वभाव के सम्बन्ध में अत्यन्त मुक्ति-मुक्ति उत्तर प्रति उत्तर बिबे मये हैं।

मानस का प्रयोग धारम्भ से ही गोस्वामी जी के समय से ही नाटक के रूप में होता गया है। मात्र भी राम सीताओं में सर्वत्र मानस के ही संवाद पात्रों से कहलाये जाते हैं। उनमें हर फेर करने की आवश्यकता कमी भी नहीं समझी गई। इन संवादों के कारण सीताओं की रोचकता में भी कमी नहीं घाई। यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि मानस की योजना नाटकीय रूप से की गई है। इसी कारण उनके संवादों में जोड़ तोड़ के उत्तर प्रति उत्तर और कमलकार का भी समावेश ही गया है। तुलसी की एक सुमरी बितोपता यह है कि कहीं-कहीं संवादों में जिन उल्लियों का उल्लिख किया है वे केवल कवि लयाज में प्रबलित उपमान मान नहीं है। वरन् उनमें जीबन के व्यापक लोप में पाये हुये लोकोत्तर प्रबलित हैं। इससे उनकी उल्लियाँ तो बहुत ही समीच हो उठी हैं। और इनके कारण काव्य बनक सटा है। संवादों में जहाँ भी ठेके सबतर पाये हैं वहाँ संवाद प्राणवान हो गये हैं। निम्नलिखित संवादों में—

- १—नाट्य राम संवाद
- २—सदमण राम संवाद
- ३—सम्बल परशुराम संवाद
- ४—संभरा कैरीवी संवाद

- १—कैवली बधरय संवार
- २—मरत राम संवार
- ३—हनुमान रावण संवार
- ४—सोता राम संवार
- ५—धंगर रावण संवार

कवि ने जो सौमो अपनाई है उससे संवारों में बीजन का क्या है। वह बीजन साने के सिधे ही उन्होंने प्रसन्न रावण और हनुमन्नाटक आदि नाटकों से संवार लेकर उन्हें और भी अधिक सज्जत बनाकर अपने काम्य में समाविष्ट कर दिया।

तुलसी की काम्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण देवता हो तो उनसे संवार पटुता देखिये। संवार तो मोस्वामी जी के बड़े ही मर्मस्पर्शी व हृदय प्राण है। पड़ते ही पाठक को रसमग्न कर देने हैं। परशुराम राम संवार किन्तु स्वाभाविक है जिसके पड़ते ही पाठक की समस्त सहाय्युक्ति राम में केन्द्रित हो जाती है। इसी प्रकार शयोम्या कांड में कैवली संवारा संवार भी बड़ा सजीब है। शिशुभू में मरत राम संवार भी ऐसा ही है। लंका कांड में हनुमान संवार भी बहुत रोचक है।

संवार सूचक उपाख्यानों में किस ढंग से एक पद को प्रबल और दुबरे पद को निर्बल कर दिखाना होता है। इनकी शैली भी मोस्वामी जी को गिरामी है। धंगर और रावण के संवार को भाप पड़िये। धंगर को बीरता घूरता और निर्भीकता को इतना उच्च स्थान प्रदान किया है कि रावण क ही बरकार को खंडन बना दिया। इतने बड़े प्रतापी नरेश के मुकुटों को पृथ्वी पर पतन कराकर उनमें से ४ को प्रबल राम के पाम भेज देते हैं। पर रावण से कुछ नहीं बन पड़ता। उपाख्यानों व संवार कथाओं में हम उत्तर प्रति उत्तर को विभिन्न संतो देखते हैं।

हैं तो तुलसी के मानस का सर्वरह है उसका मन्वार। मोस्वामी जी न वही काम्य और शक्ति का जो रूप दिखलाया है उसके बारे में अभी कुछ कहा नहीं जायेगा अभी तो 'ज्ञान जयन निरखत मन माना' और मुठि मुन्वर संवार वर बिरये बुद्धि बिचार' पर ही कुछ कहा जायेगा। मोवान और नाट बही तो मानस के धनपहन के स्थान हैं। इसमें भी पहल पाठ और फिर सोपान अर्थात् ती घाट है क्या मुठि मुन्वर संवार ही न। अतः पहले इन संवारों पर हो स्थान शोधिये। मानस में तीन संवाया का नाम प्रत्यक्ष है।

- १—याज्ञवल्क्य और मरदाय
- २—सिध पार्वती
- ३—काकभुमन्धि और पण्ड

शिशु शीमे के सम्बन्ध में कुछ विचार है। बरछ ता तुलसीवास ही है पर मोटा कौन है यदि कोई नहीं तो तुलसी का मन और यदि कोई मोटा है तो वह समाज या नाटक।

क्या उनक भावों में तापना और पहुँच है। हम प्रेम का उत्तर नहीं ठक है कि यदि उनक विचार और भावों में तपना और पहुँच न हुआ तो वे इतने उत्प्रेय कैसे होते। य पक्षी कृतियों में प्रेम मात्र उत्पन्न की पहुँचा हुआ है। वह सीकिक नहीं अपितु प्रतीतिता व प्रावरण में प्रवर्णित है। यह प्रेम मात्र है चतक और मेम का —

एक भरोमी एक बग एक घाम निरवास ।
एक राम कल्पाम हित चाहेर तुलगावाम ॥^१

चातक की प्यास निरन्तर बनी रह रही में उसका दर्शन है। प्रिय के साथ दुर्ध्वबहार में मा बहु विचलित हामे वासा नहीं है। संसार में सभी धरने सुबों के निमित्त प्रयत्न करत है और साथ ही एक प्राणि की मा स्पर्श कामना रखने हैं। किन्तु बग्य है चातक और मम का प्रेम जिसके अन्तर न तो सुखा के हेतु प्रयत्न है और न फल की प्रमिताया। पर इस प्रेम की अत्यन्तता का एक स्वरूप देखिय।

बघ्यो बधिक परदा पुम उस उपटि उठाई बाब ।
तुलमी चातक प्रेम पट मरठरु लगी न लुँब ॥^२

अत चातक का प्रेम कितना अधिक और उत्पन्न पूर्ण है।

मानव की रचना में गोस्वामी जी की हृष्टि वाच्य पर भी रहा है। इसे तो मानना ही होगा। कारण कि मानव का अंगलोग हो बाघों के अंगों को लेकर हुआ है। बाघो और बिनापक को जैसे एक में जोड़ दिया गया है। जैसे ही इसमें बलुं अर्थ और रग अन्त प्रादि का भी उद्घाप कर दिया गया है। और मगल का बिनाम भी। हाथमें यह है कि गोस्वामी जी ने मानव प्राणी को प्रपनाया है जिसे भारी को नहीं।

गोस्वामी का मे मानव को जिस रूप में रचा है उगका रूप भी निराला है। उसही तुलना मस्तुत क किसी भा कारण प्रय मे लगी को जा कहना है। इस मानव वास्तवीकीय गमापण की परम्परा में हीन पर भी उसको पड़ति उसमें सर्वदा मित्र है। उसमें पुगणा का लाला और घागमा का अनुपमन भी है। इतना मर होते हुए मानव की बधा लेनी मठी हुई है कि बही म उमन्ने का नाम भी नहीं लेना तुलमी न जो (बधा विचित्र बनाई) का पाप नहीं या बहु नि बचना कन्न का हा रहा। पर म मानव को क्या सोचा क हृदय में इतना पर कर गुना है कि काह उगको मरका कन्ना मममने है और उसकी विचित्रता का सग्य मान खुदे है। मानव का कपकन्तु म जो परि वर्धन हुआ है वह वाच्य की हृष्टि में हा। जैसे स्वकी व इतर उरर हो जान मे वाच्य के उत्कर्ष में अवाय प्रगमना का जाती है और इमन मानेह म। उह जाना कि वाच्य

१ बोहावरी दी० सं० २७७ पु० १२६

२ बाहावरी दी० सं० १०२ पु० १२८

में संविधान भी बड़े महत्व का होता है। प्रबन्ध की शोभा तो वस्तु के समुचित संविधान में ही करी होती है। नहीं तो उसका उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है।

मानस बँसि तो सप्त सोपानों में विभक्त है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाये और उसकी भूमिका क सहारे उसको समझने का भ्रम किया जाये तो यह स्वता उद्भूत होगा कि तीन पद हैं। मानस का प्रथम अंश तो वर्य करिष तक है और दूसरा राखस वम तक तीसरा अंश काक मुमु कि और गठक संवाह है। सत्रांश यह है कि पोस्वामी जी ने मानस की वषा और भावना को इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया है कि रचना और काव्य की दृष्टि से भी इन तीनों अंशों का अपना असल असल महत्व बना रहता है। काव्य को दृष्टि से प्रथम अंश ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। हृदय का मर्म भाव इसी में जुता है। दूसरे अंश में हृदय की अपेक्षा बुद्धि की प्रधानता है। वधमें व्यवहार की बात ही अधिक कही गई है और तृतीय अंश में तो परमार्थ ही है। यदि इसी को सूत्र रूप में कहा जाये तो कह सकते हैं कि पहले में भाव और दूसरे में विचार की और तीसरे में विवेक की प्रधानता है।

प्रथम अंश में विपत्ति के तीन अवसर धाते हैं।

- १—बनुप मज
- २—कैकेयी का बरवान
- ३—भरत का प्राग्रह

बनुप मज के अवसर पर जिस व्याकुलता के दर्शन हमें होते हैं वह अत्यन्त नहीं मिलती। तुलसी ने इस अवसर पर व्याकुलता के भाव की व्यंजना बड़े ही मनोहारी और सरस शैली से की है। इस स्वप्न में शोक का प्राचाग्य विरोधकर जनक के परिवार में जनक सीता और उनकी माता ने हो बेचने को मिलता है। परन्तु धाये बसकर राम बन बमन से जो प्रयोध्या में संकट पड़ा उसमें अभी दुखी हो रहे हैं वर वर में स्वप्न मचा हुआ है। इसके उपरान्त संकट यह धाया कि न तो भरत ने राज्य ही किया और न राम बंगस से ही सीटायें जा सके। इन संकट को राम की बरणापादुकार्थी ने ही दूर किया। इन तीनों अवसरों पर गोस्वामी जी ने भावों को बहुत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी जैसी लफसता और चिसी को नहीं मिल सकती। ध्या की शोक विह्वलता का ऐसा मार्मिक विवरण कहीं मिलेगा। अनुमान बाहुक में पोस्वामी जी के भाव बर्णन में तीव्रता है। मोताबसी में बनुप मज राम बन बमन भीताहरण शुक्र सारिका संवाह प्रादि उसकी काव्य संपत्ति है। पोस्वामी जी के भाव बर्णन की यही विशेषता है कि वह अपनी इच्छा अनुसार पाठक को हंसाने और रसाने में समर्थ है। अत इमीलिये तो स्वर्णोप भाचार्य रामचन्द्र जी सुनल उनके विषय में कहते हैं।

कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि प्रत्येक भावक स्थिति में धाये को बसकर उसके अनुकूल भाव का अनुभव करे। इस दृष्टि को परीक्षा का राम करिष से बढ़ कर विस्तृत क्षेत्र और बड़ा मिल सकता है। जीवन स्थिति के इतने क्षेत्र और

वहाँ रिक्तमाई पड़ते हैं। इस क्षेत्र में जो कवि सर्वत्र पूरा उत्तरता रिक्तमाई देता है उसकी भावुकता को घोर कोई भी नहीं पहुँच सकता। जो केवल शाम्पत्य रति में ही अपनी भावुकता प्रकट कर सकें वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते। पूर्ण भावुक बही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के सर्वस्पर्शी ग्रंथ का साक्षात्कार कर सकें और उसे पीठा या पाठक के सम्मुख अपनी सख्त सक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें। हिन्दी के कवियाँ में इस प्रकार की सर्वांगीण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है जिसके प्रभाव से मानस उत्तरी भारत की सारी जनता के घने का हार हो रहा है।^१

इसके उपरान्त हम काव्य में भावों पर भी संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

भाव

बिना साधनों व वस्तुओं की अनुसृतता में हृत्प में किमी रस का प्रादुर्भाव हो उन्हें भाव कहते हैं। जैसे—

कंदन किंकिन मुरुर धुनि तुनि । कहत मनन सन रामु हृदयं तुनि ॥

माणहु मदन कुकुमी दोम्हो । मनसा बिस्व बिजय कहूँ कीम्हो ॥^२

यहाँ पर कवन घोर किंकिनो की धुनि शृंगार रस के प्रादुर्भाव होने में महायत्ना दे रही है। अतः यह भाव है। भाव के ४ भेद हैं—

१—स्वायी भाव

२—बिभाव

३—अनुभाव

४—संकारी भाव

स्वायी भाव—

रस का मूल स्वायी भाव है। जो किसी के भी हृदये न हटे स्वायी भाव होता है। जैसे—

बिबि हरि हर तप केबि भपाए । मनु समीप घाए बहु बारा ॥

माणहु बर बहु भाँति सोभाए । बरन घोर नहिँ कर्नाहिँ कलाए ॥^३

बिभाव—जहाँ किसी वस्तु से किसी रस की उत्पत्ति हो चकवा रत्नाम्बारन का संकुर उत्पन्न हो वहाँ बिभाव होता है। बिभाव के भी २ भेद हैं।

१—मासंबन

२—उद्दिपन ।

१ रामचन्द्र पुराण—गोस्वामी तुलसीदास—पद संस्करण—पृ० ८४

२. मा० वा० पृ० १६१

३. मा० वा० पृ० १०२

प्रासम्बन—जिनके प्रासम्बन से मन में रसेत्पति हो वह प्रासम्बन है ।
जैसे —

मघ बहि फिरि बितए तेहि घोरा ।
सिय मुख ससि भए नयन बकोरा ॥^१

इसमें 'सिय मुख' प्रासम्बन है ।

उद्दीपन— प्राची बिसि ससि उचरत मुहावा ।
सिय मुख सरिस बेसि मुसु पावा ॥^२

यहाँ बन्धुमा को देखकर सिय मुख की स्मृति हो आई अतः बन्धु ही रस में उद्दीपन हुआ । उद्दीपन के भी दो भेद हैं ।

- १—प्राकृतिक
- २—मानुषी

प्राकृतिक— जन बसंठ मम गरबत घोरा ।
प्रिया हीन करपत मन मारा ॥^३

यहाँ पर जो मैम का गर्जन प्राकृतिक दृश्य है । जिसे सुनकर राम को सीता का स्मरण हो आया है । अतः जन बसंठ ही प्राकृतिक उद्दीपन है ।

मानुषी— मंगिा राम तुग्न तेहि बोम्हा ।
पट उर साह सोच प्रति कोम्हा ॥^४

यहाँ मुग्धीव द्वारा प्राप्त जानकी क जो वस्त्र है उनको देखकर राम को सीता का स्मरण हुआ । अतः यह मानुषी उद्दीपन है ।

अनुभाव—जिन बाह्य घाकृति व सहायों से हृदयात्म्य भाव प्रकट हों उन्हें अनुभाव कहते हैं । अर्थात्, अत्र अितवन मारिबक भाव धारिपन धीर कुम्बन धारि अनुभाव है । जैसे—

धारिबन— राम सखा रिधि करबन भँटा ।
बनु महि भुल्य गनेह समंटा ॥^५

कुम्बन— बार बार मुख बु बति माता ।
नवन नेह अनु पुनकित गाता ॥^६

- १ मा० बा० पृ० १९१
- २ मा० बा० पृ० १९६
- ३ मा० कि० पृ० २२४
- ४ मा० दि० पृ० २१७
- ५ मा० अयो० पृ० ४०८
- ६ मा० अयो० पृ० २८६

सञ्चारी भाव —

स्वायी भाव क सहायक होकर जो अन्य भाव उसकी पुष्टि भाव करने वाले हैं वह सञ्चारी भाव कहलाते हैं । इस प्रकार के भावों की संख्या १९ है जिनमें से प्रत्येक के सञ्चालन मानस से नीचे प्रस्तुत क्रम का रह है ।

- स्वामि— गरी गलानि कुटिल कर्षेयी ।
महि न कीचु विधि योचु न देई ॥^१
- वीरता— पाहि ताप कीह पाहि मोछाई ।
सूतस परै लकुट की नाई ॥^२
- शंका— रामु सखनु छिय मुनि मम भाळें ।
उठि अनि घनत जाहि छवि ठाळ ॥^३
- वास— जासु ज्ञान डर बहु डर होई ।
भजन प्रभाव देखावत छोरी ॥^४
- श्रावण— प्रब अनि कोउ भाळ मटमानो ।
बोर बिहीन मही में जानी ॥^५
- मह— मुब विक्रम बामहि विगपामा ।
सठ मजहूँ जिह के डर ताता ॥^६
- धर्म— इहां कुम्हडबतिपा कोउ नाहीं ।
जे तरजनी देसि मरि जाहीं ॥^७
- उद्वेग— जी तुम्हारि घनुमामत पावो ।
बहुक इव जह्याइ उठावो ॥
बाधे घट जिम [बाधे] फोरी ।
मजठ येव मूमक जिमि तोरी ॥^८

शौचसुख— निमित्त निमित्त कट्यानिजि जाहि कल्प सम कीति ।

बेदि बसिघ प्रभु मानिघ मुब बस सम बस कीति ॥^९

१	मा० घयो० पृ० ४१४	६	बा लं० पृ० ६०२
२	मा० घयो० पृ० ४०६	७	मा० बास० पृ० १८६
३	मा० घयो० पृ० ४०७	८	मा० बास० पृ० १७७
४	मा० बास० पृ० १७८	९	मा० मु० पृ० १६६
५	मा० बास० पृ० १७६		

- विष्ठा— तीर्थे तिष्ठति मयत्त मरि सोमा ।
पितु पतु सुभिरि बभुरि मनु सोमा ॥^१
- तर्क— परति ममहं मातु कृत्त शोरी ।
बलत्त ममति बल शीरज्ज शोरी ॥
ओ परिहरहि मलिन मनु जानी ।
ओ सनमानहि शैबकु मानी ॥^२
- मीत— जाना मरमु गह्वत्त मयापा ।
मगन होहि पुम्हरे प्रमुपापा ॥^३
- हर्ष— हृरये सब बिसोकि हनुपाता ।
गुत्त जन्म कपिन्ह तब जाना ॥^४
- क्रुद्धिसता— छोणे जोमु कपाइ शमाका ।
मलैठ गह्वत्त कुब रतरेहि जाना ॥^५
- बाबन्ध— भोजन करत अपत्त चित्त इत्त छत्त ममसह पाइ ।
भाबि बने फिलकत्त गुन् बनि भोजन मपटाइ ॥^६
- मोह— शीनिह रायं सर भाइ जानकी ।
मिटी महामरजाइ म्यान की ॥^७
- घान्तस्य— तरिका शमित उमीर बस सवन कटाबहु जाइ ।
भस कहि वै विधाम इहं राम अरत्त चित्तु जाइ ॥^८
- बकता— ससिम्नन समुष्ण बहु भोपी ।
पुष्ण बने लता छर पांठी ॥^९
- विषाद— मुनि विद्याप कुबहु कुन तापा ।
बीरजहु कर बीरजु भागा ॥^{१०}

१ मा० बा० पृ० १८०

२ मा० प्रयो० पृ० ४०२ ४०३

३ मा० प्रयो० पृ० ३८३

४ मा० सु० पृ० ३३९

५ मा० प्रयो० पृ० २६३

६ मा० बा० पृ० १४४

७ मा० बा० पृ० २३६

८ मा० बा० पृ० २४७

९ मा० प्ररथ्य० पृ० ४२७

१० मा० प्रयो० पृ० ३३९

मूर्धा— यस कहि मुखधि पय महि राऊ ।
रामु सकमु छिम घामि देखाऊ ॥^१

ध्यावि— एहि कुरोप कर पीपधु नाहीं ।
सोबळ^२ सकल बिस्व मन माहीं ॥^२

ध्रम— नहि प्रसस मुख भासस बेदा ।
सखि संदेह होइ एहि मेदा ॥^३

स्वप्न— सपने बानर लदा बापी ।
जातुबान छेना छव मारी ॥^४

लज्जा— पुरजम लाज समाजु बड़ बेधि मीय सकुषामि ।
कामि बिसाकन सखिगृह तन रजुबीरहि सर घामि ॥^५

बोध— बंधु बंस तें कीम्ह उजायर ।
मजेइ राम सीमा सुख सायर ॥^६

निर्वेद्य— सब प्रभु इया करहु एहि भांती ।
सब तजि बजनु करी दिन राती ॥^७

धनुषा— तब प्रभु गारि बिरहं बलहोना ।
धनुज छामु दुख तुजो मनीना ॥
तुम्ह मुबीब कूलद्रुम बोऊ ।
धनुज हमार भीर भति छाऊ ॥
जामबंत मंथा घति बूरा त
सो कि हाइ धव तमराकड़ा ॥^८

बह— रन मव मल चिरइ जम बाबा ।^९

स्मरण - अब अब मानु करिह सुवि मोरी ।
होइहि प्रेम बिकस भति मारी ॥^{१०}

१ मा० प्रयो० पृ० १०३

२ मा० प्रयो० पृ० १०७

३ मा० प्रयो० पृ० ११४

४ मा० सु० पृ० २४७

५ मा० बा० पृ० १७४

६ मा० सं० पृ० १३१

७ मा० वि० पृ० २१९

८ मा० सं० पृ० ६००

९ मा० बा० पृ० १२८

१० मा० प्रयो० पृ० २६२

- बिस्ता— नीकें भिरबि लयन भरि सोभा ।
पितु पनु सुभिरि बहुरि मनु घोभा ॥^१
- तर्क— कीरति मगहुं मातु दुख बीरी ।
बसत भवति बस बीरब बीरी ॥
बीं परिहरहि मलिन मनु जानी ।
बीं सनमानहि सेवकु मानी ॥^२
- मीत— जाना मरमु गहल प्रयाया ।
मगन होहि तुम्हरे मनुजाया ॥^३
- हर्ष— हरये सब बिलोकि हुनुमाना ।
सुख अम्म कपिन्ह तब जाना ॥^४
- कुदिलता— कोरे जोगु कयाइ प्रमाणा ।
भनेत बहल दुख रजरेहि जाया ॥^५
- आवश्य— माजन करत अपब बित इत उत धवसइ पाइ ।
भाबि बन किबनत मुन बनि घोदन लपटाइ ॥^६
- मोह— लीभिहू पयं उर लाइ जानकी ।
मिठी महामरबाइ प्यान की ॥^७
- घालस्य— मरिका भमित जगोब बस समय कटावहु बाइ ।
घस कहि ये बिकाम घूहं राम बरन बिनु लाइ ॥^८
- बहुता— सखिमन समुझाए बहु भांठी ।
पूछत जने कता तब पांठी ॥^९
- बिबाह— मुनि बिलाप दुलहू दुल जाया ।
बीरबहु कर बीरकु भाया ॥^{१०}

१	मा० बा०	पृ० १८०	१	मा० बा०	पृ० १४४
२	मा० अशो०	पृ० ४०२ ४०३	७	मा० बा०	पृ० २३६
३	मा० अयो०	पृ० ३२५	८	मा० बा०	पृ० २४७
४	मा० सु०	पृ० ३३६	९	मा० अरभ्य०	पृ० ४२७
५	मा० अयो०	पृ० २९३	१०	मा० अयो०	पृ० ३३६

- मूर्खा— भस कहि मुहदि पय महि राज ।
रामु सबनु सिय घामि बेलाऊ ॥^१
- ध्यावि— एहि कुरोय कर घोपयु नाही ।
सोभेऊँ सकस बिम्ब मन माहीं ॥^२
- भ्रम— गहि प्रसन्न मुक्त मानस सेवा ।
सक्ति संकेतु होइ एहि सेवा ॥^३
- स्वप्न— अपने बानर सेवा जारी ।
जानुबान सेना सब मारी ॥^४
- लज्जा— गुरजन साज समाजु बड़ बखि मीय सकुचानि ।
सायि बिसाफल सखिन्ह तन रतुबीरहि उर घानि ॥^५
- बोध— बंधु बस तें बीन्ह उजागर ।
मजठ राम सोभा मुक्त सागर ॥^६
- निर्दोष— भव प्रभु कृपा करतु एहि माँठी ।
सब तजि मजनु कगी दिन रात्री ॥^७
- धनुषा— तब प्रभु गारि बिरहं बसहीना ।
मनुज ठामु बुद्ध तुको मलीना ॥
तुम्ह मुपीब कुमद्रुम बाऊ ।
धनुज हमार मीर घति सोऊ ॥
जामबल मत्री घति बुझा ॥
सा कि हाइ भव समराब्दा ॥^८
- मद— रज मद मल फिरइ जय बाबा ।^९
- भरल्ल - जब जब मानु करिहि मुपि मारो ।
होइहि प्रेम बिकस मति मारो ॥^{१०}

- १ मा० अया० पृ० १०५
२ मा० अयो० पृ० ३८७
३ मा० अयो० पृ० १६४
४ मा० सु० पृ० ३४७
५ मा० बा० पृ० १७४

- ६ मा० सं० पृ० १६१
७ मा० कि० पृ० ३१६
८ मा० सं० पृ० ६००
९ मा० बा० पृ० १२८
१० मा० अया० पृ० २६९

वृत्ति—जननमुत्तहि समुम्भइ करि बहु बिधि धीरनु बीन्ह ।

अरन कमस सिद्ध माइ कपि गननु राम पहि कोन्ह ॥^१

भावोग—बेखन मिस मून बिहग छव फिरइ बहारि बहोरि ।

निरखि निरखि खुबीर छवि बाइइ प्रीति न कोरि ॥^२

धरबहिष्वा (धातुत मोपन)—नखिमन बीख उमाहुष बेपा ।

बकित भए भ्रम ह्वर्य बिठेपा ॥^३

इस प्रकार सभी रसों और भावों के प्रकाशन में कविराज की सैखनी और मनोवृत्तियाँ लगभग हो गई हैं ।

रस विकल्प—तुलसी के काव्य का महत्त्व बहुत कुछ विविध रसों एवं भावों की विचित्र व्यंजना के कारण है । भवभूति एक कल्प रस की व्यंजना से महाकवि को स्याधि पा गये । वास्तव्य और शृंगार के दोष में अपना काव्य चातुर्य दिखसाकर मूर हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य कहलाये पर तुलसी के काव्य में रसों की जैसी छद्म विजाभाई बेतो है । बीसी धर्मन कहीं भी नहीं मिलती । शृंगार और लात हास्य और कट्टा विविध विरोधी भावों की धर्मव्यंजना तुलसी ने समान धरकार के साथ की है । गोस्वामी जी की कविता सरस सबीब और पूर्ण है । प्रसंगानुसार कविराज ने वहाँ भी जिस रस का वर्णन उठया है । उसे कुशलता के साथ धारि से प्रस्त तक निबाहा भी है । रसिक विरोधिय गोस्वामी जी ने नवों रसों की संवाकिसी अपने काव्य क्षेत्र में प्रवाहित की है । सहृदय पाठक जन अपनी इच्छानुसार किसी भी रस धारा में बुझकी जपा कर काव्यात्मक मूट सकते हैं । गोस्वामी जी भावों के दुष्क मनोवैज्ञानिक विरोधक न थे । उन्होंने उसक सहने और हरेके रूपों को संरिप्त्यावस्था में पुटावा उनको रस प्रवर्तनी ससना सवरयी की धारा प्रवाहित करने में समर्थ हुई हैं । नीचे गोस्वामी जी की कृतिपा से प्रत्येक रस की विराह विवेचना की जा रही है ।

शृंगार रस—

रसों का राजा शृंगार ही समझ जाता है । हमें इस बात का धोरन है कि गोस्वामी जी भी सैखनी सबीब ही मर्वाश के पर्व में रही है ।

तुलसी ने अपने काव्य में शृंगार रस का संयोग और विधोय मानक दोनों ही पधों का सहस्र किया है । संयोग शृंगारान्तर्गत उन्होंने काव्यात्मक प्रेम के धनेक पुट हृदयसाही और संवत चित्र उपरिबत किये हैं । राम और सीता के परस्पर प्रेम व्यवहार का संकन करत समय उन्होंने रोमोम शृंगार के स्तूत पद्य का परित्याग कर सछे

१ मा सु० पृ २२६

२ मा० बा० पृ १६४

३ मा बा पृ ४२

सूत्रम रूप का व्यञ्जनापूर्ण चित्रण किया है। उद्याहुरग्यार्चन वन वन के ध्वजसर घाम वधुओं के राम सप्तमण विपयक प्रश्न के उत्तर में सीता का भेषटार्ण वधनीय है। विप्रर्नम शू वार का चित्रण करते समय तुमसी ने इसी मर्यादा को सबैध ध्यान में रखा है। उगहोने वन में राम और सीता के परस्पर पुष्पक होन पर दाता का ही चिरहू भाव दिखसाया है किन्तु चरित्र की रक्षा करत हुए उगहोने प्रलाप रत प्रम रूप में राम और सीता को प्रस्तुत नहीं किया।

तुमसी रस सिद्ध कवि हैं। जिस भाव क चित्रण को उगहोने अपना कविता म रचात दिया है। उसे वही कुशलता से रस दिया तक पहुँचाने म सफलता प्राप्त की है। उसकी सम्यक्त्विकि में त्रितीमी भावुकता और सरसता पाई जाती है उतमी सम्यक् दुर्लभ है। तुमसी ने जीवन क किछा भी भाव का भाटूटा नहीं छोड़ा है। यही हान रसराम शू वार का भी है। इस रस का निर्वाह करन में बहुत से कवि बूक गये हैं। गोस्वामी जी ने इस रस का बड़ा हा उल्लेख विवचन किया है। इनक मर्यादा सहित शू वार वर्णन में ऐसी उदात्त सुमिकार्यें प्राप्त होनी हैं कि पाठक उनम रम मग्न हो जाता है। राम और सीता का मिलन शू वार शू वार है। किन्तु उसमें कहा एक वधु भी ऐसा नहीं धाया जिस पर कोई उगसी उठा सके। दैविये —

लोचन मम रामहि उर भागो । बौहैं पसरु नपाट समानी ॥१

सीता राम क प्रम में विभूत हो जाती है। किन्तु उगहोने इतना मर्यादा पूरा है कि यहाँ न कोई बधनी उद्यम बूख है न कोई चिरुठ हाव भाव है और न भाव का संकेत ही है।

गोस्वामी तुमसाधाम के सामन सबसे बड़ा संकट का स्त्री के रूप का मल्ल भोग स्त्री के रूप को जिस रूप में देखन धाये है। उसके बहन की भावुकता प्रतीत नहीं होती। तुमसी मक्ति का प्रतिपादन कर और स्त्री के मल्ल दिख का घोस कर विद्यतायें यह कैस संभव था। यह तो हुई मक्ति दाव की कठिनाई। इधर नायिका क मल्ल चिस के बिना रस को संताप नहीं। गोस्वामी जा इसा संकट में पिये धे। किन्तु उगहोने इसको भी दूर किया। और धरमो रचना म मल्ल चिस का भी सा दिया। किन्तु मर के लिये नहीं मरिकारियों के लिये ही और सी भी धपन ह्य पर रूपकान्तिध्याक्ति के रूप म ही। देसिम विमोग की बधा म राम के सामने सीता का मल्ल चिस ही मंडरा रहा है। मल्ल चिस मरिमा क मिये तुमसी ने मर के मल्ल चिस को यही तक रूने दिया है। इमये धाम और उनसे कुद भी न हा सका। साठा के सीमर्दय को मारबामो जा न धरधनीय रूप म रक्षा है। यही रूप राम के हृदय म किस प्रकार रम जाता है इसे कवि सप्तम ने पुनरबाटिका प्रकरण में बड़ मारिक ह्य से दिखसाया है। और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पुरय की भाव व्यञ्जना म म

गया होता है। यहाँ यह जान लेना चाहिये कि सीता के भावजन की सूचना राम "कंकन किंकिन धीर मुपुर को ध्वनि" से मिलती है और सीता को राम के ध्यानजन की सूचना एक सखी के द्वारा मिलती है। राम हृदय के धोम को कहकर रह जाते हैं और सीता पर राम दर्शन का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि एक प्रकार की समाधि-सी लग जाती है। ये अपनी प्राणों बन्ध कर लेती हैं। राम इस दशा को कभी प्राप्त नहीं होते। उनके हृदय में तो बस सीता की मूर्ति ही बस जाती है। प्रथमा के उभे मनी मति धमने चित्त में उतार लेते हैं। गौस्वामी भी इस बात को मनी मति समझते हैं कि स्त्री धीर पुरुष की भावना में बरा बरा होता है। अनुप यह में देखिये कि अनुप टूट जाने पर किसके हृदय में कैसी लहर उठती है। और किसको कैसा सुख प्राप्त होता है। सीखिये :—

सखिन्ह सखित हरपी मति रागी । सुख्य जान परा जनु पागी ॥
 जानक सहेत मुसु सोनु बिहारी । पैरल बकें बाह जनु पाई ॥
 सीय सुसहि बरनिध कैहि मति । जनु जातकी पाइ जनु स्वारी ॥
 रामहि जडनु बिसोकुत कैसैं । सखिहि बकोर किसोरकु भैसैं ॥^१

इसमें मूर्खों का तो बुर कीजिये और रागी तथा राजा और सीता तथा लक्ष्मण के हृदय की प्रसन्नता सीखिये और देखिये कि तुलसी ने एक के भाव में दूसरे को कैसे जाड़ दिया है। बन्ध लिया न कि अप्रस्तुत में कैसा काम लिया गया है। जातकी और बकोर को स्मरण रखिये।

एक ही भाव किस तरह हृदय पर अपना शासन जमाता है। इसकी भी परीक्षा कर लीजिये। जातकी सीता राम के रूप को बाँध भर कर देखना चाहती है किन्तु ऐसा नहीं कर पाती फसतः उनके नयनों की यह प्रवस्था हो जाती है।

बनुहि चितइ पुनि चितव मदि रामत सोचन सोत ।
 जानत मनसिज मीन कुब जनु बिभु मँडस डोल ॥^२

इस डोल की बति पर ध्यान रखते हुए विचारणीय है कि मन की बात को जाने पर मन की स्थिति क्या हो जाती है।

पुनि पुनि रामहि चितव सिम सकुपत मन सकुपत ।
 हृत मनोहर मीन छवि प्रेम पिपासे मीन ॥^३

छवि भी ऐसी निरर जाती है कि मीन का रंग पीका पड़ जाता है। और मन तो इतना छिट हो जाता है कि सीता को उस अनुपम छवि के निरीक्षणार्थ उपाय रचना पड़ता है।

१ मा० बा० पृ० १८३

२ मा० बा० पृ० १८०

३ मा० बा० पृ० २३६

निज बानि मनि महुँ देखिपति पुरति मुकुणबिबाण की ।
बासति न मुहुँबन्सी बिलोकनि बिगड़ मय बस बागडी ॥^१

धीरे धीरे यह माव बड़ा पहरा धीर प्रीड़ हा पाठा है । फिर यह न मूलमा रोया कि सोऊ बन्सी भी सज्जा को नहीं छोड़ सकता । 'एतन्न' बन पाया में सीठा को मयने पति का परिचय इस प्रकार देना पड़ता है ।

बहुरि बधनु बिभु धंवल बांकी । पिय लन विद माहु करि बांकी ॥

बंजन मंडु तिरिछे मयनि । निज पति कहइ तिगुहि वि मयनि ॥^२

इस प्रसंग में 'सकृद्विभूय मय महुँ मुबकाना' में सज्जा का बड़ा भारी आचरण है । अन्वयात् वात ता कुछ गुप्त कर ही मुन्धाने की है धीर दूसरी धीर राम के विचक्षण को यह वया है —

मस कहि किरि बितए ठेहि धार । तिय मुब मधि मए मयम बकोर ॥^३

राम को सीता को फिर देखने का आचरण उस समय प्राप्त होता है जब वह रंघभूमि में धाती है धीर उनके मन में करिई माहि रहुगति की रागी' को कामना होती है । गोस्वामी भी इसी आचरण पर बहुर हैं ।

राम बिलाक सोब सब बिज तिर से देखि ।

बितई बीय कृपादतन जानी बिकल दिनेपि ॥^४

धीर फिर तो बोला की ही यह बया होती है ।

तिय राम प्रबलोकनि परदर प्रभु काहु न लपि परै ॥^५

किन्ही बनि को इस अयोध्या प्रबसाजन संकेत से मुग गहो हो सकता । वह ता इस विचक्षण की जाहू म लबा है । बिषकी लबी एक टक देस मरें । मरएब उनका निरचय है ।

मुम धति हित बितइ हो नाप ठनु धार धार प्रभु मुमहि बितैं हैं ।

यह सोना मुख समय बिसोकत काहु ता पनके नहि सैहें ॥^६

राम धीर सीता के सयोग श्री धार के सम्बन्ध में यह बात लेन बाह्यम कि तुलसी न इसको बहुर ही दिव्य धीर कहूँ का में संकित किया है इने देखना ही ता बस धीरे के बिषकुट बहुर आइने धीर दतवा निधीअण सीतामती में कीजिने ।^७ गोस्वामी भी के हृदय में भी इस प्रकार को जोड़ी बन गई यह है तो पुनःवाटिका

१ मा० बा० पु० २२६

२ मा० धया० पु० ३२८

३ मा० बा० पु० १६१

४ मा० बा० पु० १५१

५ मा० बा० पु० २२६

६ नीतावली—मुन्दर काट—पृष्ठ २१

७ नीतावली—मजीया बाँह—पृष्ठ १४

को ही । पर इसमें धन कुछ विशेषता था गई है । राजधानी छोड़ते समय जिसको लेख मात्र भी कसेप नहीं हुआ । उसी की दशा पुर से बाहर होते ही यह हो जाती है ।

पुर तें तिनही रघुबीर बधु, भरि भीर दये सब मे बधुई ।

भलकी भरि मास कनी बल को पुट सूखि गए मधुरावर हूँ ॥

फिरि बुद्धि है चलती सब केतिक पर्यं ठुटी करिही किछ है ।

तिम की सखि प्रातुरता विम की प्राबियाँ प्रति पाह बनी बस थी ॥^१

यह शू मार का पूर्यं उदाहरण नहीं है । धन श्रोतमुक्त्य धारि सचारी राम के हृदय में प्रभुमात्र है । इसमें भाव सबसत्ता देखी जा सकती है ।

इसमें राम की प्राब में प्रासु भी समा सकते हैं धोर सो भी इतने से प्रसन्न पर इसको कील जानता था । राम बीरे भीरे उच स्थान पर पहुँच बये जहाँ समकी पर्यं घासा बनी धोर प्रिया को प्रेम पीकूप का शान मिमा किन्तु जहाँ तक पहुँचने में कितने शानो की प्राबस्यकता पड़ी धोर राम की प्राब स किटना पानी बिरा इसका भी कुछ ठिगाना है । इन सबोय की वेदना मो कौसी विष्य है ।^२ संयोग में राम धोर सीता की अब यह दशा है तब विधोय में कौसी होयो इसे कोई भी समझ सकता है । परन्तु इन्ही तुलसी के शब्दों को धोड़िया ऐसी है जिनकी दशा निरासी है । जहाँ कभी अटपट नहीं होती । वहाँ सदा अटपट ही बनी रहती है । बालि धारा की मुलता नहीं ता मँबोदरी की राजछा मानता नहीं । बछरम भी कौसी की बात मानता नहीं चाहते पर मरते हैं सबकी मानकर ही । राम भी सीता को साथ नहीं ले चलता चाहते पर चलते हैं उन्हें साथ लेकर ही । बस इन बन्धनियों में विरोध एक ही बार हुआ धोर ऐसा हुआ कि सब की बल पड़ी धोर जलमें कभी भी मेल नहीं हुआ । पर इसके भी सब का भाव ही हुआ । तुलसी ने दर्पित प्रेम को कहीं कब धोर किछ रूप में व्यक्त किया है इस पर विचार करने का अभी अवसर नहीं । बिबाना तो इतना भर इह है कि तुलसी किस प्रकार शू मार को विष्य धोर रमणीय बनाते हैं । साथ ही रहने वेत हैं उसे सदा लोकिव हो । प्रच्छा हावा राम धोर सीता के विधोय को दिखाने के पूर्व एक मँबोकी राजछा धोर मँबोदरी की भी ले ली जाने । अब मँबोदरी राजछा को समझती है तो मँबोदरी के प्रति राजछा कौसा प्रेम दिखसता है धोर भीतर ही भीतर कौसा बिरस हो जाता है । कावति रति की दशा कुछ धोर हा है । महाँ प्रिया को मरजार है पर हृदय का प्रसार नहीं । बिनीद को बाकी है पर बिभास का हूसाम नहीं । तुलसी ने राम धोर सीता के प्रेम धोर बिनीद को किस प्रकार लिया है यह ता प्राप्ते देख ही लिया ।

मनुष्य जीवन की सबसे प्रमुख आवश्यकता रति या शूकार है । इसी कारण रति काव से उत्पन्न रम शूकार का रस राम कहा गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार

१. बहितावली धयोध्या काँठ—पद ११

२. कवित्रावली धयोध्या काँठ—पद २०

मर्त्यादाकारी हीने के कारण तुलसी की रचनाओं में शृङ्गार रस का पूर्ण पट्याक नहीं हो पाया है। पर उनकी यह धारणा निर्मूलक है। यद्यपि उनमें नायिका मेह वाले कवियों का जैसा मर्त्यादा का उल्बन्धन नहीं पाया जाता, पर छोटा धीर राम के अिस परम पुनीत धीर गम्भीर परिणय की श्रद्धियाँ तुलसी के काव्य में मिलती हैं। उसमें मर्त्यादा का पूर्ण पासन करते हुए भी रंजन शक्ति किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये।

जस को मए लखनन हँ सरिका परिली पिय छांह बरोक हूँ ठाडे ।
 पोखि पसेठ बगारि करौ घर पापं पञ्चारिही भूहुनि छाडे ॥
 तुलसी रघुबीर प्रिया अम जानि कै बीठि बिसंब सो कंठक काड ।
 जानकी गाइ को नेह सक्यो पुनकी तनु बागि बिसावन बाडे ॥^१

इसमें राम भालम्बन सीता प्राप्य राम का पका हुमा रूप तथा जो दर तक काटे निवासते रहे यह उद्घोषण है। रामाच होना नशों में मीसू भर जाना प्रादि धनु भाव है धीर संभारी मोह है। तथा इनका स्वार्थ भाव रति है। इस प्रकार यह शृङ्गार का मर्त्यादि का ये बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है।

साक्षों में पत्नी सीता प्रयोप्या मे कुछ दूर पहुँचत ही एक जाती है। इसी समय लक्ष्मण जब लैने को जाते हैं लक्ष्मण की राह देखने क बहाने उपयुक्त उदरण में सीता वृथ की छाया में विभ्राम करने को पति से कहती है। प्रिया के हृदय में विराग्यै बाने राम सीता क हृदय में प्रवेश कर उनके मन की बात जान जाते हैं धीर बड़ा देर तक इसी पिस बैठ पैर के काटे निकालते रहन हैं। सीता समझ जाती है कि कांटा निकालना तो बहाना मात्र है। वास्तव में इनी बहाने राम उहे विभ्राम का पदसर देना चाहते हैं। पति का प्रेम पहचान प्रेम के प्रायेण में सीता का धीर पुनक्ति हो जाता है। नेत्रों में जस भर जाता है। यह गम्भीर स्नेह का भाव है। जो शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यहाँ संयोग का पूरा चित्रण होने हुए भी नहीं प्रसन्नता का भाव नहीं है यही तुलसी का अपनी विद्यापता है।

नायक तथा नायिका के प्रलय का मुखपाठ काटिका बिहार प्रकरण में होता है। मानस में इनका मुखपाठ पुष्पकाटिका से होता है। मानस में नायक के गुण प्रबल पर नायिका क चित्त में दर्शन की सामन्ता उत्पन्न होती है। इस सामना को कवि ने प्रायुक्तता द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

तासु बचन धति सिपहि सोहाने । बरस तापि सोचन प्रकुलाने ॥^२

बिरे मीठमुख से क्याचित यह पिस बचा का भाव है इनके पीछे स्वभावतः कुछ पूर्वाभ्यास की स्थिति छिपी हुई है।

१ कवितावली प्रयोप्या बाँड—पृ० १९४—पं० सं० १२

२ मा० बा० पृ० १९२

इससे किंचित कोमल वस्तुवत्ता नायक में भी नायिका के बचने वाले घातुं पलों से उत्पन्न की जाती है । यद्यपि भारतीय काव्यों का नायक धीर वृथा करता है । कदाचिन् इतीन्द्रिये घातुकता का समावेश इस सम्बन्ध में नहीं किया जाता है ।

कर्म किकिन् मुपुर् मुनि मुनि । कइत लक्षण सत राम हृदय मुनि ॥

नामहू मदन बुधनि बीन्ही । पलका बिस्व बिजय कहूँ कोन्ही ॥^१

इस उत्सुकता में रति का भाव अग्रस्तुन में कोई नई स्थिति द्वारा किंचित विचित्रता के साथ अस्थिर किया गया है । यह स्वात देने योग्य है ।

इस प्रकार की अज्ञता का भाव इस अज्ञता के अन्तर ही राम में सीता के दर्शन द्वारा अस्थिति होता है ।

अये बिलोचन आन अर्धचम । नमहु बभुधि निमि तजे दिर्बचन ॥^२

सीता में भी इसी अज्ञता का भाव राव के प्रथम दर्शन के समय अस्थित किया जाता है ।

अके कवन रघुपति छवि देखी । पसकनु परिखरी निमेषी ॥^३

धीर तबनन्तर—

अपिक समेह देह में जारी । सरथ चाँसहि जनु चितव जकोटी ॥^४

के द्वारा इस अज्ञता के मूल में रति की व्यापकता का निर्देश किया जाता है । नाचों की इस स्थिति के अन्तर नायिका में अच्युता का संचार दिखलाया जाता है ।

दलन मिस मुन बिहुंग तक फिरहूँ बहोरि बहोरि ।

देहि देखि रघुबीर छवि धाकठ प्रीति न धोरि ॥^५

इस रति अस्थित मनों धीर बनोवियों में व्याप्त अज्ञता का अन्तरोत्तर विकास कवि ने कुशलता से बिलसाया है । परीक्षा में नायक की अज्ञता की रक्षा धीर परिष्कार स्वल्प दृष्ट की प्राप्ति में अग्रभावना की घासका के कारण नायिका में अज्ञता के लक्षण दिखाई देते हैं ।

तब रामहि बिलोकि बीदेही । समय हृदय बिमबठ देखि ठेही ॥^६

घातुकता भी उनकी स्पष्ट है —

यन ही मन मभाव प्रबुबानी । हीनु प्रमन्न महेय भवानी ॥^७

१ मा० बा० डी० २३०

२ बा० बा० डी० २३०

३ मा० बा० डी० २३२

४ मा० बा० डी० २३२

५ मा० बा० डी० २३५

६ मा० बा० डी० २३७

७ बा० बा० डी० २३७

नायक को सौन्दर्यानुभूति से नायिका पिता पर खोजती है उनकी यह प्रतीक्षा व्यर्थनीय है ।

नीके निरखि जवन भरि सोना । विनु प्रन समुक्ति बहुरि मन सोना ॥

बिधि केहि भाँति बरी उर घोष । बिरस सुमन कन बधिव हीरा ॥^१

यह शृङ्गार के पूर्व राग को स्थिति है । नायिका को यह प्रतीक्षा बोरे-भीरे उनको इतना व्यथित कर देना है कि यदि समाज का मकाब म हाता ता बहु जोर जोर से दबन करने लगती । किन्तु हमारे ही साथ उन्हें अपना इस प्राकृतता पर लगना प्यारी है और बहु सम्मल जाती हैं किन्तु फिर भी रति अनित्य उनको यह प्राकृतता उनका पीछा नहीं छोड़ती । क्योंकि नायक जब उन्हें देखता है तो वह उन्हें मानसिक स्थिति में पाता है । इस स्थिति का घट्ट अनुभव के द्वारा होता है और तब नायिका मुझ की स्थिति को प्राप्त होती है और जयमान पहनावे समय फिर उनकी उड़ता की स्थिति है ।

जाइ समीप राम छवि देखी । रहि अनु कु मरि बिष प्रकरेखी ॥^२

बाम्पत्य प्रेम का हृदय में बोल्बामी जी ने बड़ा सुन्दर रिक्तताया है । पर बड़ी मर्यादा के साथ । नायिका मेव बाँके बहियों-का-सा हृदय की रामसीमा के रसिकों का-सा लोक मर्यादा का उत्सर्जन उसमें नहीं नहीं । सीता राम के परम पुनीत प्रणय की जो प्रतिष्ठा उन्होंने मिथिला में की उसकी परिपक्वता जीवन की मित्र मित्र दवाओं के बीच पति-पत्नी के सम्बन्ध की समझीयता मपटित करती दृष्टिगोचर होती है । अधिवेक के बजाय राम की बन जाने की धाजा मिसली है । धानन्दोत्सव का सारा हृदय कबल रस में परिवर्तित हो जाता है । राम बन जाने को तैयार हैं और बन के नयेरा बतलाठ हृद सीता को घर पर रहने का आदेश देने हैं । इस पर सीता कहती हैं ।

बन दुल नाथ कह बनुनेने । मय बिबाद परिताप धनेरे ॥

प्रभु बिभोग भबनेस समाना । मब मिसि होहि न श्रानिधाना य

बार बार बुदु मूर्ति जाही । भाविहि ताव बमारि न मोही ॥^३

दुल की परिस्थिति में मुझ की इस कल्पना के भीतर हम जीवन यात्रा में पालत पथिक के हेतु प्रेम की जीतम मुक्त छाया देखते हैं । यह प्रेम कर्मयोग में बिरत नहीं करता यपिनु जयमें बिभर हुए बाँगे पर पूज बिद्याना है । राम जानकी को नये पथ बसते दैन रामधामी बिबल हो रहे हैं । जयम में मयल ही रक्षा है । सीता को दो सहेलीं धयोध्याओं का मुझ नहीं मिस रहा था । प्रयोध्या में अधिरु मुग का रहस्य

१ मा० बा० दा० २२८

२ मा० बा० दो० २६४

३ मा० धयो० बु० २६५

क्या है ? प्रिय के साथ सहयोग के प्रथम प्रवचन । प्रयोध्या में सहयोग और सेवा के इतने प्रथम प्रवचन कहा मिल सकते थे ।

सीता जी द्वारा शू पार की सचारी बीड़ा इस स्थल पर कितनी सुन्दर बन पड़ी है । जब बन मार्ग में रामोस खिपा राम की धोर सज्ज करके सीता से पूछनी है कि यह तुम्हारे कौन हैं तब सीता—

तिरहि बिलोकि बिलोकति बरनी । ब्रह्म संकोच बरनत बर बरनी ॥^१

'बिलोकति बरनी' में कितनी स्वाभाविक मुद्रा है । 'ब्रह्म संकोच' में कवि ने सीता के हृदय की कोमलता और उनकी प्रथिमाव क्षुब्धता की बड़ी ही मधुर व्यंजना की है । क्योंकि सीता प्रत्यक्ष में यह कहें कि यह मेरे पति हैं लक्ष्मण की बात है संकोच है घुसरे यदि वे इन मोसी भासी ग्राम बलिताओं को उत्तर नहीं देती हैं तो भी वे उन्हें प्रथिमामिनी समझेंगी । इससे भी सीता को संकोच हो रहा है । इससे सीता की जो शू पार सम्बन्धी वेष्टायें हैं उनका विवेचन भी कोस्वामी जी ने बड़ा लभित किया है । यह विवेचन बड़ा ही समयोपयुक्त है ।

बहुरि बबनु बिबु प्रथस बानी । पिय तन पितर भीह करि बानी ॥

बंजन मंजु तिरीसे लयननि । निज पति कहैत तिरहुहि सिय सयननि ॥^२

यही कोस्वामी जी ने सीता जी द्वारा पवित्र रति की बीड़ी मधुर व्यंजना कराई है । कुसुम बभू की इस व्यंजना में जो शौर्य और माधुर्य है वह उच्चत प्रेम प्रसाप में कही ।

शू पार रस का सम्बन्ध प्रकृति के बाह्य और अन्तःसौन्दर्य दोनों से है तुमसी काम कोय प्राणि मनोबिकारों को मनुष्य का शत्रु मानते और उनको हनेछा त्याग्य नमझते हैं । इसमें काम्योत्तेजक शू पार उनकी कविता में नहीं भी नहीं घाने पाया । पर संसार के महद्द सौन्दर्य की उन्हाले कभी भी उपेक्षा नहीं की । पति पत्नी के प्रेम संभाषण अनुप्रास प्रवर्धन को वे ब्रह्म स्व जीवन का एक अनिवार्य अंग समझते थे । इसी से उन्होंने राम और सीता को पति पत्नी के ही रूप में देखा है । इसी भाव में प्रेरित होकर वे राम के एक बिल की बात को जो बहुत छोटी-सी है पर प्रेमी की दृष्टि में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है । इस प्रकार कहते हैं—

एक बार बुनि कुमुम मुद्राय । निज कर छुपन राम बनावे ॥

सीतहि पहिरये प्रभु सुन्दर । बैठे कटिक सिमा अति सुन्दर ॥

राम और सीता का प्रेम प्रारम्भ न ता जायसी क समान रत्नसैन की कठिन यात्रा के रूप में होता है और न ही राधा और कृष्ण के मिलन के समान । न ही रत्नसैन के समान राम सीता के बर्तन करके सुदृष्ट ही होते हैं और न ही राधा से मिलने के हेतु उन्हें राधा के समान सर्व का बिय उधारने वाला बठाकर ही छाप काटे

१ मा० प्रयो० पृ० ३२८

२ मा० प्रयो० पृ० ३२८

का बहाना करते हैं। यहाँ तो भारतीय मर्यादा की परम्परा के अनुसार स्वयंवर होता है और उसमें स्वयम्बर की धर्म की पूजा करके राम माता का पाणिग्रहण करते हैं। कवि बरनाम श्रावण काटिका में ठनका पूर्व निषण कराके रमादेव में महाम्बर होना है।

शुद्धा का दूम्ने परा वि सम्म शुद्धा का विचरण करत समय श्री पीरबामो जी ने महीन इसो मर्यादा का ध्यान भ रक्खा है। कवि मन्नाट न बन में राम और सीता का परम्पर पृथक होने पर होना क ही बिरह भाव की घमिम्पजना की है। किन्तु उनका चरित्र की मर्यादा की रक्षा करत हुए उम्हने उम्हें प्रसापगत प्रेमिया के रूप में प्रस्तुत नहीं किया।

पर सीता करके कौतुकी भयवान राम धन्य स्वप्ना में विचरण करते करते प्रबर्षण विधि पर आ रमे। अलबापम काल था। स्निग्ध द्यामल बनाहककों मे ध्योम मण्डल स्यात् था। मुख प्रदान करते बानी शीतल-मन्द सुगन्धित वायु मूम मूम कर प्रवाहित हा रहो था। प्रिय समागत से बिह्वल मयूर मत्त होकर शून्य कर रहे थे। सीस सटिका का घत्रुन करन्द कुसुमों मे विभिन्न पर्वतीय वायु रजित नभ बल रवरित मदि से बल कल निवार करता हुआ बहु रहा था। वन दर्जोत्सुक प्रमुदित बह पक्ति रविर धम्बर की पुण्डरीक मासा सी पवन में उड़ रही थी। घमि नभ बल धारा से घाण्डान्ति मरकठ मणि मोस धामन पर टहकतो हुई बीर बहु टिर्को परा रमणो को नाम बूटी श्रावण मुपार्णो धम्बर पहना रही थी। अमर शुद्धा कर रहे थे। पर बिरही राम को जान पड़ा कि यह कथस मेघ इन्द्र बनु बैकर बियो बियो पर बारि बार धारा बरना रह है। उनकी स्मृति कौपी कल्पना कावम्बिनी उमठ पड़ी। बिरह विष की बर्या होने मनी फिर सो राम का मीठा के बिरही में बियोप रनील शुद्धा का उल्लेख उदाहरण है।

माया की मीठा की कामना और मरणा की बिदेक हीनता के कारण सीता का बियोप हो गया और राम को धरना पृथ्वी केना दिनसाई बा।

मात्रम निरतिन भूने इ म न कने न पुन

यनि गण नून बाणों यदहै म है।

मुनि न मुनिचपुटा उबरी परमभुने

पंचबरो पहिबानि ठारेद रहे।

उठा न मन्निन सिय प्रम प्रमुदिन द्विये

प्रिया न पुनकि प्रिय बचन कउ

पम्बर कामन हेरो मानबन्ना न देगी

बिरह बिपकि मनि कपन यहै।

नैव रपुनति-मनि विबुध बिहल यनि

गुननी बहन बिनु दहन करे।

अनुज बियो भरोयो, तीसी है सोच खरी सो ।

सिय समाचार प्रभु जीसी न लई ॥^१

ठठी न सलिस सिय' में जो राम का पारिवारिक जीवन सामने आता है । वह मानस में राज नवन में भी निज कर हृदयपरिचर्या करई' के रूप में व्यक्त होता है और तुलसी के आदर्श को भी प्रस्तुत करता है । इस बियोग का परिणाम क्या हुआ इसको कौन नहीं जानता । किन्तु इसका उपरान्त जो महा बियोग अपने धाप मोल लिया था । उसको तुलसी सबको सर्वत्र नहीं बतघाना चाहते और मानस में तो वह बड़े सर्वथा ही पी जाते हैं और वे सीता राम के आनन्द में किसी भी प्रकार का बिम्ब नहीं पड़ने देना चाहते । उनके राम राज्य में किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं है ।

गोस्वामी जी कष्टना के कवि हैं बियोग के नहीं । बियोग उनकी माता ही नहीं । जब वहाँ भी बियोग का प्रवेश आता है तो कवि सीधे से यह बोलते हैं कि कवि के हृदय में हुआ ही नहीं होता । फिर वह उसका वर्णन कैसे करे । तुलसी भी समझ में बियोग का वर्णन करना कठोरता का काम है । सहृदयता का नहीं कहते हैं ।

बरगठ रघुबर धरत बियायू । मुनि कठोर कवि जानहिं जोयू ॥^२

जब राम और धरत के बियोग के प्रति कवि की यह धारणा है तब सीता और राम के बियोग वर्णन में उनकी कृति कैसे रम सबती है । तो भी जब कवि कुछ कमल दिखाकर को हात है कि यह घसली सीता नहीं माया की मीठा है बिनका राम को बियोग है । कवि का डमी से तो यहाँ ठग कहना है ।

प्रभु की बसा सो समी कहिब को कवि उर माह न धारि ।^३

इसका यह धर्म नहीं कि तुलसी ने बियोग बसा का वर्णन ही नहीं किया । बियोग में जो बसा राम की होती है । उसका बिबेचन पहले ही किया जा चुका है । वहाँ कुछ सीता को भी प्रवस्था को देख मैना चाहिये । मानस में कई प्रवृत्तियों पर सीता के बियोग को ध्वंजित किया गया है । हरण के प्रवेश पर इनुमान के धाममय के समय और रावण की बाटिका में । हमारी दृष्टि में इन तीनों प्रसंगों में सबसे प्रच्छा प्रसंग है रावण का बध ही । इसी प्रवेश पर सीता के हृदय की मन्वी बेचना बही है । वे कहती हैं—

होइहि कहा बहसि किन माता । केहि बिबि मरिहि बिस्व दुखबाता ॥

रघुपति सर मिर बटेई न मरई । बिबि बिपरीत बरित सब करई ॥

१ सीतावली—धरम्य कांड—पद १०—पृ० ३६९

२ मा० प्रसंग पृ० ३१८

३ सीतावली—धरम्य कांड—पद ११ पृ० ३६७

मोर प्रभाष्य विधास्य चोही । जेहि हौ हरि पर कमत बिघोही ॥
जेहि ह्य कपट कनक मूष भूटा । प्रबहुं सो र्वं मोहि पर कटा ॥
जेहि बिधि मोहि बुझ पुसर सहाए । मधिमन बहु कटु बचन कहाए ॥
रहुपति बिहइ सबिय घर भारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ।^१

बिन्दा शोक धारि भावों की अँठि ध्यंजना इन जोकी सी वलियों में हुई है
वैसी कहीं भी नहीं । पीतावती में तुलसी ने राम के विभोग को कुछ धीर ही रूप में
लिखा है । हनुमान राम से कहते हैं ।

तुम्हारे बिहइ मैं प्रति जोम ।
बिज मैं सुनहुं राम कस्यानिधि जानी कसु मैं सको कहि हौं न ।
सोचन नीर रूपि के बन ज्यों रहत निरंतर सोपन कोन ।
हा मुनि सयो नाच पिबरो मैं राकि हिमे बड़े बधिक हठि मोन ।
जेहि बाटिका मसति तहु धम गुग ठकि तकि भजे पुरातन मोन ।
स्वास समोर भेंट भइ भीरेहु तेहि मय पगु न परयो तिहुं पोन ।
तुमसीदास प्रभु ब्या सीम की मुस करि कहत होति प्रति गोन ।
बीज बरम दुर लीखी बुझ ही तुम्ह पारति पारति शोन ॥^२

मोस्वामी जी की सच्ची पारणा यही है कि जी की देवना जी से ही जानी
जा सकती है । जीन से वह बखानी नहीं जा सकती । उन्होंने मूष रूप में प्रेम के मर्म
को हम जोषाई में मयातथ्य रत्न दिया है ।

तत्त प्रेक्ष कर मय पक्ष तीर । जानत प्रिया एक मत मोच ॥^३

धीर इस पर मैं सबिस्तार बसोत भी क्रिया है ।

रुपि के बखत सिय का मनु महारि पायो ।

पुसक सिपिस मयो कपीर नीर मपनहि छयो ।

कहम बझी संईस नहि बहो पियके जियकी जानि हृदय दुनह दुख दुरायो ।^४

प्रथम मोस्वामी जी ने शू गार के दोनों परां की पूरा बाबुक्ता के साथ निभाया
है जहाँ भी उनके स्पष्टीकरण में प्रस्ताभाबिबता नहीं पा पाई । तुलसी के विघर्षम
शू गार में जायसी जैसे बीमारसता भी नहीं है । यहाँ म तो रक्त के घामू ही गिरते हैं
धीर न हाइ ही रथ बनत है । बरन मयादिय विभोग है । शीठा धम बम समक की
बाठ सुनतो है तो बतनी ध्याकुस नहीं होती जितनी राम का उपदेश सुनकर
होती है ।

१ मा० लं० पु० १६२

२ पीतावती—सुन्दर कांड—छन्द सं० २०—पु० १००

३ मा० तु० पु० २३०

४ पीतावती—सुन्दर कांड—छन्द सं० १२

सौतस विन राहक मइ कैसे । कहहि सरब बंद निधि जैसे ॥^१

हमारे कवि कविराज ही तो ठहर पुरानी उपमाओं की घबहेसना करते हुए नयी उपमा का निर्माण कर लिया ।

बौ पठठरिम सीम सम सीमा । बग प्रति बुबति कहां कमनीया ॥

गिरा मुहर तन घरण मबानो । रति प्रति दुलित घतमु पति जानो ॥

बिप बादनी रंभु पिय बेही । कहिय रसासम किमि बेबेही ॥

बो छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपम कल्पनु सोई ॥

सोमा रकु मंदर सिपाक । मयै पामि पंकर निज माक ॥

एहि बिधि उपजे सखिज जब सुदरता मुख मूस ।

तखनि छकोब समेत बनि कर्तहि सोय समतूस ॥^२

इतनी निमज्ज नस्यना करके अक्षयी भी निकाली तो भी सीता ने अक्षयी समता करने में कवि सम्राट संकोच ही कर रहे हैं । कवि ने उपमाओं को भी बूढ़ी बमझकर इस प्रकार सीता का सीन्दर्य बरुंम रखा —

घब उपमा कवि रहे बुढारी । केहि पठठरी बिबेह कुमारी ॥^३

योस्वामी जी के काव्य में सोने में सुपन्न तो यों हैं जिसको कोई भी सच्चा ममाकोषक कहै बिना नहीं एक स्रष्टा कि हिन्दो के प्रथ कवियों की भाँति योस्वामी जी ने अक्षयी काव्य रचना से अपने प्रप को दूषित नहीं किया । कही कही बड़ी मार्मिकता में शूंगार रस का बरुंन तो किया है पर ऐसे स्वर्णों के साहित्य को ऐसी वाचुर्य भरी भाषा में लपेटा है कि वहाँ मातात शूंगार रस को रंध तक नहीं घाती । घब भाष किसी ऐसे प्रथ को उठाकर पढ़ बाह्य जियमें किसी नायिका के मख पिज का बरुंन भिजा हो । देखिये पापक हृदय में किस भाव का उद्रेक होता है । उसके बाह ही मानस की निम्न बोपाइयों का पड़ने का कष्ट उठाइये ।

है खप मूब हे मपुकर बेनी । तुम्ह देखी सीता मपनीनी ॥

खंजम मुक कपोल मूग सीता । मधुप निकर कोबिधा प्रबीना ॥

बुद कलो बाकिम दामिनी । कमल सरप सधि महिनामिनी ॥

बदन पास मनाज अनु हठा । बज कहुरि निज मुनठ प्रससा ॥

पीरस कनक कबसि हरपाही । मैकु म संक सकुच मगमाही ॥

सुनु जानकी ताहि बिनु मानु । हरये सकस पाइ अनु राहु ॥^४

प्रथ कवियों के पद्यम पद्यों पर एक बार इष्टिपाल कीजिये ता घाप उबयें कवापि भी इस भाँति का पुण नहीं पा सक्ये ।

१ मा० पयो० पृ० २६१

२ मा बा० पृ० १७२ १७३

३ मा बा० पृ० १६१

४ मा० परध्व बंद—पृ० ४६७

में यह कथावि भी कहने को उचित नहूँ कि शृंगार रस काव्य से उड़ा जाये। शृंगार रस कविता का श्रेष्ठ है। उससे बिना कविता काव्यिनी कान्ही कुरिह और भुक्ता हो जायेगी। पर उसे साहित्य में उचित मात्रा में रखने की आवश्यक है और उसमें मर्यादा की भी आवश्यक है। गोस्वामी जी का अद्वैत साहित्य ही इस प्रकार समझते थे। तुलसी इस रस में कितने सतर्क थे। यह तो अचलनीय है। उ सीता के बर्णन में मिलते हैं।

सोह नबस तनु सुगरर घारी ॥^१

यहाँ पर 'अमल जननि अनुमित छवि हारी पूरक पर देकर ऐसी निपुणता काम लिया है कि पापी से पापी मनुष्य भी इस पूरक पर को पढ़कर निर्मल हो उठे है। इसी प्रकार विद्यार्थी के सहवास का बर्णन करते हुए कालिदास ने 'कुल संभव' में क्या नहीं लिख दिया अन्त में यहाँ तक कि—

सम विवस्य निघोषं सङ्गमस्तत्र शंको ;

उत्तमगणमट्टमूर्ता सार्वभेका विरोध ॥

न न मुरत सुलेभ्यश्चिद्वप्रनुत्तुं बभूव ।

ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्वग्जलीषी ॥^२

पाठक देखेंगे कि यहाँ कालिदास की अप्सुत्त रचना में अन्त में सजि हो गतभीष हो जाती है यहाँ कवि सम्राट् गोस्वामी जी को ही पत्थियों में मारने का समावेश कर कालिदास की कविता को फूँक से उड़ा देते हैं।

अमल मातु पितु संभु मबावी ठैहि शृङ्गार न यहाँ बजानी ॥

हर गिरिजा बिहार नितनयऊ । यहि बिधि अल अतिनयऊ ॥^३

माता पिता के शृङ्गार और रति बर्णन में कितना अनीचरिय है। इन बिचार प्रत्येक मर्यादा प्रिय मनुष्य को हाना ही चाहिये। एक कवि ने नायिका उदाहरण देते हुए लिखा है।

जाहिर जाबत सी अमुना । बर बूद बहे बमड़े बहू देनी ॥

र्यों परमाकर होरा के हारन । रंय तरंगन की मुख देनी ।

पावन के रंय सों रंय जाति सी । यानिहि यानि सरस्वती मैनी ॥

यरे जहाँ ही जहाँ बहू बाल । तहाँ तहाँ तास में होत विवेनी ॥^४

इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमाकर जो ने इस मर्यादा में शब्द और अन्त का समुचित समावेश करके नायिका के शरीर में विवेली को बचपना को है पर उन्हें हीच के द्वार और पार्श्वों में सेहूटी न बहाबर के रंय की उदाहरण मैनी पड़ी है। त

१ मा० बा० पु० १७४

२ कालिदास—शुमार मन्त्र—अन्त्य मर्त्य के अन्त्य में

३ मा० बा० पु० ७८

४ परमाकर—अपठितोर—सं० सं० १७

तलैया की छारण जानी पड़ी । तब त्रिवेणी बनी । किन्तु गोस्वामी की कैंसे सरस हंय
 से अपने चरित मायक के बरखों में त्रिवेणी का प्रवाह प्रवाहित करते हैं —

राम चरया प्रभिराम काम प्रथ तीरधराम विराजे ।
 संकर हृदय भक्ति मूतल पर प्र म प्रथय बट भ्राजे ।
 स्वाम बरन पर पीठ प्रकल तस लमति विरह नख धैनी ।
 जमु रवि मुठा छारवा सुरमनि मिनि नमि ललित त्रिवेनी ।

—गीतावली

पाठक देखें कि तुलसी की इस रचना में स्वाभाविकता छूट छूट कर मरी
 है । यतः गोस्वामी तुलसीदास मृङ्गार रस के भी अद्वितीय सतर्क और निष्ठ हस्त
 कवि हैं ।

बीर रस —

गोस्वामी जो नै बीर रस का वर्णन करते समय राम के बीर वेप का वर्णन
 करने में सर्वाधिक रुचि ही दिखाताई है । गोस्वामी जो के काव्य में बीर रस का वर्णन
 करनेको स्वामी पर हुआ है ।

क्रोध बीर रस का सहायक भाव है । मानस में क्रोध का सबसे प्रच्छन्न बीर
 प्रकार प्रसंग परमुराम के संबाह में ही हमारे सामने आया है । तुलसी ने परमुराम के
 जिस बीर रूप का चित्रण किया है वह विचित्र है । उसमें क्रोध है पर है वह उन्माह
 यही क्या इस प्रसंग की भी है । इसमें राम बीर परमुराम के बाबों का उतार बढ़ान
 देखते ही बनता है । बीर के संबाही भाव उन्माह की मानस में कमी नहीं । नायक
 का तो बहना ही क्या प्रति मायक की उससे छूट छूट कर मरा है । हठात् होगा तो
 वह जानता ही नहीं । यहाँ तक कि मरते समय तक उसकी बाणी यही बरगतो है
 कि राम कहीं है मैं उन्हें लसकार कर मरूंगा । बीरता के सभी रूपों को बिससाने
 में कोई नाम नहीं । मृगुबीर की सेना का पमान बीसा रहा उसका घातक ब्रह्मांड में
 छा गया । जब समि की बात निष्पन्न हो गई डोल घोर बुध्दक निघान बचने से
 उस समय हनुमान की बीरता दर्शनीय है ।

हाथिन मों हाथी मारे, छोड़े छोड़े सों संहारों ।

रैपिन सों रथ बिचरनि बसवान की ।

बंजन चपेट चोट चरन बकोट बाहे

1 इहरानी कीजें महरानी जानु पान की ॥

बार बार सेबक सराहना करत राम

— तुलसी छटाई रोहि साहेब मुबाल की ।

नाबी मूय लमल लपेटि पटकल भट

देसी देसी ललन सरनि हनुमान की ॥^१

यम लक्ष्मण भीरु हनुमान के सहारने में क्या भेद है यह भी इस घनाजरी से स्पष्ट हो जाता है ।

धन धन शक्ति सक्ति धूने किमुक से
हने भट सखन जानुवान के ।
मारि की पछारी की ठपारि मुखरद बह
रुद सख डारै त दिदारे हनुमान के ।
बुरत कबं के बरब बंद मी फरत ।
बाबत दिबाबत है सापी रापी बात क ।
तुलसा मरेम बिधि सोहपाल बबगत ।
देवत बिषाम बड़ कोगुक ममान के ॥^१

तुलसा ने जो भा बरुन बिभी की बीरता में लिखा है बहुत सोच समझ कर लिखा है । उनके रक्त बरुन की सजाबता को देख कर ता यही तक कहा जा सकता है कि उन्होंने जो भी लिखा है वह धीखा में देख कर लिखा है । उनका सम्मेलन करने से घाप हो घाप घबघप हो जाता है कि बर, बाबा नामू भीर रासम की मुख बसा में क्या भेद है । भीर उसका उस्ताह बर कीया रूप बकरता भीर रंग बरबता है । तुलसी ने 'गोठाबनो' में हनुमान के बिम उस्ताह को लिखलाया है वह भीर भी माहम भीर संबल्य से पुण है । समय भी कीसी बिपति का है । लक्ष्मण को शक्ति लगी है । मूरज निबता मही कि उनका घलत हुधा । उपाय है पर महज मही । हनुमान को पोपणा है ।

जो हो धर प्रमुमान पावो ।
तो बइरहि निबारि बँल ज्यो पानि मुया मिर मावो ।
की पाठास बसो ध्यासाबनि प्रमुन कुड यहि सावो ।
भेरि मुखन करि मानु बाहिरो तुलस राहु है तावो ॥
बिबुध बँद बरबम धारो बरि तो प्रमु प्रनुप बहवो ।
पटवो माच भीब मुखर ज्यो मबहि वा पापु बहावो ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रनाय तिहारेहि नेहु बिपब न सावो ।
कोरै सोह धादपु तुमनी प्रमु जेहि तुम्हरे मन भावो ॥^२

इसमें हनुमान जो ब इमा को निबोह देने पाजान में प्रमुन कुड काले पूर्व को दिना देने देबनामों के बँद को लाना भीर प्रमु को घलत कर देने को बाप जो हनुमान कहने है वह उनके समी हृदय उनके बीर रूप के परिचायक है । घलत बलत पद बीर रस का सुन्दर उदाहरण है ।

१ बरिबाबती—संका बोट—पृ० ४८

२ गोठाबनो—संका बोट—पृ० सं० ८

धीर रस के सहकारी भाव धर्म्य को देखिये जब मारी समा में जनक ने कहा :—

धीर बिहोम मही में जाती ।

तब लक्ष्मण बिपड़ पड़े । लक्ष्मण धर्म्य को किसी भी महावीर से कम नहीं समझते थे । ऐसा कह कर जनक ने उनकी बीरता को चुनौती दी । परन्तु उन्हें धर्म्य मान की रक्षा के हेतु उत्तर देना पड़ा । लक्ष्मण की उक्ति है —

रघुबधिरु महुं बहं कोच होई ठैहि समाज भस कहइ न कोई ।

कही जनक असि धनुषित बानी । बिषयान रघुबुध मनि जाती ॥

मुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहउ मुमाउ न कपु प्रनिमाहू ।

जौ तुम्हारि धनुसासन पावौ । कन्पुक इब ब्रह्मांड सठावौ ॥^१

यहाँ गर्व या मान की रक्षा के हेतु कोच हो रहा है । धर्म्य में मान का होना धर्मिचार्य है ।

धीर रस में ऐसी स्थिति या संकटी है जब बीड़ा भी संभारी कम में दृष्टिगोचर हो । रामधीर के बर्खन में राम का उत्कर्ष दिखाने के हेतु मान का उपयोग काव्यों में देखा जाता है । तुलसी ने राम के धान का बर्खन इस प्रकार किया है ।

जो संपति सिबराजनहि बीगु दिसे बसमाब ।

सो संपदा विनीपणहि सगुनि बीगु रघुनाप ॥^२

लंका जैसे बृहत राज्य के धान करने में भी राम का सगुनना उनकी बीड़ा को प्रकट करता है । पर सवारता को वृद्धि करता है । ग्लानि निर्वह विपाद वैम्यादि भाव भी इसी प्रकार सहधर्म के हेतु उत्साह के संभारी का काम देते हैं ।

धीर रस में मोह धीर जड़ता की भी स्थिति देखी जा सकती है । राम रावण युद्ध में रावण ने एक बार माया से धपनी सेना में धर्म्य राम धीर लक्ष्मण बना दिये । जिन्हें देख कर बानरी सेना बचड़ा गई । स्वयं लक्ष्मण भी इसका खल्य न समझ सके । यह जड़ता की स्थिति है । लक्ष्मण भी किफत ख्य बिभूड से दिखलाई पड़ रहे थे । किन्तु लक्ष्मण का उत्साह कम नहीं हुआ । बीरता का बरिण इसी संवाद से सच्चा प्रकट होता है । इस संवाद में गर्व नहीं समकार का बमत्कार नूब रहता है । जैसे लक्ष्मण का यह कहना कि —

रे रात का मारेसि कनि भानू । मोहि बिबोहु तोर में कानू ॥^३

धीर इस पर रावण का यह जबाब देना :—

जोअर रहेउ ताहि मुतवासी । धाब निपल मुदाबठं प्यती ॥^४

१ मा. बा. पु. १७०

— २. बा. मु. पु. १७४

३ मा. सं. पु. १४७

४ मा. सं. पु. १४७

कितना उत्साह पूर्ण है। सभा काँड ली बीर रस वा धापार है कितनी इच्छा हो बीर रस का प्राप्ति सीखिये। धर्म एक ऐसा सद्भाव है कि जो समाज से केवल धर्म की रक्षा हो नहीं करता बल्कि उसको बर्बाद करने की धोर प्रकृत करने में सहायक होता है। इसी प्रकार भक्तियोग के समाचार पर निपाद राज के ध्यास्यान में इसी भाव की व्यंजना हुई है।^१ उसमें ऐसा सीधे प्रकट होता है कि उसको उबारता के विषय में धारुति करना बलिष्ठ है। उत्साह का जो भाव बर्षा बीत जाने पर किर्किमा में राम को उत्तेजित करता है। उसमें सन्निहित पुण्याय की भावना दर्शनीय है।

एक बार बैसेह सुधि पाबी।

बालहु जीति जीति निमित्त महु जाबी ॥

बसहु रही जो जीवित हारि।

ताव यवन करि प्राणहु सारि ॥^२

पूरा संभव रावण मंत्राव बीर रस से मरा हुआ है। धारण की गिण्टता के प्रश्न की धमय छोड़ देने पर बहु धारम प्रदर्शन धोर धारम प्रतिपादन का जो बीरता की मूस प्रकृतिपा है। सुन्दर दृष्टान्त है।

पुत्र के पुनर विन राण दोष में प्रवेश करते समय जिन राक्षों में देवनाह अपने पशु की मन्भावित करता है वह बीरता के मन्धार ही है। धोर उनमें जो अधिक है रावण के निम्ननिमित्त दोष पूर्ण राक्ष जिनके द्वारा बहु अपने बीर पुत्र मेषनाह क बच के उरालत पुत्र भूमि में प्रवेश करते समय राम का मसकारता है —

जीठहु जे बट राजुग माहीं, मुहु तापस में ठिन्हु सम जाही।

घात्रु करत तनु कास ह्वान। परहु कठिन रावन के पाले ॥^३

रावण को समाय पञ्चदश का पकारोण कविताबली में उम्माह का मन्धार परिचय देता है।^३ कविताबली के धर्मगत हनुमान का पुत्र की बीरता का प्रदर्शन का एक उन्मत्त उदाहरण उल्लिखित करता है। सभा काँड में उरकाह नामक भाव की व्यंजना उल्लिखित की गई है। इसमें पुत्र व हर्षों का बड़ा ही उग्र विचार हुआ है। बीर रस का बर्तन बीमस हाहोंने तीन धारियों के भीतर लिखाया है। प्रकीर्ण बाल के चारों की धमय नामो धोत्रिकी सीली के भीतर हपर के पुत्रारिये बर्षों की बँध बाली पलो के भीतर धोर अपने नित्र वा सीविका बाली सीला में बीनर सीक तीनों का प्रमग एक एक उदाहरण दिया जाता है।

बसहु बिटप मुधर उगारि परमेस बरकषत।

बसहु बात्रि सी बात्रि यनि गजराज बरकषत ॥

१ भा० धपो० डे १६०-१६२

२ भा० स० पु० ६२४

३ कविताबली सभा काँड १६वाँ पद्य

बरन बाट बटकरन बबोट बरि बर बिर बरगत ।
 बिष्ट कटक बिहरत बीर बागिबि जिमि बरगत ॥
 बंदुर बपेटत पटक मट जपति राम बब बरगत ॥
 तुससीस पबननन बरबन बुड कटु कौतुक करत ॥
 बकि बबोरे एक बारिधि में बोरे एक
 मगत मही में एक बबन उड़ात है ।
 पकरि पछारे कर बरन बबारे एक
 बीरि फारि बारी एक भीजि मारे सात है ॥
 तुससी सगत राम राबन बिबुब बिधि
 बबन्याभि बबोपाठ बंडिका सिहात है ।
 बदे बदे बातइत बीर बसबात बदे
 जानुबात बुमप तिपाठे बातजात है ॥^१

इसमें धनुभाव ही प्रधान है । इसमें धामम्बन बनु है, सचापी शोक-
 डालना धावि धनुभाव और उरसाहू प्रधान है ।

मए बुड बुड बिबुब रबुपति मोन धामक कसमसे ।
 बीरब बुमि धति बंद बुमि मनुजाव सब माण्ड प्रमे ॥
 मंबोदरी बर बंप कंपति कमठ नू भुबर बसे ।
 बिबकरहि विगबज बसन महि महि वैलि कौतुक मुर हसे ॥^२

धनुर्भंग को प्रचण्डता का बर्णन भी परमेश्वर बीरोत्थास पूर्ण है ।
 बरन पर उर्ध्वजित होकर लडमल भी कहते हैं वह भी बीरोत्थास पूर्ण
 बिबेधन पीछे हो चुका है । धनुमय की प्रचण्डता देखिये ।

दिपति बनि धति शुनि सर्व पची समुद्र बर ।
 ध्यान बबिठ हैहि काल, बिबन दिपपाम बराबर ॥
 बिबपद लरकरत पण्ड दसकठ मुक्कपर ।
 मुरबिपान द्विपबानु भागु बंबटिध परस्पर ॥
 बीर बिबध संकर धडिठ, बीर कमठ धहि कसमाली ।
 बहाड बंदे किवी बंद बुनि बबहि राम बिबबनु बन्वी ॥^४

धनुर्भंग क इस बर्णन में प्रबलित उरसाहू का धामम्बन राम ब
 कर्म है ।

१ कवितावली संका कीड ४७

२ कवितावली लखा कीड—सं० सं० ४१

धीर रस जाति का जीवन है। जिनमें मोक्षवासी जी ने अपने काम्य में इनकी सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है। धीर रस के ४ भेद हैं —

- १—दानधीर
- २—धर्मधीर
- ३—गुणधीर
- ४—दयाधीर

तुलसीदास के राम में धीर रस क उक्त चारों भेद चटित होते हैं।

राम की दानधीरता—

आ संपति सिव रावनहि कीन्हि दिएँ दम माय ।
मोह संपदा बिभीषनहि सकुचि कीन्हि रकुनाय ॥^१

गुणधीरता—

कर हुएलु का सग्येस सुतकर राम ने उत्तर दिया —

हम शर्षी सुमया बन करहीं । तुम्ह से बल मुप कोत्रत फिरही अ
औं न होइ बल पर किणि आहु । समर विमुक्त में हृदय न बाहु ॥^२

धर्मधीरता—

धर्म की धर्मधीरता का महान उद्घाटन करते हुए राम विभीषण के पापमम के ममम कहने हैं —

कोटि बिष बष सापहि आहु । पाण सरल तबठ नहि ताहु ॥^३

दयाधीरता—

पापस बटायु को मोह में रक्कर राम धाँसा में धामू मर कर कहते हैं —

जस भरि नयन कहूँहि रकुनाई । ताउ कर्म नित्र ते उति पाई ॥^४

अतः तुलसी ने धीर रस क वर्णन में भी मन्त्री सफलता प्राप्त की है धीर रस रस के संघर्षी उत्साह की भी मन्त्री प्रकार से ध्यायक बनाने की श्रेष्ठ की है। उनका यह प्रयास भी परम प्रसंखनीय है।

कदर रस—

कदर रस का भी उक्त करने बान प्रसंग मानस में बहुत से पाये हैं। प्रतिपक्ष दुष्ट को प्रवस्था से मन में कदर रस का संघर्ष होता है। राम बन ममन का हृदय कितना नर्म मेरी धीर हृदय श्रावक है।

राम चरित में केवल पति पत्नी का ही विधोय नहीं। हममें एक प्रकार से सबका सभी स दुष्ट न दुष्ट विधोय है। राम के मात्री विधोय से सफल की जो

१ मा० सु० पृ० १७४

२ मा० धरम्य० पृ० ४८१

३ मा० सु० पृ० १७०

४ मा० र्ण० पृ० १७८

बधा होती है। उसको तो पोस्वामी जी ने जोड़े में ही टास दिया है। किन्तु लक्ष्मण के ग्राह्य हो जाने पर राम के हृदय में जो पीड़ा उठी है। उसकी कुछ दूर तक कवि सम्राट न बखाने दिया है। मानस में राम की ग्राह्यता वो प्रवसरो पर बोल पड़ी है। जिसमें उनका प्राण्ट का सर्वना निकर कर हमारे सामने घा गया है। इनमें एक तो सीताहरण के प्रवसर पर जब वह पशु पक्षियों से भी सीता का पता पूछने हैं। दूसरा लक्ष्मण शक्ति पर। राम का यह बिसाप उनके भ्रातृ स्नेह को व्यक्त करता है।

जीं बनतेछ बन बभु बिक्रोह । पिता बचन मनतेठ तहि धोह ॥^१

पर न जाने कितना बाद बिसार है वस्तुतः इसमें राम की मर्म व्यथा का ही उत्कर्ष है।

तो भी कबल उस के बर्णन में तुलसी को सच्ची सफलता मिली है। कौशिक्या के प्रसंग में बिसोव की बँसी गहरी धींग व्यापक अनुभूति कौशिक्या को हुई है। दूसरे को नहीं। मानस में उनकी बिसोव बसा का बिचल है। 'तो गीताबनी में उनके बिसोवी हृदय का। उनके हृदय में बँसा उगमाव घा गया है। इसे देखना हो तो इस पर को पढ़ें।

बननी निरबति बान अनुहियां ।

बार बार डर नैननि साबति प्रबहू की लसित पम हयां ॥

बबहु प्रबध ब्यों जाइ अनबति कहि प्रिय बचन सवारे ।

बठु तात बलि मातु बधम पर, अनुज सबा सव डारे ॥

कबहु बहति वा बड़ी बार माई जाहु रूप पहुँ मीया ।

बनु कोलि ज्येइय जो माई नई निघावरि मीया ॥

कबहु समुन्नि बनगबन राम को रही बकि बिज सिखी सा ।

तुलसीवास बह समय कहै तँ भाबति प्रीति तिखी सी ॥^२

इसमें लिखी ली की ब्याख्या क्या करें। सभैत बबस्था में उनकी मर्म व्यथा को जानना हो वा जान लें।

माई र मोहि कोठ न समुझई ।

राम गबन सांचो किधी सपनो मन परतीति न घाई ।

बबइ रहत मेरे नैननि घाये राम सपन घब सीता ।

तबपि न बिटत बाहु या डर को बिबि जो मण बिपरोता ॥

हुन म रई रनुपतिहि बिनोकत, तनु मर है बिनु बैल ।

करत न प्रान पयात मुनहु सति घठनि परी यहि सैले ॥

१. मा० प्रयो० पृ० १२८

२. गीताबनी—घबोप्या कांड—छं० छं० १२

कौसल्या के बिरह बचन सुनि राह उठी सब रात्री ।
तुलसिदास रघुवीर बिरह की पीर न जात बखानी ॥^१

सचमुच रघुवीर का बिरह वाही ऐसा कि उसका बर्णन नहीं हो सकता किन्तु इसका पद्यरामा भी तो कौसल्या को कम नहीं है कि वह पुत्र को बन स बन में मेघ कर पुनः प्रबन्ध था बर्हि । प्रब तो उनके पास यही दोष रह गया है हाथ मलना ।

हाथ भीजियो हाथ रह्यो ।

जयो न संप किन्नकूटहु तं ह्यां कहा जात बह्यो ।
पति सुरपुर, सिय राम सपन बन मुनिवत भरत यह्यो ।
हो रहि भर मसान पावक क्यों मारिबोह भूतक बह्यो ॥
मेरोह हिय कठोर करिके कई बिधि बहूँ कुलिस सह्यो ।
तुससी बन पहुँचाह फिरि सुत क्यों कसु परत कह्यो ॥^२

कोसलामा जी ने बिरह बेचना को धीर भी व्यापक रूप देने के विचार से पक्षियों को लिया है राम के बियोग में जो उनके बोझ की बया होती है उसको दैत कर माता धीर भी इजित हो जाती है ।

रात्री एक बार फिरि घाबी ।

ए बर बाधि बिलोकि प्रपन बहुरा बनहि सिबाबी ।
जे पम प्याह पोधि कर पकज बार बार पुषकारे ।
ज्यों बीबहि मेरे राम साहिने ! ते प्रब निपन बिसार ।
भरत सीतुनी सार करत है प्रति प्रति प्रिय जानि तिहार ।
तदपि बिगहि बिन होत आँदरे मनहु कमल हिय मार ॥
मुनहु पबिक जो राम मिलहि बन कहियो मानु संवेसा ।
तुसमो मोहि धीर सबहित न इन्हको बड़ो प्रवेसो ॥^३

उपर तोतो धीर मैना की यह बया है कि जसमें भी इस व्यापक बियोग का बर्णन दिखती है । पर एह कुतूहल के साथ वह भी वहीं की वहीं रह जाती है ।

सुक सा महबर हिये कई सारो ।

धीर धीर सियराम सपन बिनु सागउ जय धंधियारो ।
पाविनि वैरि प्रयानि राति सुप शित प्रनहित न बिचारो ।
कुमपुत्र सचिय माधु सोचनु बिधि का न बसाह उबारो ।
प्रबसोके न प्रसत भरि सोचन नगर कोसाहल भारो ।
मुने न बचन बानाकर के अब पुर परिवार समारो ।

१. कीटावली—प्रयोप्या कांड—छं० सं० ११

२. कीटावली प्रयोप्या कांड—छं० सं० ८४

३. कीटावली प्रयोप्या कांड—छन्द सं० ८४

भैया भरत भावते के संभ बने सब सोम विचारो ।
 हम पंख पाइ पीवरति तरसत अधिक प्रभाव हुमारो ॥
 सुनि सब कहत प्रंख मोगी रहि समुझि प्रेमपय ग्यारो ।
 यए ते प्रसुद्धि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम पूज बारो ॥
 बीचन जप जामनी संकल को मरन महीप संवारो ।
 तुबसी धीर प्रीति की बरबा करत कइया कछु चारो ।^१

नहीं राम के वियोग के दुखो तो सभी हुए किन्तु सबाने जैसे जैसे जैसे सहा
 भी । यह किसके हेतु घसहाम हुआ यह के बरारण । इसी हेतु उनका मानसिक
 पस्वाताप दर्शनीय है ।

मुण्डु म मिर्दपो मेरी मानसिक पछिटाइ ।
 नारिजस न विचारि कोन्हों काज सोखत राउ ।
 तिलक को बोस्यो दियो बन चौकुनो चित बाइ ।
 हृदय बाकिम ज्यों न बिहरयो समुझि सील सुनाइ ॥
 गीय रजुबर मयन बिनु नब मजरि मनी घाइ ।
 मोहि बुझि न परत मारें कोन कठिन कुचाइ ॥
 सुनि मुर्मंत कि धानि सु वर सुवन सहित जिघाउ ।
 बास तुलसी गतव मोकी मरन-धमिय विघाउ ॥^२

उपयुक्त उदाहरणों में ये माता कौसिक्या के 'परिबाई मुतक बहया है धीर
 पिता बरारण के 'मरन धमिय पियाउ' में क्या कहा रस है । बेचना की यह ही प्रीति
 कभी भी बन्ध नहीं है। सकती । यह ही प्रबन्ध की समाप्त स्थिति को स्पष्ट करने के
 हेतु सर्वत्र सुनी रहता है ।

इसका धमिप्राय यह नहीं कि बरारण मरण के समय का शोक साधारण था ।
 नहीं ऐसा बात नहीं । महापुत्र बरारण की मृत्यु के शोक प्रबन्ध में उनका यह इतना
 भीषण था जिसके विषय में मोरबामी जो ने स्वयं लिखा है ।

पर नकान परिजन जनु सुना । तुन हित मोत मरहुँ जमभूता ॥
 बाकहु बिटप बैलि कुम्हिसाही । अरिठ सरीवर बलि न जाही ।^३

× × ×

महाविपति विमि जाइ बकाया ।^४

× × ×

१ गीतावर्त — प्रयाग्या कांड — उप्य सं० १६

२ गीतावर्त — प्रयाग्या कांड — उप्य सं० २७

३ मा० घया० पु० १०६

४ मा० घया० पु० १२१

सुनि विनाप बुकहु दुसु साना । धीरबहु कर धीरजु भागा ॥^१

×

×

×

धर धर रदनु करहि पुरजामी ।^२

इसमें राजा पालम्बन बनकी मृत्यु उद्दीपन विनाप करना केकेई को गाली देना विवाह स्मरण आदि सुबारी से पुष्ट शोक मान की व्यंजना करता हुआ यह कदण रस वा सुन्दर उदाहरण है ।

महाराज दशरथ के पक्षि मूक भेने पर बैसा शोक नहीं समझा जैसा कि राम के बन नगन के पक्षर पर उमड़ा है । दशरथ का मियन ऐसे पक्षर पर हुआ जबकि पक्षर में उनका कोई भी उत्तराधिकारी नहीं रह गया था । राम लक्ष्मण बन को आ बुके ये धीर पण्ट पाञ्चन घनी मन्त्रिहास में ही पड़ गये । ऐसी स्थिति में तबको राज्य की विन्या हुई धीर ममी इन तर्क विचर्क में पड़ गये कि भरत पाकर क्या करेंगे । अगर राम धीर इधर भरत की स्थिति में स्नेहियों को अपने घान में समेट कर ऐसा प्रकृतिमा कि दशरथ के हेतु किसी के हृदय में उठना स्वान ही नहीं रहा किठना ऐसे पक्षरों पर स्वभावतः रह सकता था । उधर दशरथ सका झुंके बटापु की निश्चिन्ता यह है कि उसकी राम की गोब में मरने में जो घान्तर घावा है वह जीवन में नहीं । घट उनके प्रति भी शोक का स्थान नहीं । सब रही विपत्त की बात । विपत्त में कई पक्षरों पर शोक का प्रसंग घामा है । पर नहीं भी गोस्वामी जी ने उसे विनाप करने में घामे नहीं बनने दिया । इसका कारण एक ठो गोस्वामी जो की प्रकृति है धीर बुधरा है पात्र के प्रति लोगों की पक्षता । मयनाद कुम्भकरण धीर पाबल बैठी धीर मोठामों के निबन्ध कर सिनयो रोती घबदत हूँ पर साथ ही उनके हृदय में यह भी भाव बना रहना है कि राम के बिरोध का परिणाम यही होना था । पाबल जैसे प्रतापी बँर के प्रति उनका पत्नी मँरीदरी की जो भावना है वह उसके शोक को बहुत दूर तक फैलने नहीं देती धीर पण्ट में सबका समेट कर उस राम बात बना देती है । वह कहती है —

राम बिमुक घस ह्याल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोबनिहार ॥

तब बस बिधि प्रपंच सब माया । समय विधिप निउ नबहि माया ॥

घब सब निर भुब जँहुक ग्याही । राम बिमुन वह घनुचित गाही ॥^३

तात्पर्य है कि मानव में बैरना या शोक उमड़ता है वह घनिष्ट के कारण नहीं घनिष्ट की विन्या में । तुलसी में घनिष्ट को विन्या पक्षर को विन्या शोक मान विन्या है वह पक्षरुँनाय है । काव्य के बीठी कदण विचर्चका का बर्णित है बीठी ही मानव में कदण लमाय की बी ।

१ मा० घयो० पृ० १२१

२ मा० घयो० पृ० १२१

३ मा० लं० पृ० ११८

कैसेमी और बघरब का कोप भजन हो इसके हेतु पर्याप्त है और सारा अयोग्याकार ही इसका प्रमाण है। अथवाबासी ऐसी स्थिति में एक दूसरे से मिलकर जितना शोक मग्न होते हैं। उनका एकांत में नहीं। तुमसी को यह विवेकता विवेक रूप से विचार लीय है। इसको देखते हुए मानना पड़ता है कि शोक की बीबी परब तुमसी की है बीबी और किसी को भी नहीं। अंतर रामचरित में अथसूति ने राम को बताया है। पर उनका रोना सबको नहीं भाया। भास में राम रोते नहीं पर अथब की सुधि पाते ही उनके नेत्रों में भी जल समा जाता है। भास में मन सभी का रोना है पर रोने का काम किसी का भी नहीं है। सभी को अपने धर्म और कर्म की चिन्ता है। अतः भासमें जो कष्ट का कारण बिलसाई होती है वह अविष्ट की आशका से उत्पन्न होती है और बीरे बीरे बहुत ही व्याप्त होती जाती है। वास्तव में तुमसी ने विचार को बाह्यी के रूप में बहाया है। पर कहीं भी उसको बाधा नहीं होने दिया है। इसी से इसकी अनुसूति भी संकीर होती है। जो मुख्य से निकल कर हृदय में बैठती और उनको कष्ट का घर बना लेती है।

बोस्वामी जी ने शोक के प्रसंग में इतना और भी किया है कि काम और शोक को एक साथ ही एक प्रसंग में लाकर खड़ा कर दिया है और अन्त में सरलता से यह बिलसाया है कि काम और शोक का परिणाम अन्त में शोक हो जाता है। अथरब में काम और कैसेमी में शोक यही तो शोक भजन की सीमा है। अथरब अर्थ में प्राकर अब यह कहते हैं :—

अनहित और प्रिया कोई कौनू। केहि दुइ सिर केहि जमु यह लीनू ॥
 बहु कहि रंकेहि करी नरसू। बहु केहि सुपहि निकारी देसू ॥
 मकरंद तोर धरि अमरठ मारी। काहू कीट बगुरे नर नारी ॥
 जानधि मोर मुमाड बरोक। मनु तब पानन पर अकोक ॥
 प्रिया प्राण सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रभा सकस बस तोरें ॥^१

तब काम की दृष्टि में कोई कड़ी बात नहीं होती फलत उधर से भी वही लीबी-मी बात निकल पड़ती है।

मुनहु प्राणप्रिय भावत जी का। बहु एक बर भरतहि टीका।
 मापत हुतर बर कर बोरी। पुरबहु नाप मनारय मोरी।
 सापत बब बिचपि उखाडी। नीरहु बरित रामु बनवासी ॥^२

बात बहुत लीबी पर परिणाम केना अर्थकर हाथा है। राधा की मृत्यु और राम बनवदन तथा अरठ की उपस्था। और यह विचार बर बर में फैल गया। मन्त्री के भी नेत्रों की प्रवृत्ति बंद पड़ गई। बोस्वामी जी ने काम और शोक में जितने जुने रूप को पहले ही भिषिला में लिया था और यह बात भी दिया कि इहकन परिणाम

मुहुर ही क्या हुआ । काम और ज्ञान की स्थिति को ठीक ठीक समझ कर उतार
द्वारा इष्ट तक पहुँचने का मार्ग यदि हूँ निभासना ही तो तुमसे के मानस का
प्रवर्तन करें ।

कहण उस से सारा अयोध्या काँड ही प्राप्तबिध हो रहा है । कौन ऐसा ब्रह्म
हृदय होगा जिसके पैर इसके पाठ से मधु पूर्ण न होते हैं । उस समय को प्रवस्था
विचारिये जब कौशिक्या ने राम के मुख से उनके मन जाने की बात सुना उस समय
उनकी प्रवस्था यह हुई ।

ब्रह्म द्वितीय मधुर रघुवर क । सर सम लय मातु उर करक ॥

सहस्रि सुनि सुनि मातलि बानी । त्रिमि त्रबास परे पावस पानी ॥^१

परम प्रिय पत्नी तथा परम स्नेही बभ्रु के साथ राम बन जा रहे हैं । उस
समय पर वालों की बात कौन बतावे तब बालियों की दशा देखिये :—

- ब्रह्म रामु सखि प्रवध घनाया । बिरस लोग सब साथे साबा ॥^२

अयोकि उनके विधोय में :—

- सार्वति प्रवध भवार्जनि मारी । मानु कासरति धंविपारी ॥^३

घोर ठपर पौड़ों की प्रवस्था भी राम के विधोय में बड़ी विचित्र है ।

देकि बजिन बिनी ह्य हिहिनाही । अनु विनु पंक्त विहम प्रकृताही ॥^४

इतना ही नहीं यह भी :—

तहि पुन बरहि म पिमहि बभ्रु मोर्वाहि सोचन बारि ॥^५

पौड़ों की यह वसा देख राम के परिवार की बदला की पाह लगा लीजिये ।

इन पंक्तियों में कहण उस का शीत महा है । इन रूपस को विपर विवेचना गत
शीर्षक 'तुमको की संदीत घोर विनात्मकता न प्रन्तर्गत की जा चुकी है । इसी हेतु
कहण उस के प्रसंग में उनका उचित मर लिया गया है ।

कबि एक कहण बिच उत समय धंकिठ करत है जब बहु कैकेयी द्वारा उसके
घोरो बरबाओ के प्रवट क्रिये जाने पर राजा की रजा का बलन करते हैं । सहवर्ती
सात्विक धनुमाबा रत्नम् स्वर भंग और विबलताक समावदा से यह बिच पूरा हो गया
है । एक ऐसा ही बिच पुन कबि उत समय प्रस्तुत करत है जब उत बरदान को वापस
करने की प्रार्थना पर त्रिमका सम्बन्ध राम के मनबाम से था । बभ्रु राजा की प्रस
फमता का बर्लान करते हैं । यह भी प्रभाव घोर स्वर भंग जैन धनुमाबा के समावदा

१ मा० धयो० पृ० १०२

२ मा० धयो० पृ० १०६

३ मा० धयो० पृ० १४४

४ मा० धयो० पृ० १४४

५ मा० धयो० काँड दोहा सं० २२

द्वारा पूर्ण हो गया है।^१ पुनः एक ज्ये ही चित्र का उद्घाटन मोरबामी श्री द्वारा उस समय होता है जब वह राजा की उस बन्नीय दशा का चित्रण करते हैं जिसमें राम उन्हें प्राप्त करते हैं। यह चित्र भी प्रसन्न और मरण सम्बन्धी भावों के समावेश से पूर्ण बन गया है।^२ पर राम के मन मन से सुमन्त को जो बिच्छु बचस्वा है उसमें दम्भीय और कष्ट क्षायक ही प्रीति कोई दृश्य हो।^३ हमसे इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के शोक सम्बन्धी जलण यह है। शोक में चित्त में स्थित विचार समस्त ही शक्तियों का शोषण कर लेता है। शरीर की सुख सुख नहीं रहती जैसे वह प्राण विहीन ही गया है। वह झूठ जाता है अज्ञ प्रत्येक सिद्धि हो जाते हैं। वे शक्ति हीन और शीमे भी हो जाते हैं। शोक्षित व्यक्ति साँस अष्टपूर्वक से पाता है थोड़ी थोड़ा और पर उरी शीमे स्वास प्राप्ती है। कण्ठ सूख जाता है। बीच बीच में जब क्या लौटती है तो पम ना बुटने समता है। शोक के इन सज्जियों को हमारे कवि सम्राट ने सुमन्त की व्यापक के चित्र में कठे स्वाभाविक रूप से समाविष्ट किया है। अपने पुन के बनवास और पति की मृत्यु पर कौशिक्या की व्यापक जो बरत से जब वह अपने मामा के घर से लौट कर आते हैं उनमें मिलते समय पूर पड़ी है। यह अपने रंग को अनुपम है। इसमें जितना अभिप्रेक्षण नाभीर्य है उतना ही भाव प्रस्तुत भी।^४ भीतावनी में कस्तुर रस की एक सज्जत व्यंजना उस समय हुई है जब कविता कानन केसरी मोस्वामी जो सीता के निर्वातन का विवेचन करते हैं।^५ और उनको मन में छोड़ कर वापस होते हुए मरमण को सम्बोधित निर्वातित सीता के ईश्वरपूर्ण निवेदन को कवि ने इतना कदम बना दिया है कि उसे सुनकर प्रत्येक हृदय एक बार पसीज जावेगा। किन्तु उस पर रघुर्वंश भी छाया स्पष्ट है।^६ अतएव मोस्वामी श्री के कस्तुर रस का चित्रण अत्यन्त हृदय शान्क पञ्चति में किया है। अक्षर के मरण पर यह शोक अपने पूर्ण दशा को पकूच जाता है। उन समय अयोध्या की दशा क बरण में पाठकों को कस्तुरा भी ऐसी चारा दृष्टिगोचर होती है। जितमें पुरवाशिनी के साथ वह भी मम हो जाते हैं। मोस्वामी श्री द्वारा चित्रित राजकुल का यह शोक ऐसा है कि जिसके नावी केवल पुरवाशि ही नहीं मनुष्य मात्र हो सकता है। क्योंकि यह शोक ऐसे धामन्वज के प्रति है जिसका रचपात्र भी कुल को केवल मनुष्यता रखने वाले सभी करणाग्र हो सकते हैं।

दुःखान्त काव्य एक ऐसी महाभारण विपत्ति को अपने में लपेटे रहता है।

१ मा० अयो० बी० नं० ३५

२ मा० अयो० बी० नं० १३-४

३ मा० अयो० बी० १४२-१९

४ मा० अयो० बी० (१५-१६)

५ भीतावनी उत्तर बाँध—पृष्ठ सं० २८-३२

६ रघुर्वंश सर्ग १४

जिनमें किसी उच्च पद वाले व्यक्ति की मृत्यु का समावेश रहता है। इसमें महाराज वररथ की मृत्यु प्रथम में एक ऐसी बड़ी दृश्यरस उत्पन्न कर देती है। जिसे दुस्तान्त नाटक की पराकृष्टता हो कहनी चाहिए। पर तुलसी की कल्पना इसके विरुद्ध है। एक तो तुलसी हमारा ध्यान एक ही व्यक्ति में केन्द्रित नहीं करते दूसरे वह केवल मृत्यु की ही जीवन की महान कल्याणजनक घटना नहीं मानते। प्रारम्भ में महाराज वररथ हमें दुस्तान्त कविता के चरित्र नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। जिनकी बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों के चित्रण में पाश्चात्य जगत के दुस्तान्त सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों का समिश्रण हो जाता है। वह एक साम्राज्य के सम्राट हैं और उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में तुलसी यही लिखते हैं कि यदि बिना अपने समय से पहले अपने ही मत्तार को मत्ता कनेव कैने न हा।^१ तुलसी की दुस्तान्त काव्य रचना की विशेषता यह है कि उन्होंने नाटकीय कीर्तन के साथ महाराज वररथ के मानसिक समिपाठ का बर्णन आत्म्य मानसिक चरित्रों में किया है। जिसका प्रारम्भ यह है—

राम राम रट बिहस मुमानु । बनु बिनु पंच बिहस बेहामु ॥^२

वररथ के आन्तरिक भावों के उच्चरण का बर्णन ऐसे कल्याणजनक चरित्रों में हुआ है कि शत्रुओं को बिना श्लोकावर जिये नहीं रहा जा सकता। भरत के पादरी पूर्ण विचार में यह शोकापवाद ही उनके शत्रु पर्यन्त दुस्तान्तक है कि वे अपनी माता के शत्रुत्व में सम्मिलित हैं। तुलसी ने भी उनके इस दुःख का ऐसे विस्तार के साथ बर्णन किया है कि हमारे हृदय में उनके प्रति कल्याणपूर्ण भाव का भाव उत्पन्न होता है। भरत की रक्त बहते हैं जो कण्ठा रस से घोल प्राप्त हैं।

माहि तमान को पाप निबामु । जेहि जमि छीय राम बनबामु ॥

राय राम बहु काननु बीन्हा । बिभुरत यमनु धमरपुर कीन्हा ॥

मैं सहू सब धमरप कर हेतू । बैठ बाल सब मुनउ सजेतू ॥^३

घत गोस्वामी जी का काव्य कल्याण रस के चरित्रों से घोल प्रीत है। जहाँ भी अपनी रचना में धमर विना गोस्वामी जी ने इस रस की तरंगिणी प्रवाहित कर दी है।

धनुज रस—

धनुज रस के भी कुछ अच्छे उदाहरण मानस में मिलते हैं। मोह प्रसव सती को जो राम ने अपनी धनुज रूप दिखलाया है। वह भी धनुज रस का अच्छा उदाहरण है।

प्राश्चर्य में विचार और हर्ष की स्थिति मिली रहती है। प्राश्चर्य में आत्मिक को विशेषता होती है और उसके कार्य को भी। धनुज रस धनुज ही होता है।

१ समवादा—बिरबसाहिर्य में रामचरित मानस—प्रथम संस्करण पृ० ४०

२ मा० धया० पृ० २७६

३ मा० धया० पृ० ३९७

उपमें बिम्ब की रसा भी व्यस्त होती है। योन्वासी तुलसीदास ने राम के व्यस्तुत चरित्र में व्यस्तुत रस की व्यञ्जना तर पूरा की है। इसके अनेक प्रबन्ध मास में प्राये हैं। त्रिपने सर्व प्रबन्ध सतो का मोह है और इनका अन्त है काकसुमु कि मोह में। इसके अतिरिक्त सुकु प्रसंगा में भी व्यस्तुत रस बिम्बनाया गया है। किन्तु इस रस का समुचित परिपाक राम के व्यस्तुत चरित्र में हुआ है। इस व्यस्तुत चरित्र को देख कर सती की निम्बि यह हो जाती है।

नयन मूर्धि बैठी नयमाही १

साध्य यह है कि प्रति व्यस्तुत से प्राप्त ही उत्पन्न होता है। कुछ हस्त नहीं। पर यह व्यस्तुता उमी की होती है जो इसे देखा है। सामाजिकों को ता इसमें भी भाग्य ही भाटा है। हमारी दृष्टि में जो बाग नहीं पातो और त्रिसे हम ठीक ठीक नहीं समझ पाते नहीं तो हमारे विनय का कारण होते हैं और हमारी प्रति में भी बिम्बिता होती है। अस्तु इस व्यस्तुत का बर्णन कवि ने अग्य कर्णों में भी किया है। हनुमान के पराक्रम में प्रायः इनके बर्णन ही हो जाते हैं। उनकी सिमुलीका को लीजिए —

मानु सी पङ्क हनुमान पण, मानु मन
पनुमनि सिमुलीका किन्तो केरधर सो।
पाधिने पयनि नम यगन मयनमन
अप को न भ्रम कपि बाजक बिहार सो ॥
कोनूक बिलोकि सुरपाम हरि हर बिधि
कोबननि बकाबो विननि सवार सो।
बल कीयी वीरगत वीरज के साहस के
मुनकी सरीर जरे मजनि को मार सो ॥

इसमें व्यक्त है कि हनुमान बोड़ी सी व्यस्तुता में कितना महान काम सम्पन्न करते हैं। एवं भीड़ होने पर :—

लीजही उपाणि पहार बिसाभ, बायो तेहि फस बिसम्भ न भायी।
मादतनम्भ माधु को, भन को जगदाभ की रूप सजामो।
ठीसी सुरा तुसनी कहती, पं द्विये उपमा को समाह न पायो।
नाता प्रतम्भ परम्भत की नय लीज समी कपि मी पुकि बायो ॥२

इस पर के समय बर्णन से जो चित्र सामने खड़ा होता है उसके व्यस्तुत होने में कोई भी शक्य नहीं। गगन जगहन के बीच पहाड़ की एक लीक जग्य जाना कोई साधारण व्यापार नहीं है। इस व्यस्तुत रस की योजना भी एक स्वभाव सिद्ध व्यापार

१ मा० का० पृ० ४६

२ कवितावली—हनुमानकाव्य—पद सं० ४

३ कवितावली—सङ्का कवि—पद सं० २७

ने आकार पर हुई है और यह योजना गोस्वामी जी का प्रकृति निर्देशण भी सूचित करती है कि अत्यन्त बेम से गमन करती हुई वस्तु की एक सकोर ची बन जाया करती है। इस बात पर कवि की दृष्टि गई है। जिसकी दृष्टि ऐसी सूक्ष्म वस्तुओं पर नहीं आ सकती वह अपने को कवि कहाने का अधिकारी नहीं। अद्भुत रस के इस वर्णन में गोस्वामी जी की बिम्ब व्यापार अद्भुती प्रकृति सजित होती है। जो हिन्दी के और किसी भी कवि में उपलब्ध नहीं होती।

गोस्वामी जी ने राम के शीस और शीर्ष्य को भी व्यक्त करने के हेतु इस रस से विशेष काम लिया है। राम मुगया लेस रहे हैं फिर भी मुग भागते नहीं है। प्रसुत उनकी देखते ही रह जाते हैं।

सग आरिह आठ बनाइ कम कति पानि सरासन सायक सँ ।

बन केसत राम फिर मुगया तुसरी छवि मो बरनै किमि कै ॥

अबलोकि असीकिक रूप मुगो मुग चौकि बके चितनै चित है ।

न इये न मये जिय जानि सिनीमुख पंच बरै रतिनायक है ॥^१

राम के सीकिक कर्मों को देख कर माता कौशल्या को महसा बिदबाम नहीं होता। वह आश्चर्य के साथ राम से पूछती है —

मुनि पर जनमो बारि फोरि बारी ।

क्यों तोस्यो कोमल कर कमलनि सभु सरासन भारी ।

क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताहुका मारी ।

मुनि प्रसाद मैरे राम सपन की बिधि बकि करबर टारी ॥

जगदरेणु सँ नयनति लाबति क्यों मुनिबधु जपारी ।

कहाँ भी ताता क्यों जोति सकस भुप बरी है बिबेहकुमारी ।

तुसह रोप मूरति भूषणति अति भूपति निकर जयकारी ।

क्यों सोप्या सारंग हारि हिय करी है बहुत्र मनुहारी ॥^२

तुसरी ने बात बाँड में कौशल्या को जो अपनी बिराट रूप दिसाया है वह भी अद्भुत रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार

बेधरुषा मातहि निज परमुन रूप अछंड ।

रोम रोम प्रति नारी कोटि कोटि बहूड ॥

अनति रवि समि निज अतुरात्म ।

बहु धिरि सरित सिधु महि नामन ॥

नाम नर्म पुन म्याग सुबाहु ।

सोउ देगा जो मुना न काहु ॥^३

१ कवितावली—अयोप्या बाँड—छं० सं० १७

२ कवितावली—बास बाँड—पर मं० १०७

३ भा० बा० पृ० १४१

इसमें वाचस्पत्य राम धामय कीशिका अनुभाव राम के विराट रूप का
रूप रूप धारि उद्योग तनु पुलकित धारि अनुभाव बड़ा नेत्रों को मुख मैला मय
धारि संचारी इ स्वामी विस्मय है। इस प्रकार यह पदसुत रस का बड़ा सुन्दर
बनाहरस है। इसके वर्णन में उन्होंने ऐसे सध्व भी जाल दिये हैं जो पदसुत रस की
वाच्यीय व्याख्या में प्रयुक्त होते हैं। अतः कोटवामी जी में पदसुत रस का भी बड़ा
पदसुत वर्णन किया है।

हास्य रस—

मानस में हास्य रस का उत्तम परिपाक सिद्ध जी की बचत धीर नारद मोक्ष
के प्रसंग में हुआ है। तुलसी के सम्पूर्ण काव्य में हास्य का बड़ा ही सुन्दर विमल
रुपा है। 'स्मित हास्य शिष्य हास्य मुक्त हास्य बहुधास्य व्यंग्य हास्य धारि हास्य
की अनेकों कोटियाँ हैं। अतएव मानस में इस प्रकार के हास्य का अभाव नहीं। धाम
हम देखते हैं कि जब कहीं निपाद का अभाव है तब कहीं किसी को दुर्ब भी होता है।
देवताओं को दुर्ब भी अर्थ के विवाह में ही होता है। अतएव इस प्रकार के हास्य के
सम्बन्ध में धर्मिक न कह कर देवता यह चाहिये कि तुलसी ने सुपरी धीर मुमुक्षु हास्य
को अति विधित किया है। राम के प्रसंग में निपाद को छोड़ जाना कभी भी ठीक न
होता। निपाद की भाव मरी जोली बाणी में जो रस राम को मिलता है वह हमी
में छूटे बिना नहीं रह सकता। देखिये :—

राजरे होय न वाचिक को पयधुरि को मुनि प्रमाद महा है ॥

वाहन से बस बाहुन काठ का बौमल है जल जाइ रहा है ॥

पावन पार्य पखारि नै नाथ बनाइहो पायमु होव बड़ा है।

तुलसी मुनि केवट के बर हुँमि प्रभु जानकी धीर हुआ है ॥११

केवट के बर वैन' में जो भाव भरा था वह धाम बस कर किलो धीर हा
रूप में व्यक्त हुआ धीर कलनः राधक को भी 'इहा को अर्थ 'हरि हरि कर
हैमना पड़ा।

प्रमुदय पाइ क बीसाइ काम बरनिहि

बरि नै चरन बहु बिनि बँठे धेरि धेरि।

सोरो मो कठीया बरि प्राणि पानी संभाऊ को

धोइ नाय धीयत पुनीत धारि धेरि धेरि

तुलसी मरार्ह ताको भाव जानुपाग सुर।

बरवै सुमन जय जय कई धेरि धेरि।

बिबुप समेइ नाभी बानी धरवामी मुनी

हुँवै रापी जानकी सधन तन धेरि धेरि ॥१२

१ बरिठावली—प्रयोग्या वाङ्—पर सं० ७

२ बरिठावली—प्रयोग्या वाङ्—पर संख्या १०

राज्य की इस हंसी का मूतनाथ की उस हंसी ने पिला कर देखिये तो पता चले कि पालक और संहार की हंसी में कौता मेव होता है और यदि बिष्णु और महादेव के हास्य को एक साथ देखना हो तो शिव बिबाह को सीत्रिये । वहाँ शिव की बायल को देखकर मुर भी ईमने हैं और मुर जाठा बिष्णु भी ऐसी स्थिति में हंस कर रहते हैं ।

बिष्णु बहा घसि बिहनि तब बालि बरुन बिसिरात्र ।

बिलस बिलप होइ बसतु मब नित्र नित्र सहित समात्र ॥^१

यहाँ की मूतनाथ को अपना समात्र की मूभी तो जगूनि भी अपने गंगा का टेरा और परिणाम यह हुआ कि —

माना बाहुल माना बपा ।

बिहसे शिव समात्र नित्र देला ॥

बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहु ॥^२

इत्यादि मान्य बात नाँव में यह बायल जब नगर के निवट पहुँची तो प्राणु-बानी लने लोग धाये तब :—

द्विप हरयै मुर तन निहारा ।

पर — शिव समात्र बब इतन भाये ।

बिहरि अपने बाहुन सब नात्र ॥^३

एक ही घातम्वन में क्रिया के हृदय में भय किसी के हृदय में हर्ष का संचार क्यै होता है इसका यह दिग्ग उदाहरण है । बसका वा भयभीत होना कितना स्वाभाविक है । बच्चों को डरा कर प्राय भी घातक मूटने चाये कम नहीं हैं । इसके प्रतिरिक्त यदि हास्य का पूरा परिपाक देखना हो तो मारक मोह सीला को ल मोक्षिय । तीन निधि राजा की बिबल माहिनी कय्या का देख कर मारक मोचने हैं ।

अप ठा बसु न होइ तेहि काला ।

है बिधि मिसहि कबल बिधि काला ॥^४

और स्वयंवर में —

पुनि पुनि मुनि उरुसाहि अकुलाहा ।^५

में ता योग्यायी जी ने प्राय हास्य रस जड़ल हो दिया है । मारक वा जो इस स्वयंवर में उदाहाग हुआ उसका रूप यह बिबला कि उनके हृदय में श्रौण जयप्रप हुआ और रमारान के 'मुनि बहूँ चमे बिधम की नाई' कहने पर ता बहु बरस ही पदा ।

१ मा० बा० पृ० ७०

२ मा० बा० पृ० ७०

३ मा० बा० पृ० ७२

४ मा० बा० पृ० ६७

५ मा० बा० पृ० ६८

हास्य के बाद रौद्र का ऐसा रंग कहां मिल सकता है। उसके बिना भी तो अनुपम ही है। रमावलि धीर उमकी लीला। हास धीर अपहास के साथ परिहास भी बसा करता है। तुलसी ने इसके विश्वज्ञान में भी कोई बूझ नहीं की। यदि बिबिध भावों से भरे हुए हास को बखाना हो तो तुलसी के बाबरो 'बाबरो नाहू मन्थानी' वाक्ता पर बैठें। इस पर में तो हास्य रस अपनी चरम सीमा पर पहुँच बना।

बिन्ध्य के बासी उशासी उपोन्नतचारी महा बिनु गारि दुखारे ।
 यौवमसीय ठरी तुलसी सो कथा सुनि मे मुनिदृष सुखारे ॥
 हैई सिता सब अग्रमुर्खा परसे पर मंजुल-कव्य तिहारे ।
 कीन्हा भसी रहुनायक्यू करुना करि कानन को पनु चारे ॥^१

हास का दृष्टि से हास्य का जो धर्मो तक बिचार हुआ उसमें हर्ष का सम्बन्ध उन्नास देखन में नहीं आता। बिन्ध्य में जो प्रसन्नता होती है वह कौसी बागर्तों में बिलसाई देता है कौसी नरों में नहीं। हनुमान की प्रथम सम्प्रतिता पर जो हर्ष बागर्तों का होता है उसकी गोस्वामी जी न निम्नलिखित पद में कौसी उशीर व्यंजना की है —

पपल निहारि किसकारी चारी सुनि,
 हनुमान पहिचानि मये धानर सचेत है ।
 बुद्धय बहान बन्धी पबिक समाज माना
 मानु जाय जानि सब संकमान देत है ॥
 बँ बँ जानकीस बँ बँ मपल कगीस कहि
 कूर कपि बीनुषी गचत रेत रेत है ।
 संबर मयंर नल नील बससास महा
 बालनी किराबै सुख नामा बधि सेत है ॥^२

गोस्वामी जी ने हास के धर्मों पर बल बिन प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ को बिबेचना पीछे हो चुकी है। मंगल में सुपन्नता की इस बात पर भी प्रबन्ध ही हौसी पावेगी।

तुम सम पुरप न मो सम गारी । यह संज्ञा बिबि रचा बिचारी ॥
 धारें पर ल'गि गहिबं कुमारी । मनु माना कसु सुम्हहि निहारी ॥^३

जमा स्ना हमारे किसी भी पाठक के देखने सुनने में नहीं आई होगी। इसने बाजारी श्रिया की भी नाक काट ली थी। प्रख्या हुआ इनको नाक भी काटी गई। इसकी बराबर सबमण्डल का भी आई ने हौसी कर्मे की उर्मय पा गई।

१ कबितावली—सपोष्या काव्य—वा० सं० २८

२ कबितावली—सुन्दर काव्य—वा० सं० २६

३ वा० प्ररम्भ० पृ० ४८२

प्रभु समर्थ शोचसपुर राजा । जो बसु करहि उलहि सब छात्रा ॥^१

इतना ह्वेन पर बिधेयता यह है कि गोस्वामी जी का सिष्ट हास्य रिमत् हास्य के मन्तमंत घाता है अतिहसित की कोटि में नहीं। गोस्वामी जी का हास मर्यादा संयुक्त है। बड़े सोंगों का हास है। उस पर अहस्य रमित है। निराहास नहीं। यह मोह घोर प्रहकार को छुटाने वासा था तो मारक कह उठते हैं।

मैं दुर्बलन कहे बहुरे ।

कह मुनि पाप मिटिई किमि मेरे ॥^२

भयानक रस—

भयानक रस का दो बार जगह ही गोस्वामी जी के नाम्य म विमल हृषा है। गबल के लोच बनने पर युद्ध भूमि का हृष्य भयंकर हा गया था^३ इसमें लोच अत्साह घोर कुपुत्सा में एक साब बाबा जोल रक्खा है किन्तु यह तो राम का स्फुट रूप रहा जो कहीं कहीं रग भूमि म ही दृष्टिगोचर हुआ। इधर लंका में जो लक्ष्मी प्राग लगी है वह किसी भी बाबादि से कम नहीं है। वहां की स्थिति तो घोर भी भयंकर है।

बरठ निरैत बाघो बाघो सागि प्रागि रे ।

कहाँ ठाठ माठ भ्राठ भयिनि भामिनी भाभी

छाटे छाटे छोहरा घमागे मार भागि रे ॥

हाथी छोरो बौड़ा छोरा महिप वृषभ छोरो ॥^४

किन्तु यह पुकार उस भयानक भय के सामने कुछ भी न कर सकी। जायें भी तो लड्डा निवामी कहीं जायें। भय की घातुमत्ता में उन्हें बाहर ही चारो घोर दृष्टि गोचर हो रहा है।^५ अनुभवं होने पर भी कैंता भयंकर मार होता है।

मरे सुबन घोर कठार रब रवि बाजि तजि मारपु बसै ।

बिबहरि विगम डाल महि अहि कोल बुद्धम कसमते ॥

मुर असुर मुनि कर कान बीन्हें सकल बिरस बिचारही ।

को दंड लखै राम तुलसी जयति बचन उचारही ॥

कवि बँदियों को एक महान समिष्ट की घना से वसित दिखाते हैं। जब यह संवरा के द्वारा मुनाय हुए भयंकर परिणाम का विमल अपने अतिरिक्त में खींचती है। यह माव विमल यद्यपि संशय का में हुआ है पर कवि न हमे मय का घति मुन्दर

१ मा० अरण्य० पृ० ४ ३

२ मा० बा० पृ० १०१

३ मा० लंका पृ० ११०

४ बबिताबनी—मुन्दर बाँड—पह सं० ९

५ बबिताबनी—मुन्दर बाँड—पह सं० १०

रूप दे दिया है।^१ अतः ममानर रस का निर्वाह भी कवि राज ने बड़ी सफलता से किया है। लड्डू बहुत बर्तन में तो कवि ने इसे सबीबता ही प्रदान कर दी है।

बीमल रस—

बीमल रस का वर्तन प्राचीन काव्य में केवल कुछ मन्त्राद्यधर्मों के प्रसंग में आया है। प्रायःकत ही अनेक ऐसे स्थान देखने में आते हैं जो बीमल रस का उद्बोध करने में साधन बन सकते हैं। जैसे अस्वत्थान पशुबधामय घोर सङ्घर्ष पर एकत्रित कुड़े के डेर। प्रायः कल के धातुनिक सुवर्षि सम्पन्न लेखकों घोर कविता में भी इसका वर्णन किया है। पर मानस में इसका वर्णन तो ही स्थलों पर हुआ है। राम रावण युद्ध में घोर खरहूपण युद्ध में कुपुष्पा का भाव अपने मामा के यहाँ से सीतल के पक्षपात भरत द्वारा की हुई अपनी माँ की मनु मना में देखा जा सकता है।

बर मापत मन भइ नहि पीरा। बरि न बौह मुई परैड न कीरा ॥^२

इसके मन्त्र कवितावली का यह भी उदाहरण बीमल रस का बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है।

भोभरो को भोरी कबि घाँठि की देखी कबि

पूड़ के कर्मबनु, कपर किमै नेरि कै ॥

कपिनी भूटु म भूटु बनी तापसी सी।

पीर पीर बीँठीं सी उमरपरि कोरि कै ॥

सोमिठ सों सानि सानि बुरा लाव सनुपा से

प्रैठ एक पिबठ बहोरि कोरि कोरि के।

तुलसी बीँठास भूठ घाप निपू बूठनाब।

हेरि हेरि हँसत हूँ हाप हाप कोरि कै ॥^३

स्वाधी कुपुष्पा जोगिनी प्रामाण्य बनके विभा कला उद्बोधन भय संघर्ष आदि से पुष्प बीमल रस का सुन्दर उदाहरण है। अतएव इस रस में भी गीतवादा की ही सफलता पाई है। अतः बीमल रस में भी मल्लि भरत है जो अल्ल पंक्ति से प्रसन्न है।

रीर रस—

इस रस का प्रयोग क्लोपावेश की रक्षा को प्रवृत्त करने के हेतु होता है। भरत को धनु भाव से समझ उन्हें विषयभूत में आये जान लक्ष्मण जी का जो पक्षपात ही जानी है वह रीर रस का उत्कृष्ट उदाहरण है —

धरि कति रघुकुम जनमु राम मनुष जगु जान।

सातहुँ मारें कइति तिर नीच ना बुरि समान।

१ मा० अयो० पृ० २०

२ मा० अयो० पृ० १२६

३ कवितावली -संका काँठ—पृ० १६१—अध्या सं० २८

कह सगि सहिष रहिष मनु मारें ।
 माम माव धनु हाव हमारें ॥^१

भौ बहाना करता से दबना घाँट बबाना तास ठाकना हथियार बुमाना रोमाँच धीर पसीमा होना धारि इस रस के सभए हैं । तुमसी मे मानम में पुत्र के प्रससरोँ पर इस रस का यपार्य स्वरूप दिखसाया है । स्वर्षर में अब तब जनक ने प्रसफन प्रयत्न किया राजाघों की भर्त्सना की ता तेजस्वी सकमए न प्रपना रौद्र रूप प्रकट किया । तुमसी मे उसका बहुत ही भोत्रपूर्व बणुन किया है —

माव लखनु कुन्ति मइ मीहैं । रघपट फरकन मयन रिमौहैं ॥
 सुनहु मानुकुल पकर मानु । बहुरै मुनाउ न कसु धमिमामु ॥
 औ तुम्हारि धनुमासन पाबी । कंदुक इव बह्याँड उठाबी ॥^२
 बाच घट जिमि डारी फोरी । मरुठ मेर मूमक जिमि तोरी ॥
 कमल नास जिमि बाप बड़ाबी । जोरन मठ प्रमान सै पाबी ॥

तुमसी की सबसे बड़ी बिरोधता यह है कि वे रौद्र रस के चित्रण में भी मर्यादा को नहीं मूले । यहाँ प्रोचित प्रवस्था में भी सकमए के मुह से जो वाक्य निकले वे मर्यादा के धाररए में धाररएण धीर मर्यादा पूर्ण हैं पहले तो लजमए ने कहा —

बाच घट जिमि डारी फोरी ।

माव है काके धर कहने का । लजमए ध्यान मे कह रहे हैं कि मैं तोयाबतार हूँ । पुष्पी का पुन निर्माण भी कर सकता हूँ । पका पड़ा फिर तोड़कर बनाया नहीं जा सकता धीर कषथा बड़ा कुम्हार धनेकोँ डार बना सकता है । पठ लजमए कहने हैं बह्याँड के टूट जाने पर यदि कहा जायेता ता मैं उसका पुन निर्माण भी कर दूँग । इसी प्रकार लजमए ने कहा —

कमल नास जिमि बाप बड़ाबी ।

बाप बड़ाबी कहा 'बाप तोरी मही । 'तारी' कहने में प्रोचित्य का भाव हो जाता है क्योंकि अब लजमए यह जानते हैं कि 'राम मन से जानको का बरए कर चुके हैं तब वे 'बड़ाबी ही कह सकते 'तोरी' नहीं । किन्तु प्रोचित्य से भरे वाक्य हैं । प्रथ-तुमसी रौद्र रस के भी सफन चित्रकार थे ।

शान्त रस—

शोस्वामी जी न शान्त रस की बड़ी ही सुन्दर अभिव्यंजना विनय के पदा मे की है । शान्त रस में शान्त रस का जैसी धारा विनयव्यंजना में बही है । वैसी हिन्दी साहित्य में अग्यब नहीं । निबंद ही एक ऐसा माव है जो धारि से शान्त रस बना

रहता है। उसका मूल उद्देश्य है साम कदा मानुषे अनुपाये। यदि हरि भक्ति नहीं की तो मनुष्य जन्म पाने से क्या लाभ।^१ और उसका हृदय निश्चय भी राम भक्ति के प्रति अविचलित हुआ है।^२ इसके कहने को तो जन मही चाहता है कि निर्बेद की प्रभावशाली होने पर भी उसकी इति राम रति में ही होती है और इही का परिहाम है कि विनयपत्रिका ऐसी छरक रचना मानी जा सकती है कि जो सम्पूर्ण द्वितीय आह्वय में अनुपाये है। धीरे-धीरे की भक्ति के विषय में चाहे जो भी कहा जाय पर तुलसी की तो बड़ी अत्यन्त भक्ति नाम में भी। तुलसी की दृष्टि में प्राकृत राम ही परम ब्रह्म है। अतः उनके सम्बन्ध में क्या बिबाह नहीं उठ सकता जैसाकि अन्य विद्वानों ने अन्य मतों के सम्बन्ध में उठायी है। कदाचित् यही कारण है कि आचार्यों ने देव विषयक रति को स्वतन्त्र स्वाम दे भक्ति नाम को एक अलग रत्न ही मान लिया है। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि विनय में निर्बेद का ही राज्य है।

कवि अयोध्यावासियों में जब राम को जनबास दिया जाता है। उनके बिरह में उत्पन्न उत्कण्ठ पाकुलता से पुष्ट निर्बेद वा विनयण करते हैं।^३ एक अत्यन्त छोका कुछ निर्बेद का हृदय कवि राम ने सुमन्त में प्रस्तुत किया है जब वे राम को जन पहुँचाकर लौटते हैं।^४ आन्त का एक उदाहरण कवि कुछ कमल बिबाहक में उत्पन्न में ही व्यञ्जित किया है। जब वे अपने निरापराध पुत्र राम को कुवराज पर देने के निर्याम की घोषणा के पश्चात् स्वतः अपने हृदय पर बिबाह करते हैं।^५ मानस में उत्तर काँठ के अन्त में भक्ति निरन्तर में भी आन्त रत्न ही है। अन्त में तुलसी को अपने अन्त प्रमाण अन्त से शान्ति भी प्राप्त हुई जिसे वे 'पामो परम विद्याम' कहकर स्वीकार करते हैं और अधिक उदाहरण हमसे हम 'स के न मांमिसे अब भोस्वामी की की रचना ही आन्त रत्न प्रमाण है।

पोस्वामीजी ने अपने काव्य में इस प्रकार ने लकी रत्नों का यथास्वाम विवेचन किया है। उन्होंने रत्न की तीव्रता के हेतु संघापी भावों के संकेत पर ध्यान रखा है। जैसी विवेचना ही सुधी है।

रत्नों के उपकरण एककित करक बोझा तो अविनाश कवि कर सकते हैं विष्णु मुक्ति का बीजस इसी में है कि वह रत्न के प्रीणित्य कर भी पूर्ण रूप से निर्वाह कर सके। अर्थात् न तो विरोधी रत्नों को वह एक में निभावे और न ऐसी रचना करे कि उसमें रत्न बाप जा जायें।

१ विनयपत्रिका—पद संख्या २०

२ विनयपत्रिका—पद संख्या २७५

३ मा० पयो० २३-५४५०

४ मा० पयो० ५० १४४-१४५

५ मा० पयो० ५० १४६

गोस्वामी जी के नाम्य में कहीं भी बिरोधी रस एक साथ नहीं पाये। जिन स्वस पर ऐसी योजना जिन स्वसों पर हो भी गई है वह प्रमित्यक्ति जिन कृपित व्यक्तिया के लिये होने के कारण इस बोध से मुक्त हो गई हैं। जैसे —

प्रभु कीन्ह बनूप टकोर प्रत्यय कठोर बोर मयाबहा ।^१

यहाँ प्रभुल्ल बोर और मयामक दोना हो रस बिरोधी है पर दोनों का प्रयोग वा जिन बिरोधी लोगों के लिये ही होने से इसे रस बोध नहीं कहा जायेगा। कोई भी भाव तुलसी की सेवनी से प्रयुता नहीं रहा है। प्रत्यक भाव पर उन्हाने समानाधिकार से अपनी सेवनी बनाई है। यह केवल तुलसी के ही सामर्थ्य की बात थी।

गोस्वामी जी रस सिद्ध कवि थे। उनका सम्पूर्ण मानस ऐसे दिव्य रस से भरा हुआ है। जिनके विषय में वे स्वयं कहते हैं।

राम कथा ये सुनत प्रबाही। रस विषय जाना तिन नाही।

उनके बृहत् ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति में कुछ न कुछ रस चमत्कार विद्यमान है। सामान्यतः नीरस प्रतीत होने वाली पंक्ति में भी कथा का प्रवाह मिलेगा। जिसमें रस तरंग धाप ही धाप उद्वल रही होगी। गोस्वामी जी ने कई जगह नवों रसों का माधुर्य एक जगह समेट कर रस दिया है। बिचार करने पर ऐसे स्थलों में मनोसा ही ध्यान्य धाता है। यहाँ एक उदाहरण दे देना अनुचित न होना। सुन्दर कांड में वे लिखते हैं।

बनक कोट बिचित्र मनि हृत सु दरामतना घना ।
 चडहट्ट सुबट्ट बीबी बाब पुर बहु बिधि बना ।
 पत्र बाजि बाबबर निकर परबर रथ बरबन्धि का गनी ।
 बहुकप तिसिबर रूप प्रतिबल सेन बरनत नहि बने ।
 बन बाम उपवन बाटिका रूप बापी छोहहीं ॥
 भर नाम सुर गवर्ष बग्या कन मुनि मन मोहहीं ।
 बहु मात देह बिद्याल वीन ममान प्रतिबल परंहीं ।
 नामा प्रपारेन्हु निरहि बहुबिधि एक एकन्हु तर्बहा ।
 करि जतन भट बोटिन्हु बिबट तम नयर बहु दिशि रण्यहीं ।
 बहु महिप मानुष प्रभु सर प्रज धम मिसाबर भच्छहीं ।
 एहि सागि तुलसीदास इन्हु की कथा बहु एक है बही ।
 रजुबोर सर तोरप सरीरन्हु त्यागि गति पैहंहि सही ॥^२

इसमें बिचित्रता के कारण पहली दो पंक्तियों में प्रस्तुत रस और बहुकरी उपरणी के कारण दूसरी दो पंक्तियों में हास्य रस विद्यमान ही है। तीसरी पंक्ति में

१ मा० प्रथम० पृ० ४५२

२ मा० सु० पृ० २४२

शुभार रस और स्त्री में वरण रस है। क्योंकि नर-नाम-मुरावर का मार्ग स्त्री कर ही साईं गई थी। मस्कों के कारण सभरों व्यक्ति में वीर रस है। तर्जना के कारण घाठरों में रोज रस है। बिजड तन के कारण नरों में भयानक और घर्मनक पक्षर के कारण बछरी व्यक्ति में भीमरस रस श्रोत प्रीत है। रहा श्रोत रस तो बहु नेप बो वलियों में जिस शूरी के छाप प्रकट किया गया है वह देखते ही बनता है। इस प्रकार मोस्वामी भी ने जहाँ भी जिस रस का प्रयोग किया है वहाँ उसका समुद्र ही उकेन दिया है।

व्याहृतां प्रथ्याय



शैली और उचित वैचित्र्य

शैली—

कवि जब तक अपने पाशों में अपने व्यक्तित्व की विचित्रता का रंग डाल कर वाक्य रचना नहीं करता तब तक वह उत्कृष्ट वाक्य का निर्माण नहीं कर सकता। पाशों के साथ तादात्म्य का तात्पर्य यह है कि कवि जिस बात का बलुन करे उसकी प्रवृत्तता का उद्घाटन करे। इस तरह पाशों की मानसिक क्रियाओं के मोठर में तुमसी के ही व्यक्तित्व के विविध रूपों को अभिव्यक्त होती है। मानस के चरित्र होने जीते जागते और घावर्षक है कि उनके मोठर में तुमसी का जीवन और घावर्षक व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में प्रकट होता है। यही मानस को शैली की सबसे बड़ी कला है। कवि की दैव्य भावना और घावर्षक हीन व्यक्तित्व की सरलता को ही अभिव्यक्ति मानस की शैलीगत सरलता सुबोधता और रमणीयता के रूप में प्रकट हुई है।

राम का चरित्र यदि सरल और सर्व सुखम शैली में लिखा जाने ठो तुमसी के मन में वह चित्रना प्रभावोत्पादक होगा उतना प्राकृतिकों के विषय में धारणा प्रकट और वैचित्र्य पूर्ण शैली में लिखा गया काव्य नहीं हो सकता। इस विद्वान का गोस्वामी जी ने मानस द्वारा प्रमाणित भी कर दिया है। क्योंकि केवल ही राम चरित्रका पौरुष और चमत्कार प्रदर्शन को प्रकृति और घावर्षक पूर्ण इतिहास शैली के कारण सामान्य जनता में प्रज्ञा और मानस इन्हीं बातों के प्रभाव के कारण धर्म रंग बीजा प्रकृत है। कहने का अभिप्राय केवल यही है कि मानस के प्रकटित जो प्रकृतता मिलती है। वह भी गोस्वामी जी की शैली की ही कलात्मकता है।

शैली का निश्चय कबम व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहना बल्कि कर्ष विषय पात्र चरित्रवृत्ति आर उद्देश्य आदि के द्वारा शैली का रूप निर्दिष्ट होता है। इन बातों का ध्यान रखते हुए हम निम्नांकित शैलियाँ या वाक्यशैलियाँ प्रकृतित देखते हैं — सरल शैली, सघन शैली, कठिन शैली, कठिन शैली या विद्वान शैली, उदात्त शैली और व्यंग्य शैली या तीक्ष्ण शैली।^१

१ इन में से सभी शैलियाँ के प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में बड़ी ही सुन्दरता और कलात्मकता से उपलब्ध होते हैं। मोक्ष इन सभी शैलियाँ व उदात्त शैली और कठिन शैली गोस्वामी जी की रचनाओं के आधार पर प्रकृत की जा रही है।

मयूर शैली—

इसमें मयूर एवं संश्लेषण शब्दों द्वारा उपनामरिका कृति के प्रयोग से मुकुमार और कोमल भावों का बलुन किया जाता है यह मयूर शैली है। इसमें इन्होंने ब्याजक प्रसंगों का बलुन नहीं होता है। जैसे—

मुनि सुन्दर बिन सुधारस सामे समानी हैं बानकी जानी बली ।
तिरले करि नैन ही नैन तिन्हें समझाइ कपू मुसुकाइ पली ॥
तुबसी लेहि मोरर सोई सबै धरसोकति मोजन साहु बली ।
अनुराग तवाम में मानु लखै बिनसी मनों मंजुल कंज बली ॥^१

इसमें 'ना' बर्यो की प्राकृति से मयूरता और संश्लेषणकथा का समिश्रण हो गया है। साथ ही नयन उपन बिन, प्राधि मयूर संश्लेषण शब्दों द्वारा उपनामरिका कृति के प्रयोग से इन्होंने कलात्मक शैली उत्पन्न हुआ है। अतएव यह मयूर शैली का यह बड़ा मयूर उदाहरण है।

ललित शैली—

ललित शैली में उक्ति ब्यक्तकार, शब्दों का कलात्मक प्रयोग, धर्लकारिता तथा बलुन की सुबनता एवं बिजातमकता रहती है इनमें ललित शैली कहते हैं। उदाहरणार्थ—

जो क्वि मुखा पयोनिधि होई । परम रूपमय कण्ठपु सोई ॥
सोबा रहु मंदक बिबाक । मयै पानि रंजक निज माक ॥
एहि बिनि उपजै सखिष्य अत्र सु बरठा मुख मूल ।
तखनि सकोच समेत कवि कहहि लीय लनगुल ॥^२

इसमें बानकी के शोभ्य का संकलन रूपक द्वारा बड़े ही कलात्मक शब्दों में संकलित हुआ है। जिसमें धर्लकीक सरणी की उद्भावना की कल्पना एक उसमें बलिष्ठ उपकरणों जैसे घोडा की रस्सी गुंवार का मंदरा चल इत्यादि में सुबनता और बिजातमकता है। रूपक धर्लकार और मान ही धर्लकीक सरणी की उद्भावना उक्ति ब्यक्तकार की उत्पन्न है। इसी हेतु इसमें ललित शैली के द्वारा कलात्मकता पाई है।

सरल शैली—

सरल भाषा में भाषानुसार शब्दावली का प्रयोग करने वाली प्रसाद कृत्य मय्यत्र भाषा एवं रसों का विकल्प करने वाली सर्वज्ञ मय्यत्र एक रमणीय शैली है जैसे—

घाली गी मोहि कोह न ममुपारी ।

राज गजन भाँकी किशो सरनी उर परतीति न घारी ।

१ बनितावली—सयोध्या वाद—श्लो नं० २२

२ भा० भा० पृ० १०३

मयेह रहुत इन भेननि घाम राम मखन घद सीठा ॥
 तखणि न मिटत बाहु या तन का बिचि जा मयेह बिपरीता ॥
 दुख न रहे रहुततिहि बिलाकत तन न रहे बिनु केने ।
 कल न प्राय प्रयाण मुनहु सति समुम्कि पटी यहि सेने ॥
 कौमिम्पा के बिगु बचन मुनि रोइ तठी सब रातो ।
 मुनसीदाम रघुबीर बिरह की पीर न जाति बनयो ॥^१

इसमें प्रसाद कुण पीर माया मरत होने से यह मरत दीली का सुन्दर उदाहरण है ।

व्यय दीली—

इसमें बात का बाध्यार्थ प्रधान न होकर उससे निवृत्तने वाला व्ययार्थ प्रधान होता है । किसी बात को इस ढंग से कहना कि उसमें एक तीखा प्रभाव व्यक्त हो बलीक या व्यय दीली के भीतर है । जैसे—

कह बनि धर्मसीलता छोपे । इमहूँ मुनी इठ पर बिप जोपे ।
 देखी मयन कुत्र रखपायी । बुद्धि न मगह बने बउपायी ॥
 कान नाक बिनु मयिनि निहारी । समा कीन्हि मुम्ह धर्म बिचारी ॥
 धर्मसीमत्रा तक जय जायो । पाबा बरमु हमहूँ बइपायी ॥^२

यहाँ पर राबला की धर्मसीमत्रा का विवेचन बड़ो ही व्ययपूर्ण दीली से व्यक्त किया गया है । इससे प्रस्तुत उल्लेख व्ययार्थक दीली का सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है ।

बिषय दीली—

जिसमें कुछ धर्म या बिषय कल्पना की प्रकुरता हो पीर जिनका भाव बिना व्यय या तीखा के स्पष्ट न हो वह बिषय या बिषय दीली है । जैसे—

सात्विक अष्टा धनु मुहारी । जी हरि कुराँ हृदयं बन पाई ॥
 जय तन ब्रत जम निजम धपारा । ज मुनि बहु मुम धर्म धपारा ॥
 तैह तुम हरित बरै जक पाई । भाव बन्ध मिनु पाड वेगारी ॥
 मोद निवृत्ति वाच बिबाता । निर्मल मन धरीर निर दन्ता ॥
 परम धर्मधम कय दुद्धि बरै । धरै धनम धराम बनारै ॥
 छोप मदन तन धमाँ सुझारै । धृति मय जाबनु दर जयारै ॥
 मुदिता बरै बिचार मयानी । दय धपार रहु मरप मुधानी ॥
 नक बनि काडि मेह नबन'ता । बिमल बिराम मुमद मुकुनीता ॥
 जाव धनिनि करि प्रगट तक धर्म मुमानुध माड ।
 बुद्धि बिरारै ध्यान दूज ममता मन करि जाड ॥

१ दीनाबती—धनीया वाद—दण्ड नं० २१

२ मा० नं०—पृ० २६६

तत्र विद्यमानरूपिणी बुद्धि विषय कृत पाद ।
 विलस विद्या मरि करै हृद् समता विषयि बलाह ॥
 लीनि बबन्धा लीनि पुन ठेहि कपास तें काढ़ि ।
 नून लुटीय संबारि पुनि बाठी करै सुगाढ़ि ॥
 एहि विधि लेसै शीप ठेज रासि विध्यालयय ।
 बाठहि बासु समीप बरहि मन्दादि क समज सब ॥ १ ॥

इसमें ज्ञान शीपक को स्पष्ट करने हे हेतु निष्कण्ट कल्पना और प्रकृष्ट धर्म के वर्णन होते हैं इसका भाव बिना ध्याक्या के स्पष्ट नहीं हो सकता । अतएव यह निष्कण्ट शैली का सुन्दर उदाहरण है ।

उदात्त शैली—

शोक गुण सम्पन्न बीरता उत्साह अथ वाचि भावों की प्रेरक उत्थितक शैली उदात्त शैली कहलाती है । इसके भी उत्कृष्ट उदाहरण गोस्वामी जी की रत्नमाधों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनकी विषय विवेचना गत पृष्ठों में की जा चुकी है । अतएव यहाँ उसका वर्णन पुनः कृष्टि मात्र ही होमा । यत यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी जी के काव्य में उपर्युक्त सभी शैलियाँ अपने प्रचुर रूप में उपस्थित हैं जो उनकी काव्य कला को समूहपूर्व महत्त्व प्रदान करती हैं ।

तुलसी की शैली के प्रकार—

मानस में तुलसी की शैली के चारों प्रकार हैं जिनमें से प्रमुख यह हैं ।

- १—रत्नानुस्य शैली
- २—प्राधान्य शैली
- ३—नियति परक शैली
- ४—स्वात परक शैली
- ५—प्रवचनों पर प्रमुख शैली
- ६—स्तुति शैली
- ७—वार्त्तिक शैली । धारि

इन सभी शैलियों से भी तुलसी को उत्कृष्ट कला के वर्णन होते हैं । सारे मानस में इन सभी शैलियों का सुन्दर चित्र मिलते हैं । नीचे हम मानस की उपर्युक्त सातों शैलियों की विवेचना करेंगे ।

रत्नानुस्य शैली—

रत्नों के स्वात पर ध्यान देन हुए इन बात की स्वय निद्रि हो जाती है कि सभी रत्नों की ध्येयता एक शैली में नहीं हो सकती । कालिदास का कुछ वर्णन सफल नहीं माना जाता क्योंकि उसमें धार की अपह मापुर्ण गुण व्यक्त होता है । प्रवचन की सभमे बड़ी विशेषता यह है कि उद्गारे रत्नानुस्य ही मापुर्ण प्रभाव और शोक गुणों

का प्रयोग किया है। हिन्दू साहित्य में अमूर्त के समान ही रमानुसूय वीसी का व्यवहार करने वाला यदि कोई महाकवि है तो वह पाशामी तुलसीदास। समस्त मानस के किसी न किसी स्थल में किसी रस विशेष के सभी उपकरणों के साथ तथा मुख्य गुण भी उस रस के प्रभाव स्वरूप बगलान हैं और वह रस के उत्कर्ष को और भी भी सम्पन्न करते हैं। यदि रस कोमल भाव पर टिकने वाला है तो उसमें माधुर्य और प्रभाव गुण होने में सुगन्ध को कहावत को चरितार्थ करते दिसलाई पड़ने हैं। एक उदाहरण है।

कहम किंकिन मुपुन भुनि भुनि । कहउ सत्रम सन राम हृदय भुनि ॥^१

कहना न ज्ञाना कि शृङ्गार रस कोमल भाव। से परिपुष्ट होता है। ऐसे भावों की व्यञ्जना के हेतु कवि ने त्रिम वीसी को चुना है। उनमें माधुर्य गुण तो धीन प्रोक्त है। साथ ही नाव सौन्दर्य की गुणार भी क्लिप्तो मयूर समजो है। उदाहरण में एक भी शब्द ऐसा नहीं त्रिममें माधुर्य न हो। प्रभाव गुण का तो कहना ही नहीं वह तो स्वच्छन्द स्वर्ण की भाँति प्रसर रहा है।

रसानुसूय वीसी की सम्पान्य परिभाषायें न देकर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि सारे ग्रन्थ में जहाँ वही रस का पूर्ण परिपाक दिखताया गया है वहाँ की वीसी उस रस विशेषण के भावों की व्यञ्जित करती हुई उन्मुख प्रभाव माधुर्य और धीन गुण का पस्ता पकड़े बतती है।

पाशानुसूय धात्री—

इस वीसी से सामान्यतः यह प्रमाणित होता है कि बाएँ व्यतिरिक्त का वर्णन है। त्रिम वीसी से कलाकार स्वामाबिकता का प्रतिफलन किये बिना किसी पात्र का सर्वव्यवस्था प्रत्यक्ष करते हुए उसके व्यतिरिक्त की मूर्तमान कर देता है वह वीसी पाशानुसूय कहलाने की ध्वनिधारिणी है। ध्वनेत्री साहित्य में लेखनविषय इस वीसी का चुनाव पण्डित माना जाता है। इसके समान ही तुलसी हमारे हिन्दी साहित्य में पाशानुसूय वीसी के बखोड़ कवि हैं। मानस में जहाँ वही पात्रों के उत्तमोत्तम बचन हुये हैं वही इस वीसी की बसा देखी जा सकती है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त है।

माया नाव न केबहु धाना । बहू तुम्हार मरमु में जाना ॥

बाल कमल रज बहू मनु बहूई । मायुप करनि मूरि बसु घहूई ॥

तुमन तिला भर नादि मुझाई । पाहन से न बाठ बठिनाई ॥

गहि प्रतिपालन मनु बरिबाक । गहि जानन बसु घठर बबाक ॥^२

बी प्रसु पार धरमि या बहू । मोहि बर पदुम पधारन बहू ॥

निवार के हृदय में राम के प्रति धर्म्य प्रेम होने के कारण उसे उम्हरी करण रज पाने की उराठ धमिताया है। इसकी व्यञ्जना तो उसके बचन में अपने

१ मा० भा० पृ० १६१

२ मा० धयो० पृ० ११६

घाव ही प्रकट हो जाती है। उसके घन्ट करण की सरसता व निर्मलता भी प्रकट हो जाती है। यह सामान्य बर्ण का पात्र है। घटएव उसकी बाखी से काठ घीर बाट परे कबाक पादि बब्बों का निकसना उसके कषन की घीर भी स्वामात्रिक बना देता है। कषन में उसके हृदय घीर स्पलित्व की नैसर्गिक ब्यंजना है। यह कषि की पात्रानुष्प लीली में कला का कितना मुखर उबाहरण है।

स्थिति परक शैली—

सामान्यत जीवन में सम घीर विषम स्थितियों का बल बलता रहता है। मानस में जहाँ कहीं भी स्थिति विषेय की बिलघण्टता उपस्थित हुई है जहाँ उसका पात्र प्रकट करने के हेतु शैली शैली का अनुसरण किया गया है। उसमें स्थिति के पहरे ब्रभाब को शीघ्रातिशीघ्र ब्यक्त करने की बड़ी क्षमता है। इस शैली की पर योजना में बाम्बैरग्य की ब्युत्पत्ता बने ही रहती है पर ब्रिभाब की स्पष्टता बोड़े से बिलसे सरल लब्धों में ऐसी होती है जो सब लोभों के हृदय में तुल्य बर कर लेती है। ब्रसामात्रिक परों की यात्रना द्वारा स्थिति के अनुकूल शनोकी शैली इच्छित होती है। जिसमें हृदय के भावों का उत्कर्ष देखते ही बनता है। ऐसे स्वर्णों पर उपयुक्त परों की ब्यंजना में मानिकता भरी पड़ी है। यह सब बाँट है ब्रिनके कारण गोस्वामी जी की शैली में बना घाई है।

स्वान परक शैली—

मानस में जनकपुरी जनक बाटिका बाम्बैरग्य धामय विषकूट धृति स्वर्णों के बसुन में स्वानगत रमणीयता घाटी है। इन सभी स्वर्णों की शैली एक मो कोनल कीत पठाबली लो है ही साथ ही कुछ परम्परागत उपमाओं को एक ब्रसंकार योजना से बंदिश होने क कारण इसमें ब्रदभुव कलात्मक शोभ्ये धा गया है।

घबसरो पर प्रयुक्त शैली—

प्रधान रूप से घबसर को प्रकार के होते हैं, सुकारत्मक घीर दुबालक इही शैली से ब्रभाबित होकर हृदय प्रसभता से नाच उठता है या बैठ जाता है। मानस में शैली प्रकार के घबसरो पर मानक हृदय की सुधपातिसूक्ष्म ब्यथाओं का ब्रसंकर बिसता है। ब्रंभ में रामबम्बोरसक बिबाइतसक तथा उनके बन से प्रत्याबमन से बड़कर घीर सुप्रबसर बना शृंगे। घट इही प्रसंभों को सुप्रबसर परिबाम्यक शैली के उबाहरण रूप में देना जा सकता है। उक्त प्रसंभ की शैली का ब्रसं समझने के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन सभी में एक रूपता है। इनकी पर योजना बहल बहल का हरप उास्थित करने में समर्थ होते हुए हमारी सुकारत्मक कृति को उबग करती है। फलता हमारा मन सुप्रबसर की धाम्बानुभूति में रम कर उतका मानसिक बिब देसने लबता है। इसी बनीबता के कारण लो तुमनी की शैली में कला धा गई है।

राम बन बमन बबरम मरण लीला हरण, सभसल मुर्छा पादि से बड़कर घीर कुचबनर दवा हागे। इन प्रसंभों की शैली का यदि परस्पर बिलान किया जावे

ना इन मर्मा में मास्य सिद्धता । उसमें लगे प्रयत्नों और पढ़ाई का प्रयत्न है कि वे सब रूप में दुःखानुभूति करके मानसिक हृदय भी उपस्थित करते हैं ।

स्तुति शैली—

स्तुति शायी के उत्तम मरकृत पद्यों के प्रचुर प्रयोग और सामयिक पर साहित्य के मंत्रु प्रवाह के प्रेमोद्देक के कारण प्रेम सत्तया भक्ति का रसास्वादन होता है । मानस की स्तुति शैली में भी यही बात सचिन होती है ।

बार्जिनिक शैली—

मानस की बिचार प्रधान या बार्जिनिक शैली में ब्रह्मचरक तादिक पद्यों की योजना के बाह्य के साथ सरलता भी है । उसमें भी हृदय के रमने का स्थान है ।

उपदेशात्मक शैली—

मानस की उपदेशात्मक शैली में नीतिमय बचनों का ही प्राधिक्य है । तथापि उपदेश के कोमल भावों में आवृण होने के कारण सामान्यतः उनकी रमणीयता बनी हुई है ।

संवाद शैली—

परछात्र मुनि की संवादों के समाधान रूप में ही मानस की सम्पूर्ण कथा बनी गई है । संवाद करने वालों की सभी पक्षों तथा उसके समाधान के निमित्त कही गई सम्पूर्ण कथामें स्पष्ट रूप से पौराणिक शैली में बनी गई है । यह कथा संवाद के रूप में बनी गई है । इस कारण मानस में हमें संवाद शैली के भी दर्शन होते हैं ।

अपसंहार—

पोस्वामी जी का शैली के शैलिक गुण है । उनका धार्मिक सरलता सुबोधता प्रसन्नकार, प्रियता आरत प्रवाह सभी कुछ तुलना में है । जिसका कारण ही तुलना की शैली में बसा धार है ।

शैली पर शैलिकता भावनात्मकता और बला शैली का ही प्रभाव पड़ता है । तुलना की बला में यह शैली ही तब पाये जाते हैं । अतएव उनको बला में कलात्मक शैली के दर्शन होते हैं । प्रथम शैली का कलाकार ही अपनी प्रतिभा का ऐसा अद्वैत दिखता मजता है ।

पोस्वामी की मध्य रचनाओं की शैलिया में हम यह देखते हैं कि तुलना में परंपरागत शास्त्रीय और शैलिक शैली का प्रभावों की मयस्विन कर अपनी शैली का निर्माण किया है । शास्त्रीय शैली में अहोनि संसृष्ट के अर्थों तथा बलि दिया एवं शास्त्र की बाधा तथा मर्यादा का पालन किया है । साथ ही लोक-वाच्य की शैली में अत्यंत मूल्य बरबं साहस धारि शैली में भी अपनी रचनाओं को बाधा है । अहोनि ज्ञानकी संकल पार्वती संकल बाध का शैली पर साहाय्यी बलि सही की शैली में बलिजायपी और पदा का शैली पर साहाय्यी की रचना की । बहने का तात्पर्य यह है कि तुलना में अपने वाच्य का शैली की शक्ति से परिपूर्ण और सर्वाधिक

बनाकर प्रस्तुत किया है। सैसा में सिरुप घोर कला को जिस सुन्दर रूप में कवि ने संजोया है वह उनकी कला का अद्भुत कीर्तन है।

अपने समय की प्रचलित काव्य भाषाओं पर ही नहीं उस समय की प्रचलित सभी टीसियां पर भी उनका प्रमुख दृष्टिकोण होता है। विषय के अनुकूल उनकी टीसी बदलती भी रहती है। गीताबली और विनयपत्रिका में घुर की टीसि टीसी का अनुसरण किया गया है। कविताबली में माटों की टीसी के अनुसार फुटकर कवित्त घोर सर्वे के टीसी अपनाई गई है। मानस की रचना टीसी आपसी के परभाव पर आधारित होते हुए भी उसके बीतों से मुक्त है।

कवित्त छप्पय की बीर रसोपपुक्त टीसी हिन्दी के बीर भाषा काव्यों की विशेषता है। तुलसी ने इसे बढ़ी ही कलात्मकता से अपनाया है। मानस में फरसी मसनवियों की बोहा बीपाई पद्धति बरई में रहीम के बरई छन्द, गहलू में घाग गीतों की टीसी गीताबली और विनयपत्रिका में पदा की परंपरा घोर घोहाबली में गीत कारों की बोहा प्रणाली का अनुसरण किया गया है। सारांश यह है कि अपने समय की प्रचलित सभी टीसियों को तुलसी ने राम चरित्त मानस का माध्यम बनाकर पूर्ण किया। इन सभी टीसियों का सुन्दर उपयोग उनकी कला विदग्धता का परिचायक है।

भावना के आवेग को व्यक्त करने के हेतु प्रर्थों या उदाहरणों की झड़ी लगा देना भी तुलसी की एक विशेषता घोर उतमें कलात्मकता साने का एक कारण भी है। कैंकेयी की करतुत पर अरत भाता कौसिल्या के घाबै अपना सफाई बैठे हुये यह छपय करते हैं कि अमर कैंकेयी के कृत्य में मेरी सम्मति हो तो मैं इन पापियों की पति पाऊँ। पाप कर्मों की एक सम्भी सूची प्रवाह के साथ निगते जने गये हैं।^१ अरत के इस कथन की पामी में किठनी सरलता और स्वाभाविकता तथा उनके घुड़ अलङ्कारण की अलङ्क है। जिने पढ़कर पाठक एक बार यह अवसर न देना कि अरत निर्दोष है। अतः तुलसी ने अपने समय की सभी प्रचलित काव्य टीसियों में रचना की। जबकि घुर ने केवल मुक्तक पर ही लिखे हैं।

दृष्ट्य के चरित पर गोस्वामी जी ने कृष्ण अल गीतकारों की टीसी में 'कृष्ण गीताबली की रचना कर डाली। नारदामी जी ने अपने काव्य में सभी प्रचलित टीसियों को इसलिये रवान किया ताकि जनता सभी टीसियों में राम चरित्त को अपने बीच में ला सकें। अतः इतने विवेचन से पूर्णत स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने सभी टीसियों की बढ़ी ही सुन्दर कलात्मक योजना की है।

कवित्त वैचित्र्य—

अपने किमी विस्वात की दृढ़ता अपना अपना कथा क किठी बाज वा किठी विषय के प्रति तीव्र महानुक्ति या तीव्र विद्वेब के कारण अर्ध में आकर कवि एक

उक्ति पर दूसरी उक्ति या एक बक्ष्यना बिच पर दूसरा बक्ष्यना बिच प्रस्तुत करके अपनी व्यंजना को प्रस्तुत अंत तक प्रभावशाली बना देता है ।

उक्ति वैचित्र्य से हमारा धमिप्राय उस बेपर की उड़ान से नहीं है जिसके प्रभाव से कवि सोम नहीं रवि भी नहीं पहुँचता वहाँ से अपनी उपमा उत्पत्ता प्राप्ति के हेतु सामग्री लिया करते हैं । उक्ति वैचित्र्य से यहाँ हमारा धमिप्राय कवन के ऐसे समूहों से है जो इस कवन की घोर धोखा का ध्यान धारणित करता है तथा उनके विषय को मायिक तथा प्रभावशाली बना देता है । ऐसी उक्तियों में कुछ तो ध्वज की लक्षण व्यंजना उक्तियों का आशय लिया जाता है और कुछ पर्यायोक्ति जैसे घसकारों का । ऐसी उक्तियों मोस्वामी जी की रचनाओं में भरी पड़ी है ।

हुसैन कवि उक्ति वैचित्र्य का आशय अपने विश्वास की हड़ता और तीव्र सद्धानुभूति की हड़ता प्रदान करने के हेतु प्रहण कर काव्य में अद्भुत कवितारमक सौंदर्य की सृष्टि कर देते हैं ।

योस्वामी जी की उक्ति वैचित्र्य सम्बन्धी कसा पर प्रमा तक समासावर्णों का ध्यान नहीं गया है । पर भी वे हम कवि की इसी उक्ति वैचित्र्य सम्बन्धी कसा पर प्रकाश डालेंगे ।

राम की घोमा का बर्तन करत हुए एक स्थान पर कवि मझाट कहते हैं ।

मानहु कमवि कमवि छवि छपके ।^१

इस छन्दके ध्वज में कितनी उक्ति है । यह व्यापार को बँसा मोचर रूप प्रदान करता है । इसका वाक्यार्थ अत्यन्त विरहजन है । लक्षण से इनका अर्थ होता है प्रभु प्रमाण म प्रकट होना । पर धमिप्रा द्वारा इन प्रकार कहने से बँसी तीव्र अनुभूति नहीं हो सकती । विनयपत्रिका में योस्वामी जी राम से कहते हैं—

हीं मनाम है हों सही तुमहू घनाव पति ।

जी सपुनतिहि न निमि हा ॥

—विनयपत्रिका ।

सपुना से भयभीता होना बँसी बिलजल उक्ति है । पर माय हा कितनी सज्जी है । घातदार धमोर मरीबा से क्यों बातचीत नहीं करन । उनकी सपुना के भय से ही न । वे नहीं न डरते हैं कि इनने छोटे घातकों से बातचीत करते देख लोग हमें बना कहेंगे । पर सपुना से भयभीत होने में एक प्रकार का विरोध या सज्जित होता है । यह हृदय पर बल बढ़ो उक्ति के माय प्रभाव जालता है ।

राम व घर से बने जान पर कोसिय्या दुब से कित्तन हाबर करनी है —

हो घर रहि मजान पावक ज्यों मरि कोई मृतक बह्यो है ।^२

१ रामचन्द्र दुबन—तुमही दाउ—उक्ति वैचित्र्य टीपक

२ गीतावली—अयोध्यावाँ

कोसिम्बा को घर रामघान सा लग रहा है। इस घमघान की प्रति में कोसिम्बा को भस्म हो जाना चाहिये था। पर वह कहती है कि मुझे भस्म तो हो जाना चाहिये था किन्तु मैंने अपनी मृत्यु का ही सब इसमें जलाया है। जाब तो यह है कि मुझे मृत्यु भी नहीं घाती। पर बड़े ही द्यूठे बय से प्यक्त किया गया है।

यहाँ कोसिम्बा भी कहती है कि मुझे मृत्यु भी नहीं घाती। प्रश्न है कोसिम्बा मरती क्या नहीं इसका कारण तो घरी के मुह से सुनिये :—

सगद रहत मेरे नयननि धामे राम लखन धर सोता ।

× × ×

बुझ न रहें रघुपतिहि बिसोकत मनु न रहे बिनु देखे ॥

राम लक्ष्मण की मूर्ति हृदय से हटती ही नहीं। बिना उनकी मूर्ति साये मन से रहा ही नहीं जाता और जब उनकी मूर्ति सामने घाती है तब बुझ नहीं रह जाता। मरें तो कैसे मरें। ऐसी उक्तियों के हनु कबिबर सैवसपियर प्रसिद्ध हैं। इस उक्ति में किशना गहरा भाव व्यंग्य रूप में निकलता है।

उक्ति वैशिष्य में धम्म और धर्म दोनों के प्रयोग की बिसङ्गण कर्मात्मकता काम करती है। कथन क जाने जितने उस्टे छीमे डंम तुमसी के काव्य में हमें मिलते हैं। जो दूसरे के मत-करण पर स्वामी प्रभाव डालते हैं। इसकी पुष्टि में वह उदाहरण हैं।

मुनि सुमंत कि धामि मुन्बर मुमन सटित बिबाउ ।

बाउ तुमसी नतव मोको मरन धमिय पियाउ ॥^१

यहाँ पर 'मरन धमिय के विविध प्रयोग के साथ भाव की तीव्रता भी दर्शनीय है।

एक और उक्ति है। है ता साबारस। पर बड़ी अपूर्वता के साथ कही गई है।

कियो न कसू करियो न कसू मरि बोई न कसू रहसो है ।^२

और सब काम ता में कर बुका बैबस मरमे का काम बाप्ये है ।

एक स्वान पर पोस्वामी जी एक क्रिया के दो कर्म ऐसे जाये हैं जो परस्पर पर्यंत विजातीय होने के कारण बड़े ही द्यूठे हैं।

भरत की मृगत सचस साये बलि के ।^४

भरत की मृगत और पर्वत दोनों साथ साथै। इसमें चमत्कार दोनों बस्तुओं के पर्यन्त विजातीय होने के कारण है। यद्येव उपासकार द्विकेस्य ऐसे प्रयोग बहुत

१ पीठावती २—२१—१७१

२ पीठावती ३—२७—४

३ रामचन्द्र मुक्त—गुलसीदास—दीपक—उक्ति वैशिष्य

४ कविशायी संका २२—पृ० ११९—१० —

पसन्द करते थे। जैसे इस बात ने उसकी धाँस से धाँसु घीर जब से क्मास निकाल दिया।

मानस की भूमिका में कवि जब राम कथा घीर राम चरित्र की महत्ता का पान करते हैं तो वह बीपार्ई के ४८ चरणों में घीर तीन बोहों में तीन कल्पना चित्रों का प्रयोग करते हैं। समस्त प्रकरण में यह पुस्तिका एक के बाद एक क्रम से धाँसी है। घीर बिगायता यह है कि राम कथा सम्बन्धी उक्तिमा एनो सिंग की है घीर राम चरित्र सम्बन्धी पुरप सिंग की। उदाहरण के हेतु निम्नलिखित पंक्तियाँ मयेष्ट हाँपी।

बुध बिभाम सकस बन रंजनि । राम कथा कलि कमुप बिर्मजनि ॥
राम कथा कलि पमम भरनी । पुनि बिदेक पाबक बहु धरनी ॥
राम कथा कलि कामद गार्ई । सुजन सजीबनि मूरि सुहाई ॥
सोह बमुबातस मुधा तरगिनि । मम मंजनि भ्रम मेक मुर्मगिनि ॥^१

मानव देह पाकर भी जो हरि भक्ति नहीं करते उनके बिरुद्ध कवि की तीव्र धाँसना पुन उसी प्रकार से बड़ा सुन्दर पद्यति में व्यक्त होती है। नीचे देखिये राम की भक्ति लोम करें इस बात की प्रेरणा देने के हेतु कवि ने बड़ी बिचित्र उक्ति का प्रयोग किया है।

जिम हरि कथा सुनी नहि काना । धबल एग्र यहि भजन समाना ॥
नमनगि संत दरस नहि देखा । लोचन मोर पंख कर सेला ॥

बसुर्मग के धर्मतर सीता को छीन लेने के हेतु क्रूर राजाधों के कायर बिचार का प्रतिबाध सामु राजाधों द्वारा साठ उक्तियों की सहायता से यथाक्रम बीपार्ईयों के साठ चरणों में व्यक्त किया गया है।^२ पुन कवि जब धपनी कल्पना की तीव्रता में धरबारड़ राम की हुस्त के रूप में बर्णन करते हैं तो वह ६ उस्तुष्ट चित्रों का बरनना करते हैं।

संकर राम रूप धनुरामे । मयन पंखस धति प्रिय साय ॥
हरि हित सहित रामु जब जोह । राम समते रमापति मोह ॥
निरलि राम छबि बिधि हरपाने । घाठइ नयन जानि पदिनाने ॥
सुर^{मैमने} उर बहुन उछाह । बिधि ले देबड़ लोचन साह ॥
रामाह बिठम सुरेत सुजाता । गौठम पापु परम टिन माना ॥
देब सकस सुरपतिहि तिहाही । धाडु पुरंदर सम बोट नाही ॥^३

पुत्रों के निधिला से बिबाहित होकर सौंठे पर उन मोरामी की माताधों के

१ मा० बा० पृ० २८-२९

२ मा० बा० पृ० १८२-८६

३ मा० बा ६ २१७

अपार हृदय का वर्णन करते हैं। तब वह उस हृदय को अर्थात्सियों के चरखों में रचिष्ठ चित्रों द्वारा बड़ी कलात्मकता से अमिम्यक्त करते हैं।

पाबा परम तत्त्व अनु ओषी । प्रभुनु सहेव अनु संतत राशी ॥

अनम रंक अनु पारस पाबा । प्रभहि लोचन सामु सुहाबा ॥

मूक बदन अनु सारस छाई । मानहुँ समर सूर बय पाई ॥^१

केवल पांच अर्थात्सियों और एक दोहे में ही भौतिक अस्तमानामों की समता का आशय सुख प्राप्ति के हेतु अलि के अतिरिक्त अन्य साधनों की अस्तमर्त्ता अज्ञान में अदि अलिप्तों का अचिन्त्य बड़ी कलात्मक ढंग से लाने हैं।

कमठ पीठ आमहि बर आरा । बंध्या सुत बर काहुहि मारा ॥

फूलहि नम बर बहुबिधि फूला । जीव न सह सुख हरिप्रति फूला ॥

तुषा बाइ बर मुकजस पाता । बर आमहि सस सीस विपाता ॥

प्रबनाइ बर रबिहि गसाई । राम विमुक्त न जीव सुख पाई ॥

हिम से अतस प्रपट बर होई । विमुक्त राम सुख पाव न कोई ॥

बारि मयें वृत्त होइ बर अिकता ते बर तेज ।

बिनु हरि भजन न भव अरिभ यह सिद्धांत अयेस ॥^२

अब मुमुक्षु अि अदृष्ट से राम का ऐश्वर्य वर्णन करते हैं तब भी इसी तरह की प्रवृत्ति देखी जाती है। इस अर्थात्सिया और दो दोहों में ही वह उस ऐश्वर्य की तुलना २४ छाटे अड़े अकताओं में से अत्येक भी करोड़ों सुनी अलि से करते हैं। तब वह यह परिणाम निकालते हैं कि राम की तुलना में लमी अकता इस प्रकार होये जैसे सूर्य की तुलना में कोटि अत सधोल।^३ इस अुक्ति में अितनी कलात्मकता और आह्लाक अलि है।

राजा से राम की अन अेजने के हेतु अर मांगने के अेकेयी के कार्य पर अिष्यणी करते हुए पुनः अदि अयनी इसी प्रवृत्ति का अकाशन करते हैं। अर अर्थात्सियों में अदि अानी के कार्य की समता अमात्र अस्त पांच अनुभ्यों के पांच कार्यों से बड़ी ही सुन्दरता के साथ करते हैं। अर्त्तमा की अ्यैयपूर्ण अितनी अिचित्र कलात्मक अलिप्तों हैं।

अहि पापिनिहि कुम्भि का अरेठ । छाइ अवन पर पावक अरेठ प्र

निअ कर नयन बाइ बह बीया । बारि मुषा बिपु अ बीका ॥

कुम्भि अठोर मुकुटि अनागो । अइ अकुबंध बैपु अन मापी ॥

पासव अँठि अइ अहि बाटा । मुअ अहुँ अोक ठाटु अरि ठाटा ॥

नबा रामु अहि अान नमाना । कारण अवन कुटिमपनु ठाना ॥^४

१ मा० बा० पृ० २४३

२ मा० उत्तर पृ० ७६०

३ मा० उत्तर पृ० ७४६ २७

४ मा० अयो० पृ० २५२ २५३

राम को बन पहुँचा कर सौंठे समय सुमठ की विधिष्ठावस्था के चित्रण में कवि फिर इसी उक्ति का सहारा लेते हैं। चार प्रघांसिया घोर बोहे में कवि सन्पन्त मर्मस्पर्शी उक्त चित्रों का समावेश बड़ा विचित्रता से करते हैं।

शोचि हाथ छिद्र बुनि पछिगार्ई । मनहुँ कृपण बन रासि गंवाई ॥

द्विरिह बांधि बर जोर बहार्ई । जनेउ समर जनु सुमठ पर्यई ॥

विप्र बिबेकी बेदबिद संमठ साधु सुजाति ।

त्रिमि बाँजे मर पाव कर सखिब सोच वेहि भाति ॥

त्रिमि कृतीन तिय साधु सयामी । पति वैबता करम मन बासी ॥

रहे करम बस परिहरि गाहू । सखिब हुरप तिमि बालन वाहू ॥^१

परन्तु कवि के उक्ति वैचित्र्य का कदाचित् मन्त्रमे सुन्दर उदाहरण भण्डान द्वारा राम के स्वगत वाक्यों में मिलता है। इस उक्ति में केवल भाव माहुर्य ही नहीं उभर भी बड़ी कलात्मकता से दोहराये गये हैं।

घातु मुफल तनु तीरब रयागू । घातु मुफल जप जोय बिरागू ॥

सफल सफल भुभ भाषन साहू । राम तुम्हहि प्रबलोकठ घाहू ।

साभ प्रबधि मुल प्रबधि न बुबी । तुम्हरेँ बरस घास सब पूबी ॥^२

अतः तुमही के नाम्य में उक्तियाँ एक के बाद एक एक करके क्रम से आती हैं। यह उनके उक्ति वैचित्र्य की कलात्मकता है।

पोस्वामी जी ऐसे उक्ति वैचित्र्य का कमी भी महत्त्व नहीं दे सकते जिसके भीतर सरय का समावेश न हो। प्रपञ्च जिसमें जीवन का मार्ग प्रदर्शन करने वाला उदात्त चरित्रों का प्रहूण न हो। उनका उक्ति वैचित्र्य हृदय की स्मरणीय बना देता है यही उसकी कलात्मकता है।

१ भा० घयो० पृ० ३४२

२ भा० घयो० पृ० ३६६

बारहवाँ अध्याय



तुलसी की कला में प्रभावात्मकता

गोस्वामी जी ने अपने काव्य द्वारा अपने मत का कोई भी सम्प्रदाय नहीं बताया। यह उनकी उदारता और उनके कला की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। वे सम्प्रदाय से बहुत ऊँचे थे। उन्होंने न तो साम्प्रदायिक प्राचार्यत्व का प्रदर्शन ही किया और न ब्रह्मन मन्त्रम की धँसी अपना कर वे हमर सपर विगिजय ही करते हुए भूमि। उन्होंने कोई भी नई बात कहने का बाबा नहीं किया जो कुछ कहा वह धृति सम्मत ही कहा। उत्तर बाँध में तो उन्होंने स्पष्ट ही कर दिया।

धृति सम्मत हरि भक्ति पथ संजुतविरति विवैक।

तैहि न कसंहि मर मोह बस कसंहि पथ पवैक ॥^१

उनकी कला की विशेषता उपयुक्त विषय के संबन्ध और अनुपयुक्त विषय के त्याग में थी। गोस्वामी जी का मत तो धृति सम्मत है। गोस्वामी जी ने कल्पित मठों को उत्तर बाँध में मूख फटकारा है।

बहिम्ह निजमठ बसपि कर प्रकट किय बहु पथ ॥^२

यह तुलसी की कला का एक अमूर्तपूर्व महत्व है। तुलसी का मत एक मुग्धूलित मत होकर भी अपनी स्वतन्त्र छला को भारतीय संस्कृति की नस नस में प्रविष्ट कराके सार्वभौम रूप में विराज रहा है। तुलसी की कला की महत्ता के तीन कार्ण्ड है —

१—बुद्धिवाद और हृदय वाद का सुन्दर सामंजस्य।

२—हिन्दू धर्म का विगुण रूप।

३—विभिन्न तिष्ठान्तों का समन्वय ॥^३

में बाह्यण है तू मुख है में मुख है तू अमुठ है इत्यादि कथन को ही तत्प समझ बैठना निराप्त विवेक हीनता है। तुलसी के काव्य में ऐसी विचारधाराओं को कहा भी प्रथम नहीं मिला है। तुलसी के बुद्धिवाद की विभावता यह है कि उसने धर्म मठ को मनी मीति अपना लिया है। विचारों की संकोर्णतामें यह किसी तिष्ठान्त

१. मा० उत्तर बाण्ड पृ० ७६३

२. मा० उत्तर बाण्ड पृ० ७६१

३. डा० बन्धन प्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन—पृ० १२०

इतना ही नहीं वे तो जड़ को भी धार देते हैं—

जड़ जेतन जग जोब जात सबस राम भय जाणि ।

बहत सबके पद कमल सदा जोरि पुग पाणि ॥^१

मोस्वामी जी ने वर्तमान जाति प्रथा के बिच्छु कोई भी तीखी चक्ति नहीं की । पर उनके मत से बन्ध चाहे जिस भी कृत में हो पर कर्म से हर कोई व्यक्ति लक्ष्य बग की बराबरी कर सकता है । कहा है—

धामोर यवन किरात सब स्वपचारि प्रति प्रथरूप जे ।

कहि नाम बारक लेवि पावन होईह राम नमामि ते ॥^२

हिन्दू धर्म पर बहुत धार्मिक संस्था में हुये बाह्याचारों के प्रापणों से बचाने के हेतु उन्होंने सुमधर्म बर्णन जिध सुन्दरता से किया है । बड़ तो बैकने की बीज है । तुलसी के काव्य में न केवल मानव धर्म और मानव संस्कृति की ही बहुत सी झंझ बाँठी हैं बरन् उसमें गीता से लेकर गाँधीबाब तक के निम्नलिखित सिद्धांत झीड़ा कर रहे हैं—

१—गीता का अनासक्त योग

२—बीड़ो और जैनों का अहिंसावाद

३—बैप्लवा और खैबों का अनुयाय वैराग्य

४—शास्त्रों का अप

५—छंकराचार्य का अद्वैतवाद

६—रामानुज की भक्ति भावना

७—निर्भार्क का उ ताह उ भाष

८—मध्य का रामोपासना

९—चैतन्य का प्रेम

१०—नाग्यारि योगियों का अप

११—कबीर आदि संतों का नाम माहात्म्य

१२—राम कृष्ण परमहंस का समन्वयवाद

१३—ब्रह्म समाज की ब्रह्म कृपा

१४—घाँठ समाज का धर्म संभटन

१५—गाँधीबाब का सर्व अहिंसा

१६—मुसलमाना का मानस बँबुल

१७—ईसाइयों का अज्ञा तथा बाइबल्य पूर्ण सबाचार ।

तुलसी की बराती की महत्ता का एक मूल कारण यह भी है कि उनकी रच नाथों से धर्म के मूल रूप के बर्णन हुये हैं । गीस्वामी जी के कवन का इन इतना

१. मा० उत्तर पृ० ६

२. मा० उत्तर पृ० ७६६

महत्त्वपूर्ण है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि उनकी कला की असामान्य लोक प्रियता का कारण उनका तुलसी भक्त है प्रथम। इनका काम्य कोशम। तुलसी के भक्त और कवि दोनों कर्णों ने ही उनकी कला को प्रति मोह रजक रूप प्रदान किया है।

भारतीय संस्कृति की ये क्रीति हैं वे सच्चे साधु हैं निश्चय भक्त हैं, सिधे द्रुये विद्वान् हैं और भीमें मुनारक हैं। स्वर्ग की मुखा का बहाव गोस्वामी जी की कला में पम पम पर झलकता है।

✓ विद्वत् के समान रंगों से चिह्नित और प्रसौकिक समस्कार से भरी होने पर भी गोस्वामी जी की काली सत्तियाँ स्वस स्वस पर एक-एक करके निकल कर मोर के पंखों की भाँति समाकर फैलाती जाती जाती हैं। जीवन की कला को अपतकृत कर उसमें अपूर्व सौन्दर्य लाती हैं। गोस्वामी जी का ज्वालामुखो घूट नहीं निकसता। उन पर जागरूकता का मोटा ठका रक्का हुआ है। यह धररोप बैबल उसी समय प्रकम्पित हो उठता है जब मक्ति निर्भरणी दैव्य के पुनिन में होकर ज्वाला पर पम से आ बिरती है और सारी विद्वानता सिये हुए धात्मा ऊपर की ओर उठती है जब कवि अपनी वैदिक मायना की पावन मूमि पर पहुँच जाता है और मार्ग में ऐसा प्रकाश बिकीर्ण करता है कि पत्थों को भी चलने का सहारा बिजसाई देने लगता है। यही कला में प्रभावनात्मकता का मूस रहस्य है।

तुलसी हमारे हिन्दी के ही नहीं विश्व के भेष्ठ कवि हैं। इनकी ओर इनकी कला की लोक प्रियता के बारे में कुछ भी कहना व्यर्थ है। तुलसी ने सर्व प्रथम हमारे देश के जन साधारण के हृदयों को जीता। जिससे स्पष्ट है कि उनकी कृतियों में लोक साहित्य के अद्भुत गुण हैं। पात्र तुलसी की प्रति कोमुचे विश्व के अग्र्य देशों में भी फैल चुकी है।

महारमा तुलसीदास की कला का धाकार क्षेत्र इतना व्यापक और अम्भोर है कि उसके पंथ में न जाने कितने अम्भीर रत्न सिये हैं। जिसके उद्घाटन और उत्सहेहन के हेतु कितने ही अघ्यायसामो बिनेवदील नदराही पर्व कला निगुण जीहुरियों को प्राबल्यकता होयो। ज्यों ज्यों हमारे देशों में आजाजन का योग होया गया-त्यो वे मलि माण्डियम मूक पर्वके ऐसी स्थिति में विश्व कवि कुल बमस दिबाकर की कला सम्बन्धी मैंने तमी विदापतायें बूढ़ निकाली है ऐसा कहना बालू पर भीनि उठाना मात्र हो होया।

गोस्वामी आ की कवि मपार्थ बिजण की ओर भी। वे कवि के चतिरिक्त एक अदृष्टा के रूप में भी हमारे समता घाने हैं। राम कथा के मासिक स्वसो का पहि बानने और उनकी बिपद व्यंत्रना करने में उनका कवि हृदय नदीव मजप रहा है। कथा के बिभिन्न पात्रों के चरित्र बिजण में भी उनकी प्रतिभा अद्वितम है। उनके बिचों में अमंयति मुरधि का प्रभाव अमन्धार प्रियता प्रत्याभाबिकता धादि वे दुरगुण नहीं मितने जो हिन्दी साहित्य के अग्र्य छोटे बड़े कविता में पाये जाते हैं।

इसके कारण उनका रचनाया भी कला में सम्य कविता की अपेक्षा अधिक प्रभाव
रखता पाई है। उनकी रचनाया में उक्ति वैविध्य की भी स्थिता नहीं। वे भाषा पर
पूर्ण अधिकार रखने वाले कवि हैं।

✓ यह कथन निरवयवपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनकी
कृतिया में उनके व्यक्तित्व की छाप हो। तुलसी की रचनाया में उनके व्यक्तित्व की
छाप है। यह छाप हमें बृहत्स्वरूप से तक समझ पड़ती है जब हम उनकी उक्तियों के
समझ दूसरे की उक्तियों की रखकर देखते हैं। तुलसी काव्य कला के प्रत्येक पक्ष के
विरोधक हैं और हम इस प्रवृत्ति में स्पष्ट कर चुके हैं।

तुलसी ने अपने जीवन सम्बन्धी धारणों में समस्य के सिद्धान्त की अपेक्षा
है जो बहुत कुछ मोटा के माग पर निर्भर है। धसकारों में भी उन्होंने परम्परागत
अपमाना का भी प्रयोग किया है। और लोक सेवा सुलभ अपमानों को प्रहण किया है।
अतः उनकी कला में लोक कला और शास्त्रीय कलाओं दोनों का ही अद्भुत योग है।

तुलसी की कला को सबसे प्रमुख विशेषता स्वाभाविकता और सरलता है।
तुलसी के काव्य की स्वाभाविक सरलता का उदाहरण यही है उनके पास इतने गहन
बन्धन भाव विचार और अनुभूतियाँ हैं कि वे उन्हें सभी के समझ पड़े और स्पष्ट
रूप में रखना चाहते हैं। अतः उनको कला में रुझना नहीं। इस क्षेत्र में तुलसी की
सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने पद्य की भी सुन्दर काव्य रचना में हास दिया
है कि वह हमारे बोल चाल के पद्य से भी अधिक सुमझी हुई प्रतीत होती है। पद्य
में तुलसी ने जितनी सरलता से भावों की अभिव्यक्ति की है उतनी सरलता से यदि
पद्य में करना चाहें तो नहीं कर सकते। यह बात मानस के बर्तनों और संघर्षों में
स्पष्ट है। लोक जीवन के देखे सुने पद्यों और व्यापारों से अपमान रूपकों और
प्रतीकों के चुनने के प्रयत्नों के द्वारा भी बोसबासी जी ने अपनी कला में सरलता और
स्वाभाविकता की सृष्टि की है।

तुलसी की कला की दूसरी विशेषता प्रभावोत्पादकता है। तुलसी ने जिस
दृश्य जिस चित्र जिस भाव का वर्णन किया है उसे हमारे नेत्रों में समझ सजीव भी
कर दिया है। वह चित्र भाव वा दृश्य हमारे अन्तर को प्रभाव डालता है। यही
तुलसी की लोक विषया का रहस्य है। यह प्रभावकारकता हम कई बातों में पाते हैं।
जमने से अक्ष संघटन और उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रमुख है। इन दोनों का ही
विदार विशेषण 'यह प्रयोग सम्बन्धा कला और 'भाव वर्णन तथा रस विष्णु'
दीर्घ के अस्तमन विस्तार में किया जा चुका है।¹

1 "Tulsidas, although not overzealous to using the conventional language of Indian poets in many passages is rightly praised because his narrative seems with similes drawn not from the traditions of the schools, but from nature herself and better than Kalidas at his best."

तुलसी की कला की तीसरी विशेषता यह कि वह मर्यादा पूर्ण तथा धीमत्य धीर सुरभि सम्पन्न है। इसको भी बृहत् विवेचना 'तुलसी की कला में मर्यादा धीर धीमत्य धीरक के अन्तर्वत की जा चुकी है। अतएव यहाँ इसका संकेत भर ही पर्याप्त है। जोपी विशेषता यह है कि तुलसी की कला बड़ी सदास है। वह हमें सत प्रेरणा प्रदान कर हमारी भावनाओं का संस्कार करती है।

गोस्वामी जो ने मन्म हृदय जन समाज को धारण बस दिया धीर निराशापूर्ण जीवन के हेतु प्राणा से उत्कृन्त उदात्त रूप सामने रक्खा जिससे वह एहिक धीर पारलौकिक लोगों ही प्रकार क संकटों का सामना करने में समर्थ हुआ।

तुलसी के मानस से जो दार्ढ्य धीम धीर सौन्दर्य की स्वच्छ धारा निकली उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति में प्रविष्ट हो भगवान रूप के दर्शन कराये। मानस की इसी व्यापकता ने तुलसी को सभी के हृदय का इष्टदेव बना दिया। जनता के हृदय पर सबसे विस्तृत प्रतिकार रखने वाले गोस्वामी तुलसीदास ही है। जिसे शुक्ल जो ने भी स्वीकार किया है। इस अद्वितीय कलाकार के सम्बन्ध में टीक ही कहा गया है। 'तुलसी का कवित्व स्वयं ही उनके चरणों पर नत हुआ।

गोस्वामी जी की कृतियों में विसमस्त जागरूकता धीर भावुकता तथा सक्रिय मननशीलता है। उनकी भावुकता धीर तीव्र भाव व्यंजना में पम-पम पर मर्यादा की धनूरी द्विचक दृष्टिगोचर होती है। भावुकता में योत्साहन धीर जागरूकता में धीमी पति है। उनकी पहली कृतियों की प्रमा लज्जाली है। उनमें विसास का प्रतिबिम्ब तो है किन्तु वासना नहीं। अन्तिम रचनाओं में प्रथमर्षता नहीं किन्तु स्पष्ट पुकार है। गोस्वामी जी इस बात के सिधे भी प्रमिष्ठ है कि उनके काव्य में वहीं पर भी अस्पष्टता अस्वीयता नहीं पाई।

अन्तेव में तुलसी निगम सिद्ध प्रतिभा वाले क्रांति दर्शी कवि थे। स्वास्त्य गुणाय काव्य रचना में लीन होने पर भी कला ने समस्त बाह्य उपकरण उनकी कृतियों में इतने प्रचुर परिणाम में प्रविष्ट हो गये है कि उनकी समता हिन्दो का लगभम सभी साहित्यों का कोई भी एक कवि कर ही नहीं सकता। प्राणा प्राण रीमी अर्षकार, रस सजो बृहत् प्रियकारी के उम स्तर पर एकत्रिष्ठ किया गया है जहाँ पर पहचाना दूररों के हेतु कटिन है।

निस्सन्देह महाकवि तुलसी की अस्तारत्ता हमारे साहित्य के इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना है। उनके कवि व्यक्तित्व की अहंगामिता में अमने काने तो बहुत थे किन्तु उनमें स्वर्वा कर सबने का सोमाय्य पाने वाला हिन्दी साहित्य में दूसरा कोई भी महाकवि अब तक दृष्टिगोचर नहीं होता। प्राणाय विमोहा भावे में उन्हें

हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ कवि ही नहीं उत्तर भारत का महानतम संत भी स्वीकार किया है।

निस्सन्देह बीस्वामी जी की कविता सभी दुष्टों से विमुक्ति है। इन्होंने बर्धमबर्ध के समान प्रकृति प्रयोगों से पाठ ग्रहण किया है। आप धुप्रसिद्ध धीरेजी कवि चोखसपियर के तुल्य प्रकृति तथा मानवी स्वभाव के बड़े पक्षी ज्ञाता थे। ऐसा इसके मानस क प्रमुखायक प्राइस साहब ने भी स्वीकार किया है। इनकी बिलजग्य बुद्धि कभी नदियों तथा सरोवरों के छतों पर निचरण कर कभी पर्वतों पर चढ़कर कभी बनों में प्रवेश कर कभी धाराओं में उठकर कभी समुद्रों में धँसकर धीर कभी पुरातन सस्कृत साहित्य की बाटिकाओं में भ्रमण कर सब स्थानों से सुन्दर उपयुक्त सामग्रियाँ एकत्रित करती गई है और इन्होंने उसके सहारे अपनी कविता कविता को सुन्दर संवार कर गृन्थार से सुसज्जित किया है। अपने राम नाम का बरन पहना कर बिलजग्य मलित धरमाओं की माता हूँ कर धीर विविध धनुमाओं की तिलपी जोड़ कर उसके गले की खोमा बढाई है। ध्वनि और ध्वन्य की करवनी तथा बड़े हरे भी बाल दिये हैं। अलंकारों की किसी भी प्रकार की म्लानता नहीं रखती है। बरसों में विविध मलित पति भी बिलसाई है। हास की किरण छटा भी छिष्टकाई है। रोज तथा वीर का झूँ बँक भी लढाया है। परसुत रूपकों का परसुत संवर पहना कर उसके अन्न मुख पर सर्वादा का परसुतन बास कर उसकी बिल मोहिनी पूर्ति छाड़ी कर बी है। जो अपनी मानुसी से अन्नविज सभी की मोहित कर देती है। सारांश यह है कि हम बीस्वामी जी की कविता में कमा को जिस रूप में भी देखते हैं उसे सर्वं कृण सम्पन्न पाते हैं।

पतञ्जल तुमसीदास की निबिचार कन से बिल के कविता में प्रमुख स्थाव रहते हैं। इनका मानस पहले अध्ययन के हेतु बीठा के समान ही मुख्यवान है।^१ फिर भी यद्यपि रामायण चिन्ता से पूर्ण है। किन्तु उसके मति के प्रभाव के मुकाबले उसकी विज्ञता वा काई भी महत्व नहीं गृह्णा।^२ इनी प्रकार मास्वामी जी के मानस तथा उनके सम्बन्ध में कुछ सम्मतियाँ यहाँ उद्घुष्ट कर देना उचित जान पड़ता है। जो मनातनी हिन्दू है समकी सम्मतियाँ कदाचित् पक्षपात पूर्ण मानी जा सकती है। इमसिये हम बड़ा उन सज्जन की सम्मतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं जो वा तो नानाकी हिन्दू हैं ही नहीं या उनके मानुजाया हिन्दी नहीं है।

असुर रहोम नाम नाना वा बचन है कि —

१ गाँधी विचार बोधन—पृ० ३

२ माहारा गाँधी वा धर्म पत्र—पृ० १२२

गम औरत मामस विमस मत्त जीवन प्राग ।

हिन्दुवान को बेद सम जमर्नहि प्रवट कुरान ॥^१

फोर्ट बिनिपम के मुझी घदानत ली जो सिक्ने हैं— उनके उपदेश सबमुष ही दार्शनिक ठोस और अनुकरणीय हैं।— उनकी विचार धारा बहुत ही उत्कृष्ट है। वही अत्यन्त शुद्ध और भाषा प्रबोधात्मिकी है। इसकी संसार के सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।^२

श्री गोटेसन महोदय की उक्ति है कि प्रागुनिक काल में जितने बौद्ध तथा सुभारक हुए और उनमें जो धार्म्यात्मिक उस्तास और धार्मिकों के भाव कौने उसमें गोस्वामी जी की रामायण एक बहुत उत्कृष्ट और दिव्य संकीर्त की भाँति अपना मस्तक ठेंबा किये हैं।^३ श्री साहू की राय है कि हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान निस्संदिग्ध बड़ा सर्वोच्च है और उनकी रामायण न सिर्फ भारत में ही बल्कि सारे संसार में प्रसिद्ध है। वह पर्याप्त स्थाति क योग्य है।^४

श्री साहू का निर्णय है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में भक्ति का जो अर्थ और विभूय भाव आता है उसमें बढ़कर और बड़ी भी दिक्साई नहीं देता।^५

हिन्दुओं के धार्मिक विद्वान्ता और उनकी संस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र वीना रामायण में मिलता है। वीना धायर और किमी भी ग्रन्थ में न होगा।^६

गोस्वामी जी अपनी रचनाओं में कोई भी ऐसी बात नहीं कहने जो पाठक को अप्रिय प्रतीत हो।^७

भारत के सर्वे साधारण समाज को लेकर चलते हैं।^८ के विरव कोय का

१ बस्याण के साधारणिक पु० २१५ में श्री बासकराम जी विनायक ने यह बोधा मिला है इने हमने रहीम के किमी ग्रन्थ में नहीं देखा। तुलसी जी ने भी इने महिम्न ही स्वीकार है।

२ यह अनुवाद हमने बनकरी की Imperial Library में देखा है। यह बहुत प्रमत्तक है। केवल एक यवन का हृद्योद्गार है इस कारण हमने यह सम्मान यहाँ की है। तुलसी ग्रन्थ—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

- 3 Hindi Literature—Key—Page 47
- 4 Central Theme—Page 16
- 5. भूमिका
- 6 Central theme Page 16
- 7 Central theme Page 215

८ यह पाँचों उदाहरण डा० डे० एम० वीनकी एम० ए० पो-एच० डी० की The Ramayan of Tukidas or the bible of northern India नामक पुस्तक में किये गये हैं। यह पुस्तक १९१० में अगिनबर्ग में आता है इने हमने बनकरी की Imperial Library में देखा है

उदाहरण यह हुए एक विद्वान कहते हैं कि बोस्वामी जी की रचना जन समाज के इतने अनुभूत पड़ी है कि उनके बचनों को जनता कहावतों के रूप में इस्तेमाल करती है। इतना ही नहीं बरिष्क सैद्धान्तिक दृष्टि से जो उनकी रचना बड़ी उत्कृष्ट है। बर्तमान समय में हिन्दुत्व के धम्बर जो उपबन्धों का प्रभाव है वह धर्म किसी का भी नहीं। धर्म साम्प्रदायिक सामुग्रो की भाँति उन्होंने धर्ममा कोई भी निज का सम्प्रदाय नहीं बनाया। तथापि उत्तर भारत की समस्त हिन्दू जनता उनको अपने चरित्र निर्माण और धार्मिक कार्यों में एक बहुत ही प्रमाणिक पथ प्रदर्शक मानती है।^१

भारत में करोड़ों पड़ी और बेपड़ी जनता में तुलसी की रामायण का इतना प्रचलन है जितना सामान्य ईसाइयों में है बाइबिल का भी नहीं।^२

तुलसी की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और मैं इसे प्रथितीय मानता हूँ।^३

किसी भी धर्मो की हिन्दू को वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है। सम्पत्ति में विपत्ति में, घर में जन में रण क्षेत्र में भ्रान्त्योरतन में जहाँ देखिये वहाँ राम। बोस्वामी जी ने समस्त उत्तर पथ के लोगों को राम भक्त कर दिया। बोस्वामीजी के बचनों में जो हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है वह धर्म्यम दुर्लभ है। उनकी बाली की प्रेरणा से धर्म हिन्दू जनता सौरभ्य पर मुग्ध होती महत्त्व पर धम्मा करती शीघ्र की धोर प्रवृत्त होती है। मर्मार्ग पर पेर रखती है। विपत्ति में शीघ्र धारण करती है। कठिन कर्म में उत्साहित होती है। व्यथा से धाम होती है। कुराई पर स्तानि करती है। शिष्टता का धामम्बन लेती है और मानव जीवन के महत्त्व का अनुभव करती है।^४

धर्म: गोस्वामी जी के हृदय कपी मानस से पवित्र धीर निर्मल कविता रूपी धर्मवती का राम पथ रूप मधुर जन से धाम्नावित ऐसा निःशोथ प्रवाहित हुवा जो लोक धीर वैद की मर्यादा रूप लोगों दुर्लभ की रक्षा करते धर्मुरों के लक्ष बरों को साथ लेते समाज की कुरीति रूप मीस धीर धर्मुरियों को धोते कुष्ट धीर बन्धकों की कुरीत नीति एवं पार्श्व के प्रबल संज्ञन रूप चक्र के साथ बेबादि धारणों के मनोहर उपदेशों धोर बर्णन रूप बन्धोवचनों से होने पौराणिक उपकथानक रूप धामा नवी को छोड़ते महान पुण्यों के बर्णन धीर धाम्क्यायिका रूप सहायक मध धीर नधियों को लेते धर्मिण विज्ञान रूप धर्मिकों को परिचुष्ट करते हुये राम भक्ति रूप धर्माह समुद्र में पशुध धाम्क्य की धर्मियों में विराम पा गया। यही सब कारण है धर्मिके कारण तुलसी की कथा में जो प्रभावमकता धार्य है वह धर्मिण्य है। जित प्रभावमकता का ही कारण है कि कस धोर इन्सेट में मानस का अनुवाद ही हुआ है धीर वह विदेशी विद्वानों द्वारा प्रदर्श का कोप सा जन पया है।

1 Theology of Tulsidas Page 2

2. Incyclopidia of Religion and Ethics—Page 1921

३ महात्मा गांधी—धर्म सत्य पृ० ७२

४ धाम्क्य रामचन्द्र धर्म—प्रस्तावना—पृ० ५

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ—

- १—अग्नि पुराण
- २—आचार्य रामायण
- ३—अमरकोश—अमरमिह
- ४—अष्टांगस्य सिद्धांत—श्रीमद्
- ५—उत्तर रामचरित—मधुसूति
- ६—कामसूत्र—वासुदेव
- ७—काम्यदर्शन—रामचंद्र मिश्र
- ८—काम्यादर्श—रघु
- ९—काम्यामुद्रासन—हनुमान्
- १०—काम्यासंस्कार—रघु
- ११—काम्यासंस्कार—साम्भ
- १२—काम्यासंस्कार—सूत्रसूति—साम्भ
- १३—काम्यप्रज्ञा—सम्भ
- १४—कुमार संभव—कालिदास
- १५—द्वन्द्वोपनिषद्
- १६—वीर पुराण
- १७—धर्म सूत्र—श्रीमद्
- १८—धर्म सूत्र—श्रीमान्
- १९—धर्म सूत्र—श्रीमान्
- २०—धर्मशास्त्र—धर्मशास्त्र
- २१—धर्मशास्त्र—श्रीमान्
- २२—नारदशास्त्र—नारद मुनि
- २३—नारद सूत्र—नारद
- २४—नीतिशास्त्रम्—मनुस्मृत
- २५—पालिश्रीय गिज्ञा
- २६—प्रमद रावण
- २७—मनुस्मृति—मनु
- २८—महाभारत—कृष्ण
- २९—मेदिनी शास्त्र—मेदिनी
- ३०—मनुस्मृत
- ३१—पाञ्चवस्त्र्य चमपात्र—पाञ्चवस्त्र्य
- ३२—रघुवंश—कालिदास

- १३—रमंगगाधर—पंडितराज अवभाष
 १४—शृंगेर
 १५—बद्धोक्ति नीकितम्—कुण्ठक
 १६—बास्मीकी रामायण—बास्मीकि
 १७—विष्णु पुराण
 १८—विष्णु स्मृति
 १९—शतपथ ब्राह्मण
 ४०—शिव पुराण
 ४१—शिवसूत्र विमर्षिणी
 ४२—श्रीमद्भगवद्गीता—श्यास
 ४३—श्रीमद्भगवद्गीता—श्यास
 ४४—शुत बोध
 ४५—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ
 ४६—इन्दुमघाटक

हिन्दी ग्रन्थ—

- १—अध्यायन—साहित्यिक सामाजिक और सांस्कृतिक निबन्ध—
 डा० मनीरम मिश्र
 २—प्राबुनिक काव्य में छन्द योजना—डा० पुस्तुलाब शुक्ल
 ३—संस्कार पीडन—डा० रसास
 ४—कवितावली—तुलसीदास
 ५—कवितावली—टीकाकार बंगमेखर
 ६—कविता में प्रकृति चित्रण—तरुण
 ७—कवि परिपाटी—दिवाकर मणि त्रिपाठी
 ८—कला का विवेचन—मोहनदास महाता
 ९—कला दर्शन—सचोराजी
 १०—काव्य कल्पद्रुम—कन्दूयासास
 ११—काव्य कला और धाम्—रमिय रावत
 १२—काव्य कला—पोपाबदास घसा
 १३—काव्य निर्णय—मिञ्जारीदास
 १४—काव्य और संपीठ—लक्ष्मीधर
 १५—काव्य कला तथा अन्य निबन्ध—बानू जयवंकर प्रसाद
 १६—काव्य में रहस्यवाद—रामचन्द्र शुक्ल
 १७—काव्य चिन्तन—डा० नयेन्द्र
 १८—काव्यशास्त्र—डा० मनीरम मिश्र
 १९—काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० मनीरम मिश्र

- २०—कामायनी—बाबू जयसंकर प्रसाद
 २१—कालिदास और गोकुलधियर—तुलसीदास
 २२—कव्य अथि कालीन साहित्य में संपीठ—डा० कृष्ण मुन्ना
 २३—काँची विचार बोधुत
 २४—कीर्तिकावली—तुलसीदास
 २५—कीर्तिकावली—टीकाकार बीरनाथ
 २६—कोस्वामी तुलसीदास—डा० स्वामसुन्दर और वीराम्बर दत्त चतुर्विंशति
 २७—कोस्वामी तुलसीदास—विबलन्दन छाया
 २८—किष्कामणि—रामचन्द्र शुक्ल
 २९—कानकीर्ममल—तुलसीदास
 ३०—कायसी इपावली—संपादक रामचन्द्र शुक्ल
 ३१—कुलसी—सरधुराम चतुर्विंशति
 ३२—कुलसी—रामचन्द्र शुक्ल
 ३३—कुलसी—रामचन्द्र शुक्ल
 ३४—कुलसी संपादकी इच्छा लक्ष—प्रकाशक कायसी प्रचारिणी सभा
 ३५—कुलसी और लक्ष काव्य—सत्य नाथपण्ड
 ३६—कुलसी एक चम्पकन—माताप्रसाद शुक्ल
 ३७—कुलसी का पदपुस्तक चम्पकन—प्रो० कुमार
 ३८—कुलसी की सम्भव्य साधना भाग १—राजेश्वरिण्ड
 ३९—कुलसी की सम्भव्य साधना भाग २—राजेश्वरिण्ड
 ४०—कुलसी के चार दस—सदगुरुदत्त चम्पकनी
 ४१—कुलसी लक्ष्मी—माताप्रसाद शुक्ल
 ४२—कुलसी साहित्य और सिद्धांत—मनवत
 ४३—कुलसी साहित्य की धूमिका—बटनाथर
 ४४—कुलसी साहित्य रत्नाकर—रामचन्द्र शुक्ल
 ४५—कुलसी मूर्ति मुपा—विद्योपी हरि
 ४६—कुलसीशाम—डा० माताप्रसाद शुक्ल
 ४७—कुलसीशाम—चन्द्रबती पांडे
 ४८—कुलसीशाम और लक्ष मुब—डा० राजपति दीपिक
 ४९—कुलसीशाम और लक्ष की कविता—रामचन्द्र शुक्ल
 ५०—कुलसीशाम और लक्ष के संघ—बनोरथ प्रसाद दीपिक
 ५१—कुलसीशाम की भाषा—डा० केशवचन्द्र श्रीवास्तव
 ५२—कुलसी—मारनचुरण लोचन
 ५३—कुलसी मालक रत्नाकर प्रकाशित—भायबती सिंह
 ५४—कुलसी रत्नमन—डा० कौटिल्य विद्य
 ५५—कुलसी रत्नमन—हरिचन्द्र शुक्ल

- १६—तुलसी शब्दार्थ प्रकाश—अयोध्या
 १७—श्रीप सिद्धा—महादेवी वर्मा
 १८—श्रीहावली—तुलसीदास
 १९—अम तत्व—महात्मा श्री
 २०—अम पद्य—महात्मा श्री
 २१—नवरत्न—विश्वरूप
 २२—प्रकृति श्री काव्य—डा० रघुचंद्र
 २३—प्रबन्ध प्रतिमा—सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
 २४—पृथ्वीराज रासो—बन्धुवर्मा
 २५—पञ्चम प्रवेश—सुमित्रानन्दन पन्थ
 २६—पार्वती मंगल—तुलसीदास
 २७—विहारी छतसई—टीकाकार रामचंद्र बेनीपुरी
 २८—भारतीय साहित्य शास्त्र—बन्धुवर्मा प्रसाद संपादक
 २९—(तुलसी) मकरन्द—डा० पीतम्बर दत्त बन्धुवर्मा
 ३०—महाकाव्य का स्वल्प श्री विद्या—डा० रामचंद्र सिंह
 ३१—महादेवी जा का विशेषमात्मक वच
 ३२—मानस का अनुवाद—निराला
 ३३—मानस का कथा चिह्न—डा० रामचंद्र राव
 ३४—मानस की कथा—सिंहल
 ३५—मानस श्री कृष्ण भूमिका—अनुवादक डा० केशरी नारायण सुकुम
 ३६—मानस कोष—रघुनन्दन दास
 ३७—मानस प्रबोध—विश्वेश्वरदास मिश्रा
 ३८—मानस परिचय—श्रीवती मदन शोभा सहस्र
 ३९—मानस व्याकरण—विश्वानन्द त्रिपाठी
 ४०—मानस महत्त्व—श्रीवतीवर्मा
 ४१—मानस श्रीमहा—रजनीकांत सास्त्री
 ४२—मानस में राम कथा
 ४३—मानस रत्न—श्री
 ४४—मानस वर्णन—बन्धु मोति सुक
 ४५—मानस वर्णन—डा० कृष्णलाल
 ४६—मिथ बन्धु विनोद—मिथ बन्धु
 ४७—मूल भोलाई चरित्र—श्रीवती माधवदास
 ४८—रवीन्द्र प्रभावती भाग १
 ४९—रमल रंजक—महाश्रीर प्रसाद द्विवेदी
 ५०—राम चरित मानस—तुलसीदास
 ५१—राम चरित मानस—तुलसीदास कीर्ता प्रसन्न जोरनपुर
 ५२—राम चरित मानस—कांतचरण
 ५३—राम चरित मानस—टीकाकार रंग बहादुर सिंह
 ५४—राम चरित मानस—टीकाकार अन्धमूर्ख दास

- ६१—राम चरित मानस—विजयानन्द जो त्रिनाठी
 ६१—राम चरित मानस—टीकाकार मासबीय
 ६७—रामचरित मानस का पाठ—डा० माताप्रसाद दुल्ल
 ६८—रामचरित मानस की भूमिका—रामदास पीढ़
 ६९—राम रसायन—रसिक विहारी
 १००—रामसत्ता महर्षु—गुप्तसोदास
 १०१—रामायण प्रश्न—गुप्तसोदास
 १०२—रामायण व्याकरण—डा० श्रीराम वर्मा
 १०३—रामायण रामायण—गुप्तसो
 १०४—रामायण कोष—महावीर प्रसाद मासबीय
 १०५—रामायण पत्रिका—गुप्तसोदास
 १०६—रामायण पत्रिका—गुप्तसोदास—टीकाकार देवकीनाथपण्डित त्रिनेत्र
 १०७—रामायण पत्रिका—गुप्तसोदास—टीकाकार बिनोदी हरि
 १०८—रामायण पत्रिका दर्शन—रघुबेरी
 १०९—रामायण साहित्य में रामचरित मानस—सप्तसोदा
 ११०—रामायण संक्षेपिका—गुप्तसोदास
 १११—राष्ट्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० श्रीराम त्रिपुराण्य
 ११२—सोहृदपुत्र पौष्पावली गुप्तसोदास
 ११३—संघात रत्नकर—सागर
 ११४—संघात पारिजात
 ११५—संघात दर्पण
 ११६—संघात माकर
 ११७—संघात मानस—पं० विष्णु नारायण भरतसिंह
 ११८—समाज और साहित्य—दानन्द कुमार
 ११९—समाजोचना धाम्—रघुनाथ प्रसाद मासबी
 १२०—साहित्य विज्ञान—सतिश्यामप्रसाद मुखर्जी
 १२१—साहित्य का मर्म—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
 १२२—साहित्य दर्शन—शशि रानी दुर्गा
 १२३—साहित्य विवेचन—संदेश मुकुन्द
 १२४—साहित्य साधना और समाज—डा० श्रीराम मिश्र
 १२५—साहित्योपनिषद्—डा० राममुन्दरदास
 १२६—साहित्य दर्शन—शशि रानी दुर्गा
 १२७—सिद्धान्त और सध्ययन—गुप्तसोदास
 १२८—सूर शायर—सूरदास
 १२९—सूर की भाषा—डा० प्रेम श्यामदास टंडन
 १३०—सिन्धी भाषा और प्रवृत्ति—श्री रामदास

- १३१—हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डा० किरनकुमार पुता
 १३२—हिन्दी मति काव्य—मटनायर
 १३३—हिन्दी कव्य प्रवाह—रघुनन्दन शास्त्री
 १३४—हिन्दी महाकाव्य में नायक—डा० पुष्पलता निगम

अंग्रेजी ग्रन्थ—

- 1 Aesthetic—Benedetto Croce
- 2 A Grammar of Hindi Language—Kellog
- 3 Akbar the great Moghul—V A. Smith
- 4 A Study in epic development—Irene T Myers.
- 5 A Study of Hindi Literature—F E. Keay
- 6 Best quotations for all occasions.
- 7 Comparative Grammar of modern Languages—Beames.
8. Encyclopdia of Religion and Ethics
- 9 Essay on Education—Milton
- 10 Evolution of Awadhi—Dr Babu Ram Saxena
- 11 From Virgil to Milton—C M Bowra
- 12 Hindi Literature—Prof Key
- 13 Illussion and Reality—Candwell
- 14 Index Verborum of the Ramayan of Tulsidas—
Dr Suryakant
- 15 Indian Antiquiry—Dr Grierson
- 16 Local Critic—George Saintsbury
- 17 Manual of English Prose—Minto
- 18 Notes of the grammar of Ramayan of Tulsidas—
Gorge Grierson
- 19 Oxford Lectures on Poetry—A. C. Bradley
- 20 Personality—Sri Ravindra Nath Tagore
- 21 Poetics—Aristotle
22. Principle of Literary Criticism—I A Richards.
- 23 The Art of Poetry translated by Bywater—Aristotle.
- 24 The Epic on Essay—Abercromlie
- 25 The New Dictionary of Thoughts.
- 26 The Philosophy of fine art—G W Hegel
- 27 The Pocket books of quotations—Henry David
- 28 The principle of English Metre—Egerton
- 29 The Problem of Style—Murray
- 30 The Ramayan of Tulsidas or the bible of Northern India—
Dr T M. Macfee.
- 31 Theology of Tulsidas—Carpentier
- 32 *Volets later Camellia Quatations*
- 33 What is Art—Tolstoy

